श्रीनाथजी

परमानन्ददासजी के परमाराध्य

# समर्पण

अष्टछापी भक्तों के दिव्य लीला गान को

आठों याम श्रवण करने वाले

परमानन्ददासजी के परमाराध्य

लीलासागर श्रीनाथजी

के पादपद्मों में

यह तुलसीदल

# आत्मनिवेदन

'कविवर परमानन्ददास और वल्लभ-सम्प्रदाय' मेरे गवेषणात्मक प्रबन्ध के संवर्द्धित, संशोधित और परिवर्तित स्वरूप का परिणाम है। सन् १९५५ में लिखे गए इस शोध-प्रबन्ध के दो खण्ड थे। द्वितीय खण्ड—परमानन्द सागर [पद-संग्रह] आवश्यकता और महत्त्व की दृष्टि से सन् १९५८ में ही प्रकाशित कर दिया गया था। सौभाग्य की बात हुई कि हिन्दी-जगत् ने उसका स्वागत किया और 'एक लम्बे अभाव की पूर्ति' बतलाई। यद्यपि वह परमानन्ददासजी के काव्य के सुव्यवस्थित प्रकाशन की दृष्टि से प्रथम प्रयास था फिर भी साहित्य-जगत् ने उसका हार्दिक स्वागत किया और विशेष संतोष की बात तो यह हुई कि साम्प्रदायिक आचार्यों एवं मर्मज्ञ विद्वानों तथा संगीत रसिकों का भी उसे आशीर्वाद प्राप्त हुआ। उसमें अधिकांश श्रेय भगवत्कृपा के साथ मेरे अग्रजकल्प गोलोकवासी परम भगवदीय श्री द्वारकादास जी परीख को है। वे मेरी पीठ पर थे। उनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं श्रम का मुझे बल था। अत: मेरे पद-संग्रह के लिए अज्ञात पाण्डुलिपियाँ एकत्र कर पाठ-भेद की दृष्टि से संशोधन में सहायता देकर, साम्प्रदायिक दृष्टि से वर्षोत्सव एं नित्यसेवा के क्रम से व्यवस्थित करके तथा विद्वतापूर्ण भूमिका लिखकर उसकी प्रामाणिकता में उन्होंने जो वृद्धि की है लेखक उसके लिए उनका आजीवन ऋणी है और रहेगा। खेद है आज इस प्रथम खण्ड के प्रकाशन के अवसर पर वे अचानक गोलोकवासी हो गए। फिर भी उन्होंने इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि को आद्योपान्त पढ़ा था और अपने बहुमूल्य सुझाव दिये थे। लेखक इसके लिए भी उनका आभारी है। वस्तुत: उनकी सदैव यह इच्छा रहती थी कि साहित्य की अज्ञात अमर निधियाँ यों ही बसनों में न बँधी रह जांय, वे प्रकाश में आवें और समर्थ व्यक्ति उपयोगी कार्य करे। आज तो उनकी अनुपस्थिति के कारण 'मन मर गया और खेल बिगड़ गया।' उनमें अद्भुत क्षमता थी कि वे काम कराते थे और प्रामाणिकता के साथ। वे संप्रदाय के मर्मज्ञ थे। मातृभाषा गुजराती होते हुए भी व्रजभाषा पर उनका अच्छा अधिकार था। हिन्दी की उन्होंने ठोस सेवा की थी। उनके गोलोक वास से नौ-दस दिन पूर्व मैं उनके दर्शनार्थ गया था। बोले—"बस अब आपकूं काम करनो है। अष्टछापेतर २००-३०० कवीन की सूची दऊँ हूँ, इनको इतिहास तथा परिचय लिख डारियो।" इस आदेश को मैंने सदैव की भाँति सहज रूप से ही लिया। क्या मालूम था मुझे कि यह उनका अंतिम आदेश था। भगवदिच्छा बलवती है, शायद सुयोग आवे कि मैं उनकी अंतिम इच्छा पूरी कर सकूं। संभव है तभी मैं उनसे उऋण हो सकूं। इतना अवश्य है कि संप्रदाय में आज भी व्रजभाषा का विपुल भंडार है जिसके लिए मैं हिन्दी के शोध-छात्रों का आवाहन करता हूँ।

हाँ, तो प्रस्तुत ग्रन्थ सद्गत परीख जी की कृपा से यथाशक्ति साम्प्रदायिक मर्यादाओं से बहिर्मुख होने से बचा रहा है। कवि का अनुशीलन करते समय साम्प्रदायिक दृष्टि को आवश्यक रूप से सचेत रखा गया है, जिसके बिना उसके साथ न्याय नहीं हो सकता था। अष्टछापी कवियों—विशेषकर सूर-परमानन्द जैसे 'सागरों' पर संप्रदाय निरपेक्ष दृष्टि रखकर काम ही नहीं चल सकता। उसके बिना उनकी भावना-पद्धति को हृदयंगम ही नहीं किया जा

सकता। दोनो ही महानुभाव आचार्य वल्लभ के प्रमुख शिष्यो मे से थे जिन्हें आचार्य ने अपने श्रीमुख से श्रीमद्भागवत के दशमस्कध (निरोध-लीला) की अनुक्रमणिका श्रवण कराकर लीला-गान का आदेश दिया था। फलस्वरूप दोनो ही सागरो—सूर परमानन्द—का दृष्टिकोण सप्रदाय के आचार्यो-वल्लभ-विट्ठल—के ही अनुसार हो गया था। अत इनके काव्य के मूल में सप्रदाय की भावना पद्धति अव्यक्त सरस्वती की अजसधारा की भाँति बह रही है। सप्रदायानुकूल अपनी भावना-पद्धति एव अप्रतिम काव्य-शक्ति के कारण सूर-परमानन्द अष्टछापी भक्तो में ही नही सारे व्रज-भाषा-कृष्ण-भक्ति-कवियों मे श्रेष्ठ है। इसीलिए लेखक ने कविवर परमानन्ददास जी के अनुशीलन को प्रस्तुत करते हुए पदे पदे वल्लभीय सिद्धान्तो और साम्प्रदायिक मर्यादाओ की चर्चा की है। प्रत्येक प्रसग के मूल मे सप्रदाय के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। परमानन्ददासजी को उद्धृत करते समय 'परमानन्दसागर' के अपने ही सस्करण को दृष्टि मे रखा है।

सिद्धान्त-चर्चा, भक्ति पद्धति, सेवा-भावना के उल्लेखों मे मुझसे त्रुटियाँ हुई होंगी। यद्यपि कुल क्रमागत परपराओ से मुझे पुष्टिमार्गीय सस्कारों का वरदान प्राप्त है और शैशव मे अपने स्वर्गीय पूज्य पिता श्री पडित यादवनाथजी शुक्ल से 'वृत्रासुर चतुश्श्लोकी' भी प्रसाद रूप में मिली थी, परन्तु 'तव अति रहेऊँ अचेत' के अनुसार 'मारग की रीति' के तलस्पर्शी ज्ञान को अथवा रहस्य को हृदयगम नही कर सका था। वह अभाव शायद आज भी बना है परन्तु उनका अमोघ आशीर्वाद मेरे साथ सदैव रहा है। इस पुण्य अवसर पर उनका सादर स्मरण करता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ की मूलप्रेरणा देने के लिए अलीगढ विश्वविद्यालय के सस्कृत-हिन्दी विभाग के प्रोफेसर एव अध्यक्ष डॉक्टर हरवशलाल शर्मा का मैं हृदय से आभारी हूँ जिन्होने 'आत्मान सतत विद्धि' के अनुसार मुझे मेरी अभिरुचि के अनुकूल दिशा-ज्ञान दिया। उनके प्रति मे अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इसके अनन्तर पूज्यपाद गोस्वामी श्री दीक्षितजी महाराज का मैं चिर कृतज्ञ हूँ जिनके पावन चरणो में बैठकर मैंने समय समय पर अपनी ग्रन्थियो का निराकरण करके समाधान प्राप्त किया है। इसके अतिरिक्त बन्धुवर छोटालाल जी कॉकरोली, डॉ० भडारकर भण्डाकर ओरियण्टल रिसर्च इस्टीट्यूट पूना एव सौभाग्यवती लक्ष्मी याज्ञिक घाटकोपर (बम्बई) बधुवर श्री सूर्यबलीसिह जी शिक्षा विभाग मध्यप्रदेश एव मेरे अग्रज बधुवर पडित मथुरानाथजी शुक्ल आदि महानुभावो का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे पुस्तकादि के प्राप्त करने और पाण्डुलिपियाँ देखने मे सहायता दी।

अन्त में बन्धुवर प० बद्रीप्रसाद जी शर्मा अध्यक्ष भारत प्रकाशन मदिर, सुभाष रोड अलीगढ़ का भी मैं आभार स्वीकार करता हूँ जिन्होंने इस ग्रन्थ के प्रकाशन मे भरपूर रुचि ली है।

शुक्लसदन अलीगढ<br>देव-प्रबोधिनी एकादशी<br>बुधवार<br>२०२०

विनीत<br>**गोवर्धननाथ शुक्ल**

अष्टछाप के द्वितीय सागर

भक्त-प्रवर

प्राकट्य

(मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, सं० १५५०)

नित्यलीला प्रवेश

(भाद्रपद कृष्णा नवमी सं० १

# परमानन्द-स्तवन

उपासतामात्मविदः पुराणाः परं पुमांसं निहितं गुहायाम्।
वयं यशोदा-शिशु बाल-लीला कथा-सुधा सिन्धुषु लीलयामः ॥

सूर सूर जस हृदय प्रकासत।
परमानन्द आनन्द बढ़ावत ॥

× × ×

कुम्भनदास महारस कन्द।
प्रेम भरे निज परमानन्द ॥

× × ×

सर्वोपरि दास परमानन्दरे।
गाया गुणनिधि बालमुकन्दरे ॥

द्वारकेश

× × ×

पौगण्ड बाल कैशोर, गोप लीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात, हुतौ पहिलौ जसु गाई ॥
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमाञ्च रैन दिन।
गद्गद गिरा उदार, स्याम-सोभा भीज्यौ तन ॥
सारंग छाप ताकी भई, स्रवन सुनत आवेस देत।
व्रज-वधू रीति कलजुग विषे परमानन्द भयौ प्रेमकेत ॥

नाभादास

× × × ×

परमानन्द और सूर मिलगाई, सब व्रज रीति।
भूलिजात विधि भजन की, सुन गोपिन की प्रीति ॥

ध्रुवदास

× × × ×

मेरे येई वेद व्यास।
श्री हरिवंस, व्यास, गदाधर अरु परमानन्ददास।

नागरीदास

# विषयानुक्रमणिका

विषय पृष्ठ

श्रीहरि

# कविवर परमानन्द और उनका साहित्य

## विषय प्रवेश

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे पूर्व मध्य युग जिसे भक्तिकाल कहा जाता है उसे यदि हिन्दी साहित्य का 'स्वर्णयुग' कहे तो अनुचित न होगा। विषय की दृष्टि से इस युग मे यद्यपि वैविध्य का अभाव था फिर भी निराकार साकार भक्ति को लेकर जिस उच्च कोटि के साहित्य की सृष्टि हुई वह अद्वितीय थी। साहचर्य और सौन्दर्य से उत्पन्न सगुण प्रेम की सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गहन से गहन भावानुभूतियो के समाधिमय क्षणो मे जिस चिरतन मानवीय रहस्य का उद्घाटन और उसकी वर्णमय अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य मे जैसी इस युग मे हुई वैसी न तो उससे पूर्व हो पाई थी और न आगे चलकर फिर सभव हो सकी। शृ गार-भावना की अभिव्यक्ति को सगुण भक्ति के पवित्र प्राचीर मे सुरक्षित रखकर उसे जो चिरन्तनता इन भक्त कवियो ने दी वैसी अन्य किसी मानवीय भावना को कोई कवि या साहित्यकार आगे चलकर न दे पाया।

सगुण भक्ति धारा को जीवन-दान देकर पुष्ट प्रवहमान बनाने का श्रेय यो तो सभी भक्त कवियो को है, किन्तु पुष्टिमार्गीय भक्त कवियो को विशेष रूप से है। क्योकि उनकी एकान्त अनुपम मधुर-भावना ने जिस सरस साहित्य का सर्जन किया वह विश्व साहित्य मे अद्वितीय है। इन कृष्णोपासक पुष्टिमार्गीय कवियो मे भी अष्टछाप के कवियों का स्थान तो अत्यन्त उँचा है।

आनन्दकन्द लीला पुरुषोत्तम भगवान् कृष्णचन्द्र की 'कीर्तन सेवा' मे इन आठो महानुभावो का भाव-सागर आठो याम तरगायित रहता था। अपनी भावना के दिव्योन्मादमय क्षणो मे ये लोग जिन सरस सगीत मय पदो का सृष्टि करते वे अपनी भावनिधि के कारण अनुपम थे। इन 'अष्टकाव्यकारे' महानुभावो से व्रज साहित्य इतना श्री-सपन्न हुआ कि अन्य भारतीय भाषाओ का साहित्य कदाचित् ही उतना वैभवशाली हुआ हो। वास्तव मे विक्रम की सोलहवी सत्रहवी शताब्दी मे हिन्दी साहित्य की इतनी श्रीवृद्धि हुई कि उसका यथावत् विवरण प्रस्तुत करना कठिन है। अष्टकाव्यकारे' इन आठ सखाओ के आध्यात्मिक, साहित्यिक एव कलात्मक महत्व को समझकर 'अष्टछाप' की स्थापना तो आगे चलकर सवत् १६०२ मे की गई[१] परन्तु इनकी काव्य धारा ४०-५० वर्ष पूर्व से ही प्रारभ हो गई थी। अष्टछाप के प्रथम दो सागर तो सवत् १५५०-५५ से ही भगवान् का लीला गुण-गान करते चले आ रहे थे। इस प्रकार लगभग सवत् १५५५ से सवत् १६४२ तक का ८७ वर्षों का युग जिस विशाल भाव-रत्नार्णव का सर्जन कर गया उसे एक दैवी चमत्कार ही समझना चाहिए। क्योकि न तो उससे पूर्व ही और न उसके पश्चात् ऐसी किसी सुशृखलित काव्य परपरा के

[१] द्रष्टव्य-'विट्ठलेश चरितामृत' पृष्ठ ६।

दर्शन होते है जिसमे भक्ति की तन्मयता, भावो की विभोरता, साकार-भावना की दृढता सगीत की सरसता, अभिव्यक्ति की गभीरता के साथ-साथ भगवान् की कीर्तन सेवा की निश्छल मनोवृत्ति मिलती हो। इस काल के साहित्य मे जीवन का एक निराला दर्शन मिलता है और भगवच्चरणारविन्द मे उसका पूर्ण विनियोग भी। 'प्राकृत-गुन गान' की दुर्गंध से दूर भगवल्लीला की सरस माधुरी से पूर्ण इन ब्रजभाषा के पदो मे जनमन को पावन और तन्मय कर देने की कितनी प्रबल सामर्थ्य थी इसका सहज अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि तत्कालीन सम्प्रदाय के बडे-बडे आचार्य-चरण जोकि सस्कृत के उद्भट विद्वान् थे इन लीलापरक पदो पर मुग्ध होकर आनन्द विभोर हो जाते थे और देहानुसधान खो बैठते थे।

## अष्टछाप शब्द का इतिहास

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के प्रवर्तक एव पुष्टि सप्रदाय के सस्थापक महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य ने स्वसिद्धान्त एव भक्ति प्रचार के लिये भारत पर्यटन किया था। उस समय वे ब्रज-भूमि मे भी पधारे और अनेक सेवको और शिष्यो को दीक्षा दी थी। उन्होने जीवो को कल्याण-मार्ग का उपदेश देते हुए भगवत्सेवा-मार्ग का विधान प्रस्तुत किया। आचार्य श्री ने ब्रज मे स्थित गोवर्धन-पर्वत से प्रकट हुए श्री गोवर्धननाथ जी के स्वयभू स्वरूप[1] को परम सेव्य बतलाकर बडे विधि-विधान से सेवा का मडान किया।[2] और अपने शिष्यो मे प्रमुख सूरदास कुंभनदास परमानन्ददास और कृष्णदास इन चार भक्त कीर्तनकारो को श्रीनाथ जी के समक्ष कीर्तन सेवा सौपी। सवत् १५८७ मे आचार्य जी के तिरोधान अथवा नित्य-लीला प्रवेश के उपरान्त और उनके द्वितीय पुत्र गुसाईं विट्ठलनाथजी के सवत् १५९९ मे आचार्य गद्दी पर विराजमान होने पर श्रीनाथजी की सेवा मे और भी अधिक सुव्यवस्थता हुई। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को भगवत्सेवा मे अत्यधिक रुचि थी। अत वे उसे अधिकाधिक सुव्यवस्थित करने के प्रयत्न मे अहर्निश व्यस्त रहते थे। उनके विषय मे सप्रदाय मे प्रसिद्ध है—

सेवा की यह अद्भुत रीत।
श्री विट्ठलेश सों राखे प्रीत॥[3]

अत: अष्टयाम-सेवा की साम्प्रदायिक अष्ट-दर्शन-विधि—मगला, शृगार, ग्वाल, राजभोग उत्थापन-भोग, सध्या-आरती और शयन की सुव्यवस्था हो जाने पर आठो पहर की सेवा-भावना से अष्टयाम के विभिन्न अवसरो पर आठ कीर्तनकारो की व्यवस्था भी की गई। अपने पिता के चार प्रमुख शिष्यो को लेकर और चार अपने प्रधान शिष्यो को लेकर गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सवत् १६०२ मे अष्टछाप की स्थापना की। ये 'अष्टछाप' के आठ कवि-महानुभाव 'अष्ट कीर्तन वारे' के नाम से सप्रदाय मे प्रसिद्ध हुए। स्वय गुसाईं विट्ठलनाथजी

१ सप्रदाय मे भगव-मूर्ति 'स्वरूप' कही जाती है।
२ श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता, पृष्ठ १६
३ सेवा फल-सूरसारावली [परिशिष्ट] पृष्ठ ६०।

ने इनके लिए 'अष्टछाप' शब्द का व्यवहार नही किया था। 'अष्ट' शब्द को लेकर सप्रदाय मे 'अष्टसखा' 'अष्ट कीर्तनवारे' अथवा 'अष्टकाव्यवारे' आदि शब्द प्रचलित थे। अष्ट काव्यवारे' शब्द प्रामाणिक रूप से लगभग सवत् १७९६ तक चलता रहा।[१] साथ ही 'अष्टछाप' शब्द भी प्रचलित हो गया था[२]। सर्व प्रथम 'अष्टछाप' शब्द का प्रयोग वार्ता की सवत् १६९७ की प्रति मे उपलब्ध होता है। उसमे एक स्थान पर लिखा मिलता है 'अष्टछापी चार सेवकन की वार्ता' [३]। इससेपूर्व 'अष्ट छाप' शब्द का लिखित प्रयोग सभवत उपलब्ध नही होता। इसी कारण सप्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान् श्री द्वारकादास जी परीख ने निष्कर्ष निकाला था कि इस शब्द को सर्व प्रथम लिखित रूप प्रभु चरण गोकुलनाथ जी ने दिया। हाँ 'अष्ट' शब्द अष्टयाम, अष्टसखा आदि के लिए प्रयुक्त होता था। अत यह निश्चय है कि सर्व प्रथम प्रामाणिक रूप से 'अष्टछाप' शब्द सप्रदाय द्वारा ही प्रचलित किया गया है और गुसाईं विट्ठलनाथ जी के समय से ही चलता आ रहा है।

## अष्टछाप शब्द का अर्थ

वस्तुत. 'छाप' शब्द का अर्थ है—मुद्रा, मूँदरी, मुद्रांकित करना ठप्पा ( सील ) से दबाकर चिह्नित करना[४] आदि। ये कीर्तनकार आठ महानुभाव किस छाप या मुद्रा से अकित किये गये और तदुपरान्त किस प्रकार सप्रदाय मे वे प्रतिष्ठा मे आए या मान्य किये गये यह एक रहस्य है। वस्तुत यह 'छाप' साम्प्रदायिक कीर्तन-सेवा और भावना-पद्धति की छाप थी। 'अष्टछाप' के सस्थापक प्रभु चरण गोस्वामी विट्ठलनाथ जी स्वय उच्च कोटि के सगीतज्ञ थे और वीणा बजाने मे निपुण थे।[५] अपने सेव्यस्वरूप श्री नवनीत प्रिय जी को प्रात वीणा से जगाने मे आप को अतिशय सुख होता था। इसके अतिरिक्त समय-समय पर विविध राग-रागिनियो के द्वारा गेय-पद्धति से कीर्तन का विधान आपने भगवत्प्रीत्यर्थ ही किया था। अत सेवा-भावना के अनुकूल भारतीय सगीत की शुद्ध सास्कृतिक शास्त्रीय पद्धति से भगवान् की लीला का गान पुष्टिमार्गीय मदिरो मे कीर्तन के रूप मे निरतर चलता रहे, इस हेतु आपने आठो प्रहर की कीर्तन सेवा के लिये 'आठ कीर्तनवारे' महानुभावो को लेकर साम्प्रदायिक पद्धति पर सेवा-भावना की छाप लगाकर 'अष्टछाप' की स्थापना की। ये आठो महानुभाव कोरे सगीतज्ञ ही नही थे अपितु उच्च कोटि के भगवल्लीलाविज्ञ एव काव्य-सृष्टा भी थे। आठों ही महानुभावो ने अपना-अपना विशाल पद-साहित्य अपने-अपने नामो की छाप से मुद्रित भी किया है।

स्वय गोस्वामी विट्ठलनाथ जी मे भी उच्चकोटि की काव्य प्रतिभा विद्यमान थी। आचार्यत्व प्राप्त करने से पूर्व वे व्रज भाषा मे 'ललितादि' 'सहज प्रीति' आदि उपनामो से काव्य रचना किया करते थे।[६] और आचार्यत्व के प्राप्त होने के उपरान्त 'भाषा' मे रचना न करके सस्कृत मे काव्य रचना करते थे। तात्पर्य यह है कि गोस्वामी विट्ठलनाथ जी

---

१ गोकुलनाथ जी के वचनामृत सं० १७९६ की प्रति।
२ 'श्री गुसाईं मेरो आठ मध्ये छाप'—सूर-सरसारावली।
३ चौरासी वार्ता सवत् १६९७ की प्रति।
४ शब्द कल्पद्रुम।
५ विट्ठलेश चरितामृत, पृष्ठ ३।
६ वही, पृष्ठ ४।

उच्च कोटि के साहित्यमर्मज्ञ एव सगीतज्ञ थे। अत अष्टछाप की स्थापना मे उनका उद्देश्य स्पष्ट रूप से साहित्य और सगीत के सुन्दर समन्वय के साथ कीर्तन-भक्ति की सुरसरि से सम्पूर्ण भरत खण्ड को आप्लावित करना था। यह सहज अनुमान करने की बात है कि अष्टछापी कवियो ने जिस उच्च कोटि के साहित्य और सगीत की पीयूष धारा के भाव-माधुर्य की थाह अतीत से लेकर आजतक भारतीय जन-मन नही पा सका है, उसका आद्य सस्थापक कितना भगवल्लीला रसिक, काव्य मर्मज्ञ एव सगीत शिरोमणि रहा होगा। तन्त्रीनाद कवित्त-रस और सरस राग के रत्नार्णव मे अवगाहन करने वाले गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ललित कलाओ की परख के लिये कितनी पैनी दृष्टि वाले थे, यह तो अष्टछापी काव्य और सगीत से अत्यल्प परिचित व्यक्ति भी जान सकता है। साथ ही अष्टछाप के महानुभावो का सम्प्रदाय मे कितना महत्वपूर्ण और सम्मान्य स्थान बन गया था कि उन्ही के समय मे उनके कीर्तनो और पदो को वर्षोत्सवो मे तथा नित्य-सेवा मे अनिवार्य स्थान मिला गया था और पूरी-पूरी लोकप्रियता प्राप्त हो गई थी। अष्टछापा मडल की समादरणीयता और उसके गौरव का इससे भी अनुमान हो सकता है कि सूर जैसे उच्च कोटि के भक्त ने 'करी गुसाईं मेरी आठ मध्ये छाप'[१] कह कर प्रभुचरण गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की थी।

## अष्टछाप के कवियों का महत्व

अष्टछाप के ये कविगण, जिन्हे भगवान् के प्रति उनकी सख्यासक्ति के कारण 'अष्टसखा' भी कहा जाता रहा है मुख्य रूप से सगुणोपासक भक्त, सगीतज्ञ कीर्तनकार एव कवि थे। श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा ही इनका प्रियतम कार्य था। इस कीर्तन-सगीत का विषय हरिलीला ही था। भौतिक जीवन की सकुचित नश्वर परिधि से ऊपर उठकर भगवल्लीला गान को अपना एकमात्र लक्ष्य मानते हुए प्रभु प्रेम की शाश्वत निश्चित भावना के साथ जिस दिव्य भाव-लोक मे ये कवि महानुभाव विचरण किया करते थे वह केवल अनुभवगम्य है, उसे शब्दो मे व्यक्त नही किया जा सकता। उसके लिये तर्क की अपेक्षा श्रद्धा और बुद्धि की अपेक्षा हृदय की अधिक आवश्यकता है।

"अचिन्त्या, खलु ये भावा नतास्तर्केणयोजयेत्"

अत इन भक्त कवियो का एकमात्र पुनीत कर्तव्य यही था कि वे नित्य और नैमित्तिक अवसरो पर श्री गिरिराज पर स्थित श्री गोवर्धननाथ जी के मदिर मे भगवद्स्वरूप के सम्मुख कीर्तन-सेवा किया करे। आगे चलकर पुष्टिमार्गीय सेवा-मर्यादा प्रतिष्ठित हो जाने पर देशव्यापी सभी मदिरा मे यह कीर्तन-सेवा-पद्धिति अपनाई गई और इस प्रकार सभी सखाओ की रचना उनकी भावानुभूति-सगीत-साहित्य तथा कीर्तन सेवा-पद्धति—सभी दृष्टि से देश भर के साम्प्रदायिक मदिरो मे एक प्रकार की एकरूपता ( Uniformity ) अप्रयास हा ग. गई। इस दृष्टि से गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का यह कार्य कितना महत्वपूर्ण था इसका अनुमान सहज किया जा सकता है। वास्तव मे हम इसे धर्म साहित्य और कला का एक त्रिवेणी-सगम मानें, जिसने आर्यावर्त मे पग-पग पर प्रयाग की सृष्टि कर दी थी—तो अनुचित न होगा। इसी तथ्य

१ वार्ता साहित्य के मर्मज्ञ श्री द्वारकादास परीख सर के इस पद को प्रामाणिक नहीं मानते। (लेखक)

को लक्ष्य मे रखकर 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय' के विद्वान् लेखक डा० दीनदयालु गुप्त ने कहा है—

"ये आठो कवि एक उच्च कोटि के भक्त, कवि तथा गायक थे। अपनी रचनाओ मे प्रेम का बहुरूपिणी अवस्थाओ के जो चित्र इन कवियो ने उपस्थित किए हैं—वे काव्य की दृष्टि से वास्तव मे उत्कृष्टतम काव्य के नमूने हैं। वात्सल्य-सख्य, माधुर्य, और दास्यभावो की भक्ति का जो स्रोत अपने काव्य मे इन भक्तो ने खोला है वह भी अत्यन्त सुखकारी है। लौकिक तथा आध्यात्मिक दोनो अनुभूतियो की दृष्टि से देखने पर इनका काव्य महान् है।[1] आदि।

अष्टछाप या अष्ट सखाओ के नाम इस प्रकार है.—

१—सूरदास
२—परमानन्ददास
३—कुम्भनदास
४—कृष्णदास
५—नन्ददास
६—चतुर्भुजदास
७—गोविदस्वामी
८—छीतस्वामी

यदि जीवनी की दृष्टि से इन आठो महानुभावो का तिथि-क्रम रखा जाय तो वह इस प्रकार होगा।[2]

| | | |
|---|---|---|
| १—कुम्भनदास | जन्म सवत् १५२५ | तिरोधान सवत् १६४० |
| २—सूरदास | जन्म सवत् १५३५ | तिरोधान सवत् १६४० |
| ३—परमानन्ददास | जन्म सवत् १५५० | तिरोधान सवत् १६४१ |
| ४—कृष्णदास | जन्म सवत् १५५३ | तिरोधान सवत् १६३६ |
| ५—गोविदस्वामी | जन्म सवत् १५६२ | तिरोधान सवत् १६४२ |
| ६—छीतस्वामी | जन्म सवत् १५७२ | तिरोधान सवत् १६४२ |
| ७—चतुर्भुजदास | जन्म सवत् १५८७ | तिरोधान सवत् १६४२ |
| ८—नन्ददास | जन्म सवत् १५९० | तिरोधान सवत् १६४० |

खेद की बात है कि इन आठो महान् भक्त कवियो का वैज्ञानिक पद्धति से लिखा हुआ सुश्रृङ्खलित जीवत चरित आज हमे किसी भी रूप मे उपलब्ध नही होता। हिन्दी साहित्य के

१ 'अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय', पृष्ठ संख्या २

२ आश्चर्य का विषय है कि सभी अष्टछापी कवि महानुभाव संवत् १६३६ से १६४२ तक-७ वर्ष के भीतर थोड़े आगे पीछे क्रम से तिरोहित हो गए। ध्यान रखने की बात है कि संवत् १६४२ श्री गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी के स्वधाम पधारने का सम्वत् है। (लेखक)।

इतिहासकारो और आलोचको ने कुछ अनुमान और कुछ अन्तस्साक्ष्य—वाह्यसाक्ष्य के आधार पर इनकी जीवनियो के संबध मे कुछ मान्यताएँ निर्धारित की हैं किन्तु उनको अतिम रूप से सत्य नही कहा जा सकता क्योंकि नवीन तथ्यो के प्रकाश मे उनमे परिवर्तन की पर्याप्त गुंजाइश बराबर बनी हुई है। फिर भी किसी भी कवि या लेखक का जीवन चरित लिखने के लिए अतस्साक्ष्य और वाह्यसाक्ष्य के रूप मे उपलब्ध सामग्री के विश्लेषण की परिपाटी सी हो गई है। अतः अष्टछाप के इन भक्त कवियो का जीवन चरित लिखने के लिये प्राय. निम्न बातो पर विचार किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है—

१—अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत कवि का काव्य, उसके पद तथा पदो मे प्रसगवश की गई यत्र-तत्र आत्म-चर्चाएँ।

२—वाह्यसाक्ष्य के अन्तर्गत— ( अ ) साम्प्रदायिक ग्रन्थ अन्य चरित्र-साहित्य, वार्ता साहित्य आदि। इतिहास, समसायिक लेखको की कृतियां समकालीन अन्य ग्रन्थ एव अन्य राजकीय प्रमाण आदि।

उपर्युक्त साक्ष्यो के आधार ग्रहण करने के पूर्व अष्टछापी कवियो के सबध मे दो दृष्टियों पर भी ध्यान रखना होगा—

१—अष्टछाप सबधिनी साम्प्रदायिक-भावना।

२—सम्प्रदायेतर साहित्य-रसिको की भावना।

---

# साम्प्रदायिक वैष्णवों की दृष्टि में अष्टछापी कवि

महाप्रभु वल्लभाचार्य के चौरासी वैष्णव सेवको की वार्ता तथा गुसाईं विट्ठलनाथ जी के अपने पिता से ठीक तिगुने-दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता मे इन आठो भक्त कवियो का वृत्तान्त मिल जाता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के उपस्थिति-काल मे इन वार्ता पुस्तको का अस्तित्व मौखिक रूप मे ही था। क्योकि सम्प्रदाय मे महाप्रभु वल्लभाचार्य को पुष्टि मार्गीय आदर्श सेवको की वार्ताओ का आद्य-प्रणेता कहा गया है।[1] और उन प्रसगो के प्रथम वक्ता उनके प्रथम सेवक (शिष्य) श्री दामोदरदास हरसानी बतलाये गये हैं। इन प्रसगो का विकास करने वाले श्री विट्ठलनाथ जी (गुसाईं जी) हैं। आगे चल कर उन वार्ताओ के प्रचारक श्री गोवर्धनदास थे।[2] वार्ताओ के उन प्रसगो को लेखबद्ध करने वाले श्रीकृष्ण भट्ट[3] एवं चौरासी और दो सौ बावन सख्याओ मे वर्गीकृत करके उन वार्ताओ को विशद रूप मे प्रस्तुत करने वाले श्री गोकुलनाथ जी थे।[4] इन समग्र वार्ताओ के टीकाकार अर्थात् भावप्रकाश के लेखक श्री हरिराय जी हैं। ये गोस्वामी गोविन्दराय जी के पौत्र, कल्याणराय जी के पुत्र एव प्रभुचरण गोकुलनाथ जी के भतीजे एव शिष्य थे। श्री हरिराय ने अपने भावप्रकाश मे वार्ता साहित्य के निगूढ तत्त्वो का मथन और प्रकाशन करके वार्ता को एक लोकोत्तरता प्रदान की था। उनका भाव प्रकाश रूप टिप्पण साम्प्रादायिक वस्तु होने के कारण वैष्णव समाज के नित्य स्वाध्याय मे समाविष्ट होने वाली सामग्री बन गया है अत चौरासी एव दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता और उनकी चर्चा पुष्टिमार्गीय वैष्णवो के नित्य के स्वाध्याय या मनन, चिन्तन और आचरण की वस्तु बन गई है। इनमे भी अष्ट सखाओ का चरित्र तो अत्यन्त ही आदरणीय, पठनीय एव मननीय है। अष्टसखा सम्प्रदाय की मान्यता मे कोरे कवि या कीर्तनकार ही नही, वे भगवान् गोवर्धनधर की नित्य लीला के नित्य सहचर भी हैं। ये समस्त सखा गिरिराज-गोवर्धन के अष्टद्वारो के अधिपति और भगवान की निकुंज लीला के सहचर हैं।

ब्रज मे स्थित गोवर्धन पर्वत अथवा श्री गिरिराज की बडी महिमा है। सात मील लम्बे ब्रजभूमि के मानदण्ड रूप इस पर्वत को पुराणो मे बडा गौरव दिया गया है। इन्हें गिरीन्द्र अथवा गिरिराज कहकर मोक्ष का साधन रूप माना गया है।
गर्ग संहिता मे आया है—

"समुत्थितोऽसौ हरि वक्षसो गिरिर्गोवर्धनो नाम गिरीन्द्र राजराट्।
समागतो ह्यत्र पुलस्त्य तेजसा यद्दर्शनाज्जन्म पुनर्न विद्यते ॥"[5]

१ वार्ता साहित्य मीमांसा लेखक श्री द्वारिकादास परीख, पृ० २।
२ २५२ वैष्णव की वार्ता (लीला भावना) श्री द्वारिका दास परीख, पृ० १०५-१०६।
३ २५२ वैष्णव की वार्ता प्रस्तावना, पृ० ५१ शुद्धाद्वैत एकेडमी काँकरोली।
४ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के चतुर्थ पुत्र देखो विठलेश चरितामृत।
५ गर्ग संहिता गिरिराज खड अ० १ श्लोक ११

इस प्रकार गिरिराज को साधारण पर्वत न मान कर स्कन्द पुराण, श्रीमद्भागवत, पद्म पुराण तथा गर्ग सहिता मे इसे भगवत् स्वरूप ही माना गया है और "गोवर्धनो नाम गिरीन्द्र राज राट्" पदावली की पुनरुक्ति बार-बार हुई है। पुरन्दर-कोप प्रसग मे समस्त अन्नकूट का भोग स्वीकार करते हुए भगवान् ने "शैलोस्मि"[१] कहकर श्री गोवर्धन पर्वत को अपना ही रूप बतलाया है। उसे पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम का आतपत्र[२] (छत्र) होने का भी गौरव प्राप्त है। और वह समस्त तीर्थमय है।

गिरिराज के चतुर्दिक वनस्थली श्रीकृष्ण-चरण अकित होने से पुण्यभूमि हो गई है। स्वय गिरिराज भगवत् स्वरूप हैं। उनकी मानवाकार कल्पना है। गिरिराज के पार्श्ववर्ती कुण्ड सरोवर तीर्थादि उनके अग है।

श्रृङ्गार मण्डलस्याधो मुख गोवर्धनस्य च।
यत्रान्नकूट कृतवान्भगवान्व्रजवासिभि ॥
नेत्रे वै मानसी गगा नासा चन्द्र सरोवर
गोविन्द कुण्डोह्यधरो चिबुक कृष्ण कुण्डक ॥
राधाकुण्डस्तस्य जिह्वाकपोलौ ललितासर।
गोपालकुण्ड कर्णौच कर्णान्ति कुसुमाकर ॥
मौलि चिह्नशिलातस्य ललाट विद्धि मैथिल।
शिरश्चित्र शिलातस्य ग्रीवा वै वादती शिला ॥
"एतानि नृप तीर्थानि कुण्डाद्यायतनानि च।
अगानि गिरिराजस्य" ...... ........॥

(गर्ग सहिता गि० ख० अ० ९, श्लोक ३—११)

"अन्नकूट का स्थान 'शृ गार मडल' गिरिराज का मुख, मानसी गगा नेत्र चद्रसरोवर नासिका, गोविदकुण्ड दोनो अधर, कृष्णकुण्ड उनका चिबुक है। राधाकुड जिह्वा ललिता सरोवर कपोल, गोपालकुड, दोनो कर्ण कुसुम सरोवर गडस्थल, दण्डौतीशिला उनका ललाट एव सिंदूरी शिला मस्तक आदि हैं।

वैष्णव-भक्तों की इस स्वरूप भावना के आधार पर गिरराज की तरहटी भगवान् की नित्य लीला भूमि है क्योकि श्री गिरिराज की गुहा मे से भगवान् का स्वत सिद्ध-स्वरूप प्रादुर्भूत हुआ है[३]। और वे श्रीनाथ जी गोवर्धन पर्वत मे निवास करते हुए सदैव नित्यलीला किया करते हैं। ये अष्टसखा उन्हीं देवदमन—श्रीनाथजी के

१ देखो-शैलोस्मि लोकानिति भावयन्सन् जगाम सर्वं कृतमन्नकूटम्।
तथा—शैलोऽस्मीति ब्रुवन भूरि बलिमाददद्बृहद्वपु। श्रीमद्भागवत १०।२४।३५
२ पूर्णब्रह्मातपत्रधरततमाद्रीर्थं वरस्तु स। ग० स० गिरिराज खड अध्याय ४ श्लोक ३।
३ देखो—गिरिराज गुहा मध्यात् सर्वेषां पश्यतां नृप।
स्वत सिद्ध च तद्रूप हरे प्रादुर्भविष्यति।
श्रीनाथ देवदमन त वदिष्यन्ति सज्जना।
गोवर्धन गिरीराजे सदा लीलां करोति य।
वही—अ० ६ श्लो० ३०-३१।

अष्ट प्रहर के साथी वनलीला के सखा हैं जो श्रीगिरिराज के नित्य-निकुंज के आठ द्वारो पर स्थित रहकर भगवान् की नित्य सेवा मे तत्पर रहते है। इस लौकिक लीला में वे नित्य-निकुञ्ज के आठो द्वारो पर भौतिक शरीर से उपस्थित रहते है, और इस लौकिक लीला के अनन्तर ये सखा गए अपने दिव्य देह ( लीलोपयोगी ) से अलौकिक रूप मे नित्य लीला मे स्थित रहते हैं।

नित्य लीला में स्थित भगवान् के ग्यारह सखाओ की चर्चा हमे श्रीमद्भागवत मे मिल जाती है। श्रीमद्भागवत के दशम् स्कंध मे श्रीकृष्ण के साथ यत्र-तत्र ग्वाल बालों की चर्चा हुई है। उनकी वनलीला मे सखाओ का अनिवार्य साहचर्य सर्वत्र दृष्टिगत होता है।[1] इनके नामो का उल्लेख एक दो स्थलो पर आया भी है। उदाहरण के लिये कुछ मुख्य सखा ये हैं :—

श्रीदामा नाम गोपालो राम केशवयो. सखा।
सुवल स्तोक कृष्णाद्या गोपा प्रेम्णेदमब्रुवन्॥ भाग० १०। १५। २०

यहाँ 'स्तोक कृष्णाद्या' कहकर कुछ अन्य सखाओ की ओर भी सकेत है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कध के २२ वे अध्याय मे गोपी-वस्त्र-हरण-प्रसग के उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीमुख से कुछ प्रमुख सखाओ के नाम गिना दिये गये हैं। सुरम्य ब्रज-वनस्थली के वृक्षो के सौन्दर्य की ओर लक्ष्य कराते हुए श्रीकृष्ण अपने सखाओ मे से प्रत्येक का नाम ले लेकर पुकारते हैं —

"हे स्तोक कृष्ण ! हे अशो ! श्रीदामन् सुवलार्जुन।
विशालर्षभ ! तेजस्विन् ! देवप्रस्थ ! वरूथप॥
पश्यतान् महाभागान् परार्थैकान्त जीवितान्॥ श्रीमद्भागवद् १०। २२। ३१

उपर्युक्त श्लोक मे दस सखाओ के नाम आए हैं। श्री बलरामजी सहित श्रीकृष्ण के ग्यारह सखा होते हैं। इन्ही सखाओ की चर्चा गर्गसहिता मे धेनुकासुर मोक्ष-प्रसग मे भी आई है —

श्रीदामा तच दडेन सुवलो मुष्ठिना तथा।
स्तोक पाशेन त दैत्य सतताड महावलम्॥
क्षेपणेनार्जुनोंशुश्च दैत्य सत्तिमाखरम्।
विशालर्षभ चैत्याशु पादेन स्ववलेन च।
तेजस्वी ह्यर्यचट्टेण देवप्रस्थश्चपेटकैः॥
वरूथप. कन्दुकेन सन्तताड महाखरम्॥
अथ कृष्णोऽपि त नीत्वा हस्ताभ्या धेनुकासुरम्॥[2]

ये दसो भगवान् श्रीकृष्ण की वाललीला के नित्य सगा है जिनके नाम बिना किसी हेर-फेर या परिवर्तन के श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त स्कदपुराण गर्गसहिता आदि मे भी मिलते है।

---

१ श्रीमद्भागवत १०।८।२७
२ गर्ग सहिता, वृन्दावन खण्ड अध्या० १२, श्लोक १३, १४, १५, १६

कृष्ण के इन दस अनन्य सखाओं में से प्रथम आठ सखाओं को लेकर सम्प्रदाय में उन्हीं मूल सखाओं की भावना करके इन अष्टछापी कवियों पर कृष्ण की सख्य-भावना का आरोप किया गया है। इस भावना का मूल आधार सम्प्रदाय की प्रबल भावना-पद्धति ही है। क्योंकि पुष्टि-सम्प्रदाय सर्वतोभावेन भावनात्मक है। इसका सम्पूर्ण विशाल प्रासाद ही सुदृढ भावनात्मक पद्धति पर आधारित है -

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिप: [चतु: श्लोकी श्लो० १]

तथा

"भावोहि विद्यते देव:" आदि सम्प्रदाय के मूल सिद्धान्त हैं।

अत: अष्टसखाओं का प्रादुर्भाव श्रीगोवर्धननाथजी के प्राकट्य के साथ ही मान लिया गया है। प्राकट्य-वार्ता मे आया है :—

"जब श्री गोवर्धननाथ जी प्रगट भए, तब अष्टसखा हू भूमि मे प्रगट भए, अष्टछाप रूप हाय के सब लीला को गान करत भए।[१]"

इन अष्टसखाओं पर सर्व प्रथम पुष्टिमार्गीय आचार्यो मे श्री हरिराय जी उनके उपरान्त श्री द्वारकेश जी महाराज ने मूल सखाओं की भावना का आरोप किया था उनका एक छप्पय सुप्रसिद्ध है।

सूरदास सो तो कृष्ण तोक परमानन्द जानो।
कृष्णदास सो रिषभ, छीतस्वामी सुबल बखानो॥
अर्जुन कुम्भनदास चतुर्भुजदास विशाला।
नन्ददास सो भोज, स्वामी गोविन्द श्रीदामाला॥
अष्ट छाप आठों सखा श्री द्वारकेश परमान।
जिन के कृत गुनगान करि निज जन होत सुयान॥

गुरु महिमा भारतीय अध्यात्म जीवन की प्राणभूता रही है। अत: पुष्टि संप्रदाय में भी गुरु श्रद्धा अत्यन्त ही बलवती है। सम्प्रदाय मे आचार्य वंशज गुरू की आज्ञा वेद तुल्य है। अतः आचार्य चरणों के मुख से निःसृत भावनात्मक उक्तियाँ आगे चलकर सम्प्रदाय मे सर्वमान्य हो गई। अत: श्रीद्वारकेशजी ने न केवल अष्टसखाओं की भावना का विस्तार ही किया अपितु उनकी कृतियों की महिमा भी बतलाई। आठो महानुभावो की कृतियो का गुण गान करने से भक्त समाधान (मानसिक शांति) प्राप्त करता है। अत: संप्रदाय की भावना के अनुसार अष्टसखाओं की भावना यहाँ दिए हुए कोष्टक चक्र से और भी स्पष्ट हो जायगी। अष्ट सखाओं का नित्य निकुंज मे निवास करने वाला श्रीस्वामिनी जी के साहचर्य मे रहने वाला रूप तथा प्रभु के अंग भूत रूप आदि का परिचय यहाँ मिलता है। साम्प्रदायिक भक्तो मे अष्टसखाओं अथवा अष्टछापी कीर्तनकारो का यही रूप मान्य है, वे उनके साहित्यिक महत्व को अधिक महत्व नही देते। उनकी भावना-वृद्धि को संप्रदाय की भाव-मान्यता ही स्वीकार है।

१ दृष्टो-श्री गोवर्धननाथ जी की प्रागट्य वार्ता पृष्ठ-३१ नाथद्वारा विद्या-विभाग संस्करण।

अष्ट सखाओं की भाँति मुख्य स्वामिनी राधिका की शृंगार-सज्जा करने वाली नित्य सहचरियाँ ललिता, विशाखा आदि की भी चर्चा नित्यलीला में उपलब्ध होती है [१] और इन की भावना भी सम्प्रदाय में यथावत् मिलती है। सखाओं और सहचरियो को भगवान से इतना अभिन्न माना गया है कि वे उनके अंगभूत भी कही गयी हैं। इन सबके मूल में साम्प्रदायिक भावना ही प्रमाण भूत है। इस भावना-तत्त्व के आद्य प्रवर्तक गोस्वामी विट्ठलनाथ जी एवं प्रभु चरण हरिराय जी थे। स्वयं इन दोनों महानुभावों का व्यक्तित्व भावनामय था अतः श्रद्धा और भावना से अनुप्राणित होकर रसेश्वर पूर्णब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण (श्रीनाथजी) की सेवा का मंडान इनके द्वारा हुआ। जिसमें आठों सखा प्रभु के सहचर माने गये है।

## अष्टछाप के कवियों का साहित्यिक महत्व—

अष्ट छाप के आठों ही कवि महानुभाव यद्यपि उच्च कोटि के काव्य-प्रणेता एवं संगीतज्ञ कीर्तनकार थे परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सम्प्रदाय न तो इन्हें कवि अथवा साहित्यकार की दृष्टि से महत्व देता है न गायक अथवा कलाकार की दृष्टि से। सम्प्रदाय तो इन्हे भगवत स्वरूप समझ पूज्य बुद्धि से इन्हें भगवान के नित्य लीला के चिर सहचर अथवा नित्य सखा मान कर इनको भगवत् तुल्यस मझता हुआ इनकी पूत वाणी का मनन अनुशीलन करके आत्मलाभ करता है; परन्तु आज के तर्क-प्रधान साहित्य जगत् के लिए इन आठों कवि महानुभावों का साहित्यिक महत्व ही गले उतरने वाला है।

चौरासी एवं दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता में अष्टछाप के कवियों का परिचय है। इन ग्रन्थों में इनकी शरण भावना भक्ति भावना और कीर्तन सेवा की ही चर्चा है। इनके साहित्यिक महत्व का वहाँ कोई महत्व नहीं न इसके लिए वहाँ कोई गुन्जायश ही थी। वस्तुतः इन पुस्तकों के प्रणेता एवं संकलन कर्ताओं का दृष्टि कोण ही दूसरा था। कोई भी काव्य अथवा साहित्य भगवद गुण-गान के अभाव में या तो कोरा वाग्विलास है अथवा खिलवाड़ मात्र। जो

१ स्वामिन्यास्तत्र शृंगारं चक्रुः सख्यो मुदान्विताः।
श्रीखंडं कुंकुमाद्यैश्च पावकाः गुरू कज्जलैः
मकरन्दैः कीर्तितासु तां समभ्यर्च्य विधानतः।
ददौ श्री यमुना साक्षाद् राधायै नूपुराण्यलम्॥
मंजीर भूषणं दिव्यं श्री गंगा जह्नुनंदिनी।
श्री रमा किंकणी जालं हारं श्री मधुमाधवी॥
चंद्रहारं च विरजा कोटि चंद्रामलं शुभम्।
ललिता कंचुक मणि विशाखा कण्ठभूषणम्॥
अंगुलीयक रत्नानि ददौ चंद्रानना तदा।
एकादशी राधिकायै रत्नाढ्यं कंकण द्वयम्॥
तादकं युगलं वंदी कुण्डले सुखदायिनी।
भुज कंकण रत्नानि शत चन्द्रानना ददौ।
तस्यै मधुमती साक्षात्स्फुरद्रत्नांगद द्वयम्।
आनन्दी या सखी मुख्या राधायै माल तोरणम्॥
पद्मा सद्भाल तिलकं बिन्दुं चन्द्रकला ददौ।
नासा मौक्तिकमालालं ददौ पद्मावती सती॥
बालार्क द्युति संयुक्तं भाल पुष्पं मनोहरम्।
श्री राधायै ददौ राजश्चन्द्रकान्ता सखीशुभा।

केवल मन बहलाव के लिए होता है । भारतीय-जन जीवन की प्रत्येक परम्परा मे अध्यात्म दृष्टि का अकुश सर्वोपरि रहा है अत भगवत्भक्ति शून्य काव्य कभी समादृत नही हुआ । आदि कवि का शोक जब श्लोकत्व को प्राप्त हुआ तब देवर्षि नारद से उन्हे राम-गुण-गान की ही प्रेरणा मिली थी । अत कोरा काव्य जिसमे भगवल्लीला की चर्चा न हो, सरस्वती को श्रम दायक ही होता है। इसी कारण अष्टछाप के कवियो के साहित्य पर विचार करते समय सम्प्रदाय ने वस्तु पर दृष्टि रखी थी, शिल्प पर नही । शिल्प तो अनायास ही भव्य बनता चला गया उन्होंने वर्ण्य को देखा वर्णन को नही । वे सुरगिरा अथवा नरगिरा के पचडे मे नही पडे । उन्हे स्वाद से तात्पर्य था । हाडी अथवा पात्र स्वर्ण का है अथवा मृत्तिका का इससे उन्हे कोई प्रयोजन नही था फिर भी इन आठ महानुभावो का साहित्यिक महत्व अनुपम हैं । सूर तो साहित्याकाश के साक्षात् सूर्य ही है । जिनके जोड का दूसरा कवि विश्व कवियो मे कदाचित् ही मिले । सम्प्रदाय मे वे 'सागर' कहे जाते है । सूर साक्षात् 'लीलासागर' है । उनके हृदय सागर मे अहर्निशभगवत्लीला का सागर उद्वेलित रहता था उसके परिणाम स्वरूप जो पद सीकर अनायास उनके मुख से निकल पडते थे । वही आज सहस्रो की सख्या मे हिन्दी साहित्य की निधि बने हुए है । सूरदास की काव्य प्रतिभा अपने क्षेत्र मे विश्व साहित्य मे बेजोड सिद्ध हो चुकी है । उनके साहित्यिक महत्व से अभिभूत होकर डा० वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं —

"शुद्ध काव्य के आनन्द की दृष्टि से सूरदास की रचना समस्त राष्ट्र की निधि है ।[1]

इसी प्रकार सूर साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् डा० हरवंशलाल कहते हैं —

"महाकवि सूरदास के साहित्य महोदधि का मथन वास्तव मे अत्यन्त दुष्कर कार्य है । विभिन्न युगो के अभेद्य स्तरो के बीच से मद-मद किन्तु अव्याहत गति से बहती हुई अनेक दिशाओ मे उल्टी सीधी बहकर आने वाली विविध विचार धाराओ को आत्मसात् करती हुई भिन्न भिन्न सम्प्रदायो की सिद्धान्त सार-सुधा से प्राणियो के अन्त करण को तृप्त करती हुई भारतीय साधना की मदाकिनी ने इस सागर को ऐसा लबालब भर दिया है कि उसमे मग्न हो कर भी तह तक पहुँचना सरल कार्य नही है ।"[2]

इसमे सदेह नही कि भारतीय कवियो मे सूर सम्राट् हैं और गीत-परम्परा के आदि गणेश है । उनके समसामयिक अन्य अष्टछापी परमानन्ददासादि कविगण उनकी लीला सुरसरि के प्रवाह को विस्तार प्रदान करने वाले पवित्र स्रोत है । सूरदास आदि अष्टछाप के कवियो से पूर्व ब्रजभाषा का न तो व्यवस्थित स्वरूप मिलता है न किसी लब्धप्रतिष्ठ कवि का नाम । नामदेव आदि सतो की वाणी मे जो ब्रजभाषा मिलती है वह शुद्ध और प्रवाहमयी ब्रजभाषा नही कही जा सकती । अत डा० दीनदयालु गुप्त के अनुसार अष्टछाप का प्रथम कवि वर्ग ही ब्रज भाषा का आदि वर्ग है और उसम भी मूर्धन्य सूर हैं ।[3]

१ अष्टछाप भूमिका डॉ० वा० श० अग्रवाल ।

२ सूर जयती समारोह के अवसर पर दिया गया अभिभाषण-पृ० ७ ।

३ अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग १ पृष्ठ २६ ।

भापा की दृष्टि से तो अष्टछाप कवियो का महत्व बढा-चढा है ही, भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी अष्टछाप कवि-मडल अद्वितीय है। वैष्णव भक्तो का भाव-जगत् अपनी गहनता अनूठेपन, सरलता एव स्वच्छता के लिये सदैव स्तुत्य रहा है। उनमे भी ब्रजभापा के अष्टछापी महानुभावो के भाव-जगत् की कोमलता, रमणीयता और तन्मयता एक दिव्य लोक की सृष्टि करने वाली होती है, जिसमे रमण करने वाला ही उसके आनन्द को जान सकता है।

इसी कारण सप्रदाय के आचार्य गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने यह व्यवस्था की थी कि काव्य, सगीत और भक्ति-भावना की निवेणी काश्मीर से कन्याकुमारी तक के पुष्टिमार्गीय मदिरो मे अबाध गति से बहती रहे। और उसी के परिणाम स्वरूप आज शताब्दियो बाद भी साहित्य, सगीत और भक्ति भावना की त्रिपथगा न केवल साप्रदायिक मदिरो को ही पुनीत कर रही है अपितु आर्य भारत के निखिल जन मन को पावन करती आ रही है।

वास्तव मे पुष्टिसप्रदाय के इन भक्तो ने ब्रज भापा के गद्य पद्य साहित्य को अत्यन्त ही वैभवशाली बनाया है। वार्तासाहित्य के रूप मे ब्रज-भापा का गद्य भी प्रचुर मात्रा मे है। इस प्रकार इन अष्टछापी महानुभावो का साहित्यिक महत्व साप्रदायिक महत्व से कही बढा-चढा है।

## अष्टछापी कवियों का कलात्मक महत्व––

अष्टछाप के भक्त कवि जहाँ सम्प्रदायानुयायियो मे सखा भाव के कारण पूजित हैं और साहित्य क्षेत्र म मूर्द्धन्य कवि शिरोमणि रसिक और भावुक रूप मे श्रद्धेय हैं वहाँ सगीत के क्षेत्र मे महान् कलाकार के रूप म मान गये है। भारतीय सगीत-साधना अपने विकसित-तम रूप मे ब्रह्म का साक्षात्कार कराने वाली मानी गई।[१] अष्टछाप के कवियों ने अपनी सगीत-साधना के सहारे और कीर्तन-सेवा क माध्यम से रसिक मूर्द्धन्य लीलासागर श्री गोवर्धन नाथजी के समक्ष जिस देव-दुर्लभ नाद-माधुय की वृष्टि की उससे भारतीय सगीतज्ञ समाज सुपरिचित है। आज का हिन्दी-समाज जब अष्टछाप के काव्य वैभव से सुपरिचित भी नही हुआ था उससे पूर्व से हमारा सगीतसमाज अष्टछापी कवियो के पद-माधुयाएन मे चिरकाल से अवगाहन करता चला आ रहा था। भारतीय सगीत की ध्रुपद एव धमार वाली उत्तरी शैली जिसे देशी सगीत कहा जाता है—के विकास और वृद्धि का श्रेय इन्ही अष्टसखाओं को है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने सवत् १६०२ मे जब गिरिराज पर श्री गोवर्धननाथ जी की

१––गीतेन प्रीयतेदेव सर्वज्ञ पावती पति।
गोपी पतिरनन्तोऽपि वशाध्वनि वशगत ॥
तस्य गीतस्य माहात्म्य के प्रशमितुमीशाते।
धर्मार्थ काम मोक्षाणामिदमेवेके साधन् ॥ सगीत रत्नाकर, प्रथम प्रकरण, श्लोक २६ ३०
नादोपासनया देवा ब्रह्मविष्णु महेश्वरा।
भवन्त्युपासिता नून यस्मादेते तदात्मका ॥ –– वही नाम प्रकरण श्लोक २
पूजा कोटि गुण ध्यान ध्यानात्कोटि गुण जप।
जपात्कोटि गुण गान गानात्परतर नहि ॥
नाऽह वासामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ प. पु. उ ख

सेवा का मडान किया और उसकी सुव्यवस्था की तो उसके तीन अग निर्धारित किए। भोग राग और शृ गार। उसमे राग विभाग सबसे सुव्यवस्थित एव सुसम्पन्न था। नित्य और नैमित्तिक सेवा का कार्य-क्रम कीतन सगीत के साथ गुंफित होने के कारण दिन के प्रत्येक याम के भगवल्लीला के कीर्तन पद शास्त्रीय सगीत के साथ चलते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी और गुसाईं जी के समय मे इन कीर्तनकारो को प्रत्यक्ष मे अथवा अपने भावलोक मे याद्दश प्रभुदर्शन अथवा भगवदनुभाव द्वारा भगवदनुभव होते थे तादृश पद अथवा कीर्तन तत्काल रचकर वे लोग प्रभु के समक्ष प्रस्तुत कर देते थे। इन प्रभु सखाओ के उच्च कोटि के कीर्तन को जिस भगवद् विग्रह ने प्रत्यक्ष श्रवण किया था आगे चल कर परवर्त्ती कीर्तनकार वैसी कीर्तन सेवा करने मे असमर्थ रहे अत उसी भावना से अद्यापि पुष्टिमार्गीय मदिरो मे अर्वाचीन गायको के कीर्तन भजन नही निवेशित किये जाते। पुष्टिमार्ग की यह अपनी मर्यादा है। प्रभु को उन अष्ट सखाओ का ही कीर्तन अगीकार है। वैसी भावमय अन्य कीतन परम्परा न होने से अष्टछापी सखाओ का भाव प्रसाद ही आज तक चलता आ रहा है। सगीत कला को सम्प्रदाय मे ' विद्या कला" नाम दिया गया है। सगीत कला की इतनी लम्बी परम्परा किसी देश मे शायद ही चली हो शताब्दियो के उपरान्त भी आज सूरदास परमानन्ददासादि अष्टछापी महानुभाव निर्गुण रूप मे (भक्ति, साहित्य और सगीत के प्रवर्तक के रूप मे) अपने यश शरीर से विद्यमान हैं और वे अपनी इस त्रिधारा के कारण युग-युग तक स्मरणीय रहेगे।

## अष्टछाप के दूसरे सागर—

अष्टछाप कवियो के साम्प्रदायिक, साहित्यिक और कलात्मक त्रिविध महत्वो पर विचार कर लेने के उपरान्त सम्प्रदाय की मान्यता साहित्यिक महत्ता और कला सौष्ठव की दृष्टि से हम सूर के उपरान्त सम्प्रदाय के दूसरे सागर[१] परमानन्ददास जी को लेते हैं। महात्मा सूरदास को लेकर हिन्दी साहित्य मे, पर्याप्त चर्चा हुई है और उनके महत्व को प्रतिपादित करने में अनेक विद्वानो ने स्तुत्य श्रम भी किया है। उनकी जीवनी और उसके विवादास्पद तथ्यो को लेकर पर्याप्त आन्दोलन हुआ है और श्रमपूर्ण खोज के उपरान्त विद्वत्समाज ने अनेक विश्वसनीय तथ्य निकाले हैं जो बहुत अशो मे मान्य हो चले हैं जैसे सूर के जन्म स्थान, जन्म सवत्, जन्माधता उनके ग्रन्थो मे आई हुई पद सख्या तथा उनके अवसान सवत् आदि प्रसगो पर विद्वानो ने पर्याप्त खोज की है और तथ्यपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। परन्तु उनके उपरान्त सम्प्रदाय के दूसरे सागर श्री परमानन्ददास अभी तक अधिकाश विद्वानो से उपेक्षित से रहे हैं। यद्यपि अष्टछाप पर निकलने वाले ग्रन्थो मे उनकी चर्चा हुई है पर नही के बराबर। यह तो निर्विवाद है कि कविवर परमानन्ददास जी अष्टछापी कवियो मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस कारण अष्टछाप के कवियो की जहाँ भी चर्चा हुई वहाँ उनका प्रसग आना स्वाभाविक था परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक शैली से उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन नहीं हुआ है। इसका क्या कारण रहा है इसको चर्चा न करके यहाँ केवल इतना ही सकेत करना पर्याप्त है कि सूर

१ परमानन्द दास जी को सम्प्रदाय में सूर के ही समान 'सागर' पुकारा गया है। इन दोनों महानुभावों की कृतियाँ 'सागर' कही गई है। क्योंकि दोनों ही महानुभावों का हृदय 'भगवल्लीला सागर' है। आठ में से केवल सूर एव परमानन्ददासजी दो ही महानुभावों को महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भागवत दशमस्कन्ध की अनुक्रमणिका सुनाई थी। (लेखक)

के अध्ययन से ही अवकाश प्राप्त करना विद्वानो के लिये कठिन हो रहा है। फिर अष्टछाप के अन्य कवियो की चर्चा किस प्रकार हो इसी कारण सूर के अतिरिक्त अष्टछाप के अन्य सभी कवि लगभग अछूते से ही पडे हैं जिन पर कार्य करने और वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त क्षेत्र है।

प्रस्तुत अध्ययन इसी दृष्टिकोण को लेकर किया गया है। सूर के सागर के मथन-आलोडन का कार्य विद्वत्समाज द्वारा अहर्निश किया जा रहा है वहाँ अन्य सागरो के मथन की भी चेष्टा की जानी चाहिए क्योंकि मे परमानन्ददासजी भी सम्प्रदाय के दूसरे 'सागर' हैं। उनके अवसान के उपरान्त गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने कहा था—

"जो ये पुष्टि मार्ग मे दोउ 'सागर' भए। एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास। सो तिनको हृदय अगाधरस भगवल्लीला रूप जहाँ रत्न भरे हैं।[१] "आदि

खेद है कि 'दूसरे सागर' के अगाध रस का न तो किसी भावुक रसिक ने भली भाँति रसास्वादन ही किया अथवा कराया न उन रत्नो के समूह का किसी मरजीवा ने पूर्ण रूपेण उद्घाटन ही।

सम्प्रदाय का मान्यता मे तो अष्टछाप के सभी कविगण 'सखा' कोटि मे आ जाते हैं, अत उनमे किसी प्रकार का तारतम्य वहाँ माना ही नही जाता। किंतु आधुनिक साहित्यिको द्वारा अलबत सूर को अत्यधिक महत्ता दी गई है। परन्तु जब तक किसी कवि के सम्पूर्ण काव्य का तुलनात्मक एव वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन नही प्रस्तुत कर दिया जाता तब तक किसी कवि के मे काई धारणा बना लेना उचित प्रतीत नही होता। भले ही सूर साहित्याकाश के सूर्य हो परन्तु अष्टछाप के अन्य कवि भी अपने अपने भाव-क्षेत्र मे किसी भाँति घट कर नहीं। इसी भाव से प्रेरित हो कर अष्टछाप पदावली के सम्पादक डा० सोमनाथ गुप्त ने कहा है —

"अभी तक तो सेहरा सूर के सर है। सभव है परमानन्ददास जी का काव्य-सग्रह प्राप्त हो जाने पर विद्वानो को निर्णय करने मे कुछ कठिनता हो।"[२]

अष्टछाप और वल्लभ-सप्रदाय के यशस्वी लेखक डा० गुप्त ने भी कुछ-कुछ इसी प्रकार का विचार प्रकट किया है "परमानन्ददास का परमानन्दसागर भी सूरसागर की टक्कर का कहा जाता रहा है, खेद का का विषय है कि केवल अल्प उपलब्ध रचनाओ के आधार पर ही इतनी प्रशसा के अधिकारी माने हुए इन आठ महान् कवियो की रचनाओ की न तो भली प्रकार अब तक खोज हुई थी, न उपलब्ध रचनाओ की प्रामाणिकता की जाँच हुई और न उनके काव्य का दर्शन तथा भक्ति की दृष्टि से गभीर अध्ययन ही हुआ।"[३]

तात्पर्य यह है कि जिस कवि को सूर के समान स्थिर करने का साहस किया जा सकता है, वह अभी तक प्राय अधकार की गहन-गुहा म ही पडा रह और उस पर कोई भी विद्वान् वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन प्रस्तुत न करे—उचित प्रतीत नहीं होता।

१ चौरासी वैष्णव वार्ता पृ० ८३७ स०—द्वा० दा० परीख।
२ अष्टछाप पदावली-भूमिका पृ० ३
३ अष्टछाप वल्लभ सप्रदाय प्रस्तावना।

प्रस्तुत प्रबध के द्वारा कविवर परमानन्ददास का प्रामाणिक जीवन और उनके काव्य का सग्रह और उसका सम्यक् अध्ययन को प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है। इस दृष्टि से प्रस्तुत प्रबध को तीन भागो म वर्गीकृत किया गया है—

१—प्रथम खड मे कवि की अन्तस्साक्ष्य के आधारो पर प्रामाणिक जीवनी।

२—द्वितीय खड मे कवि के काव्य की वैज्ञानिक समीक्षा।

३—तीसरे खड म कवि के प्रामाणिक पदो का सग्रह प्रस्तुत किया गया है। यह सग्रह कतिपय दुर्लभ प्राचीन हस्तलिखित सग्रहो से प्रस्तुत किया गया है। इन सग्रहो की चर्चा विद्या-विभाग-कांकरौली से प्रकाशित विज्ञप्ति म भी नहीं है।[1]

———

१ परमानन्द सागर का सग्रह-सम्पादक—डा० गोवर्धननाथ शुक्ल प्रकाशक—भारत प्रकाशन मदिर अलीगढ़।

# द्वितीय अध्याय

## जीवनवृत्त

सन्तों एवं भक्त कवियों ने स्वात्म को भी 'प्राकृत जन' की परिधि में ही रखा था अतः आत्म-चरित अथवा आत्म-कथन को अपराध की कोटि में मानते हुए उन्होंने अपना जीवन-वृत्त देने की आवश्यकता नहीं समझी। भक्ति की भाव-भूमि पर जब गाढ़ी त्रिविध एषणाएँ स्वयमेव तिरोहित हो जाती हैं तब दासोऽहम् से सोऽहम् की सर्वोच्च भाव-स्थली की ओर अभिमुख भक्त को आत्म-परिचय देने का अवकाश कहाँ रह जाता है। 'स्व' या तो वह पहिले ही खो चुका होता है या अपने इष्ट को अर्पण हो चुका होता है। ऐसे भावुक भक्त को अपना आत्म-परिचय देने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। देहाध्यास या देहाभिमान का ही लक्षण है कि वह अपना परिचय दे। सागर में लय हुई बिंदु का परिचय कैसा ?

अध्यात्म-प्रधान भारतीय संस्कृति में लोकैषणा जैसी भौतिक वस्तु को स्थान नहीं। अमृतत्व के उपासकों ने अपनी हंसवाहिनी का आवाहन सदैव भगवद्गुणगान के लिये ही किया है और उनका सदैव से यही विश्वास रहा है कि विधि-भवन को छोड़ कर मर्त्य लोक में आने वाली वीणापाणि के श्रम का परिहार तभी होगा जब वह भक्ति-काव्य की सुरसरि-धारा में अवगाहन करेगी। अतः व्यास-वाल्मीकि से लेकर आज तक के संत कवियों का परिचय अप्राप्य ही है। कुछ भक्तों का जीवनवृत्त या तो उनके निजी परिकर से मिलता है अथवा तात्कालिक अन्य साक्ष्यों से, अन्यथा फिर दैन्य, विनय एवं चरम भावुकता के क्षणों में यत्र-तत्र आत्मनिवेदन के कथनों से। इस प्रकार के अनुसंधान में "अटकल" का अवकाश भी बहुत कुछ रहता है। अनुमान या अटकल में कभी-कभी तो हम यथार्थ से इतनी दूर जा पड़ते हैं कि इन संतों अथवा भक्त कवियों के विषय में अनेक भ्रान्त धारणाएँ समाज-रूढ़ हो जाती हैं फिर उनका निराकरण शोध पण्डितों के लिए एक दुष्कर कार्य हो जाता है। यही कारण है कि व्यास वाल्मीकि, कालिदास प्रभृति की प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं महाकवि चन्द बरदायी का व्यक्तित्व अनेक कपोल कल्पनाओं में फँसा है। कबीर की लहरतारा के कमल से उत्पत्ति, सूर का जन्मांधत्व, तुलसी की सोरों में उत्पत्ति आदि अनेक भ्रान्त धारणाएँ विवाद का विषय बनी हुई हैं। प्रायः अनेक भारतीय भक्तों एवं संतों का इतिवृत्त ज्ञात नहीं है। आज की वैज्ञानिक शोध पद्धति इतनी बुद्धि-प्रधान है कि भक्तों के साथ लगी जनश्रुतियों या करामातों पर अविश्वास करने के लिए वह बाध्य है। साथ ही उसे सब कुछ तर्क-संगत चाहिए। भावना, श्रद्धा, भगवान् की प्रमय-शक्ति बुद्धि-गम्य न होने से तर्क-समाश्रित-समाज अतस्य घटनाओं को स्वीकार नहीं कर सकता। परन्तु 'ईश्वरीय-चमत्कार' जैसी वस्तु सब देशों में मान्य हुई है। सभी देशों के संतों भक्तों के जीवन-प्रसंग थोड़ी बहुत चमत्कारोक्तियों से सम्बन्ध रहे हैं। अतः बुद्धि और तर्क के बोलबाले पर भी 'चमत्कारों' की सत्ता विजयिनी रही है। भावुकता और मूढ़ाग्रह मुक्त विशुद्ध-अध्ययन के आधार पर उपलब्ध तथ्य पुष्ट वृत्त

ही अब समादृत होते है। उसी को आज का वैज्ञानिक अध्ययन अथवा शोध-पद्धति कहा गया है । इस कसौटी पर उपलब्ध तथ्य ही अब हमारे अध्ययन के लक्ष्य होते हैं। अत. आज के प्रयत्न ही आज के विद्वानो की तर्क-प्रधान बुद्धि को ग्राह्य है । उसी प्रक्रिया पर परमानन्ददासजी की जीवनी का ढाँचा पूरा करने का प्रयत्न किया जायगा।

परमानन्ददास की जीवनी विषयक सामग्री का नितान्त अभाव है। कवि ने भी भारतीय-भक्तो की परम्परा के अनुसार 'आत्म-परिचय' को अवहेलना की दृष्टि से देखा है। सूर, तुलसी ने तो फिर भी अपनी प्रारम्भिक दुर्दशाओ का प्रसगवश कही कुछ सकेत दे दिया है परन्तु भक्तप्रवर परमानन्ददास ने तो अपने विषय मे कही भी कुछ नही लिखा । इसके सभवत दो कारण थे—पहले तो कवि बहुत ही साधारण परिस्थिति से निकला था। अत उसे अपने विषय मे कुछ भी उल्लेख्य प्रतीत नही हुआ। दूसरे—भक्त परमानन्ददास का जीवन अत्यन्त सरल, शान्त एव भक्तिमय होने से घटनाधिक्य से सकुल नही था। कवि को भगवद् गुणगान के अतिरिक्त न कुछ करने को था, न कहने को। न उसे कोई अन्य भौतिक प्रेरणा थी। भगवद् विधान मे अटूट विश्वासी और स्वभावत सतोषी होने से कवि ने कभी भी कोई लौकिक प्रसग न अपन विषय मे उठाया न पराये विषय मे। अपने जीवन की प्रमुख घटनाओ का उल्लेख तो दूर समसामयिक राजनीतिक उथल-पुथल और सामाजिक घटना-चक्रो की चर्चा भी उसने नही की। अत उसके दैन्यपरक पदो मे आत्म चर्चा की बहुत हल्की छाया सी यत्र तत्र भासमान होती है। अत जीवनी के लिए अधिकाश बाह्य-साक्ष्यो पर ही निर्भर रहना पडता है। बाह्य-साक्ष्यो मे साम्प्रदायिक साहित्य मे तो अलबत्ता कुछ मिल जाता है परन्तु अन्य राजनीतिक इतिहास अथवा तत्कालीन साहित्य प्राय मौन सा है। जन्म तिथि माता-पिता, जन्म स्थान आदि के विषय मे तो प्रामाणिक आधारो का नितान्त अभाव है। ऐसी परिस्थिति मे इन सबके लिए केवल साम्प्रदायिक जनश्रुतियो एव वार्ता-साहित्य ही आधार सूत्र हैं। इन्ही आधार-सूत्रो से विद्वानो ने उनकी जाति, जन्म स्थान तथा जन्म सवत् आदि की खोज की है। साप्रदायिक और सम्प्रदायेतर जितनी भी सामग्री उपलब्ध है उसके आधार पर कवि के जीवन के इतिवृत्त के सबध मे तथ्य एकत्र करने का प्रयास किया जायगा।

## उपलब्ध सामग्री का वर्गीकरण—

परमानन्ददासजी के सबध मे जो भी सामग्री उपलब्ध है, उसे दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है।

### अन्तस्साक्ष्य—

(१) उनके अपने भगवल्लीला विषयक पद जिनके आधार पर हम उनके अस्तित्व तक पहुँचते है, अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत आवेंगे। इन्ही पदो के सग्रह को परमानन्दसागर' पुकारा गया है।

(अ) बाह्यसाक्ष्य [साम्प्रदायिक]

२—वार्तासाहित्य—जिसके अन्तर्गत (१) चौरासी वैष्णवो की वार्ता (२) निज वार्ता (३) श्रीहरिरायजी कृत भावप्रकाश (४) वल्लभदिग्विजय (५) अष्टसखामृत, एव सम्प्रदाय सम्बन्धी अन्य ग्रन्थ जिनकी चर्चा आगे चलकर की जायगी।

(आ) बाह्यसाक्ष्य [सम्प्रदायेतर]

३—कवि के सबन्ध मे कुछ ऐसी भी सामग्री उपलब्ध है जो समसामायिक भक्तो, कवियो ने दी है। इसके अतिरिक्त अन्य इतिहास ग्रन्थ आदि ।

उपर्युक्त सामग्री की सहायता से परमानन्ददासजी के जीवन की एक सुश्रृखलित एव रूपरेखा सुविधा से प्रस्तुत की जा सकती है। यहाँ उक्त सामग्री का विश्लेषण प्रस्तुत किया जायगा ।

## १—अन्तस्साक्ष्य—

कवि के अस्तित्व का अन्तस्साक्ष्य उसके अपने पद हैं। और उसका काव्य ही उसके व्यक्तित्व के बाह्य और आभ्यन्तर स्वरूप का दर्पण है। अत परमानन्ददासजी के विषय मे उनके पद ही आधारभूत हैं। साम्प्रदायिक मदिरो मे उपलब्ध होने वाले हस्तलिखित एव मुद्रित-कीर्तन सग्रहो मे कवि के सहस्त्रावधि पद उपलब्ध होते है जो नित्य सेवा एव वर्षोत्सवो पर गाए जाते है। और कवि का महत्व सूर के उपरान्त सम्प्रदाय मे बडे सन्मान के साथ स्वीकार किया जाता है। निम्नाकित कृतियाँ उसके नाम पर उपलब्ध हैं—

१—परमानन्दसागर

२—परमानन्ददासजी को पद

३—दान लीला

४—उद्धव लीला

५—ध्रुवचरित्र

६—सस्कृत रत्नमाला

इसमे से प्रामाणिकता की दृष्टि से परमानन्दसागर और 'परमानन्ददासजी को पद' इन्ही दो पर विचार करना है। शेष ग्रन्थो की प्रामाणिकता के विषय मे आगे चलकर विचार किया जायगा।

## परमानन्दसागर के नाम का रहस्य—

आचार्य वल्लभ से दीक्षा पाने के उपरात भक्तप्रवर परमानन्ददास जी को आचार्य से नवनीत प्रियजी के सामने कीर्तन द्वारा भगवल्लीला गान की आज्ञा हुई थी। आचार्य ने उन्हे सूर की भाँति श्रीमद्भागवत की दशम स्कध की अनुक्रमणिका सुनाई थी। श्रीमद्भागवत सप्रदाय मे पीयूष समुद्र समझा जाता है और आचार्य वल्लभ उसके मथनकर्ता[१] हैं। अत इन दो-सूर और परमानन्द—अष्टछापी कवियो को 'लीला सागर' माना गया है। बाद मे अन्य कवियो के लीला—पदो के सग्रहो के नाम परम्परा से 'सागर' पड गये। जैसे कृष्णदास का कृष्ण सागर आदि। परतु वस्तुत सप्रदाय मे यही दो सागर मुख्य रूप से प्रसिद्ध हैं। इन्ही दोनो महानुभावो को 'सागर' नाम से पुकारा गया है। इनकी रचनाएँ भी अब सागर नाम से पुकारी जाती हैं।

[१] सर्वोत्तम स्तोत्र—श्लोक सं०—१६

## कवि के अपने काव्य के आधार पर उसकी जीवन झाँकी—

"परमानन्दसागर" उनकी प्रामाणिक रचना है। उसमे आत्मचरित विषयक उल्लेखो का अभाव है। उनके पद—संग्रहों मे ऐसे पद अवश्य उपलब्ध होने हैं जिनमे उनके जीवन प्रसग का थोडा-बहुत सकेत मिल जाता है उन्ही को एकत्र करके कवि की जीवनी का ढाँचा खडा किया जा सकता है क्योकि स्वय कवि ने अपना यथेष्ट परिचय कही नही दिया, न उसके जन्म सवत् का ही पता चलता है न जन्म स्थान माता-पिता कुटुम्ब आदि के विषय मे कुछ पता चलता। हाँ, सम्प्रदाय मे शरण आने का, ब्रजवास का, उसकी उत्कट भगवद् भक्ति का और उसके उपस्थिति काल की चर्चा मिल जाती है परन्तु इन सबका उल्लेख भी कवि ने प्रसगवश ही किया है। आत्म-परिचय की दृष्टि से नही।

अपने समय की परिस्थिति का कवि ने थोडा सा सकेत भी दिया है। पर वह पर्य्याप्त नही। इन सब उल्लेखो से कवि के व्यक्तित्व, उसके स्वभाव, शिक्षा, दीक्षा गुरु-भावना, ईश्वर भक्ति सम्प्रदाय के प्रति श्रद्धा और प्रेम, ब्रजवास की इच्छा, पुष्टिमार्ग मे विश्वास आदि का पता तो चल जाता है पर लौकिक जीवन सबधी अन्य आवश्यक बातो की कुछ भी जानकारी नहीं हो पाती। फिर भी हम यहाँ उन कतिपय पदो को प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे जिनसे परमानन्ददासजी के जीवन के प्रामाणिक प्रसगो पर प्रकाश पडता है।

परमानन्ददासजी महाप्रभुवल्लभाचार्य जी की शरण मे आने से पूर्व एक जिज्ञासु भक्त और अध्यात्म-पथ के लक्ष्यवेधी पथिक थे। वे प्रयत्नशील थे कि उन्हे जीवन का सत्य उपलब्ध हो सके। अत वे कहते हैं —

श्री वल्लभ रतन जतन करि पायौ।
बह्यो जात मोहि राखि लियौ है, पिय सग हाथ गहायो।
दुष्टसग सग सब दूरि किये हैं, चरनन सीस नवायौ ॥
परमानन्ददास को ठाकुर नैनन प्रगट दिखायौ ॥

यहाँ 'जतन करि पायौ और नैनन "प्रगट दिखायो" विशेष रूप से मननीय है। कवि ने गुरू *की प्राप्ति अनायास नहीं की है। साथ ही उसने गुरु कृपा से भगवत्साक्षात्कार* किया है। और भगवल्लीला का प्रत्यक्ष अनुभव भी किया है। ससार सागर के प्रवाह मे बहते हुये कवि को अपने गुरदेव महाप्रभु वल्लभाचार्य से सहारा मिला और उन्होंने उसकी सासारिकता रूप कुसग दूर कर उसे शरण मे लिया आदि बातो का स्पष्ट उल्लेख यहाँ है। महाप्रभु वल्लभाचार्य और ठाकुर जी मे कवि की अभेद बुद्धि थी—

सुजस गान मन ध्यान आनि उर जे राखे हृद आठो जाम।
परमानन्ददास को ठाकुर जे वल्लभ ते सुन्दर श्याम ॥

कवि ने महाप्रभु से समर्पण (ब्रह्मसवन्ध-दीक्षा) पाई। उसका उल्लेख उसने इस प्रकार किया है.—

बाढ्यो है माई माधौ सौ सनेहरा ।
जैहौ तहाँ जहाँ नन्द नन्दन, राज करौ यह गेहरा ।।
अब तौ जिय ऐसी बनि आइ, कियौ समर्पन देहरा ।।
'परमानन्द' चली भीजति ही बरसन लाग्यो मेहरा ।।[१]

## दूसरा पद–

मैं तो प्रीति स्याम सो कीनी ।
कोऊ निंदौ कोऊ वदौ अब तो यह घर दीनी ।।
जो पतिव्रत तो या ढोटा सो इन्हे ही समर्प्यौ देह ।
जो व्यभिचार तो नन्द नन्दन सौ बाढ्यो अधिक सनेह ।।
जो व्रत गह्यौ सो और न निबह्यौ मर्यादा को भग ।
परमानन्द' लाल गिरधर को पायो मोटो सग ।।[२]

कवि अपने जीवन के अरुणोदय मे सभवत बडा अकिंचन और आपद्ग्रस्त था । वाद मे वह वैभव सम्पन्न हो गया था और उसे आर्थिक सौकर्य हो गया था ।

तिहि कर कमल दासपरमानन्द सुमरित यह दिन आयो ।

उसे कौटुम्बिक सुख नही मिला था वह कहता है —

तुम तजि कौन सनेही कीजै ।
यह न होइ अपनी जननीते, पिता करत नही ऐसी ।
बधु सहोदर से सोउ करत है मदनगोपाल करत है जैसी ।
सुख अरु लोक देत है व्रजपति अरु वृन्दावन बास बसावत ।।

१—जाके दिए बहुरि नहिं जाँचै दुख दरिद्र नहिं जानै ।
२—गुरु प्रसाद जाकी सपति जन परमानन्द रक कियौ
३—परमानन्द इन्द्र को वैभव विप्र सुदामा पायो ।
४—माधो तुम्हारी कृपातै को को न बढ्यौ
५—ताहि निहाल करै परमानन्द नैक मौज जो आवै ।।

परमानन्ददास बडे सुबोध और विद्वान् थे, परन्तु उन्हे अपनी विद्वत्ता का गर्व लेशमात्र नही था । वे उसे भगवत्प्रसाद ही मानते थे । वे मानते थे कि उसकी सपूर्ण विद्वत्ता भगवत्कृपा से ही है :—

जाके शरण गए भय नाहीं सकल बात को ज्ञाता ।

कवि का शरीर सुन्दर और वलिष्ठ था । एक स्थान पर वह लिखता है —

कापत तन थर थरात अतिधूजत सीत लगत तन भारो ।

---

१ लेखक द्वारा सपादित परमानन्द सागर से ५०-२६८ ।
२ लेखक द्वारा सपादित परमानन्द सागर से ५०-५७० ।
१ ,, ,,
२ ,, ,,
३ ,, ,,
४ ,, ,,
५ ,, ,,

"तन भारो" से उसके पुष्ट और स्थूल होने का स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

परमानन्ददासजी के उक्त पद-पंक्तियों में न केवल उनका आत्मसमर्पण ही द्योतित होता है अपितु सदैव के लिए गृह-त्याग और व्रज बसने का संकल्प भी ध्वनित होता है। परमानन्द निश्चय कर चुके थे कि —

अब यह देह दूसरो न हूहैं, परमानन्द गोपाल की। [१]

उनके दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व गोस्वामी विट्ठलनाथजी का जन्म हो चुका था। कवि ने गोस्वामी विट्ठलनाथजी का शिशु रूप देखा था। वह उनकी बधाई में लिखता है —

"श्री विट्ठलनाथ पालने भूलें, मात अक्काजू झुलावें हो।

और इसी पद में आगे चलकर वह कहता है —

"पुष्टि प्रकास करेंगे भूतन, दैवी जीव उधराई हो।" [२]

यहाँ 'करेंगे' भविष्यत् काल की क्रिया है। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि परमानन्ददासजी ने विट्ठलनाथजी की अत्यन्त शिशु अवस्था से लेकर आगे उनके यौवन को भी को देखा था और उनके आचार्यत्व की भविष्यवाणी कर दी थी। महाप्रभुवल्लभाचार्य की शरण में आ जाने के उपरान्त परमानन्ददासजी को भगवान की बाल लीला ही अधिक प्रिय हो गई थी। श्रीकृष्ण की बाल-लीला-वर्णन में ही उन्होंने अपना सारा जीवन विनियोग कर दिया था।

उन्होंने अपनी रुचि इन पंक्तियों में व्यक्त की है —

१—नील पीत पट ओढनी देखन मोहि भावें।
बाल विनोद आनन्द सूं परमानन्द गावें॥ [३]

२—तू मेरौ बालक यदुनन्दन तोहि विश्वम्भर राखें।
परमानन्द चिरजीवो बार बार यों भाखें॥

३—'बालदसा गोपाल की सब काहू भावें॥'

४—बालविनोद गोपाल के देखत मोहि भावें॥

५—बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नैन व्रजजन सुखदाई॥

६—भावत हरि के बाल विनोद।

७—बाल विनोद खरे जिय भावत॥

८—'परमानन्द प्रभु बालक लीला हँसि चितवत फिर पाछा'।

९—बाल दसा में प्रीति निरन्तर क्रीडत गोकुल वासा। आदि पदों में बाल लीला गान करते हुए अपने आराध्य की लीला-भूमि व्रज में बसने की परमानन्ददास की उत्कट इच्छा थी —

१—यह माँगी गोपीजन वल्लभ
मानुस जन्म और हरि की सेवा व्रज बसिबौ दीजे मोहि सुल्लभ।

---

१ लेखक द्वारा संपादित परमानंद सागर से।
२ „ „
३ „ „

२—व्रज वसि बोल सवनि के सहिये ।

३—जैये वह देस जहाँ नन्द नन्दन भेटिये ।

परमानन्दजी को महाप्रभु का सतत साहचर्य मिला था और श्रीमद्भागवत, सुबोधिनीजी तथा अन्य पुराणों को उसने श्रवण किया था.—

पद्म पुरान कथा यह पावन धरनी प्रति वराह कही ।
तीर्थ महातम जानि जगत गुरु सौ परमानन्ददास लही ।।

व्रज मे जाने के उपरान्त कवि आजीवन भक्ति-भावना म तन्मय रहा । भक्ति की महिमा की चर्चा उसने यत्र तत्र सर्वत्र की है वह कहता है —

१—सोई कुलीन दासपरमानन्द जो हरि सन्मुख धाई ।

२ तातें नवधा भक्ति भली ।

परमानन्ददासजी भक्ति भावना मे उदार थे । रामकृष्ण मे उनकी अभेद बुद्धि थी सकीर्णता उनमे लेशमात्र नही थी ।

मदनगोपाल हमारे राम ।
परमानन्द प्रभु भेद रहित हरि निज जन मिलि गावै गुनग्राम ।।

परमानन्ददास जी स्वभाव से वैराग्यवान् थे । जागतिक मोह उन्हे छू तक नही गया था । वे इस नश्वर जग मे एक पथिक की भाँति आये थे—

मेरो मन गोविन्द सौं मान्यौ, ताते और न जिय भावै ।
जागत सोवत यह उत्कण्ठा, कोउ व्रजनाथ मिलावे ।।
छाँडि आहार विहार और देह सुख, और चाह न कोऊ ।
परमानन्द बसत है घर मे जैसे रहत बटाऊ ।।[१]

कवि को वेदमार्ग और व्यावहारिकी मर्य्यादा की भी चिन्ता नही रह गई थी वह कहता है—

कैसे कीजै वेद कह्यौ ।
हरि मुख निरखत विधि निषेध को नाहिन ठौर रह्यौ ।
दुख को मूल सनेह सखीरी सो उर बैठि रह्यौ ।।
परमानन्द प्रेम सागर मे पर्यो सो लीन भयौ ।।[२]

## पुष्टिमार्ग में कवि को परम आस्था थी—

नाचत हम गोपाल भरोसे ।
गावत बाल विनोद कान्ह के नारद के उपदेसे ।।

---

१ लेखक द्वारा सपादित परमानन्द सागर से ।

१ लेखक द्वारा सपादित परमानन्द सागर से ।

२ ,, ,, ,,

सतन को सरवस सुख सागर नागर नन्दकुमार ॥
परम कृपाल यसोदा नन्दन जीवन प्रान अधार ॥
ब्रह्म रुद्र इन्द्रादिक देवता जाको करत विचार ॥
पुरुषोत्तम सबही के ठाकुर यह लीला अवतार ॥
स्वर्ग नर्क को अब डर नाही विधि निषेध नही आग ॥
चरन कमलमन सखि स्याम के बलि परमानन्ददास ॥

पुष्टिमार्ग मे आस्था के साथ उसने भागवत पुराणोक्त 'गोपी प्रेम' को ही सर्वश्रेष्ठ ठहराया है[1] और इससे विमुख लोगो के प्रति कवि ने अरुचि प्रगट की है। निम्नाकित पद मे उसने दभी एव पाखडियो का उल्लेख करते हुये अपने समय की धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियो का भी किंचित् सकेत दिया है—

माधौ या घर बहुत करी।
कहन सुनत की लीला कीनी मर्यादा न टरी।
जो गोपिन का प्रेम न होतो अरु भागवत पुरान ॥
तो सब औघड पथिहि होतो कथत भभैया ज्ञान।
बारह बरस को भयो दिगबर ज्ञान हीन सन्यासी।
खान पान घर-घर सबहिन के भस्म लगाय उदासी।
पाखण्ड दभ बढ्यो कलियुग मे स्रद्धा धर्म भयो लोप ॥
परमानन्द वेद पढि विगर्यो कापर कीजै कोप ॥[2]

परमानन्ददास जी की भूतल स्थिति का सही अनुमान भी उनके एक पद से भली-भाँति किया जा सकता है —

प्रात समै उठ करिये श्री लछमन सुत गान।
श्रीघनश्याम पूरन काम, पोथी मे ध्यान।
पाण्डुरग विट्ठलेश, करत वेद गान।
परमानन्द निरख लीला थके सुर विमान ॥[3]

यहाँ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के सप्तम पुत्र घनश्याम जी की चर्चा है। श्री घनश्याम जी का जन्म सवत् १६२८ प्रसिद्ध है पोथी मे 'ध्यान' की अवस्था १०—१२ वर्ष की तो माननी ही चाहिए इस हिसाब से सवत् १६४० तक उनकी उपस्थिति निरापद रूप से मानी जा सकती है।

---

१ "परमानन्ददस्वामी की करुना ते गोपिन की गति पाई।"
दखो-परमानन्द सागर भा० प्र० स०

२ लेखक द्वारा सपादित 'परमानन्द सागर' से

३ ,, ,, ,,

गो० घनश्यामजी के जन्म समय से लेकर 'पोथी मे ध्यान' तक कवि विद्यमान था। इतना ही नही। 'पोथी मे ध्यान' घनश्यामजी के अध्ययन मे लगन का सकेत देता है। बालक घनश्याम गो० विट्ठलेश के सप्तम पुत्र हैं।

## निष्कर्ष

उपर्युक्त पदो के साक्ष्य के आधार पर हम निम्नाकित तथ्यो पर पहुँचते हैं —

१—अष्टछापी कवियो मे परमानन्ददास नामके एक प्रतिभासपन्न भावुक व्यक्ति हुये थे। जिन्होंने श्रीकृष्ण की बाललीला परक शतश. भावपूर्ण पदो की रचना की थी। इनके पदो का सग्रह "परमानन्दसागर" नामक हस्तलिखित प्रतियो मे आज भी सुरक्षित है।

२—जीवन के प्रभात मे वे अकिंचन थे और बाद मे भगवत् कृपा से वैभवशाली हो गये थे।

३—वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के कृपापात्र शिष्य थे और अपने गुरु को वे भगवत्तुल्य समझते थे।

अपने गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य से समर्पण दीक्षा प्राप्त करके भावुक भक्त बन गए और सदैव के लिए व्रजवास करने चले आऐ थे।

व्रज से उन्हे अत्यन्त प्रेम था। यही उन्होंने भगवान् की बाल-लीला का गान किया।

वे राम और श्याम मे अभेद बुद्धि रखते थे और भक्ति मार्ग के उदार भावुक पथिक थे।

पुष्टिमार्ग उनका अपना मनोनीत सप्रदाय था उसी मे दीक्षित होकर उच्चकोटि का आचार पालन करते हुए वे भगवान् की लीला का गान करते रहते थे।

उपर्युक्त पदो के आधार पर उनको जीवन-वृत्त इतना थोडा उपलब्ध होता है कि जिज्ञासु पाठक को सतोष नही होता। अत उसे बाध्य होकर अन्य साक्ष्यो की शरण लेनी पडती है।

## बाह्यसाक्ष्यः—

बाह्यसाक्ष्य के अतर्गत जैसा कि पहले कहा जा चुका है सर्व प्रथम "वार्ता साहित्य" आता है। वार्ता साहित्य कविवर परमानन्ददासजी के विषय मे ही क्या सभी अष्टछापी कवियो के विषय मे सर्वाधिक प्रामाणिक और अपरिहार्य आधार है। अत आज तक जितना भी कार्य इन आठ भक्त महानुभावो के सबध मे हुआ है वह सब वार्तासाहित्य मे ऋणलेकर ही। परन्तु खेद है कि स्वय वार्ता साहित्य को बहुत समय तक विद्वानो ने प्रामाणिकता की मुद्रा से अकित नही किया जबकि समस्त प्रामाणिक साम्प्रदायिक अनुसधान इन्ही दो ग्रन्थो-चौरासी वैष्णवन का वार्ता, और "दोसौ बावन वैष्णवन" की वार्ता पर आधारित हैं। इनके अतिरिक्त कवि के जीवन वृत्त के लिए बाह्य-साक्ष्य के ही अन्तर्गत साम्प्रदायिक अन्य ग्रन्थ भी प्रामाणिकता के लिए ग्राह्य हैं —

१—भावप्रकाश ( हरिराय जी कृत ) (चौरासी एव दोसौ बावन वार्ताओ पर टिप्पण)

२—वल्लभ दिग्विजय

३—सस्कृत वार्ता मणिमाला। (श्रीनाथ भट्ट कृत )

४—अप्टसखामृत

५—वैठक चरित्र

६—प्राकट्य सिद्धात

७—वैष्णवाह्निक पद

८—श्री गोकुलनाथजी के स्फुट वचनामृत

९—द्वारकेशजीकृत चौरासी घौल

१०—अन्य सामाम्प्रदायिक भक्तो की उक्तियां जैसे कृष्णदास कृत वसन्तोत्सव वाला पद-आदि।

उपर्युक्त साम्प्रदायिक साहित्य के अतिरिक्त निम्नाकित समसामयिक अथवा परवर्ती किन्तु सप्रदायेतर ग्रन्थो मे भी कवि का उल्लेख मिलता है:—

१—भक्तमाल- नाभादासजी कृत तथा भक्तमाल टीका प्रियादासजी कृत।

२—भक्तनामावली-ध्रुवदास

३—नागर समुच्चय- नागरीदास। (पद प्रसगमाला)

४—व्यासवाणी

५—भगवत रसिक की भक्त नामावली।

उपर्युक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त वाह्यसाक्ष्य के रूप मे उपलब्ध आधुनिक सामग्री मे भी परमानन्ददासजी की अत्यन्त अल्प चर्चा निम्नाकित इतिहास-ग्रन्थो मे मिलती है—

१—खोज रिपोर्ट। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा।

२—तासी का इस्त्वार दे ला लिटेरात्यूर ऐन्दुवे एन्दुस्तानी।

३—शिवसिंह सेंगर का ' शिवसिंह सरोज"

४—सर जार्ज ग्रिर्सजन का माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान।

५—मिश्र-वन्धुओ का मिश्रबंधु विनोद।

६—रामचद्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास।

७—डाक्टर रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

८—डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी का हिन्दी साहित्य।

९—कांकरौली का इतिहास।

इसके अतिरिक्त निम्नाक्ति ग्रन्थो में परमानन्ददासजी की यथा स्थान चर्चा है।

१—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा-अष्टछाप।

२—श्री द्वारकादास परीख-अष्टसखान की वार्ता (तीन जन्म की लीला भावना वाली) स० २००७।

३—डा० दीनदयालु गुप्त-अष्टछाप और वल्लभसप्रदाय।

४—प्रभुदयाल मीतल-अष्टछाप परिचय।

उपर्युक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त कतिपय पत्र-पत्रिकाओ जैसे—वल्लभीय सुधा, तथा कल्याण के भक्ताक मे भी परमानन्ददासजी की चर्चा हुई है। श्रीललितकुमार देव का एक लेख पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ मे भी परमानन्ददासजी पर प्रकाशित हुआ है।

उपर्युक्त साहित्यिक सूत्रो के अतिरिक्त कविवर परमानन्ददासजी का कही भी कैसा भी कुछ भी पता नही चलता। क्योकि वे गोपीभाव के साधक एकान्त कवि थे। प्रभु गुणगान के द्वारा वे गौण रूप से लोक कल्याण के पोषक भी थे। कबीर या तुलसी की भाँति उनमे सीधी लोक कल्याण-भावना नही थी, जिससे वे जन जन के कवि हो सकते। ना ही वे केशव बिहारी अथवा भूषण की भाँति किसी नरेश के राज्याश्रित कवि किन्नर थे। जिससे कोई समसमायिक साहित्यकार या इतिहासकार उनका परिचय देता। वे सीधे सादे भक्त, कवि और कीर्तनकार थे, जिन्होने अपना सर्वस्व गुरु और गोविन्द को समर्पित कर रखा था 'श्री वल्लभ 'रतन' उन्होने बडे जतन से पाया था और उसी के माध्यम से श्री गोवर्धननाथजी के पावन चरणो मे अपने जीवन का विनियोग कर चुके थे। अत. आजीवन विविध भावनाओ एव आसक्तियो द्वारा रससिक्त होकर श्रीनाथजी के सिह द्वार पर पडे रहे[1] अत: उनके जीवन का विस्तृत परिचय देने वाला ग्रन्थ "चौरासी" वैष्णवन की वार्ता ही है और उसी पर श्री हरिरायजी का भाव-प्रकाश नामक टिप्पण और भी अधिक भावना का समावेश कर देता है।

'चौरासी' वैष्णव की वार्ता और भाव प्रकाश मे उनके विषय मे जो जो सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं उनकी चर्चा करने से पूर्व वार्ता साहित्य की महत्ता पर यहाँ सक्षिप्त सा उल्लेख कर लेना अप्रासगिक न होगा। अब इस साहित्य पर प्रामाणिक शोध-प्रबन्ध छप चुका है।[2]

## वार्ता साहित्य की महत्ता—

यह पहले ही कहा जा चुका है कि सपूर्ण अष्टछापी कवियो का पूरा परिचय इन दोनो ग्रन्थो चौरासी वैष्णवन की वार्ता और दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता मे मिलता है।

और इन वार्ता ग्रन्थो के आद्यप्रणेता स्वय महाप्रभु वल्लभाचार्य थे। ये वार्ताएँ बहुत काल (१५३५-१५८७) तक मौखिक रही। उसके उपरान्त श्रीगुसाईं विट्ठलनाथजी के

१ "रस में माते रसिक मुकुट मनि परमानन्द सिंहद्वारे होऊ।" प० सागर—लेखक द्वारा सपादित।

२ लेखक—डॉ० हरिहरनाथ टण्डन—प्रकाशक भा० प्र० मन्दिर, अलीगढ़।

समय मे (१५७२-१६४२) वे ब्रज भाषा के गद्य पद्यात्मक रूप मे लेख बद्ध हुई। वार्ताओ को सर्व प्रथम लेखबद्ध करने वाले उज्जैन निवासी गोसाईजी के सेवक कृष्ण भट्ट थे।[1] वार्ताओ को ८४ और २५२ रूप मे वर्गीकृत करने वाले गोस्वामी गोकुलनाथजी और 'भाव प्रकाश नाम से टिप्पण देने वाले थे प्रभु चरण श्रीहरिरायजी थे।[2]

इसप्रकार वार्ताओ की भी अपनी एक वार्ता है और श्रृंखला है। सप्रदाय मे उसकी बड़ी भारी महत्ता है। ये वार्ताएँ लिपि प्रतिलिपि की एक बड़ी श्रृखला को पार करती हुई वर्तमान रूप मे जिस प्रकार उपलब्ध होती है वह एक अपने मे विचारणीय समस्या है। वस्तुत. ये वार्ताएँ सप्रदाय के अनेक भावुक भक्तो की है। ये वार्ताएँ सप्रदाय की अपनी निज की निधिरूपा है। इनका ज्ञान और इनकी महत्ता एव इनके महात्म्य का बोध सप्रदाय के भक्तो की सीमा मे ही आबद्ध रहा। अतः सप्रदायेतर समाज को इनका बोध न होना स्वाभाविक था। साथ ही वार्ताओं पर सम्प्रदाय की भावात्मक दृष्टि है, साहित्यिक नही। अतः इनकी साहित्यिक महत्ता पर सप्रदाय वालो ने कभी ध्यान ही नही दिया। न इसकी आवश्यकता ही थी। भारतीय अध्यात्म-साधना के विविध रूप रहे हैं और वे विविध सप्रदायो के रूपमे लम्बी श्रृखलाके रूपमे जीवित रहे हैं। प्रत्येक ऐसी धार्मिक श्रृखला या परम्परा एक दूसरी से निरपेक्ष रही है। अत किसी एक श्रृंखला का साहित्य यदि किसी दूसरी श्रृंखला के साहित्य का परिचय नही देता तो स्वाभाविक ही है। इसी कारण वार्ता-साहित्य इतना महत्त्वपूर्ण होते हुए भी अपने समसामयिक साहित्य मे चर्चा का विषय नही बना। और यह तथ्य किसी साहित्य की अप्रमाणिकता का लक्षण नही बनता। आज भी यह दृष्टि-गत होता है कि जो लोग किसी विशिष्ट धार्मिक परम्परा के अनुयायी हैं वे बहुधा अन्य धार्मिक-परम्पराओ के रहस्यो से अपरिचित होते हैं और उनके साहित्य से अनवगत। इसीलिए वार्ता साहित्य की चर्चा उसके समसामयिक साहित्य मे उपलब्ध नही होती। वस्तुत. यह ग्रन्थ पुष्टि-सप्रदाय-दीक्षित भक्तमडली का नैत्यिक-एकान्त अध्ययन और स्वाध्याय की वस्तु होने से इसे सम्प्रदायबाह्य लोकप्रियता न मिल सकी। इसके अध्ययन से आज भी वैष्णव जन रोमांचित, गलदश्रु और कण्ठावरुद्ध हो जाते हैं। भावुकता के निधि स्वरूप थे दोनो ग्रन्थ कोरी वैष्णवी भावुकता से ही सन्निविष्ट नही है इसमे पुष्टि सिद्धान्त, भावना और ऐतिह्य निरूपक गूढ तत्वों का सन्निवेश भी है। मध्यकालीन-भक्ति-साधना और प्रेम साधना का विशद लेखा-जोखा यदि देखना हो तो वार्ता साहित्य का पारायण अत्यन्त अपेक्षणीय है। इनमे तत्कालीन, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियो का अन्तर्निहित किन्तु इतना सुस्पष्ट चित्र मिलता है कि पाठक एक भिन्न लोक मे विचरण करने लगता है। वार्ताओ मे तिथियो की उपेक्षा अवश्य है परन्तु 'वार्ता' शब्द ही तिथियो से वास्ता नही रखता। भगवान और उनके भक्तो की वार्ता भगवान के ही समान 'दिक्कालाद्यनवच्छिन्न' है अत. उनमे जान बूझ कर तिथियो की अवहेलना की जाय तो क्या आश्चर्य है। फिर भी "प्रामाणिकता" का खोजी यदि चाहे तो वार्ता मे क्रमबद्ध ऐतिहासिकता प्राप्त कर सकता है। वार्ता मे आए अनेक व्यक्तियो की अन्य प्रामाणिक ग्रन्थो एव इतिहासो मे तिथि सहित चर्चा

१ २५२ वैष्णवन की वार्ता, प्रस्तावना, पृष्ठ ५ गो. ब्रज भू० ला० शुद्धाद्वैत एकेडेमी कांकरौली।

२ वार्ता साहित्य मीमांसा-पृ०-२-लेखक श्री द्वा० दा० परीख।

मिलजाती है। वार्ता मे आई हुई तत्कालीन राजकीय परिस्थिति का और शासकवर्ग के व्यवहार का एक सुस्पष्ट चित्र पाठक की कल्पना मे अकित होता है, जिसको यदि पाठक चाहे तो अन्य तत्कालीन इतिहासो के आधार पर पुष्ट कर सकता है जैसे अकबर, बीरबल, टोडरमल, तुलसीदास, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरगजेब आदि ऐसे ऐतिहासिक व्यक्ति हैं जिनकी चर्चाएँ वार्ता साहित्य मे मिलती है। उसी प्रकार फैजी की "आइने अकबरी" मे उल्लखित सामाजिक स्थिति और वार्ता मे वर्णित सामाजिक स्थिति मे कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नही होता।

फिर वार्ता ग्रन्थो की चर्चा अन्य प्रामाणिक चरित्र-ग्रन्थों मे उपलब्ध होती है जैसे महाप्रभु हरिरायजी के जीवन चरित्र मे वार्तासाहित्य की पूरी चर्चा है। उसी प्रकार "निजवार्ता" 'घरूवार्ता' महाप्रभु वल्लभाचार्य का 'बैठक-चरित्र' आदि अनेक ग्रन्थो मे वार्ता साहित्य का उल्लेख है। अत वर्ण्य विषय, शैली, भाषा आदि सभी दृष्टियो से वार्ता साहित्य प्रामाणिक ठहरता है। वार्ता साहित्य की महत्ता पर मुग्ध होकर सम्प्रदाय के मार्मिक ज्ञाता श्रीद्वारकादास परीख लिखते है।

"आ वार्ताओ मा केटलूं बधु साम्प्रदायिक अगाध रहस्य समायेलूं छे ते जमाववाने अर्थ श्री हरिराय प्रमुख दरेक वार्तानां दरेक प्रसग ऊपर मध्यम भाषा थी — अर्थात् न अत्यन्त स्पष्ट तेमज न अत्यन्त गूढ एवी भाषा मा रहस्य नू उद्घाटन कर्यु छे।[1] " अर्थात् "इस वार्ता मे कितना सारा साम्प्रदायिक गहन रहस्य समाया हुआ है उसको समझाने के लिए श्री हरि-राय जी महाप्रभु ने प्रत्येक वार्ता के प्रत्येक प्रसग पर मध्यम भाषा मे — अर्थात् न अत्यन्त स्पष्ट, न अत्यन्त गूढ, ऐसी भाषा मे रहस्य का उद्घाटन किया है।

तात्पर्य यह है कि वार्ता साहित्य और उस पर हरिराय जी का टिप्पण साम्प्रदायिक-रहस्य को जानने के लिये अत्यन्त उपयोगी अपरिहार्य और प्रामाणिक है। इनके बिना सम्प्रदाय के रहस्यो का गभीर बोध नही हो सकता। न ब्रजभाषा के उन मूर्द्धन्य कवियो के विषय मे जानकारी हो सकती है जिन्होने लोकोत्तर काव्य प्रतिभा से ब्रज साहित्य को उसकी अमूल्य निधि मे अपने भाव-रत्नो को समाविष्ट कर उसे वैभवशाली और श्री सम्पन्न बनाया।

## १—चौरासीवैष्णवन को वार्ता में परमानन्ददासजी का वृत्त

कविवर परमानन्ददासजी का जीवन परिचय "चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे इस प्रकार उपलब्ध होता है —

कवि का जन्म कन्नौज मे एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ। जन्म के दिन पिता को कही से बहुत सा द्रव्य मिला। अत उसने परमानन्दित होकर पुत्र का नाम 'परमानन्ददास' रख दिया। जातकर्म, नामकरण आदि सस्कारो के हो जाने पर पिता ने यज्ञोपवीत कर दिया। बालक परमानन्ददास आनन्दी जीव थे। विद्याध्ययन द्वारा अच्छी योग्यता सपादित की और काव्य रचना करने लगे। वे कुलीन और भक्त थे दीक्षादि देकर शिष्य बनाते थे। इस प्रकार इनका अपना एक मडल था। कन्नौज मे एक बार अकाल पडा और परमानन्ददास जी की समस्त पैतृक सपत्ति राज्य द्वारा हरण करली गई।

---

१ आ० वार्ता रहस्य। भूमिका-वार्ता सबधी समान।

इस समय तक इनका विवाह नही होने पाया था अतः पिता ने इन्हे द्रव्योपार्जन करने के लिए आदेश दिया। परन्तु परमानन्ददास स्वभाव से विरक्त थे, द्रव्योपार्जन मे आस्था नही थी अत वे द्रव्य-सग्रह के लिये कहीं नही गये। परन्तु इनके पिता अवश्य द्रव्यार्थ इतस्ततः भटकते रहे।

कुछ काल के उपरान्त मकर-स्नान-पर्व पर परमानन्ददासजी प्रयाग पधारे। वहाँ इनके कीर्तन और पद गान की बडी धूम रही। महाप्रभु वल्लभाचार्य के जलघडिया कपूर क्षत्री ने इनके पदगान की प्रशसा सुनी और एक दिन एकादशी की रात्रि मे यमुना पार कर वे परमानन्ददासजी की कीर्तन मण्डली मे सम्मिलित हुए। दूसरे दिन द्वादशी को "क्षत्री कपूर" ने महाप्रभु वल्लभाचार्य के समक्ष परमानन्ददासजी के पद गान की प्रशसा की। फिर किसी एकादशी की रात्रि को जागरण के बहाने कपूर क्षत्री पुन परमानन्ददासजी के समाज मे सम्मिलित हुए और प्रभात मे पुन अपने कार्य मे लग गये। उधर परमानन्ददासजी ने अंतिम प्रहर मे स्वप्न देखा कि इनके समाज मे सम्मिलित होने वाले कपूर क्षत्री की गोद मे भगवान नवनीतप्रिय बैठे है और वे इनका गान श्रवण कर रहे हैं। नेत्र खुलने पर परमानन्ददासजी भगवद् विरह मे व्याकुल हुए और नवनीतप्रिय जी के साक्षात् दर्शन की इच्छा हुई। अत वे कपूर क्षत्री से मिलने को अडेल चल दिए और नौका से यमुना पार करके आचार्य महाप्रभु के स्थान पर आए। यहाँ पर उन्हे प्रथम बार महाप्रभु के दर्शन हुए और उसी क्षण उन्होंने उनकी शरण मे जाने का सकल्प कर लिया। महाप्रभु ने उन्हें भगवत् लीला गान करने का आदेश दिया। जिस पर परमानन्ददास ने कुछ विरह-परक पद गाए। महाप्रभु ने उन्हे बाल लीला-गान का आदेश दिया उस पर परमानन्ददासजी ने अपनी असमर्थता प्रकट की। तब आचार्य जी ने उन्हे यमुना मे स्नान कर आने को कहा और फिर नाम श्रवण[1] कराकर शरण मत्र[2] की दीक्षा दी। दीक्षोपरान्त आचार्यजी ने परमानन्ददासजी को भागवत दशमस्कध की अनुक्रमणिका सुनाई और तभी से परमानन्ददासजी ने बाल लीला परक पद रचना प्रारभ कर दी। इन्होने गाया—

१—माइरी कमलनैन स्याम सुन्दर झूलत हैं पलना।[3]

२—मनि मय आँगन नन्द के खेलत दोऊ भैया॥[4]

अबसे परमानन्ददासजी का यह नित्य का कार्य था कि वे श्री नवनीतप्रिय भगवान के समक्ष बाल लीला के पद बनाकर कीर्तन करते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य इन दिनो श्रीमद्भागवत पर सुबोधिनी नामक टीका लिख रहे थे अतः वे नित्य सुबोधिनी की कथा परमानन्ददासजी को सुनाते थे। सुबोधिनी के उन्ही प्रसगो को लेकर परमानन्ददासजी पद रचना कर देते थे।

इस प्रकार कुछ काल अडेल मे निवास करने के उपरान्त परमानन्ददासजी की ब्रज-वास की इच्छा हुई, और उन्होने उनसे ब्रज चलने की प्रार्थना की।

---

१ नाम मत्र-अष्टाक्षर मंत्र जो सप्रदाय में शैशव से ही बालक को दे दिया जाता है।

२ शरणमत्र-गद्यात्मक मन्त्र जिसमें प्रभु को सर्व समपर्ण पूर्वक भक्त अपने को भगवान का ही मान लेता है। यही सम्प्रदाय में ब्रह्म संबन्ध कहलाता है।

३ लेखक द्वारा संपादित परमानन्दसागर से।

४ ,, ,, ,, ,, ,,

यह मागो गोपीजनवल्लभ

मानुस जनम और हरि की सेवा व्रजवसिवो दीजे मोहि सुल्लभ ।

महाप्रभु उनकी प्रार्थना पर प्रयाग से व्रज को पधारे। मार्ग मे वे परमानन्ददासजी के घर कन्नौज भी पधारे। वहाँ परमानन्ददासजी ने एक हरिलीला विपयक पद[1] गाया। कहते हैं आचार्य जी इस पद को श्रवण कर तीन दिन तक देहानुसधान भूले रहे। उसके उपरान्त आचार्य समस्त शिष्य मंडली सहित व्रज की ओर चले। कन्नौज मे परमानन्ददासजी के जितने शिष्य थे उन्हे आचार्य जी ने अपनी शरण मे लेकर उन्हे ब्रह्मसम्बन्ध की दीक्षा दी और समस्त शिष्यो सहित व्रज ( गोकुल ) मे पधारे। यहाँ आचार्य जी ने परमानन्ददास को श्री यमुना के आध्यात्मिक स्वरूप का दर्शन कराया और परमानन्ददास ने श्री यमुना विपयक अनेक पदो की रचना की। जैसे—

१—श्री यमुनाजी यह प्रसाद हो पाऊ ।।
२—श्री यमुना जी दान मोहि दीजै ।। आदि ।

यहाँ श्री परमानन्ददासजी गोकुल सम्बन्धी बाललीला के अनेक पदो की रचना करते रहे। उसके उपरान्त परमानन्ददासजी श्री आचार्य जी के साथ श्रीगोवर्धन पधारे और उन्होंने गिरिराजधरण (श्रीगोवर्धननाथजी) के दर्शन किये। श्रीगिरिराज मे निवास करते हुए परमानन्ददासजी ने अवतार लीला, कुंजलीला चरणारविन्द की वदना, स्वरूप सम्बन्धी एव ठाकुरजी के माहात्म्य सम्बन्धी अनेक पदो की रचना की और अनन्त भगवल्लीलाओ का अनुभव किया। यही पर आचार्य महाप्रभुजी ने परमानन्ददास के एक पद[2] के पाठ मे परिवर्तन किया जिससे आचार्यजी का व्रज-भाषा के प्रति आदर और उनका पाण्डित्य झलकता है।

गिरिराज मे निवास करते हुए परमानन्ददासजी ने अपने समाकालीन वैष्णव मडल से मिलते रहते थे। इनमे सूरदासजी कुंभनदासजी एव रामदास आदि मुख्य थे। इसी समय उक्त प्रमुख वैष्णवो ने उनसे श्रीनन्दरायजी, गोपीजन एव ग्वाल सखाओ मे सर्वाधिक श्रेष्ठ प्रेम किनका है यह प्रश्न किया। इस पर परमानन्ददासजी ने गोपी प्रेम को ही आदर्श प्रेम सिद्ध किया। इस प्रकार वे बहुत समय तक-श्री गोवर्धननाथजी की कीर्तन सेवा करते रहे। इसी काल मे श्रीगोसाईंजी से वे गोकुल में मिलने के लिये आते जाते रहते थे। इस समय तक विट्ठलनाथजी को आचार्यत्व प्राप्त हो गया था। उनके 'मगल मगल व्रजभुवि मगल के' पद पर परमानन्ददासजी ने अनेक पद बनाए थे।

एक बार जन्माष्टमी के अवसर पर रात्रि को पचामृत स्नान के उपरान्त और दूसरे दिन नवमी को दधि कांदे के उपरान्त परमानन्ददासजी भगवल्लीला गान करते हुए आत्म विभोर हो गए और उन्हे राग के स्वरो का भी अनुसधान नही रहा। चित्त की इस निरोध स्थिति मे वे ऐहिक अनुभूतियो से शून्य हो गए। वे अपनी कुटिया सुरभि कुण्ड के ऊपर आगए। थोडी ही देर मे समस्त वैष्णव मडल उनके चतुर्दिक् एकत्र हो गया।

---

१ हरि तेरी लीला की सुधि आवै। प० सा०

२ 'कौन यह खेलिवे की वानि'—आचार्यजी ने परिवर्तित किया-भली यह खेलिवे की वानि।

परमानन्ददास जी का यह अन्तिम समय था। अपने अन्तिम पदो मे वैष्णवो को 'गुरु-भक्ति'[१] का आदेश दिया। तदुपरान्त युगल स्वरूप की लीला[२] मे मन को अटका कर वे भगवान का नित्य लीला मे प्रवेश कर गए। उनके अग्नि सस्कार के पश्चात् गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उनके विषय मे कहा था—'जो ये पुष्टि मारग मे दोउ 'सागर' भए। एक तो सूरदास और दूसरे परमानन्ददास। सो तिनको हृदय अगाधरस भगवल्लीला सागर है जहाँ रत्न भरे हैं।''आदि

चौरासीवार्ता के चरित्र कथन के आधार पर हम सूत्र रूप मे निम्नाकित तथ्यो पर पहुंचते है .—

१—परमानन्ददास जी कन्नौज के निवासी थे। वे ब्राह्मण परिवार मे जन्मे थे। उन्हे बचपन मे अच्छी शिक्षा दीक्षा मिली थी। वे विद्वान् और कवि थे।

२—वे ब्राह्मणो के उस कुल मे जन्मे थे जिसमे शिष्य बनाये जाते है। वे अपने साथ एक अच्छी खासी मण्डली रखते थे।

३—उन्हे उच्च कोटि के सगीत का ज्ञान था। उनकी सगीत कला से प्रभावित होकर दूर-दूर से लोग उनके गान को श्रवण करने आते थे।

४—कपूर क्षत्रिय के द्वारा उन्हे महाप्रभुवल्लभाचार्य जी का परिचय मिला और वे उनकी शरण आए तथा अडेल (अर्लकपुर) मे दीक्षित हुए।

५—दीक्षित होने के उपरान्त महाप्रभु के पास रहकर कीर्तन सेवा करते रहे। तबसे उन्होने दूसरो की दीक्षा देना बन्द कर दिया था। और बाललीला परक पदो मे 'सुबोधिनी' उनकी आधार शिला थी।

६—वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के साथ ब्रज मे पधारे और गोकुल होते हुए श्री गोवर्धन आये तब से वे गिरिराज पर स्थित गोवर्धननाथजी के मदिर मे निरन्तर कीर्तन सेवा करते रहे।

७—वे गिरिराज मे रहते हुए वैष्णवो का सत्सग और कीर्तन करते रहते थे तथा कभी कभी गोकुल कभी नन्दगाँव आदि ब्रज के अन्य स्थानो मे घूमने चले जाते थे।

८—वैष्णव मडली मे और अपने समसामयिक सूरदास कुंभनदासादि भक्तो मे उनका बडा सम्मान था।

९—उन्हें आचार्य से बाल-लीला गान का आदेश मिला था। अत. उनका वर्ण्य विषय भगवान् की बाल-लीला ही था।

१०—वे आचार्य महाप्रभु के नित्य लीला प्रवेश के बाद वर्षों जीवित रहे और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र रहे।

११—ब्रज मे उनका निवास स्थान गिरिराज की तरहटी मे स्थित सुरभिकुंड पर था। और वहीं उनका देहावसान हुआ।

---

१ प्रात समै उठि करिए लछमन सुत गान।
प्रगट भए श्री वल्लभ प्रभु देत भक्ति दान॥

२ राधे बैठी तिलक सँवारति।
मृग नैनी कुसुमाकर धरि नन्द सुवन कौ रूप विचारति।

परमानन्द सागर पद संख्या। ५७१ तथा ३७१

उपर्युक्त तथ्यो के अतिरिक्त चौरासी वार्ता से परमानन्ददासजी के जन्म सवत् आदि का कुछ भी पता नही चल सकता। साथ ही अन्तस्साक्ष्य के आधार पर किये गये तथ्यो से उपर्युक्त तथ्यो का कही विरोध भी नही पडता। अन्तस्साक्ष्य मे कवि ने अपने जन्म-स्थान, माता पिता, अथवा राजकीय अत्याचारो आदि का उल्लेख नही किया है। वार्ता से ही कवि का कन्नौज[1] मे उत्पन्न होना तथा अडेल मे दीक्षित होना एव भागवत दशम स्कन्ध के आधार पर भगवान की बाललीला का वर्णन करना पाया जाता है। उसके काव्य मे बाललीला परक पद अधिक होने से उक्त बात की पुष्टि अन्तस्साक्ष्य के अन्तर्गत रखे जाने वाले पदो के आधार पर भी हो जाती है। वार्ता के इन प्रसगो मे परमानन्ददास जी के जीवन के सम्बन्ध मे उपर्युक्त स्थूल तत्व ही उपलब्ध होते हैं। इनसे उनकी भक्ति भावना, दैन्य, काव्य प्रतिभा, धार्मिक विश्वास गुरुभावना आदि का परिचय ही मिलता है। वे किस सवत् मे प्रयाग पहुँचे, किस समय दीक्षा प्राप्त हुई कब से व्रजवास प्रारम्भ हुआ आदि प्रश्न हल नही होते, न सूरदासजी की भाँति अकबर से भेंट आदि अन्य कोई ऐतिहासिक घटना की चर्चा मिलती है, हाँ सकेत रूप मे वार्ता मे जहाँ गोस्वामी विट्ठलनाथजी का "मगल मगल भुवि मगल" वाले पद की चर्चा मिलती है वहाँ यह आभास अवश्य मिलता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य नित्य लीला मे प्रविष्ट हो गए थे और नवनीत प्रियजी का जो, कि आचार्य महाप्रभुजी के सेव्य थे। सेवा-भार गोस्वामी विट्ठलनाथजी पर आगया था। दूसरे, कवि की अवसान वेला मे महाप्रभुजी की उपस्थिति नही बल्कि गोस्वामी विट्ठलनाथजी की उपस्थिति बतलाई गई है। जोकि सप्रदाय के अन्य ग्रन्थों एव तत्कालीन-प्रमाण ग्रन्थो से भी पुष्ट होती है।

वार्ता साहित्य के अनन्तर दूसरा प्रामाणिक ग्रन्थ जोकि परमानन्ददासजी के विषय मे उल्लेख्य सामग्री देता है वह "भावप्रकाश" है। इसके रचयिता महाप्रभु हरिरायजी हैं।

२—भावप्रकाश-यह वार्ता साहित्य "पर भावनात्मक टिप्पण" है। श्री हरिरायजी का जन्म सवत् १६४७ से १७७२ तक माना जाता है। उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाश की प्राचीनतम प्रामाणिक प्रति जो सवत् १७५२ की लिखी हुई है, सम्प्रदाय मे उपलब्ध है। इस प्रकार यदि इस सवत् को भाव प्रकाश का रचना काल मान भी लें तो जनश्रुति के अनुसार परमानन्ददास के १०२ वर्ष उपरान्त यह लिखा गया है। श्री हरिरायजी ने इसे "तीन जन्म की लीला भावना वाली चौरासी वैष्णावन की वार्ता" नाम से लिखा था। कहा जाता है कि उक्त पुस्तक का सम्पादन श्री हरिरायजी के जीवन काल मे ही हो गया था। महाप्रभु हरिराय जी १२५ वर्ष की दीर्घायु वाले हुए थे। ये गोस्वामी गोकुलनाथजी के बडे भाई गोविन्द रायजी के पौत्र एव कल्याणरायजी के पुत्र थे। ये प्रभुचरण गोकुलनाथजी की सेवा और शिष्यत्व मे रहते थे। ये सस्कृत साहित्य के उद्भट विद्वान और व्रजभाषा के मर्मज्ञ पडित थे। अत उन्होने वार्ता साहित्य का सपादन किया और उस पर भावनात्मक टिप्पण भी लिखा। मूल वार्ता का इतना विस्तृत विवेचन वे किस प्रकार दे सके यह एक आश्चर्यमयी जिज्ञासा है जो एक भावुक वार्ता स्वाध्यायी को भी अपनी और बरबस खीचती है। वे स्वय कहते हैं कि 'प्रगट

[1] पदों के कन्नौजी भाषा के शब्दों के यत्र तत्र स्वाभाविक प्रयोग मे और पूर्वी शैली से भी उनका पूर्व का होना पुष्ट होता है।

किये रस जाय'। और पडित निर्भयराम भट्ट की उक्ति मे 'रहस्य-भाव सर्वथा गोप्य है', इसके उपरान्त भी भावप्रकाश की रहस्यमयी भावना वे किस भाँति लोकगम्य कर सके, एक विचारणीय बात है।

परमानन्ददासजी की वार्ता मे श्रीहरिरायजी ने उनका 'तोक सखा' के रूप मे प्राकट्य बतलाकर निकुंज लीला मे सखी रूप मे उन्हे 'चद्रभागा' बतलाया है। और उसके उपरान्त सात वार्ता प्रसगो मे हरिराय जी ने परमानन्ददासजी का जीवन चरित विस्तार से लिखा है। भावप्रकाश मे सभी चौरासी वैष्णवो के तीन जन्मो का परिचय दिया है। अत परमानन्ददास जी के विषय मे वे कहते हैं कि वे कन्नौज मे कनोजिया ब्राह्मण के यहाँ जन्मे। जिस दिन उनका जन्म हुआ था पिता को बहुत सा द्रव्य मिला अत. उनका नाम 'परमानन्द' पड गया। वही नाम उनकी जन्म पत्रिका से भी था। वे शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर पद रचना करते थे। एक बार अकाल पडने पर राज्य द्वारा उनका सब द्रव्य हरण कर लिया गया। उन्होंने विवाह नही किया। वे गान विद्या मे परम चतुर थे। प्रयाग मे कपूर क्षत्री ने उनका गान सुना और वे उन्हें आचार्य के पास लाए। तभी वे महाप्रभु के शरणापन्न हुए। शरण से पूर्व भगवद् विरह परक पद बनाते थे। जबसे नवनीतप्रिय जी ने उन्हे अगीकार किया तब से वे भगवल्लीला गान करने लगे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उन्हें भागवत की अनुक्रमणिका सुनाई और श्रीभागवत रूपी समद्र आचार्यजी ने परमानन्ददास के हृदय मे स्थापित किया। अत उनका हृदय भगवल्लीला का सागर है और पद भी उन्होंने असख्य बनाये। इनके एक पद श्रवण करने से महाप्रभु देहानुसधान भूल गये थे। भगवान् के प्रति पहले इनका दास्यभाव था। बाद मे सख्यभाव हो गया था। इनकी भक्ति का आदर्श गोपी प्रेम था।"

भावप्रकाश का तात्पर्य सूत्र रूप मे निम्नाकित है—

१—परमानन्ददासजी कन्नौज के कुलीन ब्राह्मण घराने मे उत्पन्न हुए थे। और बचपन मे उन्होने अच्छी शिक्षा पाई थी।

२—प्रयाग मे अडेल नामक स्थान पर महाप्रभु वल्लभाचार्य से उन्होंने दीक्षा प्राप्त की थी।

३—महाप्रभु के साथ वे व्रज मे चले आए और बाललीला परक पदो का कीर्तन करते हुए गोवर्धन के निकट सुरभी कुण्ड पर रहने लगे।

४—उन्होने सहस्रावधि पद रचे।

———

# अन्य साम्प्रदायिक ग्रंथों में परमानन्ददासजी का वृत्त

वार्ता साहित्य और उसके भावप्रकाश के टिप्पण के उपरान्त निम्नांकित साम्प्रदायिक ग्रन्थो मे परमानन्ददासजी का उल्लेख मिलता है:—

## ३—वल्लभ दिग्विजय—

इस ग्रन्थ की रचना गोस्वामी विट्ठलनाथजी के छठे पुत्र श्री यदुनाथजी ने संवत् १६५८ मे की थी। यदुनाथजी का जन्म संवत् १६१५ मे हुआ था वल्लभकल्पद्रुम मे इस ग्रन्थ को श्री यदुनाथजी कृत माना गया है। इस ग्रन्थ की पुष्पिका मे इसका रचना काल इस प्रकार दिया है:—

वसु[८]—बाणे[५]—रसेन्द्वब्दे[६] तपस्य—सितिके रवौ।
चमत्कारिपुरे पूर्णो ग्रन्थोऽभूत्सोमजा तटे॥

"अकाना वामतो गति." के अनुसार ग्रन्थ का प्रणयन काल सवत् १६५८ ठहरता है। इसमे परमानन्ददासजी की चर्चा इस प्रकार मिलती है— "तत्र सवत् १५७२ द्विसप्तत्युत्तर पञ्चदशशताब्दे महालक्ष्म्या गोस्वामि श्रीविट्ठलनाथाना प्रादुर्भाव. सम्भवत्। अथ पुनर्व्रजयात्रा कृता ततः श्रीगोपीनाथ यज्ञोपवीत महोत्सव. समभूत्। ततो जगदीशयात्राया गगासागर प्राप्तिः कृष्णचैतन्य मिलनम्। रथ यात्रोत्सवो जात। ततो जगदीशात् प्रत्यागमन चाभूत्। ततो हरिद्वार यात्रा तत. पुनरलर्कपुरे समागमनमभूत्। तत्र कविराज शिक्षण कृतम्। कान्यकुब्ज परमानन्दमनुगृह्य लीलादर्शनङचकारितम्।"[१]

अर्थात् "संवत् १५७२ मे महाप्रभुजी की पत्नी महालक्ष्मी के गर्भ से गोस्वामी विट्ठलनाथजी का प्रादुर्भाव हुआ फिर आचार्य जी ने व्रजयात्रा की। उसके उपरान्त श्री गोपीनाथजी का यज्ञोपवीत महोत्सव हुआ। फिर जगदीश यात्रा और गगासागर का स्नान तथा श्रीकृष्णचैतन्य से मिलन और रथयात्रा का उत्सव; पुन वहाँ से लौटना फिर हरिद्वार यात्रा तदनन्तर अडैल मे आगमन। वहाँ कविराज को शिक्षा दान और कान्यकुब्ज के परमानन्ददास पर अनुग्रह करना आदि"। यदुनाथ दिग्विजय से परमान्ददासजी की दीक्षा सवत् का ठीक से पता चल जाता है। उनका दीक्षा सवत् १५७२ ही ठहरता है।

## ४—संस्कृतवार्तामणिमाला—

इसके रचयिता श्रीनाथ भट्ट मठेश हैं। इनका समय १७ वी सदी का उत्तरार्द्ध या १८ वी शती का पूर्वार्द्ध है।[२] श्री मठेश ने प्रसगो वाली किसी प्राचीन वार्ता प्रति के अनुसार

१ वल्लभदिग्विजय श्रीयदुनाथजी कृत पृष्ठ-५२-५३
२ दोसौ बावन वैष्णवों की वार्ता-खण्ड ३ भूमिका पृष्ठ-६

८४ और २५२ वैष्णवो के १२५ प्रसगो का सस्कृत मे अनुवाद किया है। इसमे ५७ वी वार्ता मे परमानन्ददासजी की चर्चा की है। इसमे भी उन्हे कन्नौज का कान्यकुब्ज ब्राह्मण ठहराया है। प्रयाग मे अलकपुर अडेल मे महाप्रभु ने उन पर अनुग्रह किया और वे व्रज मे निवास करते हुए भगवान की बाल-लीला का गान करते थे।

## ५—अष्ट सखामृतः—

इसके रचयिता श्रीप्राणेश अथवा प्राणनाथ कवि थे जो वृन्दावन मे निवास करते थे। इनकी उक्त पुस्तक सवत् १७६७ की म्होटा मदिर भूलेश्वर बवई मे मौजूद है। इसमे परमानन्ददासजी विषयक उल्लेख इस प्रकार है—

दुज कनौजिया प्रानपति, कनउज जनक निवास।
परमानन्द सुरूप सो, स्री परमानन्ददास॥
बाल बिरमचारी भगत, ग्यान, गान भण्डार।
कर्‌यौ कीरतन हरि सदा, त्यागी जग ब्यौहार॥
वल्लभ सरनागति गही, हरिपद नेह लगाय।
स्वामी परमान्द जू, साँचे सरल सुभाय॥
जा मुष लीला पद सुनत, वल्लभ भई समाधि।
तीन द्यौस पाछें उठे, हरि गिरिपति आराधि॥
हरि मदमाते ही रहे सो परमानन्ददास।
जो इन पद सतसगधरैं, सो न धरैं भवत्रास॥
जोइ जोइ लीला गावते, सोइ-सोइ दें दरसाइ।
हरि लीला पदरचि रुचिर, भए भगत सुपदाइ॥
को परमानन्ददास सो, भौ निधि करै उपाय।
औरनु तारैं अपु तरैं, बैठि पुष्टिपथ नाव॥
स्वामी परमानन्द भरे, व्रज मे परमानन्द।
प्रान' भगति बल बस करे, ब्रज पति आनन्दकन्द॥
[अष्ट सखामृत दोहा—४६—५३]

अष्ट सखामृत के लेखक प्राणेश महाप्रभु वल्लभाचायजी के समकालीन थे। वे वृन्दावन मे रहते थे। प्राणेश कृत 'पचामृत' के अन्तर्गत अष्टासखामृत चतुर्थ अमृत है। प्रस्तुत पुस्तक के प्रतिलिपिकार गोवर्धन निवासी ग्वालदास वैष्णव थे। इनकी प्रात का सवत् १७६७ है जो म्होटा मदिर भोलेश्वर मे सुरक्षित है।

उपर्युक्त पुस्तको के अतिरिक्त निम्नाकित साम्प्रदायिक पुस्तकें ऐसी है जिनमे परमानन्ददासजी का उल्लेखभर मिलता है।

## १—बैठकचरित्र—

इस ग्रन्थ मे आचार्य वल्लभ के उन ८४ स्थानो की चर्चा है जहाँ उन्होने श्रीमद्भागवत पारायण किया और भक्ति का प्रचार किया। महाप्रभुजी ने भारत परिक्रमा और श्रीमद्भागवत पारायण के साथ-साथ अनेक भक्तो को शरण मार्ग मे दीक्षित किया। छठे बैठक चरित्र मे आया है —

"........जा समय श्री आचार्यजी आप व्रजयात्रा करिवे पधारे ता समय इतने वैष्णव आपके सग हते तिनके नाम— (१) वासुदेव छकडा (२), यादवेन्द्रदास कुम्हार, (३) गोविंद दुबे साचौरा ब्राह्मण, (४) माधवभट्ट काश्मीरी, (५) सूरदासजी, (६) परमानददासजी सो इतने वैष्णव श्रीआचार्यजी महाप्रभुन के सग व्रजयात्रा करिवे गए हते। इति श्रीआचार्यजी की मधुवन की बैठक को चरित्र समाप्त।"[1]

इस हवाले से केवल इतना ही पता लगता है कि हमारा कवि आचार्य वल्लभ के अतरग परिकर मे था और वह विशेष कृपापात्र होने के कारण महाप्रभुजी की यात्रा मे साथ रहता था।

## २—प्राकट्य सिद्धान्त—

यह ग्रन्थ गोस्वामी विट्ठलनाथजी के चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथजी के सेवक गोपालदास ब्यावरे वालो का रचित है। इनका समय वि० स० १७१० के आसपास है। इस ग्रन्थ मे भी ८४ और २५२ वैष्णवो का परिचय है। इसमे ७१ वें वैष्णव परमानन्ददासजी का सक्षिप्त परिचय दिया हुआ है। जो वार्ता के ही आधार पर है।

अन्य ग्रन्थ.—[ वैष्णवाह्निक पद ]

इसके लेखक अष्टछाप चरित्र और साहित्य के विशेषज्ञ गो० गोपिकालकारजी भट्टूजी महाराज हैं ( जन्म सवत् १८७९ ) जिनका काव्य-नाम "रसिकदास" प्रसिद्ध है उनके वैष्णवाह्निक पद प्रसिद्ध हैं उसमे उन्होने परमानन्ददासजी को इस क्रम से रखा है —

सूरदास सिर पगा विराजे। कृष्णदास मुकुट मनि राजे।<br>
ग्वालपगा परमानन्द भ्राजै। कुभनदास कुल्हे सिर ताजै॥<br>
गोविन्द स्वामी टिपारे साजे, चत्रभुजदास दुमाले गाजे॥<br>
फेंटा नन्द अगन लाजै। सेहरा छीतस्वामी सघन समाजै॥<br>
नित्यलीला भक्त हित काजै। दरसन अष्ट उपाधी भाजै॥१॥

[1] बैठक चरित्र-हस्त लिखित प्रति-द्वारकादास परीख।

एक दूसरा पद्य इस प्रकार है:—

कुभनदास महा रसकद प्रेम भरे निज परमानन्द ॥
छीतस्वामी गावें सब कोऊ। बांधे हरि गुण सूर बहू ॥
कृष्णदास जी पावन करैं। चत्रभुजदास कीर्तन उच्चरैं ॥
नन्ददास सदा आनन्द । गुण गावैं स्वामी गोविन्द ॥
"रसिक" यही स्रवननि राखैं। स्रीवल्लभ बानी मुख भाखैं ॥

एक स्थान पर वह कहते है:—

जो जन अष्टछाप गुन गावत।
चित निरोध होत ताही छिन हरि-लीला दरसावत ॥
सूर सूर जस हृदय प्रकाशत परमानन्द आनन्द बढावत।
छीतस्वामी गोविन्द जुगलबस, तन पुलकित जल आवत ॥
कुभनदास चत्रभुजदास गिरि-लीला प्रगटावत।
तरुण किशोर रसिक नन्द नन्दन पूरन भाव जनावत ॥
नददास कृष्णदास रास रस उछलित अग अग नचावत।
"रसिक" दास जन कहाँ लौ बरने श्रीवल्लभ मन भावत ॥

श्रीगोकुलनाथजी के स्फुट वचनामृत मे आदर्श चरित्र सेवको के नाम लेख बद्ध हुए हैं। यह भक्त नामावली सभवत पुण्यश्लोक भक्तो के प्रातः स्मरण की सुविधा के लिए है। इसमे एक स्थान पर आया है—

ईश्वरोत्तमश्लोकाख्यो राजामाधिविकौ तथा।
सिहनदे सासू बहू परमानन्द सूर कौ ॥ [श्लोक सं० १२]

महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य एव अष्टछाप के अन्य कवि कृष्णदास, "अधिकारी" का वसतोत्सव वाला पद अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमे परमानन्ददासजी की चर्चा मिलती है। इससे कवि के अस्तित्व और उसके समय का ठीक पता चल जाता है। कृष्णदासजीका समय सवत् १५५३ से सवत् १६३६ तक का माना जाता है। अत परमानन्ददासजी उनके सम सामयिक थे। उनका वसत वाला पद इस प्रकार है—

खेलत वसन्त विट्ठलेश राय।
निज सेवक सुख देखत है आय ॥
श्री गिरधर राजा बुलाय।
श्री गोविन्दराय पिचकारी लाय ॥

× × × ×
× × × ×

तहां सूरदास नाचत है आय।
परमानन्द घोटें गुलाल लाय॥
चतुर्भुज केशर माटन भराय।
छीतस्वामी बुक्का फेंके जाय॥
नन्ददास निरख छवि कही न जाय।
गावें कुंभनदास वीणा बजाय॥
सब गोविन्द बालक छिरकें जाय।

× × × ×
× × × ×

तहाँ कृष्णदास बलिहारी जाय।
सब अपनो मनोरथ करत आय॥

उपर्युक्त पद में आठो ही महानुभावों के नाम आए हैं इससे समसामयिकता स्पष्ट ध्वनित होता है और गोस्वामी द्वारकेशजी का यह छप्पय तो प्रसिद्ध है ही।

सूरदास सो कृष्ण तोक परमानन्द जाना।
कृष्णदास सो रिषभ छीतस्वामी सुबल बखानो॥
अर्जुन कुम्भनदास चत्रभुजदास विशाला।
नन्ददास सो भोज स्वामी गोविन्द श्रीदामाला॥
अष्टछाप आठों सखा द्वारकेश परमान।
जिनके कृत गुन गान करि होत सुजीवन थान॥

गुसाईंजी के अनन्य सेवक अलीखान पठान ने अपने एक पद में चौरासी वैष्णवों को स्मरण किया है उसमें परमानन्ददासजी का भी उल्लेख है —

"कहि सूर परमानन्द छकड़ बासुदेव बखाणिये।
बाबा जु वेणु कृष्ण जादवदास के गुण गाइए॥"[1]

× × × ×

कुम्भनदास महार समेत जिन प्रति प्रभु सों सची।
कृष्णदास ग्वाल कहिए जिन गौ नाहर ते बची॥

× × × ×

ए भक्त चौरासी भये, तब स्याम स्याम गाइए।
विनती सुनो अलीखान की ब्रजवास कबधौ पाइए॥

---

१ अलीखान कृत चौरासी वैष्णवों की नामावली-पद-२४.

## अष्टसखान की भावना—

यह ग्रन्थ भाव-संग्रह का एक अंश ज्ञात होता है। यह संग्रह द्वारकेशजी द्वारा रचित है। इनका समय संवत् १७५१ से १८०० तक माना गया है। इसमें भी परमानन्ददास सम्बन्धी संक्षिप्त उल्लेख है जो हरिरायजी के भावप्रकाश से मिलता-जुलता है। अपने ग्रन्थ अष्टसखा तथा अष्टदर्शन भावना में वे लिखते हैं—

''अष्टसखा के पच दोहा लिख्यते—

## प्रभुके श्रीअंग में अष्टसखा—

(१) सूर स्याम वाणी बिलसें।
कमल नयन गोविन्द चलवे ॥
सरवन परमानन्द जु भाये।
चतुर्भुजदास चचल कर नावें ॥
कुभनदास हृदय स्थान मानें।
छीतस्वामी कटिभाग दिखावें ॥
उदर लीला नन्ददास पोसावें।
कृष्णदास लीला चरण पहुचावें ॥
ए लीला कोई पार न पावें।
राग ललित उमग भरि गावें।
श्री द्वारकाकेश प्रभु बलि जावें।

भगवत् श्रृङ्गार में अष्टसखान की भावना—[ श्री द्वारकेशजी कृत]

सूर स्याम सिर पाग बिराजें।
कृष्णदास मुकुट मणि राजें ॥
गोविन्द स्वामी टिप्पारो छाजें।
कुम्भदास कुल्लह सिर गाजें ॥
चतुर्भुजदास सेहरो सिर राजें।
ग्वाल पगा परमानन्द बिराजें ॥
फेटा नद अनंग घन लाजें।
दुमालो छीत स्वामी बिराजें ॥
नित्य लीला भक्तन ही काजें।
दर्सन करता आभरण भ्राजें ॥
द्वारकेश प्रभु सदा बिराजें।

अष्टसखाओ के ब्रज मे निवास स्थानो की चर्चा [श्री द्वारकेशजी द्वारा]

मुख कृष्णदास बिलछू हितकारी।
सिंदूर सिला रूदन कुण्ड चतुर्रविहारी ।।
मानसी गगा नददास विराजे।
सूर पारसौली चन्द्रसरोवर रास दिखावें ।।
कुभनदास आन्यौर पर साजें।
सुरभी कुण्ड परमानन्द विराजें ।।
गोविन्द स्वामी कदम खडी एरावत कुण्ड राजें।
छीतस्वामी अप्सरा कुण्ड पैं छाजें ।।
अष्टद्वारपति कहावैं ए लीला द्वारकेश जू गावें।

श्री द्वारकेशजी अपने चौरासी वैष्णव वाले (गुजराती) धौल मे अष्टछाप के कवियो की चर्चा मे लिखते हैं।

× × ×

सूरदास शिरोमणि भक्तरे।
गाया गिरधर जाणे जगतरे ।।
सर्वोपरि दासपरमानन्द रे।
गाया गुण निधि वालमुकन्द रे ।।
कुम्भनदास महारस कद रे।
सखा भावें सेव्या श्री गोविन्द रे ।।
सुत चतुर्भुजदास दृढ एवारे।
छोड्या प्राण न छोडी गौ सेवा रे ।।
कृष्णदास कहिए अधिकारी रे।
गाया सेव्या श्री राजविहारी रे ।।
गाया वैष्णव ए चौरासी रे।
श्रीवल्लभ पद निकटना वासी रे ।।

———

# (१०) सम्प्रदायेतर अन्य ग्रन्थ

ऊपर जिस सामग्री पर विचार किया गया है वह सब सामग्री संप्रदाय से संबंधित है। उसमे परमानन्ददासजी की चर्चा कही थोड़ी विस्तृत और कही अत्यन्त संक्षेप में उपलब्ध होती है। अब यहाँ उस सामग्री पर भी विचार किया जायगा जो संप्रदायेतर है और जिसमे परमानन्ददासजी की चर्चा मिल जाती है।

## (क) भक्तमाल—

इस ग्रन्थ की रचना सुप्रसिद्ध भक्त नाभादासजी ने वि० स० १६६० के आस-पास की थी। इसमे चतु सप्रदायो के भक्तो के नामाल्लेख के अलावा अनेक विशिष्ट भक्तो का भी चरित्रोल्लेख मिलता है। इस ग्रन्थ पर भक्तवर प्रियादासजी ने प्राय: १०० वर्ष बाद टीका (तिलक) की है। परमानन्ददासजी का उल्लेख भक्तमाल मे इस प्रकार मिलता है—

ब्रज वधू रीति कलयुग विषै परमानन्द भयौ प्रेमकेत।
पौगड बाल कैशोर, गोपलीला सब गाई॥
अचरज कहा यह बात हुतौ पहिलौ जु सखाई।
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमाच रैनदिन॥
गद्गद गिरा, उदार श्याम शोभा भीज्यौ तन।
'सारग' छाप ताकी भई स्रवन सुनत आवेस देत॥
ब्रजवधू रीत कलिजुग विषै परमानन्द भयौ प्रेमकेत॥

भक्तमाल मे इनके अतिरिक्त तीन अन्य परमानन्ददासो की चर्चा और भी आई है उनमे एक तो श्रीधर स्वामी के गुरु सन्यासी थे। दूसरे ओली निवासी थे जिनके द्वार पर धर्म की ध्वजा फहराती थी। तीसरे टीला जी के शिष्य लाहा के पुत्र-परमानन्ददासजी जगत् विख्यात योगी थे। हमारे परमानन्द सर्व प्रथम परमानन्द है बाद के ये तीन भिन्न है।

## (ख) भक्तनामावली—

ये ध्रुवदास रचित है। इसमे परमानन्ददासजी के विषय मे लिखा है:—

परमानन्द और सूर मिल गाई सब ब्रज रीत।
भूलि जात विधि भजन को, सुनि गोपिन की प्रीत॥

---

भक्तमाल, नवल किशोर प्रेस नवीन संस्करण, छप्पय-४०६ पृष्ठ, ८१

## (ग) नागरसमुच्चय—

ये ग्रन्थ कृष्णगढ (राजस्थान) नरेश महाराज सावतसिंह उपनाम—नागरीदासकृत—है। इसमे उन्होने अत्यन्त भावुकता के साथ अपने पूर्ववर्ती भक्तो की चर्चाए की है। ये चर्चाए भक्ति-सुलभ-भावुकता के कारण अतिरजित भी हो गई हैं। परमानन्ददासजी के विषय मे उसमे लिखा मिलता है :—

"श्रीमद् वल्लभाचार्यजो सो काहू सेवक ने कही जु राज ! श्रीवृन्दावन मे एक एक वैरागी नाँव परमानन्ददास कीर्तन करें है। राज ! [ ताहै ] सुनिए। तब श्री आचार्य जी गोप्य पधारकें परमानन्ददास के कीर्तन सुने। तहा विरह कीर्तन सुनि के आवेस स्थित भए। उहाँ ते सेवक उठाइ लैं आए-रात आठ दिन लो प्रसाद लेंवे की देहकी कछु सुधि रही नही। अतरग रहे। सो वह पद —

"हरि तेरी लीला की सुधि आवै।" पद प्रसगमाला पृष्ठ—८१[१]

एक स्थान पर नागरीदासजी ने परमानन्द आदि अष्टछापी भक्तो को वडे आदर के साथ स्मरण करते हुए उन्ह अपने लिए व्यास सदृश आदर्श रूप माना है—

मेरे येई वेद व्यास।
श्री हरिवश, व्यास, गदाघर, परमानन्ददास॥

नागर समुच्चय मे इतना ही उपलब्ध होता है कि परमानन्ददास उच्च कोटि के कीर्तनकार, पद रचयिता और भावुक भक्त थे। वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वैसे नागरसमुच्चय के अधिकाश वर्णन अतिरजित है इसी प्रकार महाराज रघुराजसिंह कृत "रामरसिकावली" और कवि मियाँसिह कृत भक्तविनोद में परमानन्ददासजी का थोडा बहुत उल्लेख मिल जाता है।[२]

## (घ) व्यासवाणी—

यह ग्रन्थ श्री हरिरामजी व्यास की रचनाओ का सग्रह है। व्यासजी ओडछा के निवासी थे। इनका कविता-काल सवत् १६२० के लगभग माना जाता है। इन्होंने अपने पदो में दो तीन स्थानो पर अपने पूर्ववर्ती कवियो का वडे सम्मान के साथ स्मरण किया है। पदप्रसग माला मे उनके विषय मे लिखा मिलता है—

"व्यास जू श्रीवृदावन रहे। सो एक समे कौ इकदिन नितंक वैष्णू रसिकन की सतिसग रग सुप समाज सब मिटि गयो। भले-भले वैष्णू अन्तरध्यान भए यातें वाह्य सुप भगवत सम्बन्धी सब जात रह्यो। केवल भावना मे अन्तरग चित रहे तब लौं ही सुख। फिर बाहर चित आयौ अरु महा दुख व्यापें तब व्यास जू एक नयौ पद बनाय वैष्णवन के बिरह में गावत रोवत फिरन लागे। जहाँ तहाँ कुञ्ज गलीन मे ऐसे कितेक दिन बिरह दुख मे बिताए यह पद प्रसिद्ध भयौ सो वह यह पद—[३]

१ देखो—नागर समुच्चय, पृष्ठ—१८६ ज्ञानसागर प्रेस-बम्बई सस्करण स० १६५५
२ देखो—राम रसिकावली खेमराज श्री कृष्णदास, सवत् १६७१
३ पदप्रसगमाला-ज्ञान सागर प्रेस बम्बई, सवत् १६५५

"बिहारिहिं स्वामी बिनु को गावै ।
बिनु हरिबसहि राधावल्लभ को रसरीति सुनावै ॥
रूप सनातन बिनु, को वृंदावनि माधुरी पावै ।
कृष्णदास बिनु, गिरधरजू को को अब लाड लडावै ॥
मीराबाई बिनु, को भगतनि अब पिता जान उर लावै ।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु, को अब बन्धु कहावै ॥
परमानन्ददास बिनु, को अब लीला गाइ सुनावै ।
सूरदास बिनु पद रचना कौं कौन कविहिं कहि आवै ॥

× × ×

'व्यास' दास इन बिन को अब तनकी तपन बुझावै ॥"[1]

एक और स्थान पर वे भक्तों के विरह से अभिभूत होकर लिखते हैं—

साँचे साधु जु परमानन्द ।
जिन हरिजू सौं हित करि जान्यौ और दुखदद ।
जाकौं सेवक कबीर धीर अति सुमति सुर सुरानन्द ॥
ते रैदास उपासक हरि के सूर-सु परमानन्द ।

अपने पूर्ववर्ती भक्तों को अपने ही कुटुम्ब मे समाविष्ट करते हुए व्यासजी परमानन्ददास जी को भी उसमे सम्मिलित कर लेते हैं । वे लिखते हैं—

इतनो है सब कुटुम हमारो ।
सेन, धना, अरु नामा पीपा और कबीर, रैदास चमारो ।
रूप, सनातन, जीव को सेवक, मगल भट्ट सुदारो ॥
सूरदास परमानन्द मेहा, मीरा, भगत बिचारो ।

× × ×

इहि पथ चलत स्याम स्यामा के, व्यासहिं बोरो भावहिं तारो ।[2]

## (ङ) भक्तनामावली (भगवतरसिक कृत)

श्रीभगवतरसिक का काल १८ वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है । इनकी भक्तनामावली मे परमानन्ददासजी का उल्लेख आया है—

१ देखो भक्त कवि व्यासजी पृष्ठ १६७

२ वही पृ० १६८

हमसों इन साधुन सों पंगति

× × =

अग्रदास नाभादि सखी ये सबै गावैं राम सीता को ।
सूर, मदनमोहन, नरसी बलि तस्कर नवनीता को ।।
माधौदास गुसाईं तुलसी, कृष्णदास परमानन्द ।
विस्नुपुरी, श्रीधर, मधुसूदन, पीपा गुरु रामानन्द ।।

## निष्कर्ष—

उपर्युक्त ग्रन्थो में आई भक्तवर परमानन्ददासजी की चर्चा के आधार पर इतना निरापद रूप से कहा जा सकता है कि—

१—परमानन्ददासजी कृष्णोपासक एक उच्च कोटि के भक्त हुए थे, जिन्होंने अत्यन्त ही सरस मधुर पदों मे भगवान् कृष्ण की बाललीला का गान किया है।

वे महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य पुष्टिमार्ग के अनुयायी और महाकवि सूरदास के समकालीन थे।

३—उनके पद बाललीला सम्बन्धी हैं। कीर्तन सेवा ही उनका कार्य था। सगुण-भक्ति उनको प्रिय थी।

उपर्युक्त सामग्री पर एक विहंगम दृष्टि डालने से हम निम्नांकित निर्भ्रान्त निष्कर्ष पर पहुंचते हैं :—

१—परमानन्ददास जी कृष्णोपासक कवि और पुष्टि संप्रदायी थे।

२—वे सूर के सम सामयिक और वल्लभाचार्य के शिष्य थे।

३—वे पद रचना किया करते थे और भगवान के समक्ष तन्मय होकर कीर्तन।

## आधुनिक सामग्री—

उक्त सामग्री के अतिरिक्त परमानन्ददास विषयक आधुनिक सामग्री पर जब हम विचार करते है तो उसे भी तीन भागों में सुविधा से बांट सकते हैं।

१—खोज रिपोर्ट—[ना० प्र० स०]

२—हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ।

३—लेख, आलोचना, निबन्धादि।

यहाँ उक्त तीनों शीर्षकों की आधार सामग्री पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है।

## (क) खोज रिपोर्ट–

नागरी प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित सन् १९२४, १९२५ एवं १९२८ की खोज रिपोर्ट The Twelth report on the search of Hindi Manuscripts मे परमानन्ददासजी के विषय मे लिखा है—

Parmanand Das wrote Dan Lila and Dadh Lila. He has been noticed before in S. R. 1806 – 08 No 203. He was a disciple of Vallabhacharya and flourished about 1620 A.

अर्थात् 'परमानन्ददासजी ने दानलीला और दधिलीला की रचना की। उनका हवाला १९०६–८ की खोज रिपोर्टों मे मिल जाता है। वे वल्लभाचार्य के शिष्य थे, और १६२० के आस पास तक विद्यमान थे।"

उक्त खोज रिपोर्ट के अतिरिक्त १९०२ की एक और खोज रिपोर्ट है। जिसमे परमानन्द कृत दानलीला का नाम भर दिया है, परन्तु इसके अतिरिक्त उसमे अन्य कोई विवरण नही। इस दानलीला का सुरक्षा स्थान दतिया राजकीय पुस्तकालय बतलाया गया है।

दूसरी खोज रिपोर्ट जों १९०६ तथा १९०८ की है उसमे परमानन्ददास कृत ध्रुवचरित्र, हनुमन्नाटक तथा 'हितहरिवंश की जनमबधाई' आदि ग्रन्थ बताए गए हैं। परन्तु खोज रिपोर्टों मे न तो इनके उद्धरण हैं न वहाँ परमानन्ददास का कोई विशेष परिचय है। किन्तु लेखक ने स्वयं दतियाराज पुस्तकालय मे जाकर परमानन्ददासजी के नाम पर कही जाने वाली इन पुस्तकों का पता लगाया तो वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि वहाँ पुष्टिमार्गीय परमानन्द कवि की दानलीला नाम की कोई पुस्तक विद्यमान नहीं है न ऐसे अष्टछापी किसी कवि के किसी ग्रन्थ का संग्रह है।

वस्तुतः दतिताराज वाले परमानंद और थे। एक परमानन्द अजयगढ रियासत वाले हैं; *जो १९०० के आस-पास हुए हैं। इनका हनुमन्नाटक-दीपिका नामक ग्रन्थ है। दूसरे एक और* परमानन्द हुए हैं जो पद्माकर वंशी थे। ये दतिया मे सं० १९३० के आस-पास रहते थे। ये साधारण श्रेणी के कवि माने गए हैं। इनके एक कवित्त का नमूना—

छाई छवि अमल जुन्हाई-सी विद्यौनन पै,
तापर जुन्हाई जुदी दीपति रही उमंग। आदि।

इस शैली से हमारे पुष्टिमार्गीय भक्त परमानन्ददासजी का कोई सम्बन्ध नही। राजकीय पुस्तकालय की सूची मे कही पर भी उक्त पुस्तको का उल्लेख नही। अतः उक्त खोज रिपोर्टों का आधार क्या है यह स्वय खोज का विषय है। फिर नागरी प्रचारिणी सभा की १९२४-२५ की खोज रिपोर्ट मे परमानन्ददासजी की उपस्थिति काल का समय भी बडा स्थूल और भ्रमपूर्ण है। खोज रिपोर्ट के आधार पर परमानन्ददासजी की रचनाओं की

प्रामाणिकता तो आगे चलकर की जायगी। यहाँ तो इतना ही प्रयोजन है कि विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में परमानन्ददासजी का व्यक्तित्व हुआ था और उन्होंने भक्ति-पूर्वक कृष्ण लीला का गान किया था।

## (ख) हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ—

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थो मे परमानन्ददासजी का उल्लेख अत्यन्त ही सक्षिप्त और चलता सा हुआ है। प्रामाणिकता के साथ जो तथ्य अपेक्षित हैं वे किसी भी इतिहास ग्रन्थ में उपलब्ध नही। फिर भी परमानन्ददासजी का नाम उल्लेख निम्नांकित हिन्दी साहित्य के इतिहासो मे मिलता है।

(१) सर्व प्रथम फ्रेंच लेखक गार्सां द तासी का इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुए ऐंदुस्तानी' नामक फ्रेंच ग्रन्थ।[1]

(२) शिवसिंह सेंगर लिखित शिवसिंह सरोज।

(३) सर जार्ज ए० ग्रियर्सन लिखित—'वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' ये तीन प्राचीन इतिहास ग्रन्थ हैं।

इनसे परवर्ती हिन्दी साहित्य के इतिहासो मे मिश्रबन्धुओ का मिश्रबन्धुविनोद स्व०राम नरेश त्रिपाठी का हिन्दी का सक्षिप्त इतिहास, प० रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० श्यामसुन्दरदासजी का हिन्दी भाषा और साहित्य। प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास, श्री ब्रजरत्नदास का हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा का हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, कृष्णशकर शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी का हिन्दी साहित्य आदि।

उक्त सभी इतिहास ग्रन्थो मे परमानन्ददासजी के विषय मे अत्यन्त सक्षिप्त उल्लेख मिलते हैं। यहाँ पर प्रमुख इतिहास ग्रन्थो के उल्लेखो के उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

(१) गार्सां द तासी लिखित—इस्त्वार द ला लितेरत्यूर ऐंदुई ए हिन्दुस्तानी[2] मे लिखा है। परमानन्द या परमानन्ददास (स्वामी) ये रचियता थे। (१) लोकप्रिय धार्मिक गीतों के जो आदि ग्रन्थ चौथा भाग मे सम्मिलित हैं और जो निम्नलिखित रचनाओ की भाँति हिन्दी मे हैं। (२) दधि-लाला (दही लीला) कृष्ण द्वारा मथुरा की गोपियो के साथ आगरा, (१८६४, ३२ छोटे अठ पेजी पृष्ठ) और (बनारस—१८६६, १०१२ पेजी पृष्ठ)

(३) नाग-लीला—सर्प लीला—अर्थात् कृष्ण का वशी सहित शेष पर खेलना (बनारस ८ बारह पेजी पृष्ठ)

(४) दान लीला—सतोष देने की लाला कृष्ण की अन्य क्रीडाएँ (आगरा १८६४, १६ बारह पेजी पृष्ठ) और फतेहगढ १८६७ केवल ८ पृष्ठ)

---

१ हिन्दी अनुवाद-डॉ० लक्ष्मीसागर कृत प्रयाग वि० वि०

२ वही

तासी ने परमानन्ददासजी के न तो जन्म सवत् का न स्थान का पता दिया है। केवल उनकी रचनाओ की चर्चा भर की है और वह भी प्रमाण निरपेक्ष। अत तासी का उल्लेख नितान्त चलता सा और अपर्याप्त है।

(२) सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने अपने इतिहास 'दी मोर्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' मे कवि परमानन्ददासजी के विषय मे लिखा है–Parmanand of Braj flourished in 1550 A. D. 'अर्थात् व्रज के परमानन्द सन् १५५० मे हुए।", केवल इस एक पक्ति के अतिरिक्त ग्रियर्सन के इतिहास मे कवि के विषय मे कुछ अधिक नही मिलता। अत यह नही के बराबर है। इससे उसके अस्तित्व का प्रमाण मात्र मिलता है।

(३) शिवसिंह सरोज—यह प्राचीन इतिहास ग्रन्थ है। इसको आधार मानकर हिन्दी साहित्य के सभी परवर्ती लेखक चले हैं। इसमे दो खण्ड हैं। पूर्वार्द्ध मे अकारादि क्रम से कवियो के पद अथवा कविताएँ हैं, और उत्तरार्द्ध मे कवियो का सक्षिप्त विवरण। पूर्वार्द्ध मे परमानन्ददासजी के गगा विषयक पद को देकर उनकी प्रतिभा का नमूना प्रस्तुत किया गया है।[1]

शिवसिंह सरोज के उत्तरार्द्ध मे लिखा है—परमानन्ददास व्रजवासी थे। वल्लभाचार्य के शिष्य सवत् १६०१ मे उपस्थित। आगे लिखा है इनके पद राग सागरोद्भव मे बहुत हैं और और इनकी गिनती अष्टछाप मे है।[2]

सरोज का विवरण भी सूची जैसा है। उसमे उन्हें व्रजवासी लिखा है और समय स० १६०१ बताया गया है। न रचनाओ की चर्चा है, न पद सख्या की बात साथ ही कवि विषयक अन्य कोई भी जिज्ञासा शात नही होती।

(४) मिश्रबन्धु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा [कवि कर्तन—]

"परमानन्द (५४) ये महाशय कान्यकुब्ज ब्राह्मण कन्नौज के रहने वाले थे। इनकी भी गणना अष्टछाप मे थी। ये महाराज श्री स्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इनकी कविता बहुत मनोरजक बनती थी। आपने बालचरित्र और गोपियो के प्रेम का बहुत वर्णन किया है। इनका एक पद खडी बोली मे भी हमने देखा है। इनका रचा हुआ एक ग्रन्थ परमानन्दसागर हमारे सुनने मे आया है। और इनके स्फुट छन्द बहुत से यत्र तत्र पाये जाते हैं इनका एक पद सुनकर वल्लभाचार्यजी एक बार ऐसे प्रेमोन्मत्त हो गए कि कई दिन तक देहानुसधान रहित

---

१ परमेश्वरि देवी मुनि वदे पावन देवी गगे।
वामन चरण कमल नख रजित शीतल वारि तरगे॥
मजन पान करत जे प्राणी त्रिविध ताप दुख भगे।
तीरथराज प्रयाग प्रकट भयो जब बनी जमुना वेणी सगे॥
भगीरथराज सगर कुल तारन बालमीक जस गायो।
तव प्रताप हरि भक्ति प्रेम रस जन परमानन्द पायो॥ [शिवसिंह सरोज पृष्ठ १६५ न० कि० प्रेस १८८३]

२ शिवसिंह सरोज नवल किशोर प्रेस [१८८३ सस्करण] पृष्ठ ४४८

रहे। इससे एव इनके छन्दो के पढने से विदित होता है कि इनमे तल्लीनता का गुण खूब था। इनके बनाये हुए 'परमानन्ददासजी की पद' और दानलीला' स० १६०२ की खोज मे मे मिले है। आपका समय १५८० के लगभग था। ना० प्र० त्रै० प० मे इनका एक ग्रन्थ ध्रुव-चरित्र और मिला है। चौरासी वैष्णवो की वार्ता मे भी आपका वर्णन किया गया है। इनकी रचना में धारावाहिता भी है। हम इनको 'तोष' कवि की श्रेणी मे रखेंगे।

उदाहरण—

देखोरी यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर वदन कमल-दल-लोचन-देखत चद लजाया है॥

तथा

राधेजू हारावलि टूटी।
उरज कमल-दल माल मरगजी वाम कपोल अलकलट छूटी।

तथा

कहा करों बैकुण्ठहिं जाय।
जहाँ नहिं नन्द जहाँ न जसोदा जहँ नहिं गोपी-ग्वाल न गाय॥

'मिश्रबन्धु विनोद' अपने पूर्ववर्ती आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहासो के मुकाबले मे कुछ ठिकाने पर है। इसे हम हिन्दी साहित्य के इतिहासा मे प्रथम और व्यवस्थित इतिहास मान सकते हैं।[1]

अत इस आधार पर उसकी त्रुटियाँ अथवा थोडी बहुत भ्रमात्मकता क्षम्य समभी जा सकती है। मिश्रबन्धुओ के विवरण म परमानन्ददासजी का समय गलत दिया गया है। उसी प्रकार 'तोष सखा' के साम्प्रदायिक भावनात्मक रहस्य को न समभ कर उन्हे तोष कवि की श्रेणी मे रखने की बात कह दी गई है। साथ ही ग्रन्थो की प्रामाणिकता की भी ठीक से चर्चा नही की गई।

## ५—हिन्दी साहित्य का इतिहास [लेखक—प० रामचन्द्र शुक्ल]

"ये परमानन्ददास भी वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे और अष्टछाप म थे। ये सवत् १६०६ के आसपास वर्तमान थे। इनका निवास स्थान कन्नौज था। इसी से यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण अनुमान किये जाते हैं। ये अत्यन्त तन्मयता के साथ बडी ही सरस कविता करते थे। कहते हैं कि इनके किसी एक पद को सुनकर आचार्य जी कई दिनो तक तन बदन की सुधि भूले रहे। इनके फुटकल पद कृष्ण भक्तो के मुख से प्राय सुनने म आते है। इनके ८३८ पद 'परमानन्द सागर' में है।[2] आदि

आचार्य शुक्लजी की गणना व्यवस्थित और प्रामाणिक बात करने वालो मे हैं। उन्होने सूर की जैसी सरस और व्यवस्थित आलोचना की है वैसी कृष्ण भक्त अन्य किसी कवि की नही। परमानन्ददासजी के विषय मे सर्व विदित एक दो बातें ही उन्होने कह कर सतोष कर लिया है। उनके समय निर्धारण मे उन्होंने श्रुति परम्परा का ही आधार मान कर काम चला लिया है, और उनके ग्रन्थो का कोई उल्लेख नही किया।

---

१ मिश्रबधु विनोद-हिन्दी ग्र थ प्रसारक मडल १६७० पृ० स०-२७६-२७७

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ २१५—सस्करण १६६७

६—हिन्दी भाषा और साहित्य [लेखक—श्यामसुन्दरदास]

यह इतिहास-ग्रन्थ अधिक विस्तृत नही परन्तु भाषा और साहित्य का एक सक्षिप्त और क्रमिक विवरण देने के कारण महत्वपूर्ण है। इसमे वल्लभाचार्य के शिष्य अष्टछाप के कवियो के नाम गिना कर[1] सूर काव्य की सक्षिप्त समीक्षा दी गई है। और अन्य अष्टछापी कवियो के विषय मे कहा गया है "सरस शृंगारिक रचना करने वाले कृष्णदास, अपने पदो से आचार्य वल्लभाचार्य को भाव मग्न करने की क्षमता रखने वाले कन्नौज निवासी परमानन्ददास, अकबर के निमत्रण और सम्मान की परवाह न करने वाले सच्चे मानी कुम्भनदास उनके पुत्र चतुर्भुजदास, ब्रज भूमि और ब्रजेश से अनन्य भाव से आकर्षित छीत स्वामी, गोवर्धन पर्वत पर कदब उपवन लगाकर निवास करने वाले गायक गोविन्द स्वामी, आदि अष्टछाप के शेष कवि हैं।[2]

अष्टछापी कवियो का यह विवरण जैसा भी है—प्रामाणिक है; पर है अत्यत चलता सा। इनके साहित्यिक वैभव को देखते हुए जिस प्रकार इनकी चर्चा इन विद्वानो ने की है उसे उपेक्षा पूर्ण ही कहा जायगा। यदि इन इतिहास ग्रन्थो के पूर्वलेखको से ऐसी उपेक्षा न बरती गई होती तो आज मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य पर बहुत काम हो गया होता। और हिन्दी साहित्य अधिक श्री सपन्न होता। इन इतिहासो के माध्यमो से विद्वानो जिज्ञासुओ के ध्यान आकृष्ट करने का जितना महत्वपूर्ण कार्य होना चाहिए उतना हुआ नही, ये पूर्ववर्ती आचार्य यदि थोडी सावधानी बरतते तो साहित्य का बहुत कुछ कल्याण हो जाता।

७—हिन्दी भाषा और उनके साहित्य का विकास (प्रथम खण्ड)[लेखक अयोध्यासिंह उपाध्याय]

उपाध्यायजी का इतिहास अपने समय का महत्वपूर्ण इतिहास ग्रन्थ है। परमानद-दासजी के विषय मे उसमे लिखा है:—

"सरस कविता के लिये इस शताब्दी मे अष्टछाप के वैष्णवो का विशेष स्थान है। इसमे से चार महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्रमुख शिष्य थे। सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास तथा कुंभनदास।" उसी मे आगे लिखा है—

"परमानदजी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनमे भक्ति विषयक तन्मयता बहुत थी। परमानदसागर नामक एक प्रसिद्ध ग्रथ है इनका एक शब्द[3] सिक्खो के एक ग्रन्थ-आदि ग्रंथ साहब मे भी मिलता है।

---

१ देखो-हिन्दी भाषा और साहित्य-डा० श्यामसुन्दरदास, पृष्ठ ३१९सं०१९९४

२ देखो-हिन्दी भाषा साहित्य-डा० श्यामसुन्दरदास पृष्ठ ३२७ सं० १९९४

३ तैं नर! का पुरान सुनि कीना।
अनपायनी भगति नहिं उपजी, भूखे दान न दीना॥
काम न विसर्यो क्रोध न विसर्यो लोभ न छूट्यो देवा।
हिंसा तो मन से नहिं छूटी, विफल भई सब सेवा॥
बाट पारि घर मूंसि बिरानौ पेट भरे अपराधी।
जेहि परलोक जाय अपकीरति सोई अविद्या साधी॥
हिंसा तो मनतें नहीं छूटी जीव दया नहिं पाली।
'परमानन्द, साधु संगति मिल, कथा पुनीत न चाली॥
हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास, पृष्ठ-२९४

८—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास [लेखक—डा० रामकुमार वर्मा]

जैसा कि इस ग्रन्थ के नाम से विदित होता है यह आलोचनात्मक इतिहास है। इसमें ग्रन्थ प्रमुख कवियों का भांति सूर पर तो पर्याप्त आलोचना दी है पर परमानन्ददास जी के विषय में केवल इतना ही लिखा है.—"इनका समय १६०७ के आसपास है। ये वल्लभाचार्य के प्रिय शिष्यों में से थे। इनकी रचना बड़ी मधुर और सरस हुआ करती थी। इनकी कविता का विशेष गुण तन्मयता है। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध है।

१—ध्रुव चरित्र और २—दानलीला में इनके अतिरिक्त इनके पदों का भी एक संग्रह पाया जाता है।[1]

डा० वर्मा ने भी पूर्व इतिहासकारों के कथन की पुनरावृत्ति मात्र करदी है और और दतिया के तथा व्रज के अष्टछापी परमानन्दो को मिलाकर भ्रांति और भी बढादी है इतने संक्षिप्त और विश्रृत तथ्य देकर भ्रांति की धारा को पोषण ही मिला है स्पष्टता नहीं आ पाई।

९—हिन्दी साहित्य—[लेखक—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी]

इसमे द्विवेदीजी ने जहाँ अष्टछाप के कवियों का चर्चा की है वहाँ परमानन्ददास जी का परिचय इस प्रकार दिया है—'परमानन्ददासजी बहुत उच्च कोटि के कवि थे। एक बार इनकी एक रचना सुन कर महाप्रभु कई दिन तक बेसुध रहे। इनकी पुस्तक 'परमानन्द सागर' प्रसिद्ध है कहते हैं कि इसमें भी लक्षावधि पद थे। परन्तु खोज से जो प्रति प्राप्त हुइ है उससे ८३५ ही पद हैं इनके पदो मे भाषा का लालित्य दर्शनीय हैं। इस प्रकार महाप्रभु वल्लभाचार्य के जिन शिष्यों को अष्टछाप की मर्यादा मिली थी। उन सब मे इनका विशिष्ट व्यक्तित्व दिखाई देता है।"[2]

आचार्य द्विवेदीजी ने अपने ग्रन्थ के पाद टिप्पण मे "परमानन्दसागर' की एक प्रति का संकेत दिया है। जो किन्ही रामचन्द्र त्रिवेदी जयपुर वालो के पास है। इसका समय संवत् १९१४ लिखा है। उसी प्रकार 'दधिलीला' की भी चर्चा की है। इसका स्थान 'हसनी प्रेस दिल्ली समय सन् १८६८ है। इन रचनाओं की प्रामाणिकताओं के विषय मे चर्चा आगे की जायगी परन्तु आचार्य द्विवेदीजी ने दोही सावधानियाँ बरती है। एक तो वे परमानन्ददासजी के सद् संवत के पचड़े मे नही पड़े हैं, दूसरे पद संख्या भी उन्होने वही दी है जितनी तबतक उपलब्ध थी।

हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार—[लेखक भवानीशंकर शर्मा]

यह नवीनतम इतिहास ग्रन्थ है। इसमें भी परमानन्ददासजी को आचार्य वल्लभ का शिष्य कहा गया है और उनका समय संवत १६०६—७ के लगभग दिया है।[3]

उपर्युक्त इतिहास ग्रन्थो के अतिरिक्त परमानन्ददासजी के विषय मे आलोचनात्मक ग्रन्थ या फुटकल लेख पत्र पत्रिकाएँ मिलती है वे इस प्रकार हैं:—

१ हि० सा० का आलो० इति० पृ० ६७८ संवत १६३८
२ देखो हि० सा०—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० १८७—१८८
३ देखो हमारा हि० सा० और भाषा परिवार पृ० २३३

[ग] आलोचनात्मकग्रन्थ :—

१—अष्टछाप—[संपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा]

इस पुस्तक के द्वारा डा० धीरेन्द्र वर्मा को अष्टछापी कवियों के सर्वप्रथम साहित्यक अध्ययन करने कराने के श्रीगणेश का श्रेय प्राप्त है। डा० वर्मा ने इस पुस्तक को संपादित कर साहित्यकों का ध्यान इस साम्प्रदायिक साहित्य निधियों की ओर आकर्षित किया। इसमें मूल वार्ताओं के आधार पर आठों महानुभावों की जीवनियाँ संग्रहीत की गई हैं। अध्ययन की दृष्टि से साहित्य क्षेत्र में अष्टछाप का प्रथम पदार्पण होने से इसमें कटु मधुर कैसी भी आलोचना के दर्शन नहीं होते। तथापि आधुनिक समय में जितना भी व्रज साहित्य सम्बन्धी कार्य हुआ है वह डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा का इसी प्रारम्भिक प्रेरणा का परिणाम है अतः इसका आभार साहित्यकों को स्वीकार करना ही पड़ता है। परमानन्ददासजी की चर्चा इसमें वार्ता रूप में हो आई है उन पर विशेष महत्व नहीं दिया गया।

२—प्राचीन वार्ता रहस्य द्वितीय भाग—यह पुस्तक वि० संवत् १९९८ में विभाग काकरौली द्वारा प्रकाशित की गई है। इसमें अष्टछाप का परिचय भावप्रकाश के टिप्पण सहित दिया गया है। साथ ही ऐतिहासिक विवेचन गुजराती में दिया गया है। संपादक हैं—वार्ता के मर्मज्ञ विद्वान श्रीद्वारकादासजी परीख। इसमें परमानन्ददासजी की वार्ता भावप्रकाश के आधार पर महत्वपूर्ण होगई। परन्तु तर्क शैली पर उनके सन् संवत् या स्थान संबन्धी तथ्य नहीं मिलते। आधार भूमि सर्वतोभावेन 'वार्ता' ही है। विशेष विवेचन के लिये थोड़ा बहुत सहारा अन्यन्त्र से भी लिया गया है। इस पुस्तक के सम्पादन के लिये परीखजी ने पाटन वाली वार्ता की १६५२ वाली प्रति का सहारा लिया है। प्रारम्भ में श्री कण्ठमणि शास्त्री द्वारा लिखित वक्तव्य भी बड़ा उपयोगी है।

३—अष्टछाप का ऐतिहासिक विवरण—यह पुस्तक डा० दीनदयालु गुप्त की की बतलायी जाती है पर वह देखने में नहीं आई। कहा जाता है उसमें भी परमानन्ददासजी की चर्चा है।

४—अष्टछाप परिचय—[लेखक—श्री परीख एवं मीतल] इसमें परमानन्ददासजी का परिचय ६—१० पृष्ठों में दिया है। और बाद में नमूनों के तौर पर उनके १०४ पद भी दे दिये गये हैं यह वार्ता के आधार पर ही है। इसमें पहली बार थोड़ी आलोचनात्मक शैली को अपनाया गया है। परमानन्ददासजी पर कहीं स्वतन्त्र ग्रन्थ न होने से प्रामाणिकता की जाँच के पचड़े में मीत्तलजी नहीं पड़े हैं। इसका परिवर्द्धित संस्करण संवत् २००६ में प्रकाशित हो चुका है।

५—अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय [लेखक—डा० दीनदयालु गुप्त]

यह ग्रन्थ दो भागों में है। प्रथम भाग में अष्टछाप के प्रत्येक कवि के काव्य की पृष्ठ भूमि दी गई है फिर 'अध्ययन के सूत्र' नामक दूसरे अध्याय में अष्टछाप कवियों की जीवनी तथा रचनाओं के अध्ययन की आधारभूत सामग्री की चर्चा की गई है। इसी अध्याय में अष्टछाप काव्य में कवियों की जीवनी तथा रचना में आत्म विषयक उल्लेख दिये गए हैं।

प्राचीन वाह्य आधार तथा आधुनिक वाह्य आधारो के अन्तर्गत अष्टछाप सबंधी सभी सामग्री की चर्चा है। फिर तृतीय अध्याय मे सभी कवियो की जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। चौथे अध्याय मे इन कवियो की रचनाओ पर विचार किया गया है।

'अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय' के द्वितीय भाग मे गुप्त जी ने दार्शनिक विचार सबधी अष्टछापी कवियो के पद देते हुए उनकी सक्षिप्त आलोचना की है और भक्ति तथा काव्य समीक्षा दी है परन्तु इन समस्त प्रयत्नो मे उनका आधार वार्ता और भाव प्रकाश ही रहा है।

हाँ, इतना अवश्य है कि डा० गुप्त ने अपने ग्रन्थ के दोनो खण्डो मे अष्टछाप के सभी कवियो की चर्चा करके आगे आने वाले समानधर्माओ के लिये पथ प्रशस्त अवश्य बना दिया है। इस पुस्तक मे परमानन्ददासजी की चर्चा पहली बार आधुनिक आलोचना पद्धति के मानदण्डानुसार उपलब्ध होती है पर अत्यन्त सक्षेप मे। क्योकि डा० गुप्त जी को आठो ही कवि महानुभावो पर कार्य करना था।

**६—अष्टछाप पदावली** [लेखक —डा० सोमनाथ गुप्त]

इसमे केवल पद ही पद हैं। परमानन्ददासजी की जीवनी के सबध मे कुछ भी नही। पद सख्या लगभग १२३ के है।

निम्नांकित इतिहास पुस्तको मे परमानन्ददासजी का उल्लेख मात्र मिलता है—

१—हिन्दी साहित्य की भूमिका-आचार्य हजारीप्रसादजी द्विवेदी, पृष्ठ ५२ पर।

२—हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास-कृष्ण शकर शुक्ल, पृष्ठ—१८ पर।

३—हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास—श्रीगुलाबराय, पृष्ठ ६३-६४ सस्करण १४।

४—हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक चर्चा-श्री गगाराम, पृष्ठ-५०।

**५—ब्रजमाधुरी सार** [संपादक वियोगी हरि पृष्ठ १३६] परमानन्ददास पर उनका एक अपना छप्पय भी है।[1]

इस प्रकार परमानन्ददासजी पर आज तक कोई स्वतत्र पुस्तक अथवा परमानन्दसागर का कोई सुसम्पादित सस्करण प्रकाश मे नही आ सका है[2]। जो कुछ भी उपलब्ध होता है उसमे अष्टछाप नाम से अन्य सातो कवियो से समन्वित वार्ता के आधार पर चर्चा मिलती है। अत. उनके विषय मे तर्कपूर्ण निर्णय और विश्वसनीय निष्कर्षो के साथ एक स्वतत्रग्रन्थ का अभाव ही बना रहा। और यह अभाव सूर के अतिरिक्त लगभग सभी अष्टछापी कवियो के साथ है।

---

१ ब्रजलीलामृत रसिक, रुचिर पद-रचना नेमी।
गिरिधारन श्रीनाथ सखा, वल्लभ पद प्रेमी॥
ब्रज रास मधुकर, मत्त भावुकता भूषन।
कविता-रस संवलित, नाहिं जामें कुछ दूषन॥
नित रहत प्रेम में रंगमगो ब्रजवल्लभ के पास।
सुचि अष्टछाप को भक्त कवि श्री परमानन्ददास।

२ लेखकद्वारा संपादित संस्करण के उपरांत विद्याविभाग कांकरौली से स० २०१६ में एक सस्करण निकला है जिसमें १४०० के लगभग पद हैं।

फुटकल लेख तथा निबंधादि —

फुटकल लेखो और आलोचनात्मक निबंधो के रूप मे हम निम्नांकित सामग्री उपलब्ध होती है ।

१—सुधा—पौषी पूर्णिमा सं० १९९८ लखनऊ । सपादक दुलारेलाल भार्गव [परमानन्ददास और परमानन्दसागर ]

इसमे उनकी संक्षिप्त जीवनी और परमानन्दसागर की प्रतियों का हवाला है ।

२—कल्याण-गीता प्रेस गोरखपुर–भक्त-चरिताक, जीवनी मात्र-पृष्ठ-३५३-३५४

३—'उल्लास' [मासिक] सपादक कृष्णदास खन्ना-सवत् १९९६-९१ इनमे केवल पद मात्र उपलब्ध होते हैं ।

४—वल्लभीय सुधा-वर्ष १ अक १, २, ३, ४, इनम भी पद सग्रह उपलब्ध होता है ।

५—पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ [परमानन्दसागर परमानन्ददास] लेखक ललितकुमार देव ।

इस लेख मे उनकी जीवनी जो वार्ता पर ही आधारित है—दी गई है । सन् सवतो को तर्क सहित निर्णय करने की चेष्टा की गई है । परमानन्दसागर की प्रतियो का परिचय एव पद सकलन का क्रम भी दिया है इसके उपरात पदों का काव्य सौष्ठव दिखाने के लिये ४३-४५ पद नमूने के तौर पर दिय हैं ।

उपर्युक्त भारतीय विद्वानो के परमानददास विषयक सदर्भों के अतिरिक्त एक दो विदेशी विद्वानो ने भी भारतीय साहित्य की चर्चा करते समय परमानन्ददासजी का नामोल्लेख किया है । उनमे ग्रियर्सन का नाम ऊपर दिया जा चुका है । यहाँ 'एफ० ई० की०' का जिन्होंने 'हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर' लिखी है उद्धरण दिया जाता है ।

The desciples of Vallabhacharya, who are included in the Ashta chhap were Surdas Krishnadas, Payahari ParmanndDas and Kumbhtandas

अर्थात् वल्लाचाय के शिष्य जो अष्टछाप मे गिने जाते है—सूरदास, कृष्णदास, परमानन्ददास और कुभनदास थे ।

यहाँ यह नही भूलना चाहिए कि F E Keay महोदय ने भूल से कृष्णदास पयहारी को भी अष्टछाप मे सम्मिलित कर लिया है । और अष्टछाप वाले कृष्णदास तथा पयहारी कृष्णदास को एक ही समझ लिया है ।

## सम्पूर्ण उपलब्ध सामग्री के आधार पर कवि के जीवन वृत की रूपरेखा

उपर्युक्त समस्त सदर्भों से परमानन्ददास का अस्तित्व उनका वल्लभाचार्य का शिष्य होना तथा उनका उच्च कोटि का भक्त एवं गायक होना आदि तो निस्सदिग्ध रूप से पुष्ट हो जाता है । परन्तु उनका जन्म सवत्, दीक्षा, काल पद सख्या, पद, रचना काल तथा गोलोकवास आदि की प्रामाणिक तिथियाँ नही मिलती । न उनके ग्रन्थो के सबध मे उपर्युक्त सभी उद्धरण एक मत हैं । अत उनकी जीवनी के प्रामाणिक और निश्चित तथ्यो के

आधार पर उनके चरित्र निर्णय की आवश्यकता बनी रह जाती है। अतः अन्तर्बाह्य साक्ष्यो का समन्वय कर उनके जीवन चरित की रूप रेखा का स्वरूप कुछ इस प्रकार निर्णय किया जा सकेगा।

## १–(क) जाति—

परमानन्ददासजी एक कुलीन अकिंचन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। यद्यपि स्वंय उन्होने अपनी जाति का कही उल्लेख नही किया है परन्तु आचार्य की शरण मे आने से पूर्व वे सेवक बनाते थे। और दीक्षा देने का अधिकार कुलीन तपस्वी ब्राह्मणो को ही होता है। अत. वे अवश्य उच्च कुलोद्भव ब्राह्मण थे जो शिष्य बनाया करते थे।[1] परन्तु कवि को अपने विप्रत्व अथवा कुलीनत्व पर लेशमात्र अभिमान नही था। वह तो भगवद्भक्ति को ही कुलीनता का लक्षण मानता था।[2]

## (ख) नाम—

कवि का नाम परमानन्द था। बडे होकर और शिक्षा दीक्षा प्राप्त कर लेने पर जब सेवकों को दीक्षा देने लगे तो 'परमानन्द स्वामी' कहलाने लगे।[3] परन्तु इनके काव्य मे सर्वत्र परमानन्ददास, परमानन्द, परमानन्द स्वामी, दासपरमानन्द नाम मिलते हैं।

**(ग) स्थान**—परमानन्ददासजी का स्थान कान्यकुब्ज अथवा 'कन्नौज' है। इस बात की पुष्टि 'वार्ता' से और भावप्रकाश' से तथा सभी इतिहास ग्रंथो से होती है। परमानददासजी यही से मकर स्नानार्थ प्रयाग गये थे। कन्नौज से प्रयाग का सीधा मार्ग है भी। यह स्थान प्राचीन काल से विद्वानो का स्थान रहता आया है। नैषधकार श्रीहर्ष यहीं के राज पडित थे। जैसा कि डा० गुप्त ने अपने ग्रथ अष्टछाप वल्लभसप्रदाय मे लिखा है कि वल्लभाचार्यजी की यहाँ पर बैठक अभी तक विद्यमान है। परन्तु इस बैठक का उल्लेख बैठक चरित्र में नहीं। अतः कनौज महाप्रभुजी के विराजने मात्र का ही स्थान रहा है। बैठक वही होती थी जहाँ उन्होने सप्ताह पारायण किये है। यह स्थान अथवा परमानन्ददासजी के घर का पता अब नही लगता है। इस विषय मे डा० हरिहरनाथ टण्डन का कथन है कि परमानन्ददासजी का स्थान कन्नौज मे एक जैन मुहल्ले मे अवस्थित है। और आज भी वहाँ नदोत्सव के दिन बड़ा उत्सव मनाया जाता है। उनके वश के लोग वहाँ अब तक विद्यमान है। परन्तु लेखक को वहाँ पता लगाने पर भी परमानददासजी का निवास स्थान प्रामाणिक रूप से नही मिला, न उनके किसी वशज का। फिर भी वार्ता के आधार पर उनका स्थान कन्नौज ही मानना पडता है। क्योकि सप्रदाय मे भी उनके जन्म स्थान विषयक मान्यताएँ इसके विरुद्ध नहीं।

---

१ देखो–८४ वार्ता-प्रसंग-२-पान्दे परमानन्ददास ने जो सेवक किये हते तिन सबन को श्री आचार्यजी के पास लाय विनती कीनी, जो महाराज "... "सो अब आप इनको शरण लेकें उद्धार करिए' पृष्ठ–१३

२ सोई कुलीन दासपरमानन्द जो हरि संमुख धाई।

३ वही "महाराज यह तो पहली दशा में स्वामी पनो हतो। पृष्ठ–८१३

## (घ) माता-पिता तथा कुटुम्ब—

परमानददासजी के माता-पिता का नाम अज्ञात है। कवि ने भी स्वय उनकी कही चर्चा नही की है। सभवत कवि जन्म से ही विद्याव्यसनी और भक्त स्वभाव का था। माता-पिता अथवा कुटुम्ब से उसे अनुराग नही था। प्राय निर्धन परिवार के बालक माता-पिता से अनुराग रखते भी नही। अत. कवि ने कही भी अपने जननी-जनक के प्रति आभार नही प्रकट किया है अपितु पिता के धनोपार्जन करने और विवाह करने के आग्रह को सादर ठुकराते हुए कवि ने द्रव्यादि से विराग ही प्रकट किया है।[1] साथ ही आत्मनिवेदन परक एक पद मे उसने माता-पिता और कुटुम्ब के प्रति अनास्था प्रकट की है।[2] अतः कवि के भाई बन्धु और कुटम्बी तो होने ही चाहिए परन्तु उनसे उसे कोई वास्ता नही था।

## (ङ) जन्मकाल—

सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार परमानन्ददासजी महाप्रभु वल्लभाचार्य से १५ वर्ष छोटे थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य का प्रादुर्भाव सवत् १५३५ वैशाख कृष्णा एकादशी को निर्विकल्प रूप से मान लिया गया है। अत परमानन्ददासजी का जन्म सवत् १५५० होना चाहिये। सम्प्रदाय मे उनका जन्म मास मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष तथा तिथि सप्तमी सोमवार माना गया है।[3] यह तिथि विद्याविभाग काँकरोली की खोज के अनुसार है। यह मत इससे भी पुष्ट होता है कि परमानन्ददासजी जब महाप्रभु से अडैल मे दीक्षित हुए तब वे युवक अथवा वयस्क होंगे क्योकि सम्प्रदाय मे अपनी दीक्षा से पूर्व कन्नौज मे शिष्य बनाया करते थे। वे सगीत मे प्रवीणता भी प्राप्त कर चुके थे और उनकी विवाह योग्य अवस्था भी आ चुकी थी। जिसको वे टालकर घर से चले आये थे। यदुनाथ दिग्विजय मे आचार्य से उनकी भेंट सवत् १५७७ मे बतलायी गई है। १५५० सवत् को यदि उनका जन्म काल मान लिया जाय तो इस समय वे २७ वर्ष के सिद्ध होते हैं। यह समय विवाह दीक्षा अथवा काव्य रचना सभी के लिये बहुत उचित ठहरता है फिर यह समय आचार्यजी के अडैल निवास का भी सिद्ध हो जाता है। और उनकी भेंट आचार्य जी से अडैल मे ही हुई थी। अत. परमानन्ददासजी का जन्म सवत् १५५० के आस पास ही मानना उचित है। हिन्दी साहित्य के प्राय सभी इतिहास ग्रन्थो मे उनका समय १६०६ या १६०७ दिया गया है। निस्सन्देह यह उनका अष्टछाप मे सम्मिलित होने का काल है इस समय वे ब्रज मे स्थायी रूप से रह रहे थे। परन्तु १६०६ या १६०७ उनका जन्म सवत् मानना या उनकी उपस्थिति का इतना स्थूल अनुमान देना उचित नहीं प्रतीत होता, क्योकि यह तो निश्चय ही है कि वे आचार्य वल्लभ के शिष्य थे और आचार्यजी का तिरोधान सवत् १५८७ मे हो गया था। अत तिरोधान के वर्षों पश्चात् वे किसी शिष्य को दीक्षा दें, यह नितान्त उपहासास्पद प्रतीत होता है।

---

१ अष्टछाप काँकरौली पृष्ठ-६० सवत् १६५८

२ तुम तजि कौन सनेही कीजै।
यह न होई अपनी जननी ते, पिता करत नहीं ऐसी॥
बन्धु सहोदर सेउ न करत हैं मदन गोपाल करत है जैसी। प० मा० पद ८५६

३ सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है कि परमानन्ददासजी और गुसाईंजी विट्ठलनाथजी के चतुर्थ पुत्र गोकुलनाथजी दोनों का जन्म दिन एक ही था। गोकुलनाथजी का जन्मोत्सव संप्रदाय मे मार्गशीर्ष शुक्ला ७मी को अद्यावधि मनाया जाता है। देखो-वल्लभ वंश वृक्ष।

महाप्रभु जी की बैठक अड़ैल
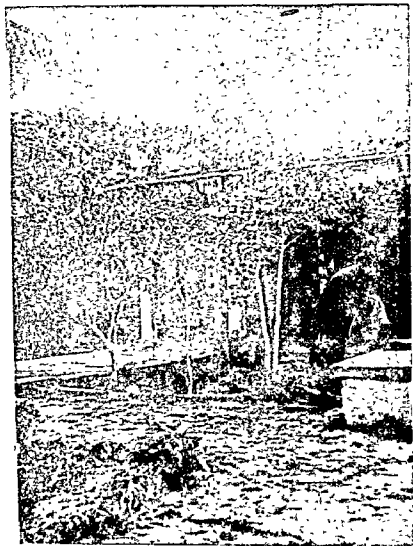
परमानन्ददासजी का दीक्षा-स्थान

ग्रियर्सन[1] सरोजकार,[2] मिश्रबन्धु,[3] आचार्य शुक्लजी[4] डा० रामकुमार वर्मा[5] सभी रागवेत स्वर रो १६०१, १६०६ या१६०७ उनका उपस्थिति काल मानते है। इतना स्थूल उपस्थिति काल देने से इन विद्वानों का क्या तात्पर्य हो सकता था, ज्ञात नहीं। यदि स्थूल अनुमान से ही काम लेना हो तो उनके लम्बे जीवन काल के किसी भी सवत् का उल्लेख किया जा सकता है। पता नही किस भ्रान्त स्रोत ने इस भ्रान्त-परम्परा को जन्म दिया और गड्डलिकान्यायेन सभी इतिहासकार इन्ही संवतो की स्थूल चर्चा करते चले गये। जो भी हो हमे विद्याविभाग काँकरौली की खोज से निर्णीत संवत् मान्य है। यही सवत् वार्ता साहित्य के मर्मज्ञ स्वर्गीय द्वारकादास परीख भी स्वीकार करते हैं।

## (च) शैशव—

जन्म के दिन कवि के माता-पिता को वहुत सा द्रव्य मिल चुका था अतः निर्धनता गायब हो चुकी थी। कवि को माता पिता का भरपूर दुलार और प्यार मिला था। वह एक भाग्यवान बालक समझा गया था। जिसके जन्म पर घर मे आनन्द वर्षा हुई थी। अतः अनुमान है परमानन्ददासजी का शैशव बडे चैन से बीता होगा। उनके जातकर्म, नामकरण यज्ञोपवीत आदि सस्कार बड़े धूमधाम से हुए थे। पिता ने बड़ा उत्सव किया था।[6]

## (छ) शिक्षा दीक्षा—

कविवर परमानन्ददासजी विद्या सुसंपन्न थे। भावप्रकाश मे लिखा है कि 'पाछे ये बड़े योग्य भए।' यह 'योग्य' शब्द उनकी विद्या, बुद्धि, शिक्षा-दीक्षा सभी का द्योतक है। व्यवहार-निपुणता, काव्य चातुर्य और गुरुत्व उनमें सभी कुछ था। साथ ही वे उच्च कोटि के संगीतज्ञ थे। काव्य-रचना-नैपुण्य की चर्चा उनके सभी उल्लेख-कर्ताओ ने स्वीकार की है।[7] उनके पदों के सौष्ठव, अभिव्यंजना शैली, शब्दावली आदि से उनका संस्कृत, हिन्दी और तत्कालीन लोक भाषा के ज्ञान का पता चल जाता है। भावतन्मयता की दृष्टि से उनके अनेक पद तुलसी की विनय पत्रिका की टक्कर के हैं।[8]

---

१ दी मार्डन वर्नाकूलर लिटरेचर-कवि संख्या-३८

२ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ-४४८

३ मिश्रबंधु विनोद, पृ०-२७६, २७७, २७८

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ०-२१५

५ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास-डा० रामकुमार वर्मा पृ०-५६४ [नवीन सस्करण]

६ अष्टछाप काँकरौली सं०१९९८ परमानंददासजी की वार्ता, पृ०-५६

७ सो परमानन्ददास ने अपने घर कीर्तन को समाज कियो; सो गाँव गाँव मे प्रसिद्ध भये। परमानन्ददास गान विद्या में परम चतुर हते। अष्टछाप काँकरौली, पृ०-६०

८ परमेश्वरी देवी मुनि वन्दे देवि गंगे।
वामन चरण कमल-नख रंजित-वारि तरंगे॥
मज्जन पान करत जे प्राणी त्रिविध ताप दुख भंगे।
तीरथराज प्रयाग प्रकट भई जब बनी जमुना बेनी संगे॥
भगीरथ राज सकल कुल तारन बालमीक जसु गायौ।
तव प्रताप हरि भक्ति प्रेम रस जन परमानन्द पायौ॥ [प० सं० ५८६]

## ज) गृह-त्याग—

यद्यपि परमानन्ददासजी के गृह-त्याग का स्पष्ट उल्लेख नही है फिर भी मकर संक्रान्ति पर त्रिवेणी स्नान के लिये जब उन्होने प्रयाग को प्रस्थान किया तब से कन्नौज उनसे सदैव के लिये स्वतः ही छूट गया और वे प्रयाग मे ही रहने लगे थे।[१] और यही पर वे सराग करते हुये दैन्य परक पदों की रचना किया करते थे।[२]

## (झ) गुरु संबन्धी उल्लेख—

परमानददासजी ने अपने दीक्षा गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य का उल्लेख अनेक स्थानो पर किया है:—

"श्री वल्लभ रतन जतन करि पायो।" (पद ६५७)

यहाँ 'जतन करि पायो' मे उनकी आध्यत्मिक तीव्र जिज्ञासा और उसके लिये दृढ अध्यवसाय का पता चलता है। इस अन्तस्साक्ष्य के अतिरिक्त उनके अन्य किसी विद्यागुरु और उनकी जीवनी का कैसा भी उल्लेख कहीं नहीं मिलता। अत अपने जन्म स्थान कन्नौज मे ही उन्होने शिक्षा प्राप्त की होगी। यही अनुमान लगाया जा सकता है। उनकी काव्यकला और सगीत कला की विद्वत्ता, सगीत-योग्यता एव कवित्व और भक्ति भावना का सभी ने उल्लेख किया है। अपने मण्डल मे वे 'स्वामी' के नाम से पुकारे जाते थे।[३]

## (ञ) विवाह—

परमानन्ददासजा ने विवाह नही किया। घर का सचित द्रव्य राज्य द्वारा हरण कर लिये जाने पर और पिता के द्रव्योपार्जन के लिये आग्रह करने पर उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि "मेरे तो व्याह करनो नाही है। और तुमने इतनो द्रव्य भेलो करिके कहा पुरुषार्थ कियो सगरो द्रव्य योही गयो।[४]" अत वे द्रव्योपार्जन को जीवन का पुरुषार्थ नही मानते थे। उन्होने अपने माता-पिता से कह दिया था कि वे बैठे-बैठे भगवत् भजन करें। वे (परमानन्ददास) उनके भरण पोषण का दायित्व लेते हैं। एक कर्तव्य-निष्ठ पुत्र की भाँति उन्होंने आजीवन अपने माता-पिता को आर्थिक कष्ट नही होने दिया। और भगवद्भक्ति की ओट मे उन्होंने अपने पुत्र-धर्म से पलायन भी नही किया। भगवद्भक्ति के प्रभाव से जो आर्थिक सौकर्य

---

१ संप्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान श्रीपरीखजी का कथन है कि इस समय परमानन्ददासजी ने अपना निवास स्थान भारद्वाज आश्रम के निकट ही बनाया था। और सर्वप्रथम यहीं क्षत्री कपूर से उनकी भेंट हुई थी। श्री परीखजी की धारणा का आधार क्या है यह तो विदित नहीं, पर भौगोलिकों का कथन है कि उस युग में गंगा-यमुना का संगम भरद्वाज आश्रम के पास ही था। आज भी वहाँ देखने से नदियों के बहने के चिन्ह स्पष्ट परिलक्षित होते हैं।

२ कवि का जीवन चरित्र बहुत दूर तक सूर की जीवनी से मेल खाता है। दोनो 'सागरों' मे इतना साम्य है कि अन्य अष्टछापी कवियों में नहीं मिलता। अत. विट्ठलनाथजी की उक्ति कि 'संप्रदाय में ये दोऊ सागर भये' का रहस्य' स्पष्ट हो जाता है।

३ 'सो स्वामी कहावते और सेवक हू करते।' अष्टछाप, पृ०-८६

४ अष्टछाप, पृ०--६०

उन्हे हुग्रा उन्होने इसकी यत्र तत्र चर्चा भी की है।[1] परन्तु पिता ने उनकी इस वैराग्य वृत्ति को पसन्द नही किया और आगे नाम न चलने की चिन्ता भी प्रकट की। पिता की वित्तैपणा नही छूटी थी।[2] परन्तु परमानन्ददासजी अपने निश्चय पर आजीवन अटल रहे और अविवाहित रहे। अपनी चरम वैराग्य वृत्ति मे कवि ने कही भी नारी निन्दा नही की है। परन्तु संयम में निष्कंप निष्ठा और विरक्ति मे अटूट दृढ़ता उनके जन्मजात गुण थे।

## (ट) सम्प्रदाय में दीक्षा--

एक बार अपने समाज सहित परमानन्ददासजी मकर पर्व पर प्रयाग पधारे। वहाँ उनका नित्य कीर्तन एव सत्सग क्रम पद गान के साथ चलता रहता था। उच्च कोटि के गायक के रूप मे उनकी ख्याति फैल चुकी थी। अतः उनके पदों को श्रवण करने के लिए दूर-दूर से लोग एकत्र हो जाते थे। उन्ही दिनों अड़ैल मे महाप्रभु वल्लभाचार्य निवास करते थे उनके जलघड़िये क्षत्री कपूर ने जब परमानन्ददासजी के गान की प्रशंसा सुनी तब वे भी उनके कीर्तन को सुनने के लिये लालायित हुए और रात्रि मे अवकाश पाने पर पहुँच गये। कपूर क्षत्री कीर्तन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। कीर्तन-श्रवण का उसका यह क्रम कई मास चलता रहा।[3] एक ग्रीष्मकालीन एकादशी को स्वप्न मे भगवान् की प्रेरणा जानकर वे अड़ैल आगए। महाप्रभु वल्लभाचार्य के दर्शन कर वे अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्ही के पास रहने लगे। अब तक वे भगवद्विरह परक पद गाते थे।[4] महाप्रभु ने उन्हे भगवान् की बाल-लीला-गान का

---

१ [अ] जाके दिए बहुरि नहीं जाँचे दुख दरिद्र नहीं जाने।
[ब] ताहि निहाल करैं परमानन्द नेक मौज जो आवै। आदि प० सं० ८८५

२ अष्टछाप, पृ०५-६०

३ अष्टछाप काँकरौली, पृ४ ६५

४ चौरासी वैष्णव वार्ता संम्पादक श्रीद्वारकादास परीख, पृष्ठ-७६६ व ७६७

[अ] ब्रज के विरही लोग विचारे।
बिनु गोपाल ठगे से ठाडे अति दुर्बल तनु हारे।
मात जसोदा पंथ निहारति निरखत साँझ सकारे।
जो कोऊ कान्ह कान्ह कहि टेरत अँखियन बहुत पनारे।
यह मथुरा काजर की रेखा जो निकसे सो कारै।
परमानन्द स्वामी बिनु ऐसे जैसे चन्द बिना सब तारे। [पद ६२६]

[आ] गोकुल सबै गोपाल उपासी।
[इ] कौन रसिक है इन बातन कौ। [पद ६२७]
[ई] माई को मिलवे नन्दकिसोरै। [पद ६२७]

उपर्युक्त पदों से स्पष्ट ध्वनित होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के उन्हें शरण मे लेने से पूर्व भी वे सगुणोपासक कृष्ण भक्त थे और अत्यन्त विरक्त भाव से तन्मय होकर सद्गुरु की टोह में थे। ब्रजवास की इच्छा और उपासना के लिये गोपी भाव का आदर्श लेकर चलने वाले परमानन्ददास प्रतिक्षण भगवद्विरहकातर रहा करते थे। "जागत जाम गिनत नहीं खूटत, क्यों पाऊंगी भोरै" आदि में उनकी परम विरहासक्ति झलकती है। साथ ही 'जिनिकाहुऽब निहोरै।" में संसार से पूर्ण विमुखता और निरपेक्षता झलकती है। पदों में 'माई' तथा सखी आदि शब्द उनके गोपीभाव के द्योतक हैं।

आदेश दिया। इस पर जब कवि ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की तो आचार्य ने उन्हे दीक्षा दी और श्रीमद्भागवत दशमस्कध की अनुक्रमणिका सुनाई। बस तभी कवि के हृदय में भगवान् की बाललीला स्फुरित हुई और उन्होंने श्री आचार्यजी के समक्ष बाल लीला के पद गाये।[1] और इसके उपरात तो उनका हृदय लीला-सागर ही बन गया। एक प्रकार से आचार्यजी ने उनके हृदय में भगवल्लीला का विशाल सागर ही स्थापित कर दिया। जिससे अनन्त पदो का प्रादुर्भाव गिरि-निर्झर की भाँति प्रारभ हो गया। इसी को लक्ष्य करके उनके नित्य लीला प्रवेश के उपरान्त गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने उनके लिए सादर कहा था कि "सूरदास और परमानन्ददास ये दोउ सागर भए" आदि।

## (ठ) परमानन्ददासजी का संप्रदाय प्रवेश —

कवि का दीक्षा-समय यदुनाथ दिग्विजय के अनुसार १५७७ ठहरता है।[2] श्रीयदुनाथजीकृत श्री वल्लभदिग्विजय म लिखा है कि सवत् १५७२ म श्रीमहालक्ष्मीजी की गोद से गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी का प्राकट्य हुआ। फिर व्रज यात्रा की गई। उसके उपरान्त श्री गोपीनाथजी का यज्ञोपवीत महोत्सव हुआ, फिर जगदीश यात्रा म गगासागर पर पहुँचना फिर हरिद्वार यात्रा फिर अडैल आगमन हुआ। यही कान्यकुब्ज वाले परमानन्दजी पर अनुग्रह हुआ। और उन्हे भगवल्लीला का दर्शन कराया।[3]

दीक्षा के उपरान्त कुछ काल तक परमानन्ददासजी अडैल मे महाप्रभु की सेवा मे रहकर श्री नवनीतप्रियजी के कीर्तन गाते रहे। ये नित्य नये कीर्तन [पद] अधिकाशत सुबोधिनीजी के आधार पर थे। क्योकि आचार्यजी नित्य श्री सुबोधिनी [टीका] लिखकर परमानन्ददासजी

---

१ माई री कमल नैन स्याम सुन्दर झूलत हैं पलना
बाल लीला गावति सब गोकुल की ललना ॥

लाल के अरुन चरन कमल नख मनि ससि ज्योती ॥
कुञ्चित कच भवराकृति लरि लटकैं गज मोती ॥
लाल अगूठा गहि कमल पानि मेलत मुखमाही।
अपनी प्रतिबिंब देखि पुनि पुनि मुसुकाही ॥
रानी जसुमति के पुन्य पुञ्ज निरख निरख लाले।
परमानन्द स्वामी गोपाल सुत सनेह आले ॥ [पद ४६]

२ परमानन्ददासजी के शरण काल के इस सवत् को डॉ० हरवशलालजी ने भी मान्य किया है। देखो—सूर और उनका साहित्य, पृष्ठ–४६।

३ वल्लभ दिग्विजय, पृष्ठ–५२, ५३।

एव अन्य वैष्णवों के समक्ष उसकी कथा कहा करते थे। इस प्रकार गोचारण, माहात्म्यादि जो जो विशिष्ट प्रसग महाप्रभु आचार्यजी के मुख से परमानन्ददासजी ने सुने वही प्रसग परमानन्ददासजी अभिव्यक्त कर देते थे। उदाहरण के लिए उनका "परमानन्ददास को ठाकुर पिल्ला लायौ घेर" सुबोधिनी के आधार पर है।[१]

## (ड) व्रज के लिये प्रस्थान--

अडैल मे इस प्रकार रहते हुए कुछ काल उपरात परमानन्ददासजी ने महाप्रभु के समक्ष व्रज चलने की इच्छा प्रकट की।[२] अत आचार्यजी ने सब सेवकों के साथ प्रस्थान किया। प्रयाग से मथुरा जाते हुए कन्नौज पडता था अत परमानन्ददासजी ने महाप्रभु को अपने घर भी पधराया था। वहीं उन्होंने व्रजलीला विषयक प्रसिद्ध पद[3] आचार्यजी को सुनाया था। कहते हैं इस पद को सुनते ही आचार्यजी प्रेम विभोर होकर देहानुसन्धान भूल गये और तीन दिन उपरात उनकी चेतना लौटी। तदुपरात परमानन्ददासजी ने अपने स्वामीपने मे जितने सेवक बनाए थे, आचार्यजी ने उन सब को दीक्षा देकर सम्प्रदाय मे सम्मिलित कर लिया और उनके साथ व्रज की ओर पधारे।[४]

## (ढ) गोकुलागमन—

व्रज मे आकर सर्वप्रथम आचार्यजी और परमानन्ददासजी की शिष्य मण्डली गोकुल मे ठहरी। यहाँ पर परमानन्ददासजी ने भगवान् की गोकुल लीला सबधी अनेक पदो की रचना की।

---

१ देखो—सुबोधिनी दशम स्कध-प्रमेय प्रकरण अध्याय १६।
"अथा गावो मद्धिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद् वनम्' के श्लोक के स्पष्टीकरण में सुबोधिनी में 'च' के प्रयोग पर आचार्यजी लिखते हैं कि "चकारादन्ये हरिणादयस्तल्लीलार्थं गृहीता श्वानो वा" के भाव को ही परमानन्ददासजी ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

लाल कौं भावे गुड गांडे अरु बेर।
और भावे याहि सेंद कचरिया लाओ वन वन हेर।
और भावे याहि गैयन को वसिवौ सग सखा सब टेर।
परमानन्ददास को ठाकुर पिल्ला लायौ घेर ॥ [पद १०३]

२ यह माँगी गोपीजनवल्लभ।
मानुष जन्म और हरि की सेवा व्रज वसिवो मोहि दीजे सुल्लभ।

३ हरि तेरी लीला की सुधि आवै।
कमल नैन मन मोहन मूरति मन मन चित्र बनावै।
एक बार जाहि मिलत मया करि सो कैसे बिसिरावै।
मुख मुसिक्यान बक अवलोकनि चाल मनोहर भावै॥
कबहुक निबिड तिमिर आलिगित कबहुक पिक सुर गावै।
कबहुक ससभ्रम क्वासि क्वासि कहि सगहि उठि धावै॥
कबहुक नैन मूक मूदि अतरगति मनि माला पहरावै।
परमानद प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गवाँवै॥ [पद ६३-]

४ वार्ता—परीख सस्करण, पृष्ठ ८१४

## (ण) गिरिराज पहुँचना–

यहाँ से वे गोवर्धन पधारे और गिरिराज पर भगवान् के दर्शन के लिये गोवर्धननाथजी के दिव्य स्वरूप मे आसक्त होकर एक पद[1] गाया। जिसमे अवतार लीला, निकुञ्ज लीला, चरण वदना, स्वरूपवर्णन और माहात्म्य सबका समावेश था। गिरिराज मे निवास करते हुए परमानन्ददासजी ने सहस्रावधि पदो की रचना की। यहाँ आठो दर्शनो मे वे कीर्तन सेवा करते थे। इस प्रकार उनका चित्त वही गिरिराज मे रम गया। और जैसा कि आगे चलकर विदित होगा उन्होने अपना स्थायी निवास गिरिराज की तरहटी मे सुरभि कुण्ड पर बना लिया था। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के पर्यटन पर चले जाने और अन्त मे काशी मे सन्यास ले लेने पर भी वे वही (व्रज मे) रहे और गोस्वामी विट्ठलनाथजी के आचार्य पद पर अभिषिक्त होने पर वे बराबर उनमे गुरुतुल्य पूज्य बुद्धि रखते हुए भगवत् कीर्तन सेवा करते रहे। समय-समय पर श्री नवनीतप्रियजी के दर्शन के लिये ये गोकुल भी जाया करते थे पर उनका अधिकाश समय सुरभिकुण्ड पर गिरिराज के नीचे श्रीनाथजी के सान्निध्य मे ही व्यतीत होता था।

## (त) अष्टछाप में स्थापना–

गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने जब श्रीनाथजी की सेवा का मण्डान बडे विधि विधान से प्रारम्भ किया और नित्य की अष्टदर्शन व्यवस्था मे कीर्तन सेवा को महत्व दिया, तब सवत् १६०२ मे उन्होने अपने पिता के चार सेवको को और अपने चार शिष्यो को मिला कर एक भक्त लीलागायक-मडल की स्थापना की। जो 'अष्टसखा' या 'अष्टकाव्यवारे' कहे जाते थे। बाद मे ये लोग साहित्य जगत मे अष्टछाप तथा और सम्प्रदाय मे अष्टसखा' अथवा 'अष्टकाव्य वारे के नाम से प्रसिद्ध हुए। महाप्रभु वल्लभाचार्य के चार सेवको मे सूरदास परमानन्ददास, कुँभनदास एव कृष्णदास है। सूरदास एव परमानन्ददासजी तो अपने सहस्रावधि पदो के कारण और भगवल्लीला-सागर को हृदयगम किये रहने के कारण 'सागर' कहलाये। गोविन्दस्वामी नददास, छीतस्वामी तथा चतुर्भुजदास गुसाई विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। ये आठो महानुभाव दिन में प्रत्येक दर्शन पर और कभी कभी अपने अपने ओसरे पर नित्य नए द बनाकर कीर्तन सेवा किया करते थे।

## (थ) गोलोकवास–

साम्प्रदायिक चरित्र ग्रन्थो मे आया है कि सूरदासजी के देहावसान के समय परमानन्ददासजी तथा अन्य वैष्णव मडल गोस्वामी विट्ठलनाथजी के साथ चद्रसरोवर पर उपस्थित था। सूर का निधन सवत् १६४० सिद्ध हो चुका है। अत परमानन्ददासजी का निधन सवत् १६४० के उपरात ही होना चाहिए। परमानन्ददासजी के निधन काल पर

१ मोहननन्दराय कुमार।
प्रगट ब्रह्म निकुञ्ज नायक भक्ति हित अवतार।
प्रथम चरण सरोज वँदौ स्याम घन गोपाल।
मकर कुण्डल गड मडनि चारु नैन विसाल।
बलराम सहित विनोद लीला सेस सकर हेत।
'दासपरमानन्द' प्रभु हरि निगम बोलत नेति। [पद ८७]

गोस्वामी विट्ठलनाथजी की भी उपस्थिति वार्ता तथा उनके चरित्र ग्रन्थो[1] से पुष्ट होती है। गोस्वामी विट्ठलनाथजी का नित्य लीला प्रवेश सवत् १६४२ मे माना जाता है। अतः परमानन्ददासजी का नित्य लीला प्रवेश स० १६४१ के लगभग निश्चित होना चाहिए।

इन दिनो गोस्वामी विट्ठलनाथजी स्थायी रूप से गोकुल मे रहते थे। एक बार जन्माष्टमी के दिन गोस्वामी विट्ठलनाथजी परमानन्ददासजी को लेकर गोकुल आए और वहाँ जन्माष्टमी बडे समारोह के साथ मनाई गई। श्रीनवनीतप्रियजी के समक्ष उन्होने बधाई के पद गाए।[2] दूसरे दिन नवमी को भी 'दधिकांदो' महोत्सव मनाया गया। इस महोत्सव मे परमानन्ददासजी अत्यन्त आनन्द विभोर होकर नाचने लगे। प्रेम की इस अति-रेकावस्था मे उन्हें तालस्वर का भी ज्ञान न रहा। उनकी इस अवस्था को देखकर गोसाईंजी ने कहा—"जो जैसे कुम्भनदास को किशोर लीला मे निरोध भयो तैसो बाललीला मे परमानन्ददास की निरोध भयौ"।[3] थोडी देर बाद उनकी चेतना सावधान हुई। और उसी दिन गुसाईंजी उन्हें लेकर पुन गोवर्धन चले आए। यह समय राजभोग का था। राजभोग के दर्शन करने पर गोवर्धननाथजी के समक्ष वे पुन देहानुसधान भूल कर भाव-मग्न हो गए। कुछ काल पश्चात् मूर्च्छा दूर होने पर वे सुरभीकुण्ड पर अपने स्थान 'श्याम तमाल' पर चले आए और उन्होंने मौन धारण कर लिया। गोस्वामी विट्ठलनाथजी को जब यह पता चला कि परमानन्ददासजो आज अत्यत विकल हैं और बोलते नहीं, तो वे राजभोगार्ति से निवृत्त होकर उनके पास गए। और उनके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा—"परमानन्ददास! हम तिहारे मनकी जानत हैं, जो अब तिहारो दर्शन दुर्लभ भयौ।" गुसाईंजी के ये शब्द सुनकर एक क्षण के लिए परमानन्ददासजी ने आँखें खोलीं और गायाः—

> प्रीति तौ नन्दनन्दन सौं कीजे।
> सपति विपति परे प्रतिपालै कृपा करै तो जीजे ॥
> परम उदार चतुर चितामणि सेवा सुमिरन मानै ॥
> चरन कमल की छाया राखे अतरगति की जानै ॥
> वेद पुराण भागवत भाखै कियौ भगत को भावै ॥
> परमानन्द इन्द्र को वैभव विप्र सुदामा पावै ॥ (पद ८६१)

उस समय किसी वैष्णव ने परमानन्ददासजी से पूछा—"परमानन्ददासजी! मोकौ कछू साधन बतावो सो मैं करो।[4]" परमानन्ददासजी ने अत्यत सतुष्ट होकर उत्तर दिया

---

१ देखो कांकरौली का इतिहास प्रभुचरण गोस्वामी विट्ठलनाथजी का चरित्र, ७७-८०।

२ रानी तिहारो घर सुबस बसो।
सुनो हो जसोदा निहारे ढोटा कान्हा तहू निनि परखो।
कोऊ करत वेद मंगल धुनि कोउऽव गावो काऊ हँसो ॥
निरखि निरखि मुख कमल नैन की आनन्द प्रेम हियो हुलसौ ॥
देत असीस सकल गोपी जन कोउऽव अति आनन्द लसौ।
परमानन्द नन्द घर आनन्द पुत्र जनम भयौ जगत जसौ ॥ [पद ३५]

३ चौ० वै० वा० पृष्ठ ८३३, सं० द्वारकादास परीख,

४ वही, पृ० ८३६।

"या बात को मन लगाय के सुनोगे तो फल-सिद्धि होवेगी।" और उन्होंने आचार्यजी, श्रीगोस्वामीजी और उनके सातों बालकों की वन्दना का पद गाया।

प्रात काल उठि करिए श्री लछमनसुत गान।
प्रकट भए श्री वल्लभ प्रभु देत भगति को दान॥
श्री विट्ठलेस महाप्रभु रूप ही सुहान॥
श्री गिरिधर श्री गिरिधर उदय भयौ आन॥
श्री गोविन्द आनन्दकंद कहा बरनों गुन गान।
श्री बालकृष्ण बालकेलि रूप ही सुहान॥
श्री गोकुलनाथ प्रगट कियौ मारग बखान॥
श्री रघुनाथलाल देखि मन्मय ही लजान॥
श्री यदुनाथ महाप्रभु पूरन भगवान।
श्री घनश्याम पूरन काम पोथी मे ध्यान[१]॥
पाण्डुरग विट्ठलेस प्रभु करत वेद गान।
परमानन्द निरखि लीला थके सुर विमान॥ [पद ७३७]

फिर गोसाईं विट्ठलनाथजी के यह पूछने पर कि इस समय उनका मन कहाँ है। उन्होंने अपना अन्तिम पद इस प्रकार गाया—

राधे बैठी तिलक सँवारति।
मृगनैनी कुसुमाकर धरि नन्दसुवन कौ रूप विचारति।
दरपन हाथ सिंगार बनावति बासर जुग सम ढारति॥
अन्तर प्रीति स्याम सुन्दर सों हरिसंग केलि सम्हारति॥
वासरगत रजनी व्रज आवत मिलत गोवर्धन धारी।
परमानन्द स्वामी के संगम मुदित भईं व्रजनारी॥[२] (पद २७३)

और इस प्रकार युगल स्वरूप की लीला मे मन लगाकर परमानन्ददासजी ने अपना यह पञ्चभूतात्मक नश्वर कलेवर छोड़कर नित्य लीला मे प्रवेश किया।

---

१ 'श्री घनश्याम पूरनकाम पोथी में ध्यान' पंक्ति से सिद्ध हो जाता है कि श्रीघनश्यामजी का जन्म परमानन्ददासजी के सामने हो गया था। श्री घनश्यामजी का जन्म संवत् १६२८ प्रसिद्ध है। अतः परमानन्ददासजी के निधन के अवसर पर उनकी पोथी अध्ययन वाली १२-१३ वर्षीय अवस्था रही होगी।

२ इस प्रकार उनकी मृत्यु का समय भाद्र कृष्ण ६ मी संवत १६४१ ठहरता है। उनका देहावसान संध्या समय होना चाहिए। "वासरगत रजनी व्रज आवत मिलत गोवर्धन धारी।" यह पंक्ति शयनार्ति हो चुकने का संकेत देती है और अंतिम पंक्ति 'परमानन्द स्वामी' के संगम मुदित भईं व्रजनारी" से उनका गोपीभाव सिद्ध होता है। गीता में आया है—
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः [गीता ८-६]
के अनुसार बाल लीला गायक परमानन्ददासजी का गोपी भाव जीवन की संध्या तक पहुँचते पहुँचते निष्पन्न होकर इस कोटि तक पहुँच चुका था। उनकी इस दशा से मुग्ध होकर गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने उन्हें हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित की थी।

### (घ) 'सागर' की उपाधि—

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने उनके नित्यलीला मे चले जाने पर उन्हे 'सागर' कहकर अत्यन्त आदर के साथ कहा था ये दोऊ सागर भए।' परमानन्ददासजी की वार्ता से प्रकट होता है कि सूरदासजी और कुम्भनदासजी उनसे पूर्व गोलोकवासी हो चुके थे।

### (घ) व्यक्तित्व एवं स्वभाव—

वार्ता तथा पदो पर गहरी दृष्टि डालने से परमानन्ददासजी के अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व का आभास मिल जाता है।

उनका अतरग व्यक्तित्व बडा गम्भीर भावुक सत्य निष्ठ एव कर्तव्य परायण था। उच्च कोटि के भक्त कवि गायक एव कीर्तनकार होते हुए भी उन्ह गर्व छू तक नही गया था।

"देह अभिमान सर्वं मिटि जैहै अरु विषयन की सग।

वे भगवद्भक्ति को ही सर्वोपरि समभते थे। उसके सामने विद्या, बुद्धि, कुल, जाति वैभव एव कलानिपुणता आदि सब व्यर्थ हैं। उनका एक मात्र सिद्धान्त था।

'सोई कुलीन दास परमानन्द जो हरि सम्मुख धाई।"

कर्तव्य निष्ठा तो उनकी इसी बात से द्योतित होती है कि वे अपने माता पिता को अपने भरोसे निश्चित भगवद्भजन करने की सलाह देते हैं। वे उस पुत्र की भाँति नही जो वैराग्य का ढोग रच कर कर्तव्य से पलायन कर जाय और अपने दायित्व की गुरता न समझे। कवि अत्यन्त शीलवान भी था। उसके शील स्वभाव और सहिष्णुता का परिचय उनके एक पद से भली भाँति चल जाता है एक स्थान पर वह कहते हैं —

ब्रज बसि बोलि सबन के सहिए।<br>
जो कोउ भली बुरी कहै लाखें नन्दनन्दन रस लहिए॥<br>
अपने गूढ मते की बातें काहू सों नही कहिए।<br>
परमानन्द प्रभु के गुन गावत आनन्द प्रेम बढ़ैए॥

उपर्युक्त पद से परमानन्दजी की न केवल सहिष्णुता और ऐकान्तिकता का ही परिचय मिलता है अपितु ऐसा भी विदित होता है कि अन्य सम्प्रदायवादी तथा वैष्णवेतर मतावलम्बी उनका उपहास करते थे तथा भली बुरी सुनाते थे। परन्तु भगवद्गुणगान में मस्त परमानन्द को इनकी परवाह नही थी और वे मीरां की भाँति लोक बाह्य एकान्त प्रेम के रसिक हो गए थे।

### बाह्य व्यक्तित्व—

वे सुन्दर गौर वर्ण के मझले कद के भारी भरकम होने चाहिए।[1] उनका कण्ठ स्वर तीव्र और मधुर था भव्य और विशाल ललाट पर ऊर्ध्व पुण्ड्र शोभा देता था। दोनो

---

१ कपित तन सीत अति धूनन थरथरात तन भारो। प० सा० [पद ३०६]<br>
परमानन्द प्रभु या जाडे की कीजिए मुँह कारौ॥

भुजाएँ विशाल तथा ललाट, ग्रीवा एव उदर पर त्रिवली थी। उन्हे गुणियो का सतसग प्रिय था।[1]

## (घ) भगवद्विश्वास–

निस्पृह विरक्त परमानन्ददासजी ने पैतृक द्रव्य नष्ट हो जाने पर लेश मात्र दुख नही किया।' अपितु वे अपने पिता पर खीजते हैं। 'तुमने इतनो द्रव्य भेलो कियो सो कहा पुरुषार्थ कियो। उनका विश्वास है कि अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक श्रीहरि अवश्य ही उनका पालन पोषण करेंगे—

भोजनाच्छादने चिता वृथा कुर्वन्ति वैष्णवा।
योऽसौ विश्वभरो देव स भक्तान् किमुपेक्षते'

मे उनका अटल विश्वास था। वे कहते हैं—

तातें तुम्हारो मोहि भरोसो आवै।[2]

## (न) लोकैषणा का त्याग–

उन्हें लोक मे कीर्ति की लिप्सा नही थी। अत न उन्होने द्रव्य सग्रह किया, न जाति पाति की ही परवाह की। वे उच्च कोटि के सरल शीलवान् साधु स्वभाव के सत थे। वे कहते हैं—

हरि जस गावत होइ सो होई।
विधि निसेध की खोज परो जिन अनुभव देखो जोई।

अत विधि निषेध से परे होकर निन्दा-स्तुति की चिन्ता न कर वे हरि रस मे मत्त होकर सिवाय भगवद् गुणगान के कोई अन्य प्रयोजन उन्हें नही था। भगवान् की कर्तुमकर्तुम-न्यथाकर्तु समर्थ महीयसी शक्ति पर उन्हे अटूट विश्वास के साथ आत्मानुभव पर वे बल देते थे। भगवत् कृपा की महत्ता पर वे कहते हैं—

जा पर कमलाकत ढरैं।
लकरी धारा की वेचाहारो ता सिर छत्र धरैं
विद्यानाथ अविद्या समरथ जो कछु चाहे सोइ करैं॥
रीतें भरें भरें पुन ढोरें जो चाहें तो फेर भरें। (पद ६६७)

भगवद् विश्वास की दृढता भारतीय सतो एव भक्तो की सदैव से निज सपत्ति रही है। इसे तर्कशील जगत् अनुभव नही कर सकता।

## (प) काव्य रचना–

परमानददासजी का जीवन आद्योपात एक भक्त—साहित्यकार का जीवन था। सप्रदाय म दीक्षित होन स पूर्व से ही वे भक्त कवि कीर्तनकार और सगीतज्ञ थे। अत उनके बहुत से पद दीक्षा से पूर्व के भी होंगे। पर उनका महत्व नही आँका जा सकता न उनका पता ही

---

[1] अ टक्ष।—गुजराती विभाग पृ० ८४।
[2] प० सा० पद-सख्या ८३२

चन सकता है। क्योकि सूर और परमानन्द दीक्षा के उपरात ही 'सूर और परमानद' के रूप मे ग्राके गए हैं। आचार्य वल्लभ के कर स्पर्श से ही वे कचन हुए अत अष्टछापियो का और विशेषकर इन दो सागरो का महत्व तो सप्रदाय मे दीक्षोपरात ही है। दीक्षा के उपरात वार्ता मे लीलापरक सहस्रावधि पदो का उल्लेख मिलता है। उनकी रचना की प्रामाणिकता पर तो यथास्थान विचार किया ही जायगा यहाँ तो इतना ही तात्पर्य है कि वे एक उच्च कोटि के भक्त कवि कीर्तनकार और गायक थे। उनके पदो का लालित्य, सुगठित शब्द-योजना और भाव प्रवणता देखते ही बनती है।

## (फ) सारंग छाप—

कहा जाता है कि कवि की छाप 'सारग' थी। परन्तु ऐसे पद कदाचित् ही उनके सागर मे दिखाई पडते हैं। हाँ 'सारग' राग मे उनके अधिकाश पद उपलब्ध होते हैं। इसी से उनकी छाप सारग समझली गई। परन्तु कवि को सारग राग प्रिय था। सारग मध्याह्न का राग होता है जिसमे शात रस की प्रधानता होती है। इससे भी परमानन्ददासजी की मनोवृत्ति का अच्छा आभास मिल जाता है। वैसे कवि ने सर्वत्र अपने नाम की ही छाप रखी है। भक्तमाल के सारग' छाप ताकी भई,' से विद्वानो ने यह अनुमान लगा लिया है। वस्तुत. कवि का कीर्तन का ओसरा मध्याह्न मे राजभोग के समय पडता था। वह समय सारग राग का होता है। अत. स्वाभाविक है कि कवि के अनेक पद सारग राग मे ही होने चाहिए।

## (ब) व्रज के प्रति प्रेम—

कवि को व्रजवास अतिशय प्रिय था। वह कहता है— 'जाइए वह देस जहँ नद नदन भेटिए।" गाली खाकर भी वह व्रज नही छोडना चाहता था। उसका मत है- 'व्रजवसि बोल सवन के सहिए।" कवि को व्रज के सामने वैकुण्ठ भी तुच्छ लगता है।

कहा करौं वैकुण्ठहि जाय।
जहँ नही नन्द, जहाँ नही जसुदा, जहँ नही गोपी ग्वाल न गाय।
जहँ नही जल जमना को निर्मल और नही कदमन की छाय।
'परमानन्द' प्रभु चतुर ग्वालनी, व्रज रज तजि मेरी जाय बलाय।

इस प्रकार कवि अत्यन्त विनम्र, सरल, विरक्त और भगवदीय था। उसका भगवदीयत्व अप्रतिम था।

## (भ) वैष्णवों में श्रद्धा—

परमानन्ददासजी वैष्णवो को साक्षात् भगवत्स्वरूप ही मानते थे। इनके समसामयिक भक्त सूरदास, कुम्भनदास, रामदास आदि वैष्णव समय-समय पर इनसे मिलते रहते थे। एक बार सब वैष्णवो के इनके स्थान पर पहुँचने पर इन्होने कहा था—

"जो आज मेरो बडो भाग्य है सो सब भगवदीय मेरे ऊपर कृपा करिकें पधारे। ये भगवदीय कैसे हैं जो साक्षात् श्री गोवर्धननाथजी को स्वरूप ही हैं। तासो आज मोपर श्रीगोवर्धननाथ ने बडी कृपा कीनी है।[१]"

---

१ देखो वार्ता पृ०–८२४ परीख संस्करण।

परमानन्ददासजी का इस प्रकार वैष्णव मण्डल से आंतरिक प्रेम छलकता है। इतना ही नहीं वे समय-समय पर उनसे भगवत् चर्चा करते और भक्ति संबंधी विषयों पर वार्तालाप भी। वे कहते हैं—

'आए मेरे नन्दनन्दन के प्यारे।
माला तिलक मनोहर बानो त्रिभुवन के उजियारे।
वहा जानो कौन पुन्य प्रगट भयो मेरे घर जु पधारे।
'परमानन्द प्रभु' करी निछावर वार वार हौं वारे ॥—(पद सं० ५७०)

## (म) भक्ति का आदर्श–

परमानन्ददासजी की भक्ति का आदर्श 'गोपी भाव' है स्वय आचार्यजी ने भक्ति क्षेत्र मे गोपियो को अपना गुरु माना है[1] वही आदर्श परमानन्ददासजी ने अपनी भक्ति-साधना के लिये ग्रहण किया था। एक वार वैष्णवो द्वारा यह प्रश्न किये जाने पर कि सबसे श्रेष्ठ प्रेम किसका है उन्होने गोपियो को प्रेम की ध्वजा कहा था।[2]

## (य) सत्संग प्रेम—

परमानन्ददासजी सन्त समागम से आनन्दित होने वाले सच्चे भक्त थे। सत्सग से उन्हे वडी प्रसन्नता होती थी। वे कहते हैं—

हरि जन सग छिनक जो होई।

इस प्रकार अष्टछाप के द्वितीय सागर और भगवान की बाललीला के दिव्य गायक परमानन्ददासजी का जीवन चरित अष्टछाप मे अपना एक निराला महत्व रखता है। उनका व्यक्तित्व 'निज प्रभुमय' था। अतः जो सरलता और सादगी उनमे दिखाई देती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनके काव्य की चर्चा और वैज्ञानिक समीक्षा करने से पूर्व हम उनकी रचनाओ के परिमाण और उनकी प्रामाणिकता पर एक विवेचनात्मक दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे।

---

१ देखो–संन्यास निर्णय—श्लो. ८।

२ गोपी प्रेम की ध्वजा—प० सा० प० सं० ८२५।

## तृतीय—अध्याय

# परमानन्ददासजी की रचनाएं—

जैसा कि परमानददासजी के जीवन वृत्त से ज्ञात होता है और वार्ता मे भी लिखा है कि–' पाछें ये वडे योग्य भए और कवीश्वर हू भये वे अनेक पद वनायकें गावते " आदि वाक्यो से यह स्पष्ट हो जाता है कि परमानन्ददासजी महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण मे आने के पूर्व से ही काव्य रचना करते चले आ रहे थे। और अडैल मे पहुंच कर महाप्रभु वल्लभाचार्य के समक्ष दीक्षा से पूर्व उन्होंने कुछ भगवद्विरह परक पद[1] भी सुनाये थे। भावप्रकाश में लिखा है "तासो विरह के कीर्तन नित्य गावते ।" महाप्रभु से उनको सवत् १५७७ मे साम्प्रदायिक दीक्षा मिली और तबसे अपने गोलोकवास के अतिम क्षण तक वे नित्य नए कीर्तनो[2] की रचना करते रहे।

अत उनकी सपूर्ण रचनाओ को दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

१—दीक्षा से पूव के–भगवद्विरह परक पद।

२—अडैल मे दीक्षा प्राप्त हो जाने के उपरात। श्रीमद्भागवत के दशमस्कध की अनुक्रमणिका श्रवण कर लेने पर भगवान् कृष्ण की बाल, पौगण्ड, किशोर लीला विषयक पद।[3]

आचार्यजी द्वारा अनुक्रमणिका श्रवण कर लेने पर परमानन्ददासजी के हृदय मे भगवल्लीला सागर लहराने लगा था। उसी लीला रत्नाकर से अनत भाव-रत्नो की निधि अव्याहृत निस्यद होती रही।

इन पद रत्नो के सग्रह की क्या व्यवस्था हुई, इसका लेखा जोखा देना कठिन है। कीर्तन सेवा के आवेशमय क्षणो मे भगवती सरस्वती इन भक्त कवियो की जिह्वा पर नर्तन करती ही रहती थी। सूरदासजी की विशाल रचना जिस प्रकार सूरसागर' के नाम से पुकारी गयी, उसी प्रकार परमानन्दजी की रचना परमानन्दसागर' के नाम से पुकारी गई। वस्तुत कवि के जीवन का लक्ष्य काव्य रचना या साहित्य सजना नही था।

---

१ देखो ८४ वै० वार्ता परीख सस्करण–पृ० म० ७६६।
[क] मन के विरही लोग बिचारे।
[ख] गोकुल सबै गोपाल उपासै॥
[ग] कौन रसिक है इन बातन कौ॥

२ तब परमानददास नित्ये नए पद करिके समय समय के श्री नवनीतप्रियजी कौं सुनावते। अनेक ब्रजलीला के कीर्तन करते।—वही पृ० ७०७।

३ आचार्य वल्लभ ने अपने चार अष्टछापी चार प्रधान शिष्यों सूरदास, परमानददास, कुम्भनदास और कृष्णदास में से केवल इन दो सागरों -सूर एव परमानन्द को ही दशमस्कध की अनुक्रमणिका मात्र सुनाई थी अन्य दो शिष्यों को सुनाने का उल्लेख वार्ता में नहीं है। (लेखक)

उसका एकमात्र लक्ष्य था—भगवल्लीला गान अत. आचार्य द्वारा शरणागति की तिथि से लेकर गोलोकवास तक के ६५ वर्षों के दीर्घ साहित्य जीवन मे नित्य नये कीर्तनों की संख्या कितनी हो गई होगी। उसकी गणना नितान्त असंभव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। यदि अष्टदर्शन के हिसाब से नित्य के आठ पदो को भी मान लें। तो कवल एक वर्ष के ही २८८० पद होते हैं। यदि उनका काव्य-काल न्यूनातिन्यून पैंसठ वर्ष का ही मान लिया जाय, जोकि अनुमान से उचित ही जान पड़ता है तो इन पैंसठ वर्षों के पदो की संख्या एक लक्ष से भी ऊपर बैठेगी वार्ता के अनुसार कवि ने लगभग २६, २७ वर्ष की अवस्था मे महाप्रभु से दीक्षा ली थी। तब से वे नित्य नये भगवल्लीला परक पद बनाने लगे थे। २-३ वर्षों के उपरान्त अड़ैल से ब्रज मे आकर परमानन्ददासजी स्थायी रूप से ब्रज मे बस गये थे और कीर्तन-सेवा के अतिरिक्त उन्होंने कभी कोई जीविका सम्बन्धी कार्य नही किया। अत ६५ वर्षों के अपने लम्बे काव्य-काल मे उनके लगभग एक लाख सतासी हजार दो सौ पद होते हैं। यदि इनको बहुत अधिक मानकर थोड़ा बहुत इधर-उधर भी कर दिया जाय तो भी सहस्रो की सख्या मे उनके पद होने ही चाहिये। और इस अनुमान का आधार वार्ता का 'सहस्रावधि' शब्द नितान्त उचित प्रतीत होता है। जो भी हो परमानन्ददासजी का सपूर्ण काव्य आज उपलब्ध होना नितान्त असम्भव सा हो गया है और आज के जिज्ञासु को उनके नाम पर साम्प्रदायिक मदिरो के कीर्तन सग्रहो से उपलब्ध पदो पर ही सतोष करना पडता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि उनका काव्य-काल दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। दीक्षा पूर्व का तथा दीक्षोपरान्त का

दीक्षा से पूर्व के विनय और विरह परक पदो का निर्णय करना कठिन है। वे उनके लीला सागर मे निमज्जित हो गये है अत परमानन्ददासजी के 'कवीश्वर' वाले पदो का पार्थक्य कठिन है। जैसा कि सूर के साथ हुआ परमानन्ददासजी के दीक्षापूर्व पद भी 'सागर' मे ही समा गये।

## दीक्षोपरान्त के पद—

दीक्षोपरान्त पदो का संग्रह परमानन्दसागर' है वे ही 'दास परमानन्द' के पद हैं, कवीश्वर परमानन्द के नहीं उनके नाम पर निम्नांकित ग्रन्थ और भी कहे जाते हैं।

१—दानलीला
२—उद्धव लीला
३—ध्रुव चरित्र
४—संस्कृत रत्न माला
५—दधि लीला
६—परमानन्ददासजी के पद

वार्ता से तो इतना ही उपलब्ध होता है कि परमानन्ददासजी ने 'सहस्रावधि' पद लिखे और उस विशाल पद सग्रह को बाद मे ''परमानन्दसागर' पुकारा गया। संप्रदाय के मदिरो मे ''कीर्तन सेवा" ही मुख्य प्रयोजन है। वहाँ व्यक्ति विशेष अथवा कवि विशेष

की रचना का न तो महत्व है न उसके प्रति आग्रह। जिस अवसर पर जिस कवि का 'ओसरा' होता था, वह ऋतु और लीला प्रसग के अनुसार राग निबद्ध शैली मे श्रीनाथजी के समक्ष लीलागान करता था। पीछे से सप्रदाय की यह परिपाटी ही हो गई कि 'अष्टकीर्तनवारे' अथवा सप्रदाय के मुद्राकित कवियो के पद ही श्रीनाथजी का कीर्तन सेवा के लिए स्वीकृत हुए तदतिरिक्त अन्य पद नही उसका कारण यही था कि ये भक्त-कवि निरीह लीला गायक थे। लौकिक इच्छा से परे सप्रदाय मर्य्यादा के अनुकूल प्रभु प्रसन्नता ही इनका उद्देश्य था। इसी को लक्ष्य कर सप्रदाय-कीर्तन मर्यादा के मर्मज्ञ श्री मगनलाल गणपतिराम शास्त्री ने कहा है —

"श्री महाप्रभुजीना अने श्री गुसाईंजी ना समय ना कीर्तनकारो ने यादृश प्रभु दर्शन भगवत्कृपाए थतां, तादृश कीर्तन सत्वरज ग्रथी ने तेनु उद्गान प्रभु समक्ष करता। आपणने तो हवे तेमना प्रसाद भूत कीर्तन नो गान मात्र करवानो अधिकार छे। अर्वाचीन कीर्तनकारो ना कीर्तन प्रभु समक्ष गवाय नहि एवी स्वमार्ग मर्यादा छे अने ते सुयुक्तज छे[1]"

अर्थात् 'श्री महाप्रभुजी के और श्री गुसाईंजी के समय के कीर्तनकारो को जिस प्रकार भगवद्दर्शन भगवत्कृपा से होते थे उसी प्रकार के कीर्तन को तत्काल रचकर उसका गायन वे भगवान के सामने करते थे। हम लोगो को तो अब उनके प्रसादभृत कीर्तन के गान मात्र करने का ही अधिकार है। क्योकि आधुनिक कीर्तनकारो के कीर्तन भगवान के समक्ष नही गाए जाते ऐसी अपने मार्ग की मर्यादा है। और यह मर्यादा उचित ही है।

अत सभी पुष्टिमार्गीय भक्त कवियो एव अष्टछापियो के नित्य कीर्तन और वर्ष भर के उत्सवो के कीर्तन का विशाल सग्रह एक ही स्थान पर सगृहीत कर लिया गया। और उन कीर्तन सग्रहो में से नित्य और वर्षोत्सव की सेवा के कीर्तन किए जाने लगे। धीरे-धीरे इन सग्रहो को व्यवस्थित किया जाने लगा और नित्य कीर्तन के पद अलग तथा वर्षोत्सवो और 'होली धमार आदि के कीर्तन सेवा सुविधा' की दृष्टि से पृथक् कर लिए गए। बाद मे अष्टछापी सागरो का जब महत्व और भी बढा तो 'सूरसागर' 'परमानद सागर आदि भी पृथक् कर लिए गए। कवियो की सरस सूक्तवाणियाँ न केवल कीर्तन के लिए प्रयुक्त होने लगी अपितु भगवान की दिव्य लीला का रसास्वादन भी इससे किया जाने लगा। और 'अष्टकाव्य वारे' न केवल कीर्तनकार ही रहे अपितु श्री गोवर्धनधर की नित्य लीला के सखा माने जाकर उनकी वाणियाँ लीला सागर बन गई और श्रीमद्भागवतके समान समादरणीय और श्रवणीय बन गई। 'सागरो की इस खोज कथा की पुष्टि सूर साहित्य के विशेषज्ञ प्रोफेसर हरवशलाल शर्मा के इस कथन से भी होती है —

"सूरसागर के अतिरिक्त अन्य सागरो का जन्म भी इन्ही सग्रहो (कीर्तन सग्रहो) से हुआ। जैसे कृष्णसागर, परमानदसागर, नद-सागर आदि।[2]"

---

१ देखो-सगीत-कीर्तन पद्धति अने नित्य कीर्तन गुजराती भूमिका भाग पृष्ठ ६

२ देखो-सूर और उनका साहित्य पृष्ठ ५६, लेखक डा० हरवशलाल शर्मा।

अतः परमानंददास जी के विशाल पद संग्रह का नाम 'परमानदसागर' सांप्रदायिक भक्तों द्वारा ही दिया हुआ है। और यही उनकी मुख्य रचना है। इसके अतिरिक्त अन्य पांच ग्रंथ जो उनके बतलाए जाते हैं उनकी चर्चा हमें 'खोज रिपोर्ट' तथा अन्य इतिहासो ग्रंथो में मिलती तो हैं परन्तु किसी विशेष विवरण के साथ नहीं। अत यहाँ हम उनके प्रत्येक ग्रन्थ की प्रामाणिकता की चर्चा अलग-अलग करेंगे :—

दान लीला—इस ग्रन्थ की चर्चा नागरी प्रचारिणी सभा काशी की १९०२ की खोज रिपोर्ट मे हुई है जिसके आधार पर हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखको ने भी उक्त ग्रन्थ को परमानन्ददास कृत बतलाया है। तासी, मिश्रबधु तथा डा० रामकुमार वर्मा ने अपने-अपने ग्रन्थो मे दानलीला का नाम तो लिखा है परन्तु न उससे कोई उद्धरण दिए हैं न कोई अन्य चर्चा ही की है। परमानन्ददासजी का यह ग्रन्थ दतियाराज पुस्तकालय मे सुरक्षित बतलाया गया था। परन्तु लेखक ने स्वय दतिया जाकर वहाँ के राज-पुस्तकालय मे पता लगाया तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्राचीन पुस्तको मे हिन्दी की १६५१ पुस्तकें हैं। दानलीला नामक एक हस्त लिखित ग्रन्थ अवश्य है जिसकी क्रम सख्या १००० है। परन्तु अतिम पक्तियो मे एक नाम 'राजेन्द्र' दिया हुआ है। कविता की भाषा बुन्देली पुट को लिए हुए है। उक्त ग्रन्थ चौपाई और छन्दो मे है। उसकी कतिपय पक्तियो का उद्धरण यहाँ दिया जाता है—

"प्रभु पूरण ब्रह्म अखंड।
जाके रोम कोटि ब्रमण्ड ॥
जब सरगुन ब्रह्म कहाए।
मथुरा दावन आए ॥
जहाँ देव लोक मुनि जेते।
सब गोप गवालनी तेते ॥
देवकी सुत नाम धरायो।
वसुदेवहि रूप दिखायो ॥
जब गोकुल इच्छा कीनी।
बसुदेवहिं अग्या दीनी ॥
जब नन्द नदन पहुँचाए।
तब नन्द के लाल कहाए ॥

छन्द—जन्म लिया वसुदेव के ग्रह, नन्द के बालक भए।
छपनु कोटि जदुवस माया जूथ गोपी ग्वाल के।
श्रीकृष्ण के सग बहुत बालिक धेनु चरावन वन गए।
हरषि गावैं दान लीला, सुनहु सज्जन कान दै ॥

चौपाई— सब गृह गृह की वृज्य नारी।
दधि गोरस बेचन हारी ॥
मिलि जूथ मतो सब कीनो ॥
यमुना तट मारग लीनो ॥
आगे मोहन ध्येनु चरावै ॥
वृन्दावन वेनु बजावै ॥
जहाँ बार सबन की सोई।
मुरली सुनि आनन्द होई ॥
सउ घाट उपरि चलि आई ॥
पहिचान लिए जदुराई ॥
एक बालक कहत पुकारी।
तोहि सूझत नाहि गवारी ॥

छन्द-सूझत नाहि गवारि ग्वालिनि कृष्ण ठाकुर घाट के।
आय काम न करो बीनती अबहु है बरस बालक सात के ॥
हृदय सून्य गुन हीन ग्वालिनि कृष्ण छाडि कहाँ चली ॥
दान देहु निबेरि आपनो हरि-भले तुमहू भली ॥

उक्त ग्रन्थ ११ पृष्ठो मे है। अन्तिम चौपाइयाँ हैं —
राजेन्द्र कृष्णहि ध्यावै जन्म-जन्म के दुख हरै ॥
जो नर गावै दानलीला।.........
.........। सुनहि और चित लावही ॥
विष्णु लोक सिधावहि। कोटि जग्य फल पावही ॥

यहाँ दो बाते विचारणीय हैं। 'राजेन्द्र' कवि का नाम है किंवा कवि के आश्रयदाता नरेश का। तलाश करने पर दतिया मे 'राजेन्द्र' नाम के कोई कवि नही हुए। हाँ, राजवश मे यह नाम अवश्य मिलता है, और सभवत किसी कवि ने अपने आश्रयदाता के लिए उक्त 'दानलीला' मनोरजनार्थ लिखी है। जैसा कि पिछले अध्याय मे कहा जा चुका है—दतिया राज मे एक परमानन्ददास हुए थे जिनकी चर्चा मिश्रबधु विनोद मे मिलती है। ये बहुत परवर्ती कवि हैं। दानलीला मे छदोभग भरे पडे हैं जो अष्टछापी परमानन्ददास जैसे समर्थ कवि से कभी सभव नही। फिर भाषा की दृष्टि से दतिया के परमानन्ददास मे बुन्देली का पुट मिलता है और भाषा भी टकसाली ब्रज नही।

अत दतिया राज पुस्तकालय वाली दानलीला अष्टछापी परमानन्ददास कृत नही है। इसके अतिरिक्त एक दान-लीला सग्रह लगभग २०० वर्ष पुराना प० यादवनाथ शुक्लजी काव्यतीर्थ अलीगढ के सग्रहालय मे प्राप्त हुआ है। इसमे चार पाँच दान लीलाएँ एकत्र हैं। उसमे सूरदास, कुम्भनदास नन्ददास और छीतस्वामी आदि की दान लीलाएँ तो हैं परन्तु परमानन्ददासजी के दानलीला विषयक पद उसमे नही।[१] इसका तात्पर्य यही है कि

१ उक्त पुस्तक श्रद्धेय स० श्री द्वारकादासजी परीख के समक्ष मे जांची गई है।

परमानन्ददासजी के दानलीला विषयक पद अलग से नही देखने मे आते। इस तथ्य की पुष्टि अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय के लेखक डा० दीनदयाल गुप्त के इस कथन से भी हो हो जाती है —

"लेखक के देखने मे भी यह ग्रन्थ नही आया है। परमानन्ददासजी के पद सग्रहो मे दानलीला के पद भी आते हैं। सभव है किसी ने इन्ही पदो को दानलीला का शीर्षक देकर लिख दिया हो। ······ ·································· ······ ········· ·· ·· लेखक को दानलीला विषयक कवि का कोई बहुत लबा पद उपलब्ध नही हुआ। इसलिए इस ग्रन्थ के विषय मे निश्चयपूर्व नही कहा जा सकता कि यह अष्टछापी परमानददास कृत ही है अथवा नही।[1]'

उक्त कथन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वस्तुत परमानन्ददासजी का दानलीला नामक कोई स्वतत्र ग्रन्थ नही। लीला गान के अतर्गत कुछ ऐसे पद अवश्य हैं जिनमे 'दानलीला' प्रसग की चर्चा आती है। स्वतत्र ग्रन्थ निर्माण न तो कवि का लक्ष्य था, न आवश्यकता ही थी। जिस प्रकार सूर के भ्रमरगीत, मानलीला, नागलीला, दानलीला आदि प्रसग सूरसागर मे निमज्जित हो जाते हैं, उसी प्रकार परमानददास के नाम पर कहे जाने वाले ये ग्रथ 'परमानद सागर' मे ही लय समझने चाहिये।

उद्धव लीला—उद्धव लीला भी परमानददासजी का कोई स्वतत्र ग्रन्थ नही। वार्ता मे अथवा परमानददासजी का सदर्भ देने वाले प्रामाणिक ग्रन्थो मे उनके नाम से सबधित ऐसे किसी ग्रन्थ की चर्चा नही है। सभवत उद्धव लीला से भ्रमरगीत परक कुछ पदो से तात्पर्य है। भ्रमरगीत के सरस, मधुर प्रथित प्रसग को सभी कृष्ण भक्त कवियो ने लिखा है। अत परमानददासजी के भी भ्रमरगीत से सबधित कुछ पद उद्धवलीला हो सकते हैं, ऐसा कोई स्वतत्र ग्रन्थ उपलब्ध नही होता।

दतिया राज पुस्तकालय मे पुस्तक सख्या १५४७ पर एक 'उद्धव लीला' ग्रन्थ लेखक के देखने मे आया है। परन्तु यह ग्रन्थ छपा हुआ है और पडित सुन्दरलाल वैद्य रासधारी कृत है। यह श्याम प्रेस मथुरा का छपा हुआ है। डा० गुप्त ने अपने ग्रन्थ अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय मे इसलिए इसकी चर्चा नही की है।

ध्रुव चरित्र—नागरी प्रचारिणी सभा काशी की सन् १९०६ की रिपोर्ट मे परमानद-दासजी के नाम पर इस पुस्तक की चर्चा पाई जाती है। परन्तु १९२३-२४ की रिपोर्टो मे नही। साथ ही हिंदी साहित्य के दो इतिहासो—मिश्रबधु विनोद और डा० रामकुमार वर्मा के आलोचनात्मक इतिहास मे इस ग्रन्थ की परमानन्ददास कृत होने की सूचना मिलती है। सभव है इन दोनो पुस्तको के उल्लेख का आधार गड्डलिकान्याय से ना० प्र० की खोज रिपोर्ट रही हो। उसी मे इसका सुरक्षा स्थान' दतिया राज पुस्तकालय बतलाया गया है। लेखक ने

१ अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय पृष्ठ २९९-३००।

दतिया राज पुस्तकालय मे पुस्तक सख्या १०८२ की एक पुस्तक अवश्य देखी है। यह हस्त-लिखित है परन्तु लेखक के नाम का पता पुस्तक से नही चलता। सूची मे जानुगोपाल नाम दिया है। एक और ध्रुव चरित्र है जो मदनगोपाल कृत है। खोज रिपोर्ट मे तीन ध्रुव चरित्रो की चर्चा है परन्तु दतिया राज पुस्तकालय मे दो ही 'ध्रुव चरित्र' मिलते हैं। अत इनके परमानद-दास कृत होने का कोई प्रश्न ही नही उठता। इस बात की पुष्टि काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री विश्वनाथप्रसादजी ने भी की है। उन्होंने उक्त ध्रुव चरित्रो को जांचा है। और किन्ही अन्य कवियो का बतलाया है। परमानददासजी का नही।

उक्त पुस्तक के विषय मे डा० गुप्त कहते है —"इस प्रकार परमानददास का ध्रुव चरित्र नामक ग्रन्थ भी लेखक के देखने मे नही आया। परमानददासजी की उपलब्ध रचनाओ मे ध्रुव चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले पद भी लेखक के देखने मे नही आए।"

उनका अनुमान है कि ध्रुव चरित्र भी दानलीला के समान कोई लबा पद मात्र ही रहा हो। परन्तु ऐसा पद भी उनके उपलब्ध पदो मे नही मिलता। डा० गुप्त ने कल्पना की है कि हित सप्रदाय का बु देलखड मे बहुत प्रचार था। सभव है हितहरिवश के शिष्य हितपरमानद कृत कोई ध्रुव चरित्र हो। पहले वाले दोनो ध्रुव चरित्र दतिया पुस्तकालय मे रहे हो परन्तु आज तो वहाँ हितपरमानन्द कृत ध्रुव चरित्र भी देखने मे नहीं आता। और अन्यत्र भी यह ग्रन्थ न कही खोजने से मिला न सुनने मे आया।

सस्कृत रत्नमाला—इसकी चर्चा अष्टछाप परिचय के लेखक श्री प्रभुदयालजी मीतल ने अपनी उक्त पुस्तको मे की है। श्री मीतलजी का आधारसूत्र क्या है—विदित नही परन्तु इस ग्रन्थ का उल्लेख न खोज रिपोर्टो मे है न इतिहास ग्रन्थो मे। पता नही कैसे ये ग्रन्थ परमानन्ददासजी के नाम से जुड गया। अष्टछापी कवियो की जैसी प्रवृत्ति देखने मे आती है, उस दृष्टि से विचार किया जाय तो भक्त कवियो और विशेषकर परमानन्द-दासजी जैसे एकान्त भक्ति-साधको के द्वारा ऐसी रचनाएँ नही हो सकती।

दधि लीला—इस ग्रन्थ की चर्चा तासी तथा आचार्य द्विवेदीजी ने की है। तासी ने तो सभवत पदो के प्रसगो को स्वतन्त्र ग्रन्थ मानने की भूल की है। और वह नागलीला अर्थात् 'सर्पलीला' आदि एकाध और भी ग्रन्थ मानता है। परतु आचार्य द्विवेदीजी ने भी अपनी पाद टिप्पणी मे दधिलीला का नाम दिया है और उसका पता हसनी प्रेस दिल्ली समय सन् १८६८ दिया है। परन्तु हसनी प्रेस की इस दधिलीला का अब कही पता नहीं चलता न सप्रदाय के ग्रन्थो के प्रमुख-सग्रह स्थानो मे इस ग्रन्थ की चर्चा है। नाथद्वारा कांकरोली के विद्या विभागो मे भी उक्त पुस्तक की चर्चा नही मिलती। वास्तव मे दधि या माखन चोरी के प्रसगात्मक कुछ पदो के सग्रह को स्वतन्त्र ग्रन्थ नाम देकर भक्त सग्रह कर्ताओ ने परमानन्ददासजी के नाम से अनेक ग्रन्थ बढाने की चेष्टा की है जो एक प्रकार से व्यर्थ ही है।

परमानन्ददासजी की पद—नागरी प्रचारिणी की खोज रिपोर्ट मे इस पुस्तक की सोद्धरण चर्चा है।[1] इस पुस्तक मे ४१ पद हैं। परन्तु भाषा की दृष्टि से पदो के कुछ उद्धहरण अत्यन्त फारसी[2] मिश्रित हैं।

अत: अनुमान होता है कि परमानन्ददासजी के कुछ पदो मे सग्रहकर्ता ने अपनी शब्दावली मिलादी है। डा० गुप्त का मत है— 'परमानन्ददास के पदो का यह कोई महत्वपूर्ण सग्रह नही है, विशेष रूप से उस अवस्था मे जब कवि के पद अन्यत्र हजारो की सख्या मे प्राप्त हो" परमानन्ददास के पदों के प्रामाणिक-सग्रह के सपादन की दृष्टि से ये पद किसी हद तक महत्व के हो सकते हैं।"

वास्तव मे ऐसे छोटे मोटे सग्रह अपनी रुचि की तुष्टि के लिए पहिले के आस्थावान् लोग अपने नित्य स्वाध्याय के लिए सग्रह कर लिया करते थे। और वही आज भ्रम से स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में समझ लिए गये हैं। तथ्य तो यह है कि श्री गोवर्धननाथजी के समक्ष नित्य कीर्तन करने वाले अष्ट सखाओ मे अन्यतम परमानन्ददासजी ने पद रचना के अतिरिक्त कोई स्वतत्र ग्रन्थ लिखा ही नहीं। और यही मत सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान श्री द्वारकादासजी परीख का है। वे परमानन्दसागर' के अतिरिक्त परमानन्ददासजी का कोई ग्रन्थ स्वीकार ही नही करते।

परमानन्दसागर-परमानन्ददासजी का यही एक प्रामाणिक सग्रहात्मक ग्रन्थ है। जो आज व्यक्तिगत सग्रहो तथा काकरौली, नाथद्वारा के विद्या विभागो एव सम्प्रदाय के अन्यान्य मन्दिरो के कीर्तन सग्रहो मे पूर्ण अपूर्ण अवस्था मे पाया जाता है।
इसके दो स्वरूप हैं—

१—हस्तलिखित परमानन्दसागर की प्रतियाँ।

२ - तथा हस्तलिखित अथवा छपे हुये कीर्तन सग्रहों मे परमानन्ददासजी के नित्य और वर्षोत्सव के पद जिनमे होरी धमार भी शामिल हैं।

सरस्वती भडार विद्या विभाग काकरौली मे परमानन्दसागर की सात हस्तलिखित प्रतियाँ सग्रहीत हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

१ आदिः-अथ परमानन्ददासनी कृत लिख्यते
अहो, तुम काहै न बरजौ चंद मद किरन कुन्द जारै।
स्याम सुन्दर गोविंद विनु को तहँ पीर निवारै॥
टेक--ससि हर गुरसीतलता सुखदाई।
कठिन काल रवि तहं होई हमकौ दौलाई॥
जा जल तो एता करै मध विमल होई।
परमानन्द संतनि में भला न कहै कोई॥

२ राग टोडी-गोविन्द तुम्हारे दीदार वाज मुंहूसे परदा।
नेक नजरि कीन, करो मरदन के मरदा॥
अन्तः--चरन कमल अनुराग न उपज्यौ, भूत दया नहीं पाली।
परमानन्द प्रभु सत संगति मिली, कथा पुनीत न चाली॥

## १—परमानंद सागर [प्रथम प्रति]—

वध सख्या ४५ पु० १ । इसका नाम 'परमानददासजी के कीर्तन' है । इसका साइज ८×६ इंच है। इसकी अतिम पुष्पिका नही मिलती । अतः पुस्तक अपूर्ण है। इसमे विषय क्रम से पद लिखे गये हैं। विषय क्रम के अतिरिक्त परमानददासजी के और भी पद इसमे हैं इस पुस्तक के पदों की गणना करने पर लगभग ८५० पद होते हैं।

**पुस्तक की लेखन शैली**—इस पुस्तक के प्रारम्भ से ७८ पृष्ठ तक के पदो के प्रतीक एव पृष्ठ सख्या लिखी गई है । ग्रन्थ की लिपि सुवाच्य सुन्दर, शुद्ध एव प्राचीन है। राग तथा विषयो के नाम लाल रग मे दिए गये हैं। ग्रन्थ मे अधिकाश रूप से नवीन विषय का प्रारम्भ अलग पत्र से ही हुआ है। जिस विषय के जितने पद मिले है उतने ही लिख कर शेष स्थान खाली छोड दिया गया है। और उसके स्थान पर बाद मे परमानददासजी के ही उसी विषय के पद लिखे गये हैं जिनकी लिपि भिन्न हैं विदित होता है कि यह किसी प्राचीन ग्रन्थ की प्रतिलिपि है, और उसके स्थान पर उतने अश के नष्ट हो जाने पर स्थान छोड दिया गया है। जिसकी पूर्ति किसी अन्य ग्रन्थ से बाद मे की गई है। इस प्रकार छूटे हुए स्थान मे जो कीर्तन लिखे गए हैं उनकी लिपि मे गुजराती अक्षरो का सम्मिलन है। इससे अनुमान होता है कि किसी गुजराती लेखक ने बाद मे ये पद लिखे हैं।

ग्रन्थ का आरभ पृष्ठ सख्या १ से होता है और ११४ तक पद लिखे हैं। पुस्तक मे पदो का सकलन विषय-क्रम मे हुआ है। विषय-क्रम पूरा होने तक पद सख्या बराबर चली गई है। दूसरा विषय प्रारभ होने पर पुन पद सख्या एक दो से प्रारभ हुई है। तात्पर्य यह कि सभी विषयो के पदो की सख्या का योग करने पर एकत्र योग ८५० के लगभग होता है।

**लेखन समय**—ग्रन्थ का लेखन समय यद्यपि दिया नही गया है पर एक युक्ति से उसका समय निर्धारित किया गया है। पुस्तक के आरम्भ मे "श्री गिरिधर लालो विजयतु" लिखा है । ये गिरधरलालजी गोस्वामी विट्ठलनाथजी के प्रथम पुत्र हैं। इनका समय स० १५९७-१६८० तक माना जाता है। जैसी कि सप्रदाय की परिपाटी है श्री गुसाईंजी की विद्यमानता मे उनके पुत्र श्री गिरिधरलालजी का प्राधान्य नही हो सकता। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण वे अपने पिता के उपरान्त ही स० १६४२ मे आचार्यत्व पर अभिषिक्त हुए होंगे। अतः उनका आचार्यत्व काल १६४२ से १६८० तक हुआ । इन्ही ३८ वर्षों के भीतर इस ग्रथ की प्रतिलिपि हुई समझनी चाहिए।

इस कथन की पुष्टि एक गुजराती लेख से भी होती है। जो उसी लेखक का अथवा उसके समसामयिक किसी अन्य का होना चाहिए। उसमें लिखा है

"बादरायण पुष्करना मोरवी माँ रहता हता, जेणे द्वारका मध्ये श्री आचार्य जी ने श्रीमुखे मास १३ ताई श्रीमदभागवत साभल्यूं तेहनो दीकरो लक्ष्मीदास श्री गुसाईंजीना सेवक। लक्ष्मीदासजी माता बाई भभी श्री आचार्य जी नी सेवक श्री अक्काजीनी द्वारका माँ परचारकी करता, ते लक्ष्मीदास ना बेटा हरिजीव तथा दामजी नग्र (जामनगर) माँ रहे छे।"

इस वाक्य से स्पष्ट हो जाता है कि जैसे श्री वल्लभाचार्यजी की तीसरी पीढी मे उनके पौत्र श्री गिरिधरलालजी उस समय विद्यमान थे। उसी प्रकार उनके सेवक बादरायण के पौत्र (तीसरी पीढी) हरिजीव तथा दामजी लेखक के समय में विद्यमान थे। क्योकि उसने 'नग्र'[१] माँ रहे छे' इस प्रकार वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया गया है।

उपर्युक्त उद्धरण से सिद्ध हो जाता है कि ग्रन्थारम्भ मे लिये गये गिरधारीलालजी गुसाईंजी के ज्येष्ठ पुत्र ही हैं। इनका आचार्यत्व काल स० १६४२ से स० १६८० तक का है। इसी काल के भीतर इस ग्रन्थ का लेखन हुआ है।[२] इस ग्रन्थ मे ८४ वार्ता के कुछ वैष्णवो का सक्षिप्त परिचय भी है जो अपूर्ण है। श्री परीखजी का मत है कि इससे प्राचीन पुस्तक मिलना कठिन है। अतः परमानन्ददासजी के पदो की यही सर्वाधिक प्रामाणिक एव प्राचीनतम प्रति है, जो उनके गोलोकवास के उपरान्त निकट से निकट काल की उपलब्ध होती है।

इस ग्रन्थ की लिपि बध सख्या ५७ की परमानन्दसागर की लिपि से बिलकुल मिलती जुलती है। और अक्षरो तथा लेखन शैली में इतना साम्य है कि एक ही लेखक की होने मे रचमात्र भी सदेह नही होता। पद सख्या मे अवश्य न्यूनाधिक्यता है और इसका कारण यही है कि प्रस्तुत ग्रन्थ (बध स० ४५-१) मे पद लिखने के बाद खाली बचे हुये स्थान मे जैसा कि पहले कहा जा चुका है कुछ समय बाद और भी पद लिखे हुए है। जिनकी लिपि भी भिन्न है। परन्तु इस बध सख्या ५७।४ मे खाली स्थान बराबर छूटा रह गया है। इसके बाद मे किसी ने पद लिखने की चेष्टा नही की। ये दोनो पुस्तकें प्रामाणिक और शुद्ध हैं।

द्वितीय प्रति—बध सख्या ५७, पु० ४–इसका नाम 'परमानदसागर' है। इसका साइज १०×७ इच है। यह ग्रन्थ पत्र स० ६ से प्रारम्भ होकर पत्र १५३ तक लिखा गया है। इसके प्रारम्भ और अन्त के पत्रों मे अन्य कीर्तनो का सग्रह था। यह पुस्तक जीर्ण शीर्ण अतिशय प्राचीन है और पानी मे भीगी तथा कही-कही दीमक से खाई हुई है। फिर भी इसकी पत्र सख्या बच गई है। प्रस्तुत ग्रन्थ के ऊपर लिखे हुए कीर्तन की दो पक्तियाँ इसी कारण बिगड गई हैं। अत. विषय तथा राग का नाम भी नही मिलता।

लेखन शैली—इसका प्रारम्भ 'श्री गोपीजनवल्लभाय नम.' राग सारग' से होता है। प्रत्येक विषय नवीन पत्र से ही प्रारभ हुआ है। और उस विषय के समाप्त हो जाने पर उतना पत्र खाली छोड दिया गया है। प्रारम्भ के पत्र ६ पर जन्म समय के पदो से ग्रन्थ का प्रारम्भ हुआ है। और पत्र १५३ पर राम जयन्ती के पद तक पुस्तक मिलती है। अतः ग्रन्थ विषय के कीर्तन, जैसे नृसिंह जयन्ती, वामन जयन्ती, आदि के पद और लिखे होने चाहिए।

सप्रदाय मे कीर्तन प्रणाली के लिखने का क्रम भाद्र पद अष्टमी (जन्माष्टमी) से प्रारम्भ है। और अगले वर्ष को भाद्र पद कृष्णा सप्तमी तक होता है। अत इसमे कुछ और पद अवश्य

१ जिस प्रकार अहमदाबाद को राजनगर पुकारा जाता रहा उसी प्रकार जामनगर को 'नग्र' कहा जाता था। यह 'नगर' का अपभ्रष्ट रूप है।

२ श्री द्वारकादासजी परीख ने वार्ता साहित्य की प्रामाणिकता के लिये इस प्रति को भी एक प्रमाण माना है। देखो-'वार्ता साहित्य मीमांसा' पृ० २२ [गुजराती सस्करण]

होने चाहिए। पुस्तक अपूर्ण और खण्डित है। दूसरी वात यह है कि जहाँ विषय क्रम का पूर्ति के वाद उतना पत्र खाली छोडा गया है, वहाँ बीच मे कई पत्र बिलकुल खाली छोड दिए गये हैं। यद्यपि उनमे पनाक बरावर पडे हैं। इससे यह अनुमान होता है कि यह भी किसी अन्य ग्रन्थ की प्रतिलिपि है जो अधिकाश नष्ट भ्रष्ट होगया है। और किसी अन्य ग्रन्थ से पूर्ति के लिए स्थान पत्र खाली रख लिये गये हो जिसकी पूर्ति बध सख्या ४५-१ से कर ली गई, पर इसमे नही की जा सकी होगी।

प्रस्तुत ग्रन्थ की लिपि सुवाच्य, सुन्दर, शुद्ध और प्रामाणिक है। स्थान-स्थान पर विशेष राग और विषय के नाम पर लाल गेरू लगाया गया है। ग्रन्थ लिख जाने के वाद उसी स्थान मे पक्ति बढाई गई है।

लेखन समय—इस लिपि का जैसा पहिले कहा जा चुका है बध सख्या ४५ × १ की लिपि से बिलकुल साम्य है। अत इसका भी लेखन काल वही स० १६४२ से १६८० के समय का विदित होता है। इस दृष्टि से पुस्तक प्रामाणिक और प्राचीन है। इन दोनो लिपि साम्यवाली पुस्तको मे रामकली राग को रागश्री' लिखा मिलता है।

यह पुस्तक एक असुरक्षित स्थान मे रखे हुये सग्रह की है। अत जल से भीग जाने के कारण कुछ बिगड गई है। अब तो सुरक्षित रूप से रखी हुई है। यह पुस्तक अपूर्ण है। अत अन्तिम पुष्पिका नही मिलती है। यद्यपि लेखन समय का अनुमान किया जा चुका है, पर लेखक का नाम नही मिलता। ग्रन्थ का अधिकाश विषयानुक्रम नष्ट हो जाने से नही मिलता, पर पृथक् विषयो के लिये स्थान छोड देने के कारण उनकी सकलना की जा सकती है। इसमे जितने पद लिखे गये हैं उनकी गणना करने से ७२४ हो जाती है। पर यह नही कहा जा सकता कि इसमे कितने पद रहे होगे।

बध सख्या ४५ पु० १ तथा इस ग्रन्थ का लिपि साम्य तो है, पर उसमे इस ग्रन्थ का नाम 'परमानन्ददासजी के कीर्तन' लिखा है। और यह वाद मे लिखा गया प्रतीत होता है। इस प्रस्तुत पुस्तक मे इसका नाम 'परमानन्दसागर' लिखा हुआ है जिससे यह प्रतीत होता है कि स० १६४२ और स० १६७० के मध्यकाल मे लिखी गई। इन पुस्तको का नाम 'परमानन्दसागर' प्रचलित हो गया था। परमानन्ददासजी के जीवन चरित मे यह तो स्पष्ट हो ही चुका है कि उनकी उपाधि सागर' थी। अत उनके वाद यदि उनका ग्रन्थ सूरसागर की भाँति ही परमानन्दसागर कहलाने लगा तो कोई आश्चर्य की वात नही।

लिपि साम्य वाली ये दोनो पुस्तकें अपूर्ण हैं फिर भी प्रकाशन और मुद्रण दोनों दृष्टियो से वडी उपयोगी हैं। ये प्रतियाँ शुद्ध और प्रामाणिक होने के कारण अत्यन्त उपयोगी है।

तृतीय प्रति—बध ५७ पु०-३। इस ग्रन्थ का नाम 'परमानन्ददासजी के पद' हैं। आकार १० × ८ इच है। पुस्तक गुटका साइज सिली हुई बडे अक्षरो मे है। इस ग्रन्थ मे पत्र सख्या १ से १५४ तक है। जिसमे पद लिखे हुए हैं।

लेखन शैली—इस ग्रन्थ मे प्रारभ से लेकर पद सख्या दी गई है जो पत्र १५१ पर १, १०६ हैं और जिसके अन्त मे इस प्रकार पुष्पिका लिखी है

"इति श्री परमानन्ददासजी के पद सपूर्ण। पोथी वैष्णव हरिदास की है।"

इस पुस्तक का प्रारभ 'चरण कमल बदौं जगदीस के जे गोधन सग धाए" वाले पद के मगलाचरण से होता है। यह पुस्तक 'मथुरेश पुस्तकालय' की है।

इसमे समाप्ति के अनन्तर पत्र सख्या १५२ से १५४ तक परमानन्ददासजी के और भी पद लिखे हैं। जिनकी सख्या २० होती है और इस प्रकार कुल मिलाने से १०२१ पद परमानन्ददासजी के इस ग्रन्थ मे लिखे मिलते हैं। पदो की इतनी विशाल सख्या अन्य किसी प्रति मे उपलब्ध नही होती।

ग्रन्थ की लिपि सुवाच्य सुन्दर और शुद्ध होने के साथ साथ आद्योपान्त एक सी है। इसमे न तो कही सशोधन किया गया है और न कही परिवर्द्धन। राग तथा विषय के नाम लाल स्याही से लिखे गए हैं। हाशिए पर लाल स्याही से रेखाएँ खीची गई हैं।

लेखन समय—पुस्तक का प्रारभ इस प्रकार होता है— "अथ ६ ठो परमानददासजी के पद की चोपडी।" "गोस्वामि श्री व्रजनाथात्मज गोकुलनाथस्येद पुस्तकम्।'

पुस्तक के अत मे हस्ताक्षर गोकुलनाथजी के हैं। जो व्रजनाथात्मज और श्री गुसाई विट्ठलनाथजी के तृतीय पुत्र बालकृष्णजी के वशज एव कॉकरौली निवासी थे। इन गोकुलनाथजी का समय सवत् १८२१ से १८८६ तक का है। अत यह उन्ही की पुस्तक है। और सवत् १८५६ के पहिले लिखी गई है। यद्यपि इसमे लेखक का नाम और लेखन काल नही लिखा गया। तथापि हमारे अनुमान से इसका समय सवत् १८५० के लगभग ही होना चाहिए।

अन्य प्रतियो की भाँति इसमें विषय की समाप्ति पर खाली पत्र नहीं छोडे गए हैं और चलती कलम से ही पद लिखे गए हैं। अक सख्या प्रारभ से लेकर अन्त तक बराबर मिलती है। पद सख्या के साथ ही साथ तुको की सख्या भी प्रत्येक पद के साथ दी गई है। विषय क्रम से पदो की सख्या भी प्रत्येक पद के साथ दी गई है। विषय क्रम से पदो की सख्या इसमे नही मिलती। इसमे अन्य ग्रन्थो की अपेक्षा विषय भी अधिक है। जैसा कि अधिक पदो के कारण होना भी चाहिए। कुल मिला कर इसमे ७७ विषय है जिनका नाम प्रारभ मे लिखा है।

यद्यपि अन्य प्रतियो की अपेक्षा यह अर्वाचीन है फिर भी शुद्ध और प्रामाणिक होने के साथ विशाल और सग्रहात्मक है। डा० गुप्त का मत है कि परमानन्दसागर की यह प्रति देखने मे सवासौ वर्ष पुरानी जान पडती है।

परमानन्दसागर की इस प्रति के पदो की विषयानुसार पद सख्या का विवरण इस प्रकार है।

पद सख्या का विवरण इस प्रकार है।

पुस्तक सख्या ५३३ विद्या विभाग कॉकरौली परमानन्दसागर

| क्रम सख्या | विषय क्रम | पद सख्या |
|---|---|---|
| १ | मगलाचरण | ३ |
| २ | जन्म समय | २१ |
| ३ | पलना के पद | ६ |
| ४ | छठी के पद | २ |

चतुर्थ प्रति —[बध स० ३६ पुस्तक ४] इस प्रति का नाम परमानन्दासजीके कीर्तन है। आकार ८×६ इच है। इसमे परमानन्ददासजीके कीर्तनोंके साथ ही अन्य अष्टछाप के कवियो के कीर्तनोका भी संग्रह है। पत्र सख्या १ से लेकर १७९ तक है।

लेखन शैली—इसमे पदो की संख्या विषय क्रम से चलती है। अर्थात् प्रसग समाप्त हो जाने पर सख्या समाप्त हो जाती है। इस प्रकार गणना करने पर पदों की कुल सख्या ७४१ निकलती है। इसमे मंगलाचरण के तीन पद, भगवल्लीला के ७२८ और फुटकर १० पद हैं।

लिपि सुन्दर और शुद्ध है फिर भी अक्षर उतने अच्छे नही। इसकी अन्तिम पुष्पिका नही मिलती है। इससे ग्रन्थ का लेखन काल और लेखक का नाम नही मिलता। अत पुस्तक अपूर्ण विदित होती है। इस प्रति मे अन्य कोई उल्लेख्य बात नही।

पचम प्रति—[बध सख्या १६ पुस्तक] इसका नाम परमानंददासजी के कीर्तन है। आकार ४×६ इंच है। पुस्तक गुटका साइज मे है। हाशिए पर "परमानन्द" लिखा गया है। जिससे परमानददास के कीर्तन अथवा 'परमानदसागर" दोनो का बोध हो सकता है।

लेखन शैली—ग्रन्थ का प्रारम्भ पत्र १ से होता है। और उसका मध्य भाग १५६ पर है। इस प्रकार इसमे कुल ३६४ पत्र है। प्रत्येक पत्र मे १४ पक्तियाँ है।

लेखन समय—पुस्तक मे अन्तिम पुष्पिका नही अत लेखक तथा लेखन कालका पता नहीं चल सकता। वैसे पुस्तक सुन्दर और सुवाच्य है।

इस प्रति मे प्रारभ से लेकर पदों की सख्या दी गई है। अर्थात् वह विषय क्रमके साथ समाप्त नही होती। और बराबर अन्त तक चलती चली जाती है। गणना करने से पद सख्या ५०० तक मिलती है। इस रूप मे यह दूसरी पुस्तक है जिसमे पदों की सख्या एकत्र की गई है। और अधिक से अधिक पदो के सग्रह करने चेष्टा की गई है। इसमे कुल ६३ विषय है। यह पुस्तक संपादन और प्रकाशन की दृष्टि से बडी उपयोगी है।

विद्याविभाग कांकरोलीके सरस्वती भडार मे उपलब्ध उपर्युक्त पांच प्रतियो का यहाँ सक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके अतिरिक्त विद्या विभाग मे 'परमानदसागर' की दो प्रतियाँ और भी विभाग मे मिलती हैं। उनका विवरण इस प्रकार है:—

प्रति नं० २।५ 'परमानदसागर' ग्रन्थ के आरम्भ मे लिखा मिलता है 'अथ परमानंददास कृत परमानदसागर लिख्यते।' उसके उपरान्त मंगलाचरण प्रारम्भ होता है:—

चरन कमल बन्दौं जगदीश जे गोधन के सग धाए।

इसके बाद इसमे पदो के विषयानुसार पद दिए हैं। यह पद सख्या लगभग ८०० के पद हैं। पद कृष्ण जन्म से लेकर भवरगीत तक हैं। अन्त मे रामजन्मोत्सव नृसिंह तथा वामन जयन्तियो के पद भी उपलब्ध होते हैं। ऊपर रागो के नाम भी मिलते हैं।

प्रति न० २०।६–इस प्रति मे परमानददासजीके विरह के पदो का सग्रह है। पद सख्या लगभग २०० के है। तिथि आदि कुछ नही मिलती। इसमे सूरदासजीके भी विरह-परक पद सगृहीत हैं। प्रति लगभग १००–११५ वर्ष की प्राचीन विदित होती हैं।

उपर्युक्त परमानदसागर की सात हस्तलिखित प्रतियो के अतिरिक्त श्रीनाथद्वार के निज पुस्तकालय मे पांच हस्तलिखित प्रतियाँ और सगृहीत है उनका विवरण इस प्रकार हैं :—

प्रति न० ११ /१ परमानददासजी के कीर्तन। प्रति मे विषयानुसार कीर्तन लिखे हैं। इसमे लगभग ४०० पद सगृहीत है। स० १८७३ की लिखी हुई है।

[ प्रति १४। ६ ] परमानदसागर—इसमे ८८३ पद हैं। प्रारम्भ से 'चरन कमल वदौं जगदीस जे गोधन के सगधाए' वाला मगलाचरण दिया हुआ है। पदो का क्रम विषया-नुसार है। प्रतिलिपि के सवत् का पता नही चलता। अनुमान है कि यह प्रति १५० वर्ष पुरानी होनी चाहिये। इस प्रति के प्रारम्भ मे पदो की विषय सूची तथा भिन्न भिन्न समय के कीर्तनो के अनुसार अनुक्रमणिका दी हुई है। इसमे पद सख्या लगभग १००० है। वस्तुत यह प्रति काकरौली वाली तृतीय प्रति के टक्कर की है। इसमे पदो का विवरण इस प्रकार है —

| क्रम सख्या | विषय | पद सख्या |
|---|---|---|
| १ | मगलाचरण | ३ |
| २ | जन्म समयके पद | १४ |
| ३ | स्वामिनीजीको जन्म | २ |
| ४ | बाल लीला | ७० |
| ५ | शयनोत्थित | ७ |
| ६ | व्याहकी बात | ४ |
| ७ | उराहना यशोदाजूको | २१ |
| ८ | यशोदाजीको प्रत्युत्तर भक्तनसौं | १७ |
| ९ | यशोदाजी के वचन प्रभुसौं | ७ |
| १० | प्रभुके बचन यशोदासौं | ११ |
| ११ | गोपिकाके वचन प्रभुसौं | ११ |
| १२ | परस्पर हास्य | ४ |
| १३ | सखानसौ खेल | ४ |
| १४ | असुर मर्दन | ५ |
| १५ | जमुना तीरको मिलिबे के पद | ६ |
| १६ | मेघान्तर दर्शन | ६ |
| १७ | गोदोहन | १२ |
| १८ | बनक्रीड़ा | १६ |

| क्रम संख्या | विषय क्रम | पद संख्या |
|---|---|---|
| १६ | गोचारण | ६ |
| २० | भोजन | |
| २१ | दानलीला | ३७ |
| २२ | विप्रपत्नीको प्रसंग | २ |
| २३ | प्रभुजीको बनते पाउँ धारनो | २१ |
| २४ | वेनुगान | ८ |
| २५ | मानापनोदन | ६६ |
| २६ | किशोरलीला | २ |
| २७ | प्रभुको स्वय दूतत्व | |
| २८ | प्रभुको मान मध्या के वचन | |
| २६ | व्रताचरण | |
| ३० | भक्तनके आसक्तिके वचन | |
| ३१ | आसक्तिको वर्णन | १३ |
| ३२ | आसक्तिकी अवस्था | ८ |
| ३३ | साक्षात भक्तनकी आसक्तिके बचन | २४५ |
| ३४ | साक्षात् भक्तनकी प्रार्थना | ४ |
| ३५ | प्रभुके बचन भक्तन प्रति | २ |
| ३६ | प्रभुको स्वरूप वर्णन | २२ |
| ३७ | श्रीस्वामिनीजीको स्वरूप वर्णन | ७ |
| ३८ | जुगलरस वर्णन | ७ |
| ३६ | राससमय | ६ |
| ४० | अन्तर्धान समय | ६ |
| ४१ | जलक्रीडा समय | ३ |
| ४२ | सुरतान्त समय | ७ |
| ४३ | खण्डिता के बचन | ३ |
| ४४ | खण्डिताको प्रत्युतर | १ |
| ४५ | फूल मण्डली | १ |
| ४६ | दीप माला-अन्नकूट | २१ |
| ४७ | वसन्त समय | ३ |
| ४८ | मथुरालीला | ३८ |
| ४६ | मथुरागमन | ३ |
| ५० | विरह [ भ्रमर गीत ] | २४१ |

| क्रम सख्या | विषय क्रम | पद सख्या |
|---|---|---|
| ५१ | श्रीद्वारका लीला | १३ |
| ५२ | व्रजभक्तन की महिमा | क |
| ५३ | भगवत् मदिर वर्णन | १ |
| ५४ | व्रजको माहात्म्य | १ |
| ५५ | श्रीयमुनाजी की प्रार्थना | १ ✻ |
| ५६ | ग्रक्षय तृतीया | १ |
| ५७ | प्रभु प्रति प्रार्थना | १ |
| ५८ | भगवत् भक्तन की महिमा | ४ |
| ५९ | स्वात्म प्रवोध | ३ |
| ६० | रक्षावन्धन | १ |
| ६१ | ग्रारती समय | १ |
| ६२ | पवित्रा समय | २ |
| ६३ | श्री रघुनाथजीको जन्म | २ |
| ६४ | हिंडोरा समय | २ |
| ६५ | प्रभुजी की माहात्म्य ग्रपनी दीनता | ४४ |

श्रीनाथद्वारे की यह प्रति तथा काकरौली की तीसरी प्रति वडी महत्वपूर्ण प्रतियाँ हैं। विदित होता है कि ये दोनो एक ही मूल प्रति की दो प्रतिलिपियाँ है। दोनो के प्रसगो मे यत्र तत्र ग्रन्तर ग्रवश्य है पर किन्ही किन्ही प्रसगो की पद सख्या यथावत् मिलती है। सम्पादन की दृष्टि से यह प्रति भी बडी उपयोगी है।

प्रति न० १४।२ परमानन्दसागर—इसमे लगभग ५०० पद हैं। विपयानुसार पदो का सग्रह है। लेखन समय उपलब्ध नही।

प्रति न० १४।३ परमानन्ददासजी के कीर्तन इसमे लगभग ८०० पद हैं। इसमे भी उपर्युक्त दो प्रतियो के ग्रनुसार ही पदो का विपयवार सकलन है। यह प्रति भी ग्रठाहरवी शतीकी प्रतीत होती है। इसका भी लेखन काल का पता नही चलता।

प्रति न० १४।४ परमानन्ददासजी के कीर्तन—इसमे लगभग १००० पद हैं। विपयानुसार पदो का क्रम है। लेखन काल का कोई पता नही।

श्रीनाथद्वार एव काकरौली की इन ११,१२ हस्तलिखित प्रतियो के ग्रतिरिक्त परमानन्दसागर की तीन प्रतियो की ग्रौर चर्चा है किन्तु लेखक के देखने मे नही ग्राई। वे इस प्रकार है —

१—परमानदसागर—प्राप्तिकर्ता श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी। इसमे लगभग ७०० पद वताए जाते हैं। पुस्तक शुद्ध है। चतुर्वेदी जी का कथन है कि यह पुस्तक राधाबाई मूँदडा, वारातल्ला गली कलकत्ता की है।

२—परमानन्दसागर—जमनादास कीर्तनियाँ गोकुलवालो के पास बताई जाती है। पर इस प्रति का खोज लगाने पर भी लेखक को पता नही चला।

३—परमानन्दसागर की एक प्रति की चर्चा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने हिन्दी साहित्य मे की है।[1] जयपुर के कोई सज्जन रामचन्द्र के नाम हैं। पर अब जयपुर मे पता लगाने पर भी लेखक को उसका पता नही चला।

उपर्युक्त हस्तलिखित प्रतियो के अतिरिक्त परमानन्दसागर की दो और प्राचीन प्रतिया लेखक को देखने को मिली हैं। ये पुस्तकें सप्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान स्व० श्री द्वारकादासजी परीख के अधिकार मे थी। इन दो पुस्तको मे एक तो प्राचीनता की दृष्टि से विद्याविभाग काकरौली वाली प्रथम दो प्रतियो के बाद रखी जानी चाहिए दूसरी अनुमानत सबसे पुरानी है। ये प्रतिया परीखजी को जूनागढ [गुजरात] से प्राप्त हुई थी।

परमानन्दसागर की पहली प्रति—परीखजी की पास की यह प्रति गुटके के आकार पर ६×४ इच मे हैं। पुस्तक के ऊपर के कई पृष्ठ फट अवश्य गए हैं और उपलब्ध प्रथम पृष्ठ माखन चोरी प्रसग के पद सख्या ९ से प्रारम्भ है। इसी पृष्ठ पर ऊपर दूसरे प्रकार के अक्षरो मे लिखा है "आपुस्तक के मालीक सेठ छगनलाल नाथाभाई मु०" दिया है। दोनो ओर हाशियो के लिए स्थान छूटा है। रागो के नाम और विषयो के नाम पर थोडा सा गेरू लगा है। पद सख्या विषयो के साथ-साथ चली है। नया विषय पुन न० १ से प्रारम्भ किया गया है। बचे हुए लगभग १५३ पृष्ठ हैं। पदो की गणना करने से २१७ पद होते हैं प्रारम्भ मे कितने पद और पद रहे होगे पता नही चलता।

लेखन काल—इस प्रति के अन्त मे पुष्पिका इस प्रकार दी गई है। 'श्रीरस्तु। कल्याणमस्तु। पठनार्थ बावा मथुरादासजी लिखित भट्ट माधवजी ॥ श्री जीर्णदुर्ग मध्ये लषि छे॥ स० १७४५ नाफागुण वदि ७ भोमवासरे लषि छे॥ लेषक पाठकयो शुभ भवतु॥ मगल लेषकानाच ॥ पाठकानाच मगल ॥ मगल सर्व जन्तूना भूमो भूपति मगलम्। ४५॥ पुष्पिका मे जीर्ण दुर्ग अर्थात् जूनागढ (गुजरात) इस प्रति का लेखन स्थान निश्चित होता है तथा लेखक कोई माधव भट्ट हैं। लेखन काल स० १७४५ प्रति मे स्पष्ट दिया हुआ है।

प्रति के अक्षर सुन्दर सुवाच्य तथा स्पष्ट है। प्रति मुद्रण, प्रकाशन, सपादन की दृष्टि से अत्य त उपयोगी है।[2]

परीखजी की परमानन्दसागर की दूसरी प्रति—यह प्रति वाह्य आकार प्रकार से अत्यन्त जीर्ण शीर्ण एव प्राचीन है। कही असावधानी से रक्खी गई थी अत अन्तिम पृष्ठ पानी से भीगा हुआ है प्रति का आकार १०×४ इच है। इसमे आदि के और अत के पृष्ठ फटे हुए हैं। प्रारम्भ के ३१९ पद नही हैं। अन्त मे पुष्पिका नही है। अन्तिम पद जो उपलब्ध है उसकी सख्या ८५७ दी हुई है। हाशिए पर प्रसग अथवा विषय क्रम लाल स्याही से लिखे हुए हैं। पुस्तक सुन्दर और सुवाच्य है।[3]

---

१ हिन्दी साहित्य, पृष्ठ १८७

२ इस प्रति की प्रामाणिकता की जाच अलीगढ विश्वविद्यालय के मरहून हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० हरवशलाल ने की है। उनका मत है कि यह प्रति अत्यन्त प्रामाणिक और व्यवस्थित लेखन शैली वाली होनी चाहिए। प्रारम्भ के पृष्ठों के न होने से बडी क्षति अनुभव होती है।

३ १ देखो प्लेट न० ७—८

• देखो प्लेट न० ९—१०—११

इस प्रति के लेखन काल का पता चलाना अत्यन्त कठिन है क्योंकि अंतिम पुष्पिका नही। किन्तु लेखन शैली और लिपि को देखकर श्रीपरीखजी का अनुमान था कि यह १७ वी शताब्दी की होनी चाहिए। वस्तुत यह प्रति यदि पूर्ण होती तो बडे उपयोग की होती और सभवत सबसे अधिक प्रामाणिक होती। और पद सख्या की दृष्टि से भी अधिक पदो के सग्रह का अनुमान होता। क्योंकि ८५६ तथा ८५७ वे पद भ्रमर गीत के प्रसग वाले पद हैं। इससे इस सग्रह के शीघ्र समाप्त होने का अनुमान नही होता। इस प्रकार परमानद सागर की यह पूर्ण प्रति अपना विशेष महत्व रखती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने भी इसे स्वय देखा है और इसकी प्राचीनता स्वीकार की है।

इस प्रकार परमानन्दसागरकी लगभग १३–१४ हस्तलिखित प्रतियाँ प्रकाश मे आई हैं। मुद्रित स्वतत्र प्रति का आज तक अभाव रहा। परमानन्ददासजी के कुछ पद अवश्य मुद्रित मिलते हैं। परन्तु या तो वे अन्य अष्टछापी कवियो के साथ है या वे सगीत, एव रागो की उपयोगिता की दृष्टि से अन्य वैष्णव कवियो के पदो के साथ हैं।

हस्तलिखित के प्रतियो के देखने से हम निम्नाकित निष्कर्ष पर पहुँचते है —

१—सभी प्रतियाँ प्रतिलिपिया हैं। परमानन्ददासजी की हस्त लिखित मूलप्रति कही उपलब्ध नही होती न चर्चा ही मिलती है।

२—प्राय सभी प्रतियो मे पद विषय क्रमानुसार है।

३—कवि ने सूरसागर की भाँति भागवत के स्कधात्मक क्रमो के अनुसार पद रचना नही की।

४—यदि समस्त उपलब्ध प्रतिया एक स्थान पर एकत्र करके सपादित की जांय तो सभवत २५०० के लगभग पद मिल जायेंगे।

५—मुख्य रूप से परमानन्ददासजी दशमस्कध पर ही केन्द्रित रहे हैं। अन्य स्फुट प्रसग जैसे राम जयन्ती नृसिंह जयन्ती, वामन जयन्ती तथा दीप मालिका अक्षय तृतीया आदि उत्सवो के पद सप्रदाय की परिपाटी के अनुसार ही हैं।

६—उनके पदो का विषय बाल लीला, गोपीभाव विरह मान, युगल लीला, रास आदि है।

७—वे भगवान् कृष्ण की रसमयी भावात्मक लीलाओ के अतिरिक्त अन्य विषयो पर पद रचना नही करते थे।

८—परमानन्ददासजी की शैली प्रधान रूप से पद शैली है।

९—उनके पदो मे १-परमानन्ददास प्रभु २—परमानन्दस्वामी ३—परमानन्ददास ४—दासपरमानन्द एव ५—परमानन्द इस प्रकार पाच छापें मिलती हैं।

१०—परमानन्दसागर के अतिरिक्त उनकी अन्य रचनाए अप्राप्य और सदिग्ध है। वे पुष्ट प्रमाणो के अभाव मे अप्रामाणिक ही ठहरती हैं।

अत परमानन्ददासजी 'परमानन्दसागर' कार हैं। कीर्तन सेवा मे तल्लीन भक्त कवि को मसि लेखनी के स्पर्श की न इच्छा थी, न आवश्यकता। अपने ओसरे पर कीर्तन के समय पीछे बैठे हुए आठ-आठ भालरिए एव पखावजियो की कण्ठ-परपरा से ये पद अनेक दशाब्दियो

तक मौखिक परपरा से ही चले । सप्रदाय और आचार्यों की छाप लग जाने पर वे नित्य सेवा और वर्षोत्सवो के लिए निर्धारित कर लिए गए और सप्रदाय की सेवा परपरा मे उन्हे अक्षुण्ण रखने के लिए बाद मे वे कीर्तन-सग्रहो मे समाविष्ट कर दिए गए ।

### परमानन्दसागर के मुद्रित पद

परमानन्दसागर का प्रकाशन अब तक नही हो पाया है । परन्तु परमानन्ददासजी के मुद्रित पद अवश्य मिलते है । निम्नाकित सूची उन ग्रन्थो की दी जा रही है जिनमे उनके पद उपलब्ध होते हैं —

| | | |
|---|---|---|
| १— | कीर्तन सग्रह भाग प्रथम | २८५ |
| २— | ,, ,, ,, द्वितीय | २४ |
| ३— | ,, ,, ,, तृतीत | २११ |
| | | ५२० |
| ४— | अष्टसखान की वार्ता | ७३ |
| ५— | राग कल्पद्रुम भाग १ | २१ |
| ६— | ,, ,, ,, २ | ७९ |
| ७— | राग रत्नाकर | २० |
| ८— | अष्टछापी पदावली डा० सोमनाथ गुप्त | १२४ |
| ९— | अष्टछाप परिचय—श्री मीतल | १०३ |
| १०— | वल्लभीय सुधा के विविध अक | ६७ |
| ११— | पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ | ४३ |
| | | ५३० |

उपर्युक्त ग्रन्थो मे थोडे अन्तर और विभेद से प्राय सभी पद परस्पर मिल जाते हैं । अत पदो मे नवीनता कठिनाई से ही मिलती है ।

अष्टछाप वल्लभसप्रदाय के विद्वान् लेखक डा० गुप्त ने अपने पास ४६१ पदो का सग्रह बतलाया है । उनमे से अपने ग्रन्थ अष्टछाप और वल्लभ सप्रदाय के दोनो भागो मे उन्होने लगभग ११७ पदो के उद्धरण दिये हैं ।

सक्षेप में परमानन्ददासजी के लगभग ५०० पद ही अब तक प्रसिद्ध हो पाये हैं, शेष पदो का सग्रह होना अभी शेष है ।*

परमानन्ददासजी के हस्तलिखित तथा मुद्रित पद लीला क्रम से है । उन्होने भागवत के स्कधात्मक क्रम का अनुसरण नही किया है अत उनका सागर सूर के सागर की भाँति स्कधात्मक क्रम से मिलना कठिन है

उनके पदो को तीन क्रमो मे रखा जा सकता है —

१—नित्य कीर्तन क्रम ।

२—वर्षोत्सव क्रम ।

३—लीलात्मक क्रम ।

* लेखक द्वारा सपादित ९३० पदों का परमानन्दसागर सन् १९५८ में प्रकाशित हो चुका है । उसके उपरांत एक सग्रह विद्या विभाग काँकरौली से सन् १९६० में प्रकाश में आ चुका है ।

प्राय हस्तलिखित प्रतियाँ कुछ नित्य कीर्तन क्रम से वर्षोत्सव क्रम से कुछ तथा कुछ लीलात्मक क्रम से लिखी जान पडती हैं।

नित्य सेवा क्रम मे सप्रदाय का अपना क्रम है। उसमे वन्दनाएँ महाप्रभुजी यथा गुसाईं जी की, यमुनाजी के पद गगाजी के पद जगायवे के पद, मगला, शृ गार आरती न्हवायवे के पद, ग्वाल गोदोहन उलाहनो राजभोग शीतकाल के पद, बीरी अरोगायवे के पद, उष्णकालके पद, नावके पद, उत्थापनके पद, शयन आरती, ब्यारूके पद, मान आदिके पद आते हैं।

अष्टयाम की नित्य सेवाके सहस्रो पद अष्टछाप के कवियो ने रचे हैं फिर जिस कीर्तनकार या कवि का अपना ओसरा होता था वह नित्य नये पदो की रचना करके भगवान् को रिझाता था। परमानन्ददासजी गिरराज मे रहकर श्रीनाथजीका कीर्तन सेवा करते हुए सहस्रावधि पदो की रचना करते थे। जैसी कि सप्रदाय की प्रणाली थी। प्रत्येक कीर्तनकार के साथ आठ-आठ झालरिये रहते थे। जो टेक उठाने का कार्य करते थे। वे स्वय भी कवि होते थे। परमानन्ददासजीके आठ झालरिये जोकि उनके अगगायक कहलाते थे व ये— (१) पद्मनाभदास, (२) गोपालदास, (३) आसकरण, (४) गदाधरदास, (५) सगुनदास, (६) हरिजीवनदास, (७) मानिकचद और (८) रसिकबिहारी।

इस क्रम मे परमानन्ददासजी का कितना साहित्य रहा होगा और उसमे से कितना प्रकाश मे आया और कितना अभी प्रकाश मे आने को पडा है इस सबका लेखा-जोखा निकालना साहित्य रसिको एव सप्रदाय प्रेमियो का कर्तव्य है।

वर्षोत्सव का क्रम—वर्षोत्सव का क्रम जन्माष्टमी से प्रारभ होकर वर्ष भर चलता है और अगले वर्ष की भाद्रपद वदी ७ मी को समाप्त होता है। वर्षोत्सव के कीर्तनो मे जन्माष्टमी, बधाई, छठी, पलना, अन्नप्राशन, कर्णवेध, नामकरण, करवट, ऊखल, राधाजी की बधाई, बाललीला, दानके पद साझ, देवी पूजन मुरली, दशेरा, रास, धनतेरस, रूपचौदस, दिवारी, गाय खिलाइवी, हटरी अन्नकूट, गोवर्धन पूजा, गोवर्धन लीला के पद, देव प्रबोधिनी, मकरसक्रान्ति होरी धमार, रामनवमी, नरसिंह, चतुर्दशी, वामन जयन्ती, नाव के पद अक्षय तृतीया, हिंडोरा तथा पवित्रा आदि के पद आते हैं। परमानन्ददासजी के पद इस क्रम से भी उपलब्ध होते हैं।

लीलात्मक क्रम मे उनके वे सरस मधुर पद आते हैं जो भगवान् की बाललीला, पूतना उद्धार के उपरान्त मान लीला, छाक के पद, कु ज, यमुना तट, युगल लीला, खण्डिता, मध्या, विप्रपत्नी, मुरली, रास गोवर्धन आदि भागवत के दशमस्कध के अनुसार उन्होने रचे हैं।

परमानन्ददासजी की जितनी भी प्रतियाँ हैं उनमे उपर्युक्त तीनो ही क्रम मिले-जुले मिलते है। यदि ये प्रतियाँ सर्व सुलभ हो सकें तो इनके व्यवस्थित सपादन का कार्य और भी आगे बढाया जा सकता है।

---

## चतुर्थ अध्याय

# शुद्धाद्वैत दर्शन और परमानन्ददासजी

अष्टछाप के कवियो का उद्देश्य मुख्य रूप से दार्शनिक सिद्धान्तो का निरूपण नही था। वे अहर्निश कीर्तन सेवा मे आसक्त रहने के कारण भगवल्लीला गान को ही महत्व देते थे। उनके प्रभु "जन ताप निवारणार्थ" [1] इस भूलोक मे अवतीर्ण होते हैं और विविध मानवीय लीला करते हुए भक्तोके चित्तोको अनुरजित करते हुए दुष्टदलन भी करते है। और इस प्रकार लीलामय प्रभु भूभार उतारा करते हैं। भगवान् के कपटमानुष देह कृत इस लीला से कही सासारिक जनो से उनका ईश्वरत्व विस्मृत न कर दिया जाय इस हेतु ये भक्त कवि बीच-बीच मे उनका पूर्ण पुरुषोत्तमत्व अथवा पूर्णब्रह्मत्व भी प्रतिपादन करते चलते हैं।

ससार की अनित्यता, जीव की प्रपचासक्ति और अविद्याकृत विवशता, भक्ति की पूर्णता और आत्म-निर्भरता माया का मिथ्यात्व, आदि का भी उन्हें यथास्थान प्रसग चलाना पडा है। अत उनके काव्य मे दार्शनिक प्रसगो का आनुषगिक रूप से यत्र-तत्र आजाना सहज और स्वाभाविक था। सभी अष्टछाप के कवि, सप्रदाय के आचार्य वल्लभ तथा गोस्वामी विट्ठलनाथजी के दीक्षित शिष्य थे। अत सभी के दार्शनिक विचार वल्लभ सिद्धान्तानुसार ही होने चाहिए। अत परमानन्ददासजी के दार्शनिक विचारो और उनके काव्य मे दार्शनिक तत्वो के सकलन से पूर्व महाप्रभु वल्लभाचार्य के दार्शनिक सिद्धान्तो को सक्षेप मे समझ लेना उचित होगा। यो तो परमानन्ददासजी मुख्यत भक्त कवि ही थे। दार्शनिक सिद्धान्तों की जटिल गुत्थियो मे वे नही उलझे फिर भी इन भक्त कवियो के काव्य मे यत्र-तत्र दार्शनिक विचार मिल ही जाते है।

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त अथवा ब्रह्मवाद—भारतीय धर्म साधना की प्रारम्भ से ही दो दृष्टियाँ रही हैं –

१—तात्विक अथवा सैद्धान्तिक पक्ष।

२—साधनात्मक अथवा व्यवहार पक्ष।

सैद्धान्तिक दृष्टि से आचार्य वल्लभ का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत अथवा ब्रह्मवाद कहलाता है। उसी को अविकृतपरिणामवाद कहते हैं।

साधनात्मक अथवा व्यवहार दृष्टि से इसे पुष्टिमार्ग या अनुग्रहमार्ग अथवा शरणमार्ग कहा जाता है। और आचार्य वल्लभ को उसका सस्थापक। [2]

अद्वैत के पूर्व 'शुद्ध' शब्द लगाने का तात्पर्य है 'माया का सबध राहित्य है[3]।' आचार्य के स्वमत मे 'मायावाद' का निरसन अथवा खण्डन है अत इसे शुद्धाद्वैतवाद कहा जाता है।

---

१ पद्म धर्यौ जनताप निवारन।
चक्र सुदर्सन धर्यौ कमल कर भगतन की रच्छा के कारन॥
लेखक द्वारा सपादित प० सा० पद सं० ३१०,

२ साकार ब्रह्मवादैक स्थापको वेद पारग.। स० स्तो० श्लो० ८
पृथक शरण मार्गोपदेष्टा–श्रीकृष्णहार्दवित्। वही ,, २५

३ माया सबध रहित शुद्धमित्युच्यते बुधैः।
कार्य कारण रूपं हि शुद्ध ब्रह्म न मायिकम्॥ शु० मा० श्लो०–२८

'वाद' से तात्पर्य है—शब्दार्थ 'श्रवण, मनन' निदिध्यासन द्वारा जो अनुभव रूप है, वही 'वाद' है। वाणी से कथन मात्र करना वाद नही।[१] यही ब्रह्मवाद है।[२] उनके इस सिद्धान्त से सब कुछ ब्रह्म ही है। जीव ब्रह्म रूप है, यह जगत् भी ब्रह्म रूप है और इसलिए जीव और जगत् दोनों सत्य हैं।[३] बुद्धि के विकल्प से भिन्नता प्रतीत होती है, स्वरूप से जीव जगत् ब्रह्म एक ही हैं।[४]

यही सिद्धान्त अविकृतपरिणामवाद भी कहलाता है। क्योकि इसमे मूल कारण [ परम तत्व ] नाना कार्यरूप होकर भी कैसे भी विकार को प्राप्त नही होता। समस्त अवस्थाओ मे कार्य-कारण रूप ही रहता है अतः कार्य ( परिणाम ) अविकृत कहलाता है। ऊर्णनाभि, मृत्स्ना, स्वर्ण, अहि कुण्डल, कल्प वृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि आदि सब अविकृत परिणामवाद के उदाहरण हैं। इस प्रकार सच्चिदानद निर्गुण ब्रह्म ही जगत्रूप मे परिणाम पाता है फिर भी उसमे अणुमात्र विकृति नही होती। यही अविकृतपरिणामवाद का निष्कर्ष है। ब्रह्म को ही इस सिद्धान्त मे जगत् का उपादान तथा निमित्त-दोनो कारण माना गया है। अत 'सर्वब्रह्म' वाला सिद्धान्त वन जाता है। इसको 'सर्ववाद' भी कहा जाता है।

**पुष्टि मार्ग**—सिद्धान्त पक्ष मे अथवा तत्व दृष्टि से जो मार्ग शुद्धाद्वैत कहलाया वही साधना के क्षेत्र मे 'पुष्टि' मार्ग कहलाया। पुष्टि शब्द को आचार्य ने भागवत[५] से लिया है। भगवान् के अनुग्रह को ही 'पोषण' या 'पुष्टि' कहते हैं। आचार्य के मत मे भगवदनुग्रह ही एकमात्र प्राप्य है। प्रभु के अनुग्रह से ही भक्त के हृदय मे भक्ति का उदय होता है। तब भक्त अपने आपको भगवान् का तुच्छ सेवक समझता हुआ अपना 'सर्वस्व' भगवान् को समर्पण कर देता है। यह समर्पण अथवा सर्वतोभावेन आत्मनिवेदन ही ब्रह्म संबंध है। पुष्टि भक्ति मे स्थित भक्त भगवान् की कृपा पर ही निर्भर रहता है। कृपा मकरन्द पर निर्भर रहने वाला भक्त लौकिक इक्षुरस की कामना ही नही करता।[६]

इस पुष्टि का रूप ही 'कृष्णानुग्रह रूपाहि पुष्टिः[७]' है। आचार्य ने 'पुष्टि' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है:—'कृति साध्य साधनं ज्ञान रूप शास्त्रेणबोध्यते ताभ्या विहिताभ्या मुक्तिर्मर्यादा तद्रहितानपि स्वरूप बलेन स्वप्रापण पुष्टिरित्युच्यते।[८]

---

१ ब्रह्मणो निरूपणार्थं वादः। वीत राग कथा यत्र तादृशो विचारः॥

२ अयं मुख्यो ब्रह्मवादः—सुबोधिनी कारिका॥

३ सर्वं ब्रह्मात्मकं विश्वमिदमा बोद्धयेद् पुरः।
सर्व शब्देन यावद्धि दृष्ट श्रुतमदो जगत्॥
बोध्यते तेन सर्वं हि ब्रह्मरूपं सनातनम्।
कार्यस्य ब्रह्मरूपस्य ब्रह्मैव स्यात्तु कारणम्॥ शु० मा० ५-६

४ ज्ञानाद् विकल्प बुद्धिस्तु बाध्यते न स्वरूपत'-त० दी० नि० ९१

५ स्थिति वैकुण्ठ विजयः पोषणं तदनुग्रहः।
मन्वंतराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः॥ भागवत २।१०।४

६ मकरंद निर्भरे मधुव्रतो नेक्षु रसं हि वीक्षते॥

७ देखो निबंध भागवतार्थ प्रकरण।

८ अणुभाष्य ३, ३, २९

अर्थात् वेदाध्ययन, यज्ञ दान, तप आदि करने से मोक्ष होता है। वेदाध्ययन आदि मोक्ष के साधन है, इन साधनो से मुक्ति प्राप्त करना 'मर्यादा' है। परन्तु जहाँ ये साधन नही गिने जाते और इन साधनो से भी जो श्रेष्ठ है ऐसे भगवान् के स्वरूप बल से ही जो प्रभु की प्राप्ति होती है उसे 'पुष्टि' कहते है।

यह पुष्टिमार्ग वेद, शास्त्र और पुराणो से प्रतिपादित है। आचार्य ने इसे प्रमाण चतुष्टय से प्रमाणित किया है।[1] पद्मपुराण मे लिखा है —

श्री[1] ब्रह्म[2] रुद्र[3] सनका[4] वैष्णवा क्षितिपावना।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या सप्रदाय प्रवर्तका॥

विष्णुस्वामि का सप्रदाय रुद्र सप्रदाय कहलाया। इसी सप्रदाय की आचार्य परपरा मे वल्लभाचार्य को अभिषिक्त किया गया। आचार्य वल्लभ ने अपने साधनमार्ग अथवा शरणमार्ग का नाम पुष्टिमार्ग रखा। यह एक सुगमतम विश्वधर्म है जिसके विषय मे कहा जाता है कि इस राजमार्ग पर यदि कोई आँख मीच कर भी दौडे तो यह मार्ग इतना स्वच्छ और निष्कण्टक है कि इस पर दौडने वाला न गिरता है न फिसलता है। भगवान् व्यास कहते हैं कि यह मार्ग अत्यन्त निष्कण्टक और उत्तम है क्योकि इसमे श्रीहरि की भलीभाँति अर्चा सेवा होती है।[2]

तात्पर्य यह है कि तत्व दृष्टि से अथवा दर्शन के क्षेत्र मे जिसे हम शुद्धाद्वैतवाद अथवा ब्रह्मवाद अथवा अविकृतपरिणामवाद पुकारते हैं, वही साधना के अथवा भक्ति के क्षेत्र मे 'पुष्टिमार्ग' कहलाता है।

अन्य दर्शनो की भाँति शुद्धाद्वैतदर्शन मे भी ब्रह्म, जीव, जगत् मायादि सभी की अपनी परिभाषा है। और आचार्य ने इन सबको अपनी विशिष्ट शैली से युक्ति युक्त मीमासा की है। नीचे आचार्य के मतानुसार ब्रह्म, जीव, जगत, मायादि का स्वरूप बतलाने की चेष्टा की गई है।

वल्लभ के ब्रह्म का स्वरूप—आचार्य वल्लभ का ब्रह्म शकराचार्य के समान अन्ततोगत्वा निर्गुण निराकार नही, वे ब्रह्म के निर्गुणत्व का प्रतिपादन करते हुए इसको सर्वोच्च सत्ता मानते हैं। शकरके अनुसार ब्रह्मका सगुणत्व उसके निर्गुणत्व की अपेक्षा थोडा निम्नत्व लिए हुए है। उनके अनुसार ब्रह्म का सगुणत्व केवल उपासना के लिए है। और वह तभी तक जब तक कि पूर्ण ज्ञान की स्थिति मे साधक नही आ जाता। ज्ञान-दशा प्राप्त होने पर सगुण की आवश्यकता नही रह जाती। वल्लभाचार्य का ब्रह्म केवल एक ही है। वही सगुण भी है और निर्गुण भी। वह निर्गुण इसलिए है कि उसमे जागतिक गुण नही, वह सगुण इसलिए है कि वह आनन्दादि दिव्यधर्मो वाला है। उसी प्रकार वह निराकार भी है साकार भी। वह आनन्दस्वरूप है।

ब्रह्म को जहाँ अन्य दार्शनिक परमार्थत अत्यन्त निर्धर्मक निर्विशेष, निराकार निर्गुण मानते हैं वहाँ आचार्य वल्लभ उस प्रकार न मानते हुए ब्रह्मसूत्रकार का आशय लेकर 'सर्व-धर्मोपपत्तेश्च' सर्वोपेता च तद्दर्शनात् इत्यादि ब्रह्मसूत्रोक्त सिद्धान्तो का अवलबन करके ब्रह्म

१ वेदा श्री कृष्ण वाक्यानि ब्रह्मसूत्राणि चैवहि।
समाधि भाषा व्यासस्यप्रमाण तच्चतुष्टयम्॥

२ धावन्निमील्य वा नेत्रे न पतेन्नस्खलेदिह॥
एष निष्कण्टक पथा यत्र सपूज्यते हरि।

को सर्वधर्ममय कहा है। नियतधर्मवाद स्वीकार करने से ब्रह्म मे इयत्ता आ जाती है। यहाँ तक कि अत्यन्त निर्गुण ब्रह्म मे भी इयत्ता आ जाती है। फिर अत्यन्त निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार करने से उसके ज्ञान तक होने की संभावना नही रहती। फिर तो मोक्षरूप परम पुरुषार्थ भी नही रहेगा। परिणामतः समस्त शास्त्र व्यर्थ हो जायँगे।

अतः श्रुति श्रीमद्भागवत् गीता, व्यास सूत्र एवं भागवत चारो की एक वाक्यता लेकर उनमे किसी प्रकार का नमक, मिर्च बिना लगाए आचार्य ने परब्रह्म को सर्वधर्मविशिष्ट मानते हुए उसे सच्चिदानद, परब्रह्म, व्यापक अव्यय सर्व शक्तिमान, स्वतंत्र, सर्वज्ञ और निर्गुण अर्थात् प्राकृत धर्म रहित माना है। उसी परम तत्व को श्रुतियो मे ब्रह्म, गीता मे परमात्मा और भागवत मे भगवान् कहा हैं। ब्रह्म निर्गुण है ज्ञेय है।[1] वही सगुण भी है और निर्गुण भी है। माया शवलित ब्रह्म जो ईश्वर है उसकी चर्चा वेदान्त मे नही है। वेदान्त मे उस प्रकार की सगुण निर्गुण कल्पना ही नही है। यह ब्रह्म स्वभाव से ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमत् और कर्ता है।[2] अत. ब्रह्म व्यापक है। देश, काल, वस्तु, स्वरूप आदि चतुर्धा परिच्छेद रहित है। इसी कारण सजातीय, विजातीय और स्वगत इस प्रकार के त्रिविध भेदो से विवर्जित है।[3] जीव और ब्रह्म सजातीय है। जड और ब्रह्म विजातीय है। अतर्यामी स्वगत है। तीनो मे ही ब्रह्म सम्यक् रूप से अनुस्यूत है।[4]

अनन्त स्वाभाविक गुणो से युक्त ब्रह्म मायाधीन नही किन्तु मायाधीश है। वह अद्वैत है, सर्वरूप है और सेव्य है। वही जानने योग्य है। वही सच्चिदानन्द, निर्गुण, अविकृत ब्रह्म कर्ता है, भोक्ता है, अन्तर्यामी है, वैश्वानर है और आधार आधेय दोनो है वही मुक्त प्राणभृत्, भूमन्, अक्षर, प्रकाशक, सेतु, परात्पर परमात्मा है। वही अपहतपाप्मन्, जगत कम्पन कर्ता परज्योति आकाशादि है। वही अव्यक्त सूक्ष्म, जीवाधिष्ठान सबका अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है। वह निराकार है। लौकिक, प्राकृत आकृति रहित है। लौकिक देह मे जिस प्रकार देह और आत्मा पृथक्-पृथक् हैं उस प्रकार ब्रह्म मे देह का और आत्मा का पार्थक्य नही, वह तो सपूर्ण और आनन्द रूप, रस रूप है। जिस प्रकार शर्करा की पुत्तलिका के समस्त अग शर्करामय होते हैं उसी प्रकार ब्रह्म (चैतन्य) सर्वाग मे आनन्द रूप है।[5] वह ब्रह्म निस्सीम परिपूर्ण रसमय, रस प्रचुर है। वह ब्रह्म सर्वत. पाणिपादान्त सर्वतः अक्षि, शिरो मुख, सर्वत श्रुतिमत् सबका आवरण करके ब्रह्म ही रहता है। उसके निखिल धर्म नित्य हैं सहज है, स्वाभाविक है। जो लोग उसे केवल निर्गुण कहते हैं वे भी उसे नित्य शुद्ध, बुद्ध,

१ सच्चिदानन्द रूपं तु ब्रह्म व्यापक मव्ययम्।
सर्वशक्ति स्वतंत्र च सर्वज्ञ गुण वर्जितम्॥ त०.दी० नि० ६५ सा० ३०

२ पराऽस्य शक्तिः विविधैव श्रूयते।
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च॥

३ सजातीय विजातीय स्वगत द्वैत वर्जितम्।
सत्यादि गुण साहस्रैर्युक्तमौत्पत्तिकैः सदा॥ त० दी० नि० ६६

४ तत्तु समन्वयात्। ब्रह्मसूत्र

५ निर्दोष पूर्ण गुण विग्रह आत्मतन्त्रो,
निश्चेतनात्मक शरीर गुणैश्च हीनः।
आनन्दमात्र करपाद मुखोदरादिः,
सर्वत्र च त्रिविध भेद विवर्जितात्मा॥ त० दी० नि० ४४।

मुक्त मानकर भी उसमे नित्यत्वादि धर्म मानते हैं। फिर 'ब्रह्म मे इतने ही धर्म हैं।'[1] इस प्रकार का नियत धर्मवाद मानने से ब्रह्म की इयत्ता स्थिर हो जाती है। इसलिए अनियत धर्मवाद का स्वीकार करके ब्रह्म मे सर्वधर्ममत्ता सहज ही है, ऐसा ही मानना चाहिए।

जगत् और जीव मे ब्रह्म के कार्य होते हुए भी ये ब्रह्म रूप ही हैं, ब्रह्मानन्य हैं, ब्रह्माभिन्न हैं फिर भी प्रापचिक पदार्थों से ब्रह्म विलक्षण है। उसे जब क्रीडा करने की इच्छा होती है तो आनदाश तिरोभूत हो जाता है। वस्तुत समस्त जगत् ब्रह्म मे ओत प्रोत है और अव्यक्त रीति से ब्रह्म में लीन है। इस ब्रह्मवाद मे सत्कार्यवाद ही इष्ट है फिर भी द्वैत की गध नही। इसलिए भागवत मे कहा है जहाँ जिसके कारण जिससे, जिसका, जिस लिए, जिस प्रकार जो भी जिस समय होता है वह सब प्रधान पुरुषेश्वर ब्रह्म ही है।[2] अत' वह न्यायोपबृ हित, सर्व वेदान्त प्रतिपाद्य, निखिल धर्म युक्त अनवगाह्य माहात्म्य, सर्वभवनसमर्थ है। इस प्रकार का जब उसके माहात्म्य का ज्ञान हो जाता है तो उसके स्वरूप के प्रति सर्वतोधिक स्नेह और भक्ति प्राप्त होती है। और उसी से मुक्ति होती है अन्य से नही।

ब्रह्म का विरुद्धधर्माश्रयत्व—ब्रह्म निर्धर्मक है तथापि सधर्मक है, निराकार है, तथापि साकार है, निर्विशेष है तथापि सविशेष है निर्गुण है अणु से अणु और महान् से महान् है। अनन्त मूर्ति है तथापि एक और व्यापक है, कूटस्थ है तथापि चल है, अकर्त्ता है, कर्त्ता भी है, अविभक्त भी है, विभक्त भी है। क्योकि जब इच्छा होती है तब प्रकट होता है। और तभी विभक्त होता है। वह अगम्य और गम्य दोनो है। वह अदृश्य है फिर भी दृश्य है। नाना विधि सृष्टि करता है फिर भी विषम नही। क्रूर कर्म करता है। परन्तु निर्घृण नहीं। ब्रह्म अनेक रूप है तथापि गाढ, घनीभूत, सैन्धववत् बाह्याभ्यन्तर सदा सर्वदा एक रस है, शुद्ध है। वह बालक है तथापि रसिक मूर्द्धन्य है। स्ववश है, तथापि भक्त पराधीन है। अभीत है परन्तु (भक्त के निकट) भीत है। निरपेक्ष है परन्तु (भक्त के निकट) सापेक्ष। चतुर है परन्तु भक्त के निकट महामुग्ध है। सर्वज्ञ है, परन्तु (भक्त के निकट) अज्ञ है। आत्माराम है फिर भी रमण करता है। पूर्णकाम है परन्तु (भक्त के निकट) दीन भी है। परन्तु (भक्त की कामना पूर्ण करने के लिए) कामार्त्त है। अदीन है किन्तु (भक्त के निकट) दीन है। स्वय प्रकाश है फिर भी (भक्तातिरिक्त) अप्रकाश है। बहिस्थ है परन्तु (भक्त के निकट) अस्वतत्र है। पराधीन, परवश है और रसिक वश भी है। यह ब्रह्म इन्द्रियातीत, अगम्य परन्तु स्वेच्छा से दृश्य होने वाला है और अवतार दशा मे प्रापचिक धर्म को अगीकार करने वाला है। अच्युत है और च्युति रहित है। इस प्रकार विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्व का अनुभव कराता हुआ नि सीम अगाध माहात्म्य प्रकट करता है। और तो क्या वह अविकृत है फिर भी कृपापूर्वक परिणामशील भी है।

ब्रह्म का सर्वकर्तृत्व —वस्तुत ब्रह्म अविकृत है। जगद्रूप मे परिणामशील होता हुआ भी अविकारी है और स्वीय अगाध माहात्म्य प्रदर्शनार्थ ही वह अविकृत निर्गुण

१ सर्वत श्रुति मल्लोके०।

२ यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा।
स्यादिद भगवान्साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वर ॥ त० दी० श्लो० ७४

ब्रह्म परिणामशील होता है। इसलिए 'जन्माद्यस्य यत., तथा शास्त्र योनित्वात्' आदि सूत्र ब्रह्मवाद के सिद्धान्त को पुष्टि करते हैं। इसलिए निर्गुण, अद्वैत, सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वत सहज कर्त्ता है और उसका यह कर्तृत्व स्वाभाविक है, मायिक नही, न आरोपित है। एक ही अद्वितीय ब्रह्म एकाकी रमण नही करता तभी वह दूसरे की इच्छा करता है।[1]

अथवा एकोऽहं बहुस्याम्[2] 'मैं एक हूँ अनेक हो जाऊँ" ऐसी इच्छा करता हुआ अत्यन्त अनुग्रह पूर्वक वह स्वयं ही सब कुछ हुआ। और जगद्रूप मे आविर्भाव पाकर लीला करता है। सक्षेप मे वह अविकृत, निर्गुण, सच्चिदानन्द ब्रह्म आविर्भाव तिरोभाव के द्वारा अनेक और विचित्र लीलाएँ करता है। इस प्रकार आचार्य के मत मे जगत् और ब्रह्म एक तत्व है। उन्होने ब्रह्म के तीन स्वरूप माने हैं:—

१—परब्रह्म—आधिदैविक स्वरूप।
२—अक्षर ब्रह्म—आध्यात्मिक स्वरूप।
३—जगत्—आधिभौतिक स्वरूप।

ये तीनों ही स्वरूप अनन्य हैं और अभिन्न हैं। फिर भी अक्षर ब्रह्म मे और पूर्ण ब्रह्म मे थोड़ा अन्तर है। इस अन्तर की चर्चा करने से पूर्व कविवर परमानन्ददासजी का ब्रह्म विषयक विवेचन देख लेना चाहिए।

**परमानंददास का ब्रह्म**—वस्तुतः परमानददासजी प्रकृत्या भक्त थे, दार्शनिक नही। अतः उन्होने दार्शनिक गुत्थियो मे उलझने की चेष्टा नही की। वे अन्य भक्त कवियो की भाँति कृष्ण लीला गान मे ही रत रहे, फिर भी प्रसग वश उन्होने भगवान की पूर्ण ब्रह्मत्व की यत्र-तत्र चर्चा की है। इस चर्चा से उनको साम्प्रदायिक दर्शन के बोध का परिचय मिलता है। उनके दार्शनिक सिद्धान्त एवं दर्शन संबधी मान्यताएं वही हैं जो उनके गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य की हैं। अतः उनको शुद्ध बुद्ध पूर्ण ब्रह्म ही कृष्ण है। कृष्ण और ब्रह्म मे कोई अन्तर नही। ब्रह्म ही अवतारी कृष्ण होकर निकुंज लीला के लिए भूतल पर आया है।[3] वह भक्तो का हितकारी है और उन्ही के प्रेम से वशीभूत होकर उसे लाने की आवश्यकता पड़ती है। वह ब्रह्म आनंद स्वरूप है। अतिमायिक है। मनुजावतार उसकी लीला के लिए है।[4] भागवत के अनुसार परमानदासजी भी यही कहते हैं कि सर्वभूतों मे स्थिति करने वाला विष्णु[5] जो बैकुंठ निवासी है। और शंख-चक्र गदा पद्म को धारण करने वाला है वही जगद्गुरू भक्तो की भ्रांति को नष्ट करने के लिए अवतार लेकर कृष्ण रूप मे इस धरा धाम पर आया है।[6] वह बैकुंठ

---

१ "स एकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्।"
२ तैत्तिरीयोपनिषद् २—६
३ मोहन नंदराय कुमार,
प्रगट ब्रह्म निकुंज नायक भक्त हेत अवतार।
४ आनंद की निधि नंदकुमार।
प्रगट ब्रह्म नट भेष नराकृति जग मोहन लीला अवतार।
५ निशीथे तमुद्भूते जायमाने जनार्दने। देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः॥ भा० १०।३।८
६ तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं, चतुर्भुजं शंख गदायुदायुधम्।
श्रीवत्स लक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीतांबरं सांद्र पयोद सौभगम्॥
परमानन्ददासजी कहते हैः—
पद्म धर्मों जन ताप निवारन।
चारों भुजा आयुध धरे नारायन भुवभार उतारन॥

निवासी भी है और व्यापक ब्रह्म भी।[1] वह कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थ[2] सर्वभवन क्षम और वानशा भी निर्माता है। फिर क्षीरसागर का भी वासी है। ब्रह्म, रुद्र इन्द्रादि उसके अनुचर हैं, वही ब्रज मे आकर नदगृह मे बालक बन गया है।[3] वही पुरुषोत्तम है। सबका स्वामी और लीलावतारी है।[4] वेदोंने उसका पार नही पाया और ऋषि मुनि गण भी जप तप करके उसकी पूरी खोज नही कर पाये।[5] वही पुरुषोत्तम पूर्णब्रह्म ब्रजभूमि मे अवतीर्ण हुआ है। उसके अवतार के मुख्य तीन हेतु हैं —

१—भूभार उतारना और भक्तो को सुख देना।

२—विविध लीलाओं द्वारा लोकरंजन सहित ऐश्वर्य प्रकट करना।

३—रसात्मक प्रेमलक्षणाभक्ति का आदर्श प्रस्तुत करते हुए गोपीजनोंके साथ निकुंज लीला करना।

अत निगमागम से प्रतिपाद्य पूर्णब्रह्म की चर्चा करते हुए भी परमानन्ददास भूभार उतारने वाले अवतारी विष्णु को नही भूलते। उनका ब्रह्म, शख, चक्रादि, आयुधो को धारण करने वाला विष्णु भी है और वही रसात्मक, रसेश श्रीकृष्ण है जो वृदावनचारी और गो, गोप, गोपीजनो, मे क्रीडा करने वाला है।[6]

वह अन्तर्बाह्य सब जगह व्यापक है—

"जित देखौ तित कृष्ण मनोहर दूजो दृष्टि ना परे री।
चित्त सुहावनी छवि अति सुन्दर रोम रोम रस हीं भरे री॥
शिव बिरंचि जहाँ ढूँढ़ँत फिरे सो मन मेरे अरे री।
परमानद लह्यौ सुख दरसन चित, कारज सबही सरे री॥ [पद संख्या ३७१]

---

१ परमानन्द प्रभु बैकुंठ जाके ब्रज लीनो अवतार।

२ विद्यानाथ अविद्या साख्य जो कछु सोइ करै।
रीतै भरै, भरै पुनि ढोरै, जो चाहे तो फेर भरे॥

३ सो गोविंद निहारे बालक।
प्रगट भए घनश्याम मनोहर धरें रूप दनुज कुल घालक॥
कमलापति त्रिभुवन पतिनायक भुवन चतुर्दश नायक सोई॥
उत्पति प्रलय काल को कर्ता जाके किए सबै कुछ होई॥
सुनहु नन्द उपनन्द कथा यह आयो छीरसमुद्र को बासी।
बसुधा भार उतारन कारन प्रगट भए बैकुंठ निवासी॥
ब्रह्मा महादेव इन्द्रादिक विनती करि यहाँ लाए।
परमानन्ददास को ठाकुर बहुत पुन्य तप के तुम पाए॥

४ ब्रह्म रुद्र इद्रादि देवता जाकी करत किवार।
पुरुषोतम सबही को ठाकुर यह लीला अवतार॥

५ या धन को मुनि जप तप खोजत वेदहु पार न पायो।
सो धन धर्यो छीरसागर मँह ब्रह्मा जाय जगायो।

६ ब्रह्मादिक रुद्रादिक जाकी चरन रेनु नहिं पाई।
सोई नन्दजू को पूत कहावै कौतुक सुनो मेरी माई।

सो हरि परमानन्द को ठाकुर ब्रज जनु केलि कराई।

ब्रह्म परिणामशील होता है। इसलिए 'जन्माद्यस्य यत तथा शास्त्र योनित्वात्' आदि सूत्र ब्रह्मवाद के सिद्धान्त को पुष्टि करते हैं। इसलिए निर्गुण, अद्वैत, सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वत सहज कर्त्ता है और उसका यह कर्तृत्व स्वाभाविक है, मायिक नही, न आरोपित है। एक ही अद्वितीय ब्रह्म एकाकी रमण नही करता तभी वह दूसरे की इच्छा करता है।[1]

अथवा एकोऽहं बहुस्याम्[2] 'मैं एक हूँ अनेक हो जाऊँ" ऐसी इच्छा करता हुआ अत्यन्त अनुग्रह पूर्वक वह स्वय ही सब कुछ हुआ। और जगद्रूप मे आविर्भाव पाकर लीला करता है। सक्षेप मे वह अविकृत, निर्गुण, सच्चिदानन्द ब्रह्म आविर्भाव तिरोभाव के द्वारा अनेक और विचित्र लीलाएँ करता है। इस प्रकार आचार्य के मत मे जगत् और ब्रह्म एक तत्व है। उन्होंने ब्रह्म के तान स्वरूप माने हैं:—

१—परब्रह्म—आधिदैविक स्वरूप।
२—अक्षर ब्रह्म—आध्यात्मिक स्वरूप।
३—जगत्—आधिभौतिक स्वरूप।

ये तीनो ही स्वरूप अनन्य हैं और अभिन्न हैं। फिर भी अक्षर ब्रह्म मे और पूर्ण ब्रह्म मे थोडा अन्तर है। इस अन्तर की चर्चा करने से पूर्व कविवर परमानन्ददासजी का ब्रह्म विषयक विवेचन देख लेना चाहिए।

**परमानंददास का ब्रह्म**—वस्तुत परमानददासजी प्रकृतया भक्त थे, दार्शनिक नही। अतः उन्होने दार्शनिक गुत्थियो मे उलझने की चेष्टा नही की। वे अन्य भक्त कवियो की भाँति कृष्ण लीला गान मे ही रत रहे, फिर भी प्रसग वश उन्होने भगवान की पूर्ण ब्रह्मत्व की यत्र-तत्र चर्चा की है। इस चर्चा से उनको साम्प्रदायिक दर्शन के बोध का परिचय मिलता है। उनके दार्शनिक सिद्धान्त एवं दर्शन सबधी मान्यताए वही हैं जो उनके गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य की हैं। अतः उनको शुद्ध बुद्ध पूर्ण ब्रह्म ही कृष्ण है। कृष्ण और ब्रह्म मे कोई अन्तर नही। ब्रह्म ही अवतारी कृष्ण होकर निकुंज लीला के लिए भूतल पर आया है।[3] वह भक्तो का हितकारी है और उन्ही के प्रेम से वशीभूत होकर उसे लाने की आवश्यकता पडती है। वह ब्रह्म आनद स्वरूप है। अतिमायिक है। मनुजावतार उसकी लीला के लिए है।[4] भागवत के अनुसार परमानदासजी भी यही कहते हैं कि सर्वभूतो मे स्थिति करने वाला विष्णु[5] जो बैकुंठ निवासी है। और शख-चक्र गदा पद्म को धारण करने वाला है वही जगद्गुरू भक्तो की भ्राति को नष्ट करने के लिए अवतार लेकर कृष्ण रूप मे इस धरा धाम पर आया है।[6] वह बैकुंठ

१ "स एकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्।"
२ तैत्तिरीयोपनिषद् २—६
३ मोहन नंदराय कुमार,
प्रगट महम निकुंज नायक भक्त हेत अवतार।
४ आनंद की निधि नंदकुमार।
प्रगट ब्रह्म नट भेष नराकृति जग मोहन लीला अवतार।
५ निशीथे तमुद्भूते जायमाने जनार्दने। देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः॥ भा० १०।३।८
६ तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं, चतुर्भुज शख गदाद्युदायुधम्।
श्रीवत्स लक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीतांबर सांद्र पयोद सौभगम्॥

परमानन्ददासजी कहते हैं:—
पद्म धर्मों जन ताप निवारन।
चारों भुजा आयुध धरे नारायन भुवभार उतारन॥

निवासी भी है और व्यापक ब्रह्म भी।[1] वह कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थ[2] सर्वभवन क्षम और पालक भी निर्माता है। फिर क्षीरसागर का भी वासी है। ब्रह्म, रुद्र इन्द्रादि उसके अनुचर हैं, वही व्रज मे आकर नदगृह मे बालक बन गया है।[3] वही पुरुषोत्तम है। सबका स्वामी और लीलावतारी है।[4] वेदोंने उसका पार नही पाया और ऋषि मुनि गण भी जप तप करके उसकी पूरी खोज नही कर पाये।[5] वही पुरुषोत्तम पूर्णब्रह्म व्रजभूमि मे अवतीर्ण हुआ है। उसके अवतार के मुख्य तीन हेतु हैं —

१—भूभार उतारना और भक्तों को सुख देना।

२—विविध लीलाओं द्वारा लोकरंजन सहित ऐश्वर्य प्रकट करना।

३—रसात्मक प्रेमलक्षणाभक्ति का आदर्श प्रस्तुत करते हुए गोपीजनोंके साथ निकुंज लीला करना।

अत निराकरण से प्रतिपाद्य पूर्णब्रह्म की चर्चा करते हुए भी परमानन्ददास भूभार उतारने वाले अवतारी विष्णु को नही भूलते। उनका ब्रह्म, शख, चक्रादि, आयुधो को धारण करने वाला विष्णु भी है और वही रसात्मक, रसेश श्रीकृष्ण है जो वृंदावनचारी और गो, गोप, गोपीजनो, मे क्रीडा करने वाला है।[6]

वह अन्तर्बाह्य सब जगह व्यापक है—

"जित देखो तित कृष्ण मनोहर दूजो दृष्टि ना परे री।
चित्त सुहावनी छवि अति सुन्दर रोम-रोम रस ही भरे री॥
सिव विरचि जहाँ ढूँढ़त फिरे सो मन मेरे अरे री।
परमानद लह्यो सुख दरसन चित, कारज सबही सरे री॥ [पद संख्या ३७१]

---

१ परमानन्द प्रभु बैकुंठ जाके ब्रज लीनो अवतार।

२ विद्यानाथ अविद्या साथ जो कछु सोई करै।
रीतै भरै, भरै पुनि ढोरै, जो चाहे तो फेर भरे॥

३ सो गोविंद तिहारे मन बालक।
प्रगट भए घनस्याम मनोहर धरें रूप दनुज कुल घालक॥
कमलापति त्रिभुवन पतिनायक भुवन चतुर्दश नायक सोई॥
उत्पति प्रलय काल को कर्ता जाके किए सबै कुछ होई॥
सुनहु नन्द उपनन्द कथा यह आयो छीरसमुद्र को बासी।
वसुधा भार उतारन कारन प्रगट ब्रह्म बैकुंठ निवासी॥
ब्रह्मा महादेव इन्द्रादिक विनती करि यहाँ लाए।
परमानन्ददास को ठाकुर बहुत पुन्य तप कै तुम पाए॥

४ ब्रह्म रुद्र इन्द्रादि देवता जाकी करत विचार।
पुरुषोतम सबही कौ ठाकुर यह लीला अवतार॥

५ या धन को मुनि जप तप खोजत वेदहु पार न पायो।
सो धन धर्यो छीरसागर मँह ब्रह्मा जाय जगायो।

६ ब्रह्मादिक रुद्रादिक जाकी चरन रेनु नहिं पाई।
सोई नन्दजू को पूत कहावै कौतुक सुनो मेरी माई।

सो हरि परमानन्द को ठाकुर ब्रज जनु केलि कराई।

वह रमणशील क्रीड़ाशील, रसात्मक रस शिरोमणि है फिर भी नन्दनन्दन है—

रसिक सिरोमनि नन्दनन्दन ।

रसमें रूप अनूप विराजत, गोप वधू उर सीतल चन्दन ।।

जब वह रास क्रीड़ा करता है तब अखिल भुवन मुग्ध हो जाता है—

सरद विमल निसि चन्द विराजित क्रीड़ित यमुना कूलें हो ।

परमानन्द स्वामी कौतूहल, देखत सुर नर भूलें हो ।। [प० सं० ३१८]

वह परब्रह्म कृष्ण अनुपम सौन्दर्यशाली, कोटि कन्दर्प लावण्यवपुप नराकृति होकर भी वेद पुराण प्रतिपाद्य है—

सुन्दरता गोपालहिं सोहै ।

कहत न बैन नैन मन आनन्द जा देखत रति नायक मोहै ।

सुन्दर चरन कमल, गति सुन्दर गुँजा फल अवतंस ।

सुन्दर बन माला उर मंडित, सुन्दर गिरा मनो कल हंस

सुन्दर बेनु मुकुट मनि सुन्दर, सुन्दर सब अंग स्याम सरीर ।

सुन्दर बदन अवलोकित सुन्दर-सुन्दर ते बल वीर ।।

वेद पुराण निरुपत बहु विध ब्रह्म नराकृति रूप निवास ।

बलि-बलि जाउं मनोहर मूरति हृदय बसो परमानन्ददास ।। [प० सं० ३११]

'रसो वै सः' के अनुसार वह रस स्वरूप है । भागवतादि महापुराणों मे उस रसेश की चर्चा है, शुक, व्यास आदि मुनि पुंगव उस रसात्मा की ही अहर्निश चर्चा करते हैं । आगम निगम जिसका पार नही पाते और अगाध बताकर मौन हो जाते हैं वही यमुना के तट के निकट वंसीवट में राधिका के साथ विहार करता है—

जो रस रसिक कीर मुनि गायो ।

सो रस रटत रहित निस वासर सेप सहस मुख पार न पायो ।।

गावत सिव, सारद, मुनि नारद, कमल कोस, ने कौन चलायो ।

जद्यपि रमा रहत चरणन तर, निगमनि अगम अगाध बतायो ।।

तरनि तनया तट बंसीवट निकट वृन्दावन वीथिन बहायो ।।

सो रस रसिक दासपरमानन्द वृखभानु सुता उर माझ समायो ।। [प० सं० ३१५]

वह दिव्य रस कर्मठ और ज्ञानियों की पहुँच से बाहर है, यह केवल रसिकों को ही सुलभ है और केवल भक्ति-साध्य है । भगवान के अनुग्रह से परमानन्द जैसे भक्तों को यत्किंचित् उपलब्ध हो जाता है—

आनन्द सिन्धु बढ्यो हरि तन में ।

ना परस्यो करमठ अरु ज्ञानिनु अटकि रह्यो रसिकन के मन मे ।

मंद-मंद अवगाहत बुधि बल भक्ति हेत प्रगटत छिनु मे

कछुक लहत नन्दसुवन कृपाते सो दिखियत परमानन्द जन मे ।। [प० सं० ३१६]

सक्षेप मे परमानन्ददास पूर्णब्रह्मके उपासक हैं। वही पूर्णब्रह्म उनका त्रिभुवन पति-परमात्मा श्रीकृष्ण है अवतार धारण करके भक्तो को सुख देने के लिए वह ब्रजभूमि मे नाना लीलाए किया करता है। वह निर्गुण सगुण दोनो है। वह प्राकृत लीला करने के कारण सगुण है। वह लीलावतारी निजेच्छासे नन्द यशोदा गो, गोप, गोपीजनो को सुख देने के लिए ही स्वय अवतीर्ण होता है। वह ब्रह्मा, रुद्रादि से वदनीय आनन्द स्वरूप रस रूप है। सबसे परे और सर्वमय है। वह निगम प्रतिपाद्य होकर भी राधा का जीवनाधार है। उस गोपीनाथ की परमानन्ददास उपासना करते है। कृष्णावतार मे परमानन्ददासजी की सहज प्रीति है। [1]

**अक्षर ब्रह्म**—ऊपर कहा जा चुका है कि ब्रह्म के तीन स्वरूप है। उसमे आधिदैविक ब्रह्म भक्तो को ही प्राप्य है। आध्यात्मिक ब्रह्म को ही अक्षर ब्रह्म कहते है। यदि शुद्धाद्वैत ज्ञानी भक्ति रहित हो तो उसका अक्षर ब्रह्म मे लय होता है। अर्थात् ज्ञानी को अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जगत् तो ब्रह्म का आधिभौतिक स्वरूप है।

भगवान् जब जिस रूप द्वारा जो कार्य करने की इच्छा करते है तब उसी स्वरूप से वे समस्त व्यापार भी करते हैं। अत ज्ञानी को जब ज्ञान द्वारा मोक्षदान करने की इच्छा करते है तब वे, पुरुषोत्तम के आधार भाग चरण स्थानीय अक्षरब्रह्म के अक्षररूप कालरूप, कर्मरूप, और स्वभावरूप—चार स्वरूप ग्रहण करते हैं। उस समय प्रकृति और पुरुष इस प्रकार द्विरूप होकर वह अक्षरब्रह्म, पुरुषोत्तम पूर्णसत्, पूर्णचित्, पूर्ण प्रकटानन्द होता है। परन्तु अक्षर ब्रह्म मे आनन्द का कुछ तिरोभाव होता है, इसलिए वह गणितानन्द कहलाता है। यही उसकी विलक्षणता है। [2] मानवीय आनन्द लेकर अक्षरानन्द पर्यन्त आनन्द की इयत्ता है। इसी कारण तैत्तरीयोपनिषद् मे कहा है—

'सैषा ऽऽनन्दस्य मीमासा" ॥

"मुझे इस प्रकार से प्रकट होकर यह लीला करना है।"

इस प्रकार जब पुरुषोत्तम को इच्छा मात्र होती है तब अन्त करण मे सत्व का समुत्थान होता है और उससे आनदाश तिरोभूतवत् हो जाता है। पुरुषोत्तम वस्तुत लीला की इच्छा मात्र करता है, इच्छा मे व्यापृत नही होता अत पुरुषोत्तम सदैव अतिरोहितानन्द है और अक्षर ब्रह्म की इच्छा मे व्यापृत होजानेके कारण सत्व के समुद्भूत होने से तिरोहितानन्द हो जाता है।

अक्षरब्रह्म मे आनद तिरोहित है फिर भी वह जीव से विलक्षण है। वस्तुत अक्षर ब्रह्म मे इच्छा के प्रविष्ट होने से और कार्य व्यापृति आने से उसमे आनद का तिरोभाव कहा जाता है अन्यथा है वह है आनदमय ही। इसी की ब्रह्म, कूटस्थ, निर्विकार- अव्यक्त आदि सज्ञाए है। [3] अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम शाश्वत है और मूल पुरुषोत्तम के साथ अविच्छिन्न होने से ही इस अक्षरब्रह्म की अवस्थिति है। अक्षरब्रह्म मे सर्वावरण युक्त कोटिश अण्ड हैं यही परमधाम है, परमव्योम है और हसस्वरूप का पुच्छ है।

---

१ सहज प्रीति गोपालहिं भावै। प० स० २८५
तथा
मोहि भावै देवादि देवा। प० स० ६६७

२ इयदामननात्—ब्र० सू० ३ ३ ३४

३ अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहु परमां गति। गीता। ८। २१

परमानददास का अक्षरब्रह्म—परमानददासजी मुख्यत लीलागायक है। वे दार्शनिक नही, वे आचार्य प्रतिपादित दर्शन पद्धति ही स्वीकार करके भी गूढ सिद्धात की बातों की चर्चा करना पसन्द नही करते।[१] फिर भी वे मानते हैं आदि अनादि सनातन अनुपम-अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म लीला के लिए सगुण बन जाता है।[२]

जीवस्वरूप—ब्रह्मवाद का सिद्धान्त है कि जब ब्रह्म को अनेक होकर रमण करने की इच्छा होती है [३] तब पूर्ण आनद का तिरोधान करके जीव का स्वरूप ग्रहण करके क्रीडा करता है। ब्रह्म अविद्या के कारण जीव रूप मे भासता है। ऐसा सिद्धान्त शुद्धाद्वैत वाद का नही।

"मैं अनेक होउ उच्च होऊँ नीच होउ" ऐसी भावना जब ब्रह्मने की तो उसकी इच्छा मात्रसे ही ब्रह्म मे से साकार सूक्ष्म, परिच्छन्न चित् प्रधान असख्यात अशो का प्रथम सृष्टि के समय निर्गमन हुआ।[४]' यह सिद्धान्त ही ब्रह्मवाद को मान्य है।

अत सपूर्ण जीव साकार भगवद्रूप, उच्च नीच भावो से युक्त होकर उसी प्रकार से ब्रह्म मे से व्युच्चरित हुए जिस प्रकार अग्नि मे से विस्फुलिंग निर्गमित होते है।

इस जीव को स्वरूपभोग और जीवभोग सिद्ध हो ब्रह्म की इस इच्छा से और उसकी कृपा से जीव मे से आनदाश का तिरोधान हुआ और उसके ऐश्वर्यादि धर्म भी तिरोहित हुए। ऐश्वर्यके तिरोभाव से दीनत्व, पराधीनत्व, वीर्य के तिरोभाव से सब दु ख सहन, यश के तिरोभाव से सर्वहीनत्व, श्रीके तिरोभाव से जन्मादिके सर्वापद्विषयत्व, ज्ञा। के तिरोभाव से देहादिमे अहबुद्धि और विपरीत बुद्धि, वैराग्यके तिरोभावसे विषयासक्ति आदि का जीव मे आविर्भाव हुआ है। प्रथम चार ऐश्वर्य, वीर्य, यश श्री के अभाव से जीव को बन्धन तथा अन्तिम दो—ज्ञान और वैराग्यके अभाव से विपर्यय हुआ। यह बन्धन जीवस्वरूप को ही होता है, ब्रह्मस्वरूप को नही होता। बन्धनग्रस्त जीव ससार चक्र मे फँसता है। इस बन्धन से मुक्ति भजन द्वारा ही हो सकती है। जब जीव मे मुक्ति भजन द्वारा ही हो सकती है। जब जीव मे पुन ऐश्वर्यादि षट्धर्म और आनदाश का आविर्भाव होता है तो वह ससार क्लेशसे मुक्ति पा जाता है।

ब्रह्मवाद मे जीव नित्य है।[५] उसकी उत्पत्ति नही होती। इसके-साथ साथ उसका असत्यत्व, अलौकत्व, मिथ्यात्व भी ब्रह्मवादमे नही माना गया। शाकर मत मे जीव के नित्यत्व की सभावना ही नही न उसका नाम-रूप सबध है।

---

१ अपने गूढ मते की बातैं काहूँसौं नहि कहिए।

२ हँसते गोपाल नन्द के आगे नदस्वरूप न जाने।
निर्गुण ब्रह्म सगुन धरि लील ताहिअब सुत धरि माने॥

३ एकोऽह बहुस्याम्—तै० ३२।

४ बहुस्यां प्रजायेति वीक्षा तस्यत्वभूत्सती, तदिच्छा मात्रस्तस्माद् ब्रह्म भूतांश चेतना ॥२७॥
सृष्ट्यादौ निर्गता सर्वे निराकार स्तदिच्छया ॥ त० दी० नि० २७ २८
विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु सदशेन जडा अपि ॥२८॥ त० दी० नि०

५ नजायते म्रियते वा कदाचि न्नायभूत्वा भविताबानभूय।
अजो नित्य शाश्वतोऽय पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ श्रीमद्भग० २। २०

विस्फुलिंगवत् व्युच्चरण उत्पत्ति नहीं, वह न जन्मता है न मरता है। उसका आविर्भाव होता है। जनन मरण जातकर्मादि औपचारिक धर्म हैं। और शरीर के धर्म हैं। जीव के नहीं। जीव ज्ञाता है ज्ञान उसका धर्म है। जीव धर्मी है। प्रकाशक चैतन्य उसका धर्म है इस कारण जीव तेजोमय ज्योतिः स्वरूप है, विज्ञानमय है और प्रकाशित होता है। सूर्य और उसकी प्रभा मे जिस प्रकार धर्मी और धर्म का अभेद है उसी प्रकार ज्ञाता (जीव) और ज्ञान मे अभेद है।

जीव का अणुत्व—

शांकर मत मे जिस प्रकार जीव को विभु माना है उसी प्रकार शुद्धाद्वैत मे उसे अणु माना है। क्योंकि उसमे उत्क्रान्ति, गति, अगति, आदि की योग्यता स्वीकार की गई है। किन्तु शांकर मत मे जीव को अकर्ता अभोक्ता माना है। शुद्धाद्वैत सिद्धान्त मे जिस प्रकार सर्वधर्म विशिष्ट ब्रह्म कर्ता है, भोक्ता है तो तदंश जीव भी ब्रह्म के संबंध से कर्ता है भोक्ता है। उसका कर्तृत्व भोतृत्व औपचारिक नहीं है। बुद्धि तो कारण मात्र है। 'जीव सनातन है और भगवदंश है।'[१] गीता के इस कथन के अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्य जीव को ब्रह्म का अंश ही स्वीकार करते हैं। और इस प्रकार निर्धर्मी निरवयव, निरंशब्रह्म, सधर्मी सावयव, सांश हो जाता है। और इसलिए अंशांशी भाव के आधार पर ब्रह्मवाद अथवा शुद्धाद्वैत मे ब्रह्म और जीव मे अभेद माना जाता है।

'तत्वमसि महावाक्य के आधार पर शांकर मत वाले जीव का अणुत्व स्वीकार नहीं करते। भागत्याग लक्षणा के आधार पर जीव और ब्रह्म मे एकत्व स्थापित किया जाता है। और इसी-लिए वहाँ शांकर मत वालों का विचार है कि जीव मे अणुत्व कैसा ? परन्तु सूत्रकार ने इस आपत्ति को—"तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्"[२] कहकर समाप्त कर दिया है। 'तत्वमसि' मे जो एकत्व की ओर संकेत है वह उनके गुण को लक्ष्य करके है। ब्रह्म का प्रधान धर्म आनन्द है। जीव मे यह धर्म अप्रत्यक्ष है, जब यह प्रत्यक्ष हो जाता है तब जीवब्रह्म हो जाता है। यही 'तत्वमसि' का तात्पर्य है। 'यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात्'[३] सूत्र मे यही बात कही गई है।

परमानन्ददासजीके जीव विषयक विचार—

परमानन्ददासजी ने अपने लीला प्रधान काव्य मे शुद्धाद्वैत सिद्धान्तके आधार पर जीव की बहुत लम्बी चौडी व्याख्या न करके उन्होंने अंशांशी भाव की बड़ी ही बढ़िया कल्पना की है।

वे लिखते हैं कि:—

तातैं गोविंद नाम लै गुण गायो चाहो।
चरण कमल हित प्रीति करि सेवा निरवाहो॥
जो हौं तुम में मिलि रहौं कछु भेद न पाउं॥
प्रलै काल के मेघ ज्यौं तुम मांझ समाउं॥

१ ममैवांशो जीव लोके जीवभूतः सनातनः। गीता १५ / ७
२ ब्रह्मसूत्र—२-३-२९
३ वही—२-३-३०

जीव ब्रह्म अन्तर नही मणि कचन जैसे ।।
जल, तरग प्रतिमा सिला कहिबे को ऐसे ।।
जिन सेवा सचुपाइए पद अबुज आसा ।।
सो मूरति मेरे हृदय बसो परमानन्ददासा ।। [प० स० ७२२]

परमानन्ददासजी के मत मे जीव की स्थिति इसलिए है कि भगवान की भक्ति करे और लीला गान करे। यदि जीव की सत्ता न हो तो प्रेमलक्षणाभक्ति का आदर्श किस प्रकार निष्पन्न हो सकेगा। भगवच्चरणारविंद से वियुक्त जीव भगवान का नाम स्मरण करके अनन्य प्रेम से उनकी सेवा मे तल्लीन रहे, यही उसका आदर्श होना चाहिए।

यदि वह लयावस्था ( नाम रूप से रहित ) मे रहे तो पडैश्वर्यादि से युक्त भगवान के स्वरूप को कैसे जानेगा और उस परम अगाध भगवद्रहस्य से परिचित कैसे होगा। इसलिए उसे पुष्टि जीव के रूप मे उस परमात्मा की इच्छा से आविर्भूत अवश्य होना पडता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नही कि जीव और ब्रह्म दो भिन्न वस्तु हैं। जीव ब्रह्म मे मणि-कचन की भाँति कोई अन्तर नही है। जल और उसका तरग तत्वत एक ही हैं, केवल पडैश्वर्यादि के अभाव अथवा आनन्दाश के तिरोहित रहने के कारण ही उसकी जीव सज्ञा हुई। आचार्यचरण भक्ति का लक्ष्य भजनानन्द मानते है सायुज्यमोक्ष नही। जैसा कि अन्य भक्त्याचार्यो की भक्ति का लक्ष्य है।

जीव का नाम—रूप भजनानद की सिद्धि के लिए है। इस नाम रूप के भेद से तात्विक अतर नही होता। शिला और उसकी प्रतिमा मे जैसे कोई तात्विक अन्तर नही होता दोनो ही मूलत एक हैं, उसी प्रकार जैसे कटक-कुण्डल और शुद्ध स्वर्ण मे कोई तात्विक भेद न होकर केवल नाम रूप का भेद है उसी प्रकार जीव ब्रह्म मे तात्विक अन्तर नही। जिस प्रकार सर्प साधारणत सीधा होता है। परन्तु स्वेच्छा से कुंडलाकृति तथा अनेकाकार हो जाता है। उससे यह सिद्ध नही कि सर्प अनेक है। इसी प्रकार ब्रह्म अनेक विकार (परिवर्तन) अथवा रूपो को धारण करके भी अविकृत और सविशेप दोनो है। वह निराकार भी है साकार भी।[1] यहाँ तक कि ब्रह्म के समस्त धर्म भी ब्रह्म ही मे। वे उससे भिन्न नही।

वस्तुत: मायावाद और ब्रह्मवाद दोनो को अद्वैत ब्रह्म ही मान्य है। शाकर मत मे सर्वाद्वैत माया, अविद्या, मिथ्या, आदि शब्दो का सहारा लेकर अद्वैत को बोधगम्य कराने का प्रयत्न किया जाता है, परन्तु ब्रह्मवाद या शुद्धाद्वैत सिद्धान्त मे भगवदिच्छा भगवत्कृपा, भगवत्क्रीड़ा, भगवल्लीला, भगवद्रूप आदि शब्दो के द्वारा सबके सामजस्य के निरूपण की चेष्टा होती है। इस प्रकार परमानददासजी के मत मे जीव भी कुण्डल के कनक अथवा प्रतिमा के पाषाण की भाँति तत्वत है ब्रह्म ही। जल और तरग मे नाम भेद मात्र है। जीव मे पडैश्वर्य का अभाव या आनदाश का तिरोधान उस क्रीडामय प्रभु की ही इच्छा का परिणाम है।

परमानन्ददासजी ने जीव का ब्रह्मत्व प्रतिपादन करके भी अविद्या को स्वीकार किया है। वे कहते हैं कि.—

हरि जू की लीला काहि न गावत।
राम कृष्ण गोविन्द छाडि मन और बके कहा पावत ।।

१ तस्मात् सकल विरुद्धधर्मा भगवत्येव वर्तन्त इति न कापि श्रुति रूप परिनार्थतेति सिद्धम्-अणुभाष्य

जरो सुक नारद मुनि ग्यानी यह रस अनुदिन पीवत ॥
आनन्दमूल कथाके लपट या रस ऊपर जीवत ॥
देखु विचार कहा धौ नीको जेहिं भव सागर ते छूटैं ॥
परमानन्द भजन बिन साधे क्यों अविद्या टूटैं ॥ [प० स० ६८६]

इस अविद्या से ही यह जीव माया ममता मे फसा हुआ आत्मस्वरूप या भगवत्स्वरूप को भूला हुआ है। इसी को लक्ष्य करके महाकवि परमानन्ददास कहते है कि ये जीव तीनो काल मे भगवत्स्वरूप है परन्तु बीच मे अविद्या के कारण आत्मस्वरूप को भूला हुआ है।

हरि जस गावत।
बीच एक अविद्या भासत वेद विदित यह बात।
सूर भी यही कहते हैं.—
अपुनपौ आपुन ही बिसर्‌यौ।
जैसे स्वान कांच मदिर महँ भ्रमि-भ्रमि भूँसि मर्‌यौ ॥

× × ×

सूरदास नलिनी को सुवटा कहि कौने जकर्‌यौ। [सूरसागर प्र० स्कध]
आत्मस्वरूप की इस भयकर विस्मृति को लक्ष्य करके परमानन्ददासजी ने कहा है —
माई हौं अपने गोपालहिं गाउ।
सुन्दर स्याम कमल दल देखि-देखि सुख पाउ।

× × ×

जो ग्यानी ते ग्यान विचारौ जे जोगी ते जोग।
कर्मठ होय ते कर्म विचारौ जे भोगी ते भोग ॥

× × ×

अपने अंसी की सुरत तजी है, मांग लियो ससार ॥
परमानन्द गोकुल मथुरा मे उपज्यो यहै विचार ॥ [प० स० ५०२]

अंशी (परमात्मा, की विस्मृति से वह जीव ससारी हो गया है। इस विस्मृति के कारण ही वह जीव कहलाया। यह जीव अनत काल से क्लेश पा रहा है। गुरु के द्वारा पुन आत्मस्वरूप का बोध कराये जाने पर उसका तिरोहित हुआ आनन्दांश आविर्भूत होता है और वह फिर 'ब्रह्मी भूत प्रसन्नात्मा' हो जाता है। सूर ने इस विस्मृति के चले जाने और आनन्दाश के प्रकट हो जाने को इस प्रकार कहा है कि—

"अपुनपौ आपुन ही मे पायौ।"
शब्द ही शब्द भयौ उजियारौ सतगुरु भेद बतायौ।"

सक्षेप मे परमानन्ददासजी ने भी आचार्य वल्लभ और सूर की भांति ईश्वर और जीव मे तात्विक अभेद और परस्पर अंशी सबध स्वीकार किया है।

शुद्धाद्वैत दर्शन मे जगत्—जगत् भगवदनन्य है और भगवद्रूप है। शुद्धाद्वैतवादी जगत् का अभिन्न निमित्तोपादन कारण ब्रह्म ही को स्वीकार करते हैं। जगत सत् है अत उसकी उपलब्धि होती है। असत् पदार्थ का भाव ही नही होता और अभाव मे सत् नही होता।[१] फिर "भावेच उपलब्धे' तथा 'भावे जाग्रद्वत्' के अनुसार जब घटकी सत्ता है तभी उसकी उपलब्ध होती है अन्यथा घटाभाव मे उसकी उपलब्धि नही होती। इसी प्रकार घट भी एक मृत्तिका का प्रकार है। उसी प्रकार जगत् भी ब्रह्म रूप ही है। जिस प्रकार अग्निविस्फुलिंग पुंज से निर्गत होते है उसी प्रकार ब्रह्म के सदश से जड पदार्थो का निर्गमन हुआ। अग्निविस्फुलिंग की भाँति ब्रह्मके सदश मे आविर्भूत जड भी ब्रह्मरूप ही है।[२] इसलिए जगत सत्य है श्रुति कहती है— सदेव सौम्य इदमग्रे आसीत्।' यदिद किच तत्सत्यमिति आचक्षते।' फिर ब्रह्म और जगत मे समवाय सबध भी तभी सभव है जब दोनो सत्य और नित्य हो।[३] ब्रह्म की इच्छा मात्र से आकाशादि पचतत्वात्मक प्रपच की उत्पत्ति हुई।[४]

यह जगत् कार्य है और ब्रह्म कारण। वह अपनी इच्छा से अपने सदश से इसे आविर्भूत कर देता है जिस प्रकार उर्णनाभि (मकड) अपने मे से ही जाल का पसारा कर देती है फिर अपने मे उसे समेट लेती है। उसी प्रकार ब्रह्म भी जगत को अपने मे लय कर लेता है। अत यह जगत विकार अथवा परिणाम नही अपितु अविकृत है। इसीलिए शुद्धाद्वैत सिद्धान्त अविकृत परिणाम वाद को स्वीकार करता है।

**जगत और ससार का भेद**—प्राय अन्य सिद्धान्तो मे जगत् को ससार और ससार को जगत् मान कर उनमे अभेद भावना मानी है। परन्तु शुद्धाद्वैत सिद्धान्त की यह अपनी विशेषता है कि उसमे जगत और ससार का भेद बहुत ही स्पष्ट रूप से किया गया है। जगत भगवत्कार्य[५] होने के कारण वह सत्य है और भगवद्रूप है परन्तु ससार अहता ममतात्मक है और जीव ने उसे अविद्या के कारण मान रखा है। यह अविद्या भी विद्या के समान भगवान की ही शक्ति है।[६] ससार का नाश है। ज्ञान से उसका नाश हो जाता है किन्तु जगत् का नाश नही—लय है, यह लय भी आत्मरमण की इच्छा से भगवान करे तभी होता है इस प्रकार जगत और ब्रह्म यह द्वैत—भगवत्कार्य है। अविद्या का नही परन्तु द्वैत ज्ञान (मैं अलग हूँ यह अलग है) अविद्या का कार्य है। इस अविद्या से जीवन मुक्त होता है। यह अविद्या पच पर्वा है। अविद्या, अस्मिता राग, द्वेष और अभिनिवेश। और जीव को क्लेशदायिनी है। अविद्या के अभ्यास से जीव को ससारी बनाती है। अत ससार अविद्या का परिणाम है, जगत ब्रह्म का रूप है। ससार की स्थिति ज्ञान न होने तक ही है। रागद्वेष और अहता ममता के चले जाने पर ससार नष्ट हो जाता है। ससार के कारण जीव को सुख-दुःख होते हैं जगत् के कारण नही। अत शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में जगत और ससार पृथक् पृथक् हैं।

---

१ नासतो विद्यते भावो नाभावे विद्यते सत —गीता। १२। १६
२ विस्फुलिगां इवाग्नेस्तु सदशेन जड़ा अपि–। त० नि० २८
३ जगत समवायि स्यात् तदवेच निमित्तकम्-तत्व। दी० न०
४ तदिच्छा मात्रतस्तस्माद् ब्रह्म भूतांश चेतना। त० दी० नि० २७
५ अह कृत्स्नस्यजगत प्रभव प्रलयस्तथा। गीता
६ विद्या विद्ये हरे शक्ती माययैव विनिर्मिते।
ते जीवस्यैव नान्यस्य दु खित्व चाप्यनीशता॥ त० दी० नि० ३१

परमानन्ददासजी के काव्य में जगत् और संसार—

भगवल्लीला में मस्त रहने वाले भक्तप्रवर परमानन्ददासजी ने जगत और संसार का पृथक् रूप से तात्विक निरूपण नहीं किया। उन्होंने संसार अथवा भवसागरके तापोकी चर्चा करके उससे पार जाने अथवा उतर जाने के लिए प्रार्थना अवश्य की है। जगत के भगवद्रूप होने का उन्होंने संकेत कर दिया है। वे कहते हैं—

हरि जसु गावत होइ सो होई।
× × × × ×
आदि मध्य अवसान विचारत हरि रूप सब ठहरात।
बीच एक अविद्या भासत वेद विदित यह बात॥

जगत ब्रह्म की भाँति आदि, मध्य, अवसान रहित भगवद्रूप ही है। जीव को बीच में अविद्या के कारण उसके भगवद्रूप होने की प्रतीति नहीं होती।

एक और स्थान पर एक गोपी कहती है—

नैननि को टकुउकु तेरो।
न्याइ गुपाल लाल बस कीन्हों मोहन रूप जगत केरो॥

मुग्धा भक्ता गोपिकाओ को सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण दिखाई देते हैं—

जित देखो तित कृष्ण मनोहर दूजो दृष्टि न परे री॥

इस प्रकार यह दृश्यमान जगत भी कृष्ण रूप ही है। परन्तु परमानन्ददासजी ने संसार या भवताप की चर्चा अलग की है। पंच पर्वा [1] अविद्या जनित क्लेशों से युक्त संसार प्रवाह में बहते हुए जीव की कोटि में अपने को रख कर एक स्थान पर वह कहते हैं कि—

"श्री वल्लभ रतन जतन करि पायो।
बह्यौ जात मोहिं राख लियो है, पिय संग हाथ गहायो।
× × × × ×
परमानन्द दास को ठाकुर, नैनन प्रगट दिखायो॥

उपर्युक्त पद में 'संसार प्रवाह' में पड़े हुए प्रवाही जीव के समान अपनी पूर्व दुर्दशा को 'बह्यौ जात' में व्यक्त करते हुए अपने गुरुदेव वल्लभाचार्य की शरण में आने से शांति मिल जाने की बात परमानन्ददासजी ने कही है। उन्होंने जीवन नौका के कर्णधार गुरुदेव से पार उतारने और प्रभु से मिलाने की बात को बार-बार दुहराया है। वे कहते हैं—

"खेवटियारे बीर अब मोहे क्यों न उतारे पार॥
× × × × ×
× × × × ×
परमानन्द प्रभु सो मिलाय तोहि देहुँ गरे को हार॥ प० सं० २७६

गुरु के पदाबुज रूप पोत भव सागर के तरने के लिए है—

"गुरु को निहारि पदाबुज भव सागर तरिबे को हेत"

---

१ पंच पर्वात्विद्येयं यद् बद्धो याति संसृतिम्।
विद्याविद्या नाशे तु जीवन्मुक्तो भविष्यति॥ त० दी० नि० ३३

अत उस पोत को प्रेरणा देने वाली केशव भगवान की कृपा रूपी पवन की आवश्यकता है। अत. भगवान की शरण मे जाना चाहिए।

'क्यों न जाइ ऐसे के शरण,
प्रति पालै कोखै माता ज्यों चरण कमल भव सागर तरण।'
इन चरण कमलो के भव सागर से छुटकारा नही।
"देखु विचार कहा धौं नीको जेहि भव सागर ते छूटे।
परमानन्द भजन बिनु साधे बध्यौ अविद्या कूटै।"

बिना भजन के पचपर्वा अविद्या जीव को बाँध कर कूटती है। अत भवसागर से तरने के लिए भजन ही एक अमोघ उपाय है।

भगवान् का नाम स्मरण ही अघ गजन और भव भजन है।

"सुमिरत ज्ञान अघ, भव भजन कहा पडित कहा वोट।"

भगवान् का नाम कामधेनु है वही ससार रूपी असाध्य व्याधि के लिए औषधि तुल्य है। वे कहते हैं कि —

"कामधेनु हरि नाम लियो।
× × × ×
भव जल व्याधि असाध्य रोग को जप तप व्रत औषध न दियो।

अत परमानन्ददासजी उस दिव्य देश मे जानेकी सम्मति देते हैं जहाँ सासारिक क्लेशो का अत्यताभाव हो जाता है, वही जाकर जीव के अविद्या जनित क्लेश और पाप, ताप नष्ट हो जाते हैं—

'जाइए वह देश जहाँ नन्द नन्दन भेटिए।
निरखिए मुख कमल काति, विरह ताप मेटिए।
× × × × × ×
इह अभिलाष अतरगति प्रात नाथ पूरिए।
सागर करुना उदार विविध ताप चूरिए। प० स० ७३१

सक्षेप मे लीला रस मे मस्त रहने वाले भक्त प्रवर परमानन्ददासजी ने अनेक पदो मे माया, ममता अहता, जनित ससार क्लेशो की चर्चा तो की है किन्तु अलग से नही, केवल गुरु कृपा और और भगवद्भजन की महत्ता उत्कृष्टता और जीव के लिए उसकी अनिवार्यता दिखाने के लिए। वस्तुत दार्शनिक दृष्टि से जगत, ससार, माया आदि का स्वतन्त्र निरूपण करना उनका उद्देश्य नही था। उनके ऐसे पद देखने मे नहीं आते जिनमे परमानन्ददासजी ने स्वतत्र रूप से जगत् और ससार आदि की स्वतन्त्र चर्चा की हो।

परन्तु उपर्युक्त पदो के उद्धरणों से उनके जगत, ससार विषयक विचार शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के ही अनुकूल मिलते हैं।

माया —श्रुति मे कहा गया है कि वे भगवान् एकाकी रमण नही करते अत उसने दूसरे की इच्छा की "स वै नैव रेमे, तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् सहैतावानास।" अत.

उसने अपनी शक्ति अथवा माया का आश्रय लिया । भगवान् में सर्वरूप होनेकी शक्ति है । यह शक्ति अथवा माया भगवान् से भिन्न नहीं । यह शक्तियाँ १२ हैं—

"श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ।
विद्ययाविद्ययाशक्त्या मायया च निषेवितम् ॥
भा० १० । ३९ । ५५

जिस प्रकार कोई राजा सेवकों द्वारा समस्त कार्य करता है ठीक उसी प्रकार भगवान् भी अपनी १२ शक्तियों द्वारा समस्त कार्य करते हैं । इनमें माया दो प्रकार की है, एक विद्या दूसरी अविद्या । विद्या माया भगवत्साक्षात्कार कराती है और अविद्या जीव को बन्धन ग्रस्त करती है । विद्या माया जो भगवत्शक्ति रूपा है; भगवान् की कार्य साधिका है, इसलिए आचार्य कहते हैं—"या जगत्कारणभूता भगवच्छक्तिः सा योगमाया ।"[१] यह योगमाया ऐश्वर्यादि षट्धर्मों से युक्त है । किन्तु दूसरी, अविद्या अथवा व्यामोहिका माया है ।[२] यह जीव को मोह-ग्रस्त करने वाली है । इस माया का वर्णन करते हुए भागवत मे कहा है कि वास्तव मे होने पर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मा मे ( आँख पर उँगली लगाने से जैसे चन्द्रमा दीखते हैं वैसे ) जो मिथ्या प्रतीति होती है अथवा आकाश मण्डल मे अन्य नक्षत्रों की भाँति नहीं होती इसे मेरी माया ही समझना चाहिए ।[३] इस माया के कारण बुद्धि यथार्थ ज्ञान से वंचित रहती है । बुद्धि को यथार्थ ज्ञान हो, इसी हेतु से शास्त्रों मे नाना उपाय बतलाए गए हैं । श्रवणादि नवधा साधन और सत्सगादि इसी हेतु हैं । अन्यथा यह माया भ्रम को उत्पन्न करती है और ब्रह्म-बुद्धि को आच्छादित कर देती है । इसे विपर्यय अथवा विपरीत ज्ञान कहते हैं । इससे जो नहीं है उसकी सत्ता का भान होने लगता है और जो है उसका ज्ञान नहीं होता है । इसीलिए इसे व्यामोह कहते हैं । वस्तुत. भगवान् विषय हैं और माया विषयता है । विषयता से जो ज्ञान होता है वह भ्रम है । और विषय से जो ज्ञान होता है वह यथार्थ है । योगमाया भगवान् की लीलोपयोगिनी माया है । यह सर्वात्मभाव का उद्बोध करती है । अतः भक्तों के लिए लीलापयोगिनी माया ही प्रभु से साक्षात्कार कराने वाली है । देह, गेह, स्त्री, पुत्रादि मे आसक्त कराने वाली व्यामोहिका माया से रक्षण पाने के लिए भक्तो ने सदैव भगवान् से प्रार्थना की है । वृत्रासुर कहता है—"हे भगवान् जो लोग आपकी माया से देह, गेह और स्त्री पुत्रादि मे आसक्त हो रहे हैं उनके साथ मेरा किसी प्रकार का संग भी न हो ।[४] क्योंकि सांसारिक जनो की बुद्धि माया से अपहृत होकर आसुरी भाव को प्राप्त हो जाती हैं ।[५] परन्तु जो लोग भगवान् की शरण ग्रहण कर लेते हैं उन्हे यह माया कष्ट नही

---

१ देखो सुरो-दशमस्कंध-जन्म-प्रकरण ।

२ दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यंते मायामेतांस्तरन्तिते ॥ गीता ७ । १४

३ ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेतन्न न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां तथाऽऽभासो यथातमः ॥ भाग० २ । ९ । ३३

४ ममोत्तमश्लोक जनेषु सख्यम् ।
संसार चक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ॥
त्वन्माययात्मात्मजदार गेहे—
ष्वासक्त चित्तस्य न नाथ भूयात् ॥ भा० ६ । ११ । २७

५ माययापहृतज्ञानाः आसुरं भावमाश्रिताः—गीता

देती, न यह उनका ज्ञान ही हरण कर पाती है। इसलिए भक्त गण सदैव प्रभु से यही याचना करते हैं कि उनकी माया उन्हे किसी प्रकार के झमेले मे न डाले। [१]

**परमानददासजी के माया विषयक विचार**—परमानददासजी ने अविद्या माया की चर्चा करते हुए उसका प्रभाव ब्रह्मा मार्कण्डेय और शकर तक पर माना है। उसकी प्रबल मोहिनी शक्ति को करोडो उपायो से भी अधिक बलवती ठहराया है। उनका विश्वास है कि यह प्रबल व्यामोहिका माया केवल भगवत्कृपा से ही दूर हो सकती है। अत वे कहते है—

"जाको कृपा करे कटाच्छ वृ दावन के नाथ।
साधन हीन ग्रहीरन खेलें मिलि साथ॥
नाभि सरोज विरचि को हूतो जन्म स्थान।
बच्छ हरण अपराध ते कीन्हौ हतौ अपमान॥
मारकड ते को बडो मुनी ग्यान प्रवीन।
माया उदधि ता सगमे किने मति लीन॥
कहौ तपस्या कौन करी सकर की नानाई।
जाते मन सग सग फिरे मोहिनीके ताईं॥

× × ×

जो कोउ कोटिक करे बुद्धि बल जजाल।
परमानद' प्रभु सावरो दीननि को दयाल॥

[प० स० ६७२]

वह प्रभु यदि कृपा करे तो माया व्याप्त नही होती। साधनहीन गोप वधूटियाँ भगवत् तत्व समझती हैं परन्तु नाभिसरोज से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजीकी बुद्धि पर मायाका ऐसा भ्रमात्मक परदा पडा कि उन्होने वत्सहरण जैसा अपराध किया। इसी प्रकार ज्ञानी मार्कंडेय मुनि की बुद्धि चकरा गई। शकर जैसा कौन तपस्वी होगा परन्तु वे भी मोहिनी के पीछे-पीछे भागे फिरे। अत माया से छुटकारा प्रयत्नसाध्य नही, कृपा साध्य ही समझना चाहिए।

यदि भगवत्कृपासे भगवद्भक्तिका रग चढ जाय तो देहाध्यास छूट जाता है। और विषयो मे से प्रवृत्ति हट जाती है—

"लगे जो श्री वृ दावन रग।
देह अभिमान सबै मिटि जैहै और विषयनको सग।

× × ×

'परमानदस्वामी' गुण गावत, मिटि गये कोटि अनग॥

उस माया से एकदम छुटकारा पाने की विधि यही है कि षोडश चिन्हो से चर्चित भगवान् के चरणारविंद का ध्यान करे तो मायाकृत दोष नही व्याप्त होते—

---

१ प्रभु की माया से अभिभूत कौशल्या की भगवान् से यही वरदान मागती है—
बार-बार कौशल्या विनय करइ कर जोरि।
अब जनि कबहूँ व्यापै, प्रभु मोहि माया तोरि॥ रा० च० मा० बा० २०२

"बलिहारी पद कमल की जिन मे नवसत लच्छन।
ध्वजा वज्र अकुर जव रेखा, ध्यान करत विचच्छन॥
× × ×
भक्तधाम कमला निवास, माया गुण बाधक।
परमानद ते धन्य जन्म, जे सगुन आराधक॥

भक्त परमानददासजी सासारिक भोगो और सिद्धियो को भगवन्मार्ग मे बाधक मानते हुए उनके निराकरण के लिए प्रभु का नामस्मरण ही श्रेष्ठ बतलाते हैं।

"जो जन हृदय नाम धरै।
अष्टसिद्धि, नवनिधि को बपुरी लटकत लारि फिरै॥
ब्रह्मलोक, इद्रलोक सिवलोक सबहूँते ऊपरै।
जो न पत्याउ तौ चितवौ ध्रुवतन, टारयौहू न टरै॥
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन सब दुख दूरि करै॥
परदमानददास को ठाकुर, बाचा ते न टरै॥

इस प्रकार परमानन्ददासजी ने बलवती माया की व्यामोहिका शक्ति की ओर यत्र तत्र सकेत करते हुए उससे उबरने के लिए-भगवच्छरण और नामस्मरण-यही दो उपाय बतलाए हैं। इन्ही दो अमोघ यत्नो से माया जवनिका जीव के आगे से हट जाती है और उसे यथार्थ ज्ञान हो जाता है। यह भ्रम-तम-पटल ब्रह्मा, रुद्रादि देवताओ को भी कभी-कभी यथार्थ ज्ञान से वचित कर देता है। तब प्रभु ही उसका निवारण करते हैं। यह दुस्त्यजा हरिमाया भगवत्प्रेरणा पर ही गतिमय होती है। इन्द्रमान भग के अवसर पर जब व्रजवासी भय से इन्द्र पूजा करते हैं तब भगवान् ने व्रजवासियो की बुद्धि फेर कर उन्हे गोवर्धन पूजा की प्रेरणा दी थी।

"तब हरि कियो विचार, मतो एक नयो उपायो।
इनमे माया फेरि करौं अपनो मन भायो॥
'सुनो तात एक बात हमारी मानो जोई।
गिरिवर पूजा कीजिए इनते सब सुख होई॥

सक्षेप मे परमानन्ददासजी ने माया का पृथक् से निरूपण न करके यत्र तत्र उसके विभ्रमत्व की चर्चा की है। और भगवत्कृपा ही उससे छूटने का उपाय बतलाया है।

मुक्ति—आचार्य वल्लभ ने विद्या के द्वारा अविद्या नाशकी स्थिति को ही जीवन्मुक्ति बतलाई है।[1] अविद्या से बँधा जीव इस सृष्टि मे जन्म मरण पाता है। इस अविद्या का विद्या से ही नाश होता है। जीव मे अविद्याजन्य पाँच अध्यास होते हैं—

१—देहाध्यास
२—इन्द्रियाध्यास
३—प्राणाध्यास
४—अन्त करणाध्यास
५—स्वरूपाज्ञान

---

१ पच पर्वात्वविद्येयं यद्बद्धो याति ससृतिम्।
विद्याविद्यानाशेतु जीवन्मुक्तो भविष्यति। त० दी० नि।४ ३२

देहेन्द्रिय, प्राण, अन्तःकरणादि जब सब अध्यास रहित होते हैं तभी जीवनमुक्तता रहते हुए संपूर्ण लय ( निरोध ) श्रीहरि की सेवा से होता है।[१] आगे चल कर आचार्य अविद्या की निवृत्ति से कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति बतलाते हैं।[२] जिस प्रकार अविद्या, अस्मिता आदि पंचपर्वा अविद्या है उसी प्रकार विद्या भी पंचपर्वा है—

वैराग्य, सांख्य, योग, तप और भक्ति—ये पंचपर्वा विद्या है।[3] इनसे मुक्त विद्वान ही भक्ति का अधिकारी होता है। तात्पर्य यह है कि शुद्धाद्वैत संप्रदाय में मुक्ति अथवा सची मुक्ति ईश्वर कृपा कर निर्भर है साधना पर नहीं। भक्ति साधना अथवा ज्ञान साधना से जीवन्मुक्त जीव मोक्ष को प्राप्त करता है। मोक्ष का तात्पर्य भगवल्लीलोपयोगी देह पाकर ब्रह्म रस का आनन्द लेना है।[४] यह आनन्द भक्त्यैकसाध्य है। ज्ञान साधना कष्ट साध्य होने के कारण कलियुग में संभव नहीं।[६] लीला में लय होनेकी स्थिति को मुक्ति बतलाते हुए आचार्य वल्लभ ने उसे 'सायुज्य अनुरूपा मुक्ति' अवस्था कहा है। शुद्धाद्वैत में सच्ची मुक्ति यही है। वे अन्य साधनों द्वारा सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्यादि मुक्तियों को स्वीकार करते हुए भी भजनान्द में मगन रह कर भगवल्लीलानुभव को ही लक्ष्य माना है। यही संप्रदाय की स्वरूपानन्द मुक्ति है। संक्षेप में पुष्टिमार्ग में अन्य कोई मोक्ष स्वीकृत नहीं। भजनानन्द में लय ही मुक्ति है। यहीं भक्तिमार्गीय संन्यास है।[७]

इस स्वरूपानन्द मुक्ति में साधक भगवान की गोलोक-लीलाका आनन्दानभुव करता है। गोलोककी यह लीला बैकुंठ से भी उत्कृष्ट हैं।[८] इस लीला (स्वरूपानन्दमुक्ति) से विरहित साधक सालोक्य सामीप्यादि मुक्तियों को भी नहीं चाहता। क्योकि शांकरादि अन्य मतों में अज्ञान के आवरण के हटने पर अहंब्रह्मास्मि की स्थिति आती है। शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में लीलारस-प्रवेशात्मक सायुज्य मुक्ति स्वीकार की गई है। उसमें रसात्मकता है। आनन्दात्मकता है। अन्य मुक्तियों में अद्वैतस्थिति होने से लीलारसात्मकता नही है। पुष्टिमार्गीय मुक्तिमें द्वैतस्थिति भक्ति की सिद्धि के लिए बनी रहती है। पुष्टिमार्गीय मुक्त जीव को न लोकान्तरों में जाना पड़ता है; न प्रारब्धादि कर्म भोगने पड़ते हैं। क्योकि वह सद्यो मुक्त जीव भगवान् का अनुग्रहपात्र होनेसे भगवान् तत्काल उसके प्रारब्ध कर्मों का नाश करते हैं। और उसे नित्य

---

१ देहेन्द्रियासवः सर्वे निरध्यस्ता भवंतिहि।
तथापि न प्रलीयंते जीवन्मुक्तगताः स्फुटम्॥ त० दी०–३४

२ आसन्नस्य हरेर्वापि सेवया-देवभावतः।
इन्द्रियाणां तथा स्वस्य ब्रह्मभावाल्लयो भवेत॥ त० दी०–४५

३ तस्य ज्ञानाद्धिकैवल्यविद्या विनिश्रितितः॥ त० दी०–४५

४ वैराग्यं सांख्य योगोच तपो भक्तिश्च केशवे।
पंच पर्वेति विद्येयं यया विद्वान् हरिं विशेत॥ त० दी० नि० ४५

५ अग्रे प्राप्या लौकिक देहाद्भिन्ने स्थूल लिंग शरीरे घ्ययित्वा दूरीकृत्य अथ भगवल्लीलोपयोगिदेह प्राप्य नन्तरं भोगेन संपद्यते। सोऽश्नुते सर्वान् कामान्। ब्रह्मणा विपश्चितेति। अणु भाष्य ४ अध्याय पाद २ सू० १६

६ ज्ञानमार्गो भ्रान्तिमूलस्ततः कृष्णंभजेद्बुधः। श्रुतिगी.–११

७ ब्रह्मानंदात्समुद्धृत्य भजनानंद योजने-गायत्रीभाष्यम्।

८ भजनस्यैव सिद्धयर्थं तस्वमस्यादिकं तथा॥ त० दी० नि० शा० प्र०–४१

रसात्मक लीला मे ले लेते हैं। नित्यलीला मे स्थान पाना ही साधक की अभीष्ट स्थिति या मुक्ति है। श्रीहरिरायजीने कहा है कि जीवो का भगवान् के साथ सम्बन्ध हो जाना ही भक्तिमार्गीय मुक्ति है।[१] इस मुक्ति मे भगवत्कृपा ही एकमात्र कारण है। आचार्य वल्लभ कहते हैं—

"आदिमूर्त्ति कृष्ण एव सेव्य सायुज्यकाम्यया।"

### परमानंददासजी के मोक्ष विषयक विचार—

परमानददासजी आचार्य वल्लभ के सिद्धान्तानुसार साधक के भगवल्लीलात्मक रसास्वादन को मुक्ति मानते हैं। ऐसी मुक्ति की उपलब्धि भक्ति से ही सभव है। अतः वे भक्ति को ही महत्व देते हैं शाकरी अद्वैती मुक्ति को नहीं। स्थान-स्थान पर उन्होने ज्ञान द्वारा प्राप्य मुक्ति का तिरस्कार किया है, और भगवल्लीला रस को देव-दुर्लभ मानते हुए उसी की साधना पर जोर दिया है। ज्ञान द्वारा मुक्ति का तिरस्कार करते हुए वे कहते हैं —

"मेरो मन गह्यो माई मुरली को नाद।
आसन पौन ध्यान नही जानौं कौन करे अब बाद विवाद॥
मुक्ति देहू सन्यासिन कौं हरि कामिन देहु काम की रास॥
धरमिन देहु धरम को भारग, मो मन रहे पद अंबुज पास॥
जो कोऊ कहै जोति सब यामे सपनेहु छियौ न तिहारो जोग॥
× × × ×
परमानन्द स्याम रंगराती सबै सही मिलि इक रग लोग॥

[ प० स० २११ ]

प्राणायामादि अष्टाग योग से मिलने वाले मोक्ष को लेकर परमानन्ददासजी की गोपियाँ क्या करेंगी। उसी प्रकार न्याय ( वाद-विवाद ) शास्त्र के चक्कर में नही पड़ना चाहती। मोक्ष तो संन्यासिनो को चाहिए, उसीभाँति कर्मकाण्डियो को कर्मवाद और धर्मियो को धर्म चाहिए। यहाँ तो रसेश श्रीकृष्ण से रसात्मक गोपियाँ रस की ही याचना करती हैं। उन्हें शुष्क ज्ञान से उपलब्ध होने वाली मुक्ति की कोई आकाक्षा नही। ऐसी मुक्ति की खुली निन्दा परमानन्ददासजी ने अनेक स्थलो पर की है अथवा गोपियो से करवाई है। स्वरूपानन्द मुक्ति और भगवल्लीलानुभव को भक्त्येकसाध्य और कृपा साध्य बतलाते हुए वे कहते हैं—

"आनन्द सिंधु बढ्यो हरि तन में।
श्री राधा पूरन ससि निरखत उमगि चल्यौ ब्रज वृदावन मे।
उतरै गयो जमुना इत गोपिन कछु यक फैलिपर्‌यौ त्रिभुवन मे॥
नहि परस्यौ कर्म अरु ग्यानिनु अटकि रह्यौ रसिकन के मन मे॥
मद मद अवगाहत बुधि बल भक्ति हेत प्रगटै छिनु-छिनु मे।
कछुक लहत नदसुवन कृपातें सो दिखियत परमानन्द जन मे॥

[ प० स० ४५४ ]

---

१ जीवाना कृष्णसम्बन्धो भक्ति मार्गे विमोचनम्।
स द्वेधा जीवविहितो भगवद्विहितस्तथा॥ स्व० मु० द्वै० १
प्रकृतिकालाद्यतीते वैकुण्ठादप्युत्कृष्टे श्रीगोकुल एवं सन्तीति शेषः।
अनु० पा० २ ४ १५ पृष्ठ ८१

लीलारस की ओर सकेत करते हुए एक और स्थान पर वे कहते हैं —

"माई हौं अपने गुपालहि गाउ ।
सुन्दर स्याम कमलदल लोचन देखि देखि सुख पाउ ॥
जे ग्यानी ते ग्यान विचारो जे जोगी ते जोग ॥
कर्मठ होई ते कर्म विचारो जो भोगी ते भोग ॥
कबहुंक ध्यान धरत पद अबुज कबहुं बजावत बेनु ॥
कबहुंक खलत गोप बृन्द मग कबहुं चरावत धेनु ॥
अपने अस की मुकति राजी है मागि लियो ससार ॥
'परमानद' गोकुल मथुरा मे न बन्यो यहै विचार ॥ [प०स० ६०५,

कर्मठ और ज्ञानियो को पुष्टिमार्गीय स्वरूपानन्द वाली आत्मविस्मृतकारिणी मुक्ति का बोध भी नही होता। वह तो केवल रसिक भक्त जनो को ही अनुभव गम्य है। और वह भी श्रीकृष्ण को कृपा से ही। इस रसात्मक मुक्ति का अधिकारी कोई बिरला जन ही होता है। भजनानन्द के सामने वह योग अथवा मुक्ति की कामना को अपराध समझता है। परमानद-दासजी की दृष्टि मे वैसा कौन मूर्ख होगा जो उस आनन्द को छोड कर अद्वैती मुक्ति (ज्ञान परक) को कामना करेगा। वह तो दण्डस्वरूप है। जिसे भगवान् दण्ड देना चाहे उसे ही प्रेमलक्षणा से वचित करते हैं—

'किहि अपराध जोग लिखि पठयो प्रेम भजन ते करत उदासी ।
परमानद वैसी को विरहिन मागे मुक्ति पुनराती ॥

अत प्रेमासक्ति के सामने ज्ञानमार्गीय मुक्ति का कोई मूल्य नही। वह तो वृन्दावन-वासियो के चरणो की दासी है—

'धनि धनि वृन्दावन के वासी ।
नित्य चरन कमल अनुरागी स्याम स्याम उपासी ॥
या रसको जो मरम न जाने जाय बसौ सो कासी ।
भस्म लगाय गरे लिग बाधो सदाइ रहो उदासी ॥
अष्ट महासिधि द्वारे ठाढी, मुकुति चरन की दासी ॥
परमानन्द चरन कमल भजि सुन्दर घोप निवासी ॥ [प०स० ८३६]

होली के पद में भी उनकी यही याचना है—

'नन्द कुमार खेलत राधा सग जमुना पुलिन सरस रग होरी ॥
× × × × ×
'परमानन्ददास' यह सुख को जाचत विमल मुकुतिपद छोरी ॥

वह व्यक्ति जो भगवच्चरणारविंद की रति प्रेमलक्षणा भक्ति खोकर मुक्ति चाहता है उसके जीवन के दिन अन्धकारमय हैं। वह भक्ति के प्रकाश को छोडकर क्यो इधर भटकता फिरता है—

"सब सुख सोई लहै जिहि कान्ह पियारो ।
करि सतसग विमल जस गावै रहै जगत ते न्यारो ॥
तजि पद कमल मुकुति जे चाहैं ताको दिवस अध्यारो ॥

कहत सुनत फिरत है भटकत छाडि भगति उजियारो ।।
जिन जगदीस हृदै धरि गुरमुख एको छिनु विचारयो ।।
विन भगवन्त भजन परमानन्द जनम जुग्रा ज्यौं हार्‌यौ ।। [प०स० ८६०]

जब भगवद्‌भजन से ही सब कुछ प्राप्त हो सकता है तो ज्ञान, साधना अथवा कर्मकाण्ड के पचडे मे पडकर यह जीव क्यो अपने शरीर को कष्ट देता है और सुखाता है—

हरि के भजन मे सब बात ।
ग्यान कर्म सौ कठिन करि, कत देत हो दुख गात ।।

अत परमानन्ददासजी की तो भगवान् से यही प्रार्थना है कि वे चरणकमल की सेवा उन्हे दें और मुक्ति आदि सन्यासियो को अथवा कर्मठो को ।

"माधौं हम उरगाने लोग ।
प्रात समैं उठि लाऊ चरण चित पाऊ सबै उपभोग ।
दुर्लभ मुकुति तुम्हारे घर की सन्यासिन को दीजै ।।
आपने चरण कमल की सेवा इतनी कृपा मोहि कीजै ।।
जहाँ राखौ तहँ रहौंचरण तर पर्‌यौ रहौं दरबार ।
जाकी झूठनि खाऊँ, निस दिन ताकौ करौं किवार ।।
जहँ पठवौं तहाँ जाऊँ विदा दै दूतकारी अधीन ।
परमानददास की जीवनि तुम पानी हम मीन ।। [ प० स० ८७५ ]

भगवच्चरण कमल की सेवा मुक्ति से भी अधिक मीठी है । वे कहते है—

"सेवा मदन गोपाल की मुकुति हूते मीठी ।
जाने रसिक उपासिका सुक मुख जिन दीठी ।।
× × × × ×
परमानन्द विचारि के परमारथ सोध्यौ ।
राम कृष्ण पद प्रेम वढ्‌यो लीला रस बाध्यौं ।। [ प० स० ८५३ ]

आचार्य वल्लभ के सिद्धान्तानुसार परमानन्ददासजी भी श्री गोकुल अथवा व्रज से वैकुण्ठादि धामोको हीन और निम्न समझते हैं अत वैकुण्ठ प्राप्ति की ( सालोक्य मुक्ति की ) भी उनमे लेशमात्र वासना नही है ।[1] वे कहते हैं —

'कहा करूँ वैकुण्ठहि जाय ।
जहाँ नहि नन्द, जहाँ न जसोदा, नहि गोपी ग्वाल न गाय ।
जहाँ न जल जमुना को निर्मल, और नही कदमन की छाय ।।
परमानन्द प्रभु चतुर गुवालिनी व्रज रज तजि मेरी जाय बलाय ।। [प० स० ८५१]

तात्पर्य यह है कि गोपी भाव भावित श्रीपरमानन्ददासजी को ज्ञान मार्ग से साध्य सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, आदि मुक्तियो की कामना नही, उन्हे तो एकमात्र भजनानन्द साध्य लीला रस का आस्वादन ही अपेक्षित है। उसके अतिरिक्त कुछ नही ।

१ प्रकृति कालायनीते वैकुण्ठादप्युत्कृष्टे श्री गोकुल एव सन्तीति शेष ।
अणुभाष्य अ० ४ पा० २ सूत्र १५-पृष्ठ ८२

उनकी मुक्ति ग्रहर्निश प्रभु के मुखका अवलोकन ही है। इसी भौतिक देह से निरन्तर प्रभु के मुखारविन्दके दर्शन ही मुक्ति (सामीप्य) का आनन्द है —

"हौं नन्द लाल बिना न रहूँ।[1]
मनसा वाचा और कर्मणा हित की तोसौं कहूँ।
जोकछु कहौं सोई सिर ऊपर सोहौं सर्व सहूँ॥
सदा समीप रहूँ गिरधर के, सुन्दर वदन चहूँ॥
यह तन अर्पण हरिको कीनौ वह सुख कहाँ लहूँ।
परमानन्द मदन मोहन के चरण सरोज गहूँ।

कविको भक्ति भावनासे ओतप्रोत इसी नर देह से सगुणोपासना करते हुए अपने परमाराध्य का सामीप्य ही चाहिए और कुछ नही, यह सुख व्रजके अतिरिक्त अन्यत्र नही। यही उसने अपने गुरु देव महाप्रभु वल्लभाचार्य से दीक्षा मे पाया था और कुछ नही। अत परमानन्ददासजी के मुक्ति अथवा मोक्ष विषयक विचार शुद्धाद्वैत सिद्धान्तानुकूल ही हैं। वे भगवल्लीलोयोगी जीवन को ही मुक्त जीवन मानते हैं। इस मुक्त जीवनकी नित्य अनुभूति 'निरोध' की स्थिति मे होती है। पुष्टि सम्प्रदाय मे निरोध को बहुत महत्व दिया गया है। अत यहाँ निरोध की चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा। 'निरोध' भारतीय दर्शन मे अपने अपने ढग से अन्तिम लक्ष्य माना गया है। योगश्चित्तवृत्तिनिरोध[2] पातजल योग दर्शन का प्रमुख सूत्र है। ज्ञानियो और योगियों की निरोध स्थिति जो कठोरतम साधनो से साध्य है वह भक्ति प्रधानमार्गों और विशेषकर पुष्टिमार्ग मे कितनी सुगम है किन्तु भगवत्कृपा साध्य है। साथ ही अत्यन्त वाछनीय एव भक्तकामित है।

क्योकि पुष्टिमार्गीय त्रिविधि सृष्टियो—प्रवाह, मर्यादा और पुष्टि में प्रवाही सृष्टि कर्मात्मक है और भव प्रवाह मे आकर वह जन्म-मरण के चक्कर मे फँसी रहती है। मर्यादा सृष्टि ज्ञानात्मक है, उससे गणितानन्द या अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। किन्तु पुष्टि सृष्टि भक्त्यात्मक है। उसे पूर्ण पुरुषोत्तम की प्राप्ति होती है। भक्ति नित्य है भगवल्लीला भी नित्य है। पुष्टि भक्तो का निरोध भगवल्लीला मे होता है। अत इस निरोध के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है —

निरोध—निरोध का अभिधेयार्थ रोकना, हटाना अथवा सयमित करना है। मन को विषयो से हटाकर वृत्ति विशेष को अटकाने या जोडने का नाम निरोध है। मन को जोडने अथवा विशेषरूप से अटका देने से पातजल योगसूत्रकारने योग की परिभाषा देते हुए कहा था चित्त का ( चचल ) वृत्ति के निरोध करने को ही योग कहते हैं। अत 'निरोध' शब्द से तात्पर्य है मन जहाँ-जहाँ चचलता-वश जाय वहाँ-वहाँ से रोक कर उसे भगवदभिमुख करना। आचार्य वल्लभ ने अपने ग्रन्थ 'निवध' मे कहा है कि 'श्री कृष्ण' में मन निरुद्ध कर देने से भक्त लोक मुक्त हो जाते हैं।[3] कृष्ण में मन तभी निरुद्ध होगा जब

---

१ परमानन्दसागर पद संख्या ४७२

२ देखो-पा० यो० सू० म० पा०

३ कृष्णे निरुद्ध करण द भक्ता मुक्ता भवति-'निवध'।

वाह्य प्रपचो की सम्पूर्ण विस्मृति होगी। अत निरोध का स्वरूप है[1] 'बाह्य प्रपचो की विस्मृति और भगवान मे आसक्ति।' यह एक सुख दशा है। और भगवत् कृपा लभ्य है। आसक्ति अथवा प्रेमभाव हृदय का एक 'गूढभाव' है। यही गूढभाव व्यक्त होने पर प्रेम, प्रणय, स्नेह, राग, अनुराग और व्यसन इन स्थितियो मे प्रवाहित होता है। यदि इसे एक लता या वृक्ष का रूपक दें तो अकुर, लता, शाखा, पल्लव, कलिका, पुष्प और फल की तुलना मे रखा जा सकता है।

आचार्य ने अपने 'भक्तिवर्द्धिनी' ग्रन्थ मे प्रेम की तीन विकास दशाएँ बतलाई हैं—

१—स्नेह, आसक्ति और व्यसन—

व्यावृत्तोऽपिहरौ चित्त श्रवणादौ यतेत् सदा।

तत प्रेम तथाऽऽसक्तिर्व्यसन च यदाभवेत्—भ० व० ३

आसक्ति बीज रूप मे सभी मे विद्यमान रहती हैं। इसको 'बीज' इसलिए कहा गया है कि इसका नाश नही होता।[2]

अत बीजभाव अथवा गूढभाव का मूल रूप प्रेम है। इसी बीज के पूर्ण विकास से रसात्मक श्रीकृष्ण रूपी कल्पद्रुम पल्लवित और फलति होता है। इस 'बीज भाव' की भूमि हृदय है। अत बीज या 'गूढ भाव' एक मानसभाव है। इस भाव से चित्त की समस्त वृत्तियाँ केन्द्रित हो जाती हैं। भाव की निष्पन्नावस्था निरोध मे होती है। निरोध चचल दुर्दयनीय इन्द्रियो की पूर्णवश्यता हैं। क्योकि ससार के सारे अनर्थ इन्द्रियो की चचलता के ही कारण है। समस्त शास्त्र इन्द्रियो को वश मे करने का ही उपदेश देते है। इन्द्रियाँ ही समस्त अनर्थ परम्पराओ की कारणभूता हैं। कही तो इनके दमन करने का आदेश है कही इनको अशुभ प्रवृत्तियो को शुभ' की ओर मोड देने की सलाह है। आचार्य वल्लभ ने इन्द्रिय रूपी घोडे को ढीला न करना परम कर्तव्य कहा है।[3] इसलिए—है सर्वत्र इन्द्रियो को ही वश करने की बात।

सासारिक यावन्मात्र भोग्य पदार्थ हैं वे प्रभु के हैं उनको भगवान को ही विनियोग कर देना चाहिए। इस हेतु यज्ञो की परम्परा चली थी। इन यज्ञों में सासारिक द्रव्यों एव पदार्थों का सद्विनियोग हो जाता था। परन्तु कुछ लोगो ने हठयोग द्वारा इन्द्रिय निग्रह का मार्ग सोचा था। हठयोगी इन्द्रियों को बलवान् उपायों से वश में लाने लगे। जो भी हो दान अनशन, तप, स्वाध्याय सभी का उद्देश्य बलवान इन्द्रियग्राम को वश मे करना था। यहाँ तक कि गृह त्याग कर वानप्रस्थ सन्यासादि आश्रमो की धारणा भी इन्द्रियो के वश करने के उद्देश्य से ही है। यम नियमादि अष्टाग योग, हठयोग, राजयोग सभी का उद्देश्य वस्तुत मन एव इन्द्रियो के वश करने के लिए ही है। परन्तु भक्ति साधन मे एक प्रकार का ऐसा उपाय है जिसमे मन एव इन्द्रियो के साथ बलात्कार नही होता।

---

१ गोकुले गोपिकानां तु सर्वेषां भजवासिनाम्।
यत् सुख समभूत् तन्मे भगवान् किं विधास्यति॥

निरोधलक्षण २

२ बीज तदुच्यते शास्त्रे दृढयन्नापिनश्यति। भ० व०-४

३ इन्द्रियाश्व विनिग्राह्य सर्वथानश्यजेदधयम्। सर्व० नि० प्र० २३=

यह एक निसर्ग सिद्ध नियम है कि जहाँ पर जितने जोर का आघात किया जाता है वहाँ उसके विपरीत उतना ही बलवान् प्रत्याघात होता है। अत हठ या बलप्रयोग का परिणाम अच्छा नही होता। अत इन्द्रियाँ हानिकारिणी नही है, इन्द्रियो की विषयासक्ति हानिकर हैं। अत इन्द्रियो का निग्रह बलप्रयोग का विषय नही 'साम' का विषय। बलप्रयोग या हठयोग मे विश्वास करने वाले इन्द्रिय निग्रह के क्षेत्र मे प्राय असफल हुए है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन्द्रियो के वश करने के लिए मानसमखो[1] का उपदेश दिया है। इनसे उत्तरोत्तर धर्म-निष्ठा पुष्ट होगी और भक्ति का उदय होगा।

क्योकि इन्द्रियो को सासरिक-पदार्थों से खीचकर फिर उनको किसका आश्रय बनाया जाय? यह प्रश्न तत्काल विचारणीय हो जाता है क्योकि इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयो के बिना रह ही नही सकती। उदाहरणार्थ हमारे श्रवण सुनने का कार्य करते है उन्हे सासरिक निन्दा-स्तुति से हटाया तो जा सकता है परन्तु श्रवणो को श्रवण कार्य से विरत नही किया जा सकता। अत उन्हे प्रापचिक निन्दा-स्तुति आदि से हटा कर प्रभु गुण-गान तथा श्रवण कीर्तन आदि मे लगाना ही उनका ठीक उपयोग है। इसीलिए भारतीय भक्ता एव सन्तो ने कर्मेन्द्रियो एव ज्ञानेन्द्रियो को प्रभु अभिमुख करने के लिए इन्द्रियो को आदेश दिया है और प्रभु प्रार्थना की है—

> जिह्वे ! कीर्तय केशव मुररिपु चेतो भज श्रीधरम्।
> पाणि-द्वन्द्व समर्चयाच्युत कथा श्रोतृद्वयीत्वश्रणु॥
> कृष्ण लोकय लोचनद्वय हरेर्गच्छाध्रि युग्मालयम्।
> जिघ्रघ्राण ! मुकुन्दपाद तुलसी मूर्धन्नमाधोक्षजम्॥[2]

[अर्थात्—ओ मेरी जिह्वा मुररिपु केशव का कीर्तन करो, ओ चित्त श्रीधर भगवान् का भजन करो, मेरे दोनो हाथो ! अच्युत की अर्चना करो, दोनो कानो ! तुम भगवान् की कथा सुनो। हे मेरे दोनो नेत्रो ! कृष्ण को देखो और मेरे चरणो ! भगवान् के मदिर को ही जाओ, नासिके ! तू भगच्चरणारविन्द की तुलसी का गध ही सदैव किया कर और ओ मस्तक अधोक्षज भगवान् के चरणो में ही झुक जा।]

तात्पर्य यही है कि यदि इन्द्रियाँ भगदभिमुख नही होगी तो अवश्य ही पतन की ओर ले जायेंगी। *मूर्ख और विद्वान् सभी बलवान इन्द्रिय-ग्राम से अभिभूत हो जाते हैं।*[3] क्योकि यत्न करते हुए विद्वान् पुरुषो के मनो को भी इन्द्रियाँ ले जाती हैं।[4] यदि कदाचित् कोई अनशन द्वारा इनको शिथिल बनाकर इनको निर्बल कर भी दे तो भी इनकी मूल वासना रहती है। और अपना रसास्वाद नही भूलती। इनका लौकिक रसास्वाद तो भगवद्रस से

१ गुरुसेवा कर्म कृतिस्तीर्थ पर्यटनं प्रमाद्।
स्वाध्यायेन तथा कृत्वा तपसा मानसा मखा॥ स० नि० प्र०-१६४

२ कुलशेखरआलवारकृत मुकुन्दमाला—श्लो० १६

३ बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपिकर्षति। गी०

४ यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चित।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभमन। गीता २।६२

ही निवृत्त होता है।[१] अनशनादि से इन्द्रियाँ निर्बल तो हो जायँगी, परन्तु दुःख-निवृत्ति फलरूप पुरुषार्थ नही है। पुरुषार्थ है—अखडानन्द की प्राप्ति। यह अखडानन्द इन्द्रियो के प्रभु चरणो मे सुविनियोग से ही है।

इन्द्रियो के सुमार्ग मे प्रयुक्त होने से साधक को शान्ति मिलना प्रारभ हो जाता है। अत सासारिक विपयो से मन और इन्द्रियो को हटाकर प्रभुकी ओर लगाने का ही आदेश महाप्रभु वल्लभाचार्य देते हैं। अपने निरोध लक्षण ग्रन्थमे कहते हैं—

"सासरिक कामो मे लगी हुई दुष्ट इन्द्रियो के हित के लिए समस्त वस्तुओ को श्री जगदीश्वर भगवान् कृष्णचन्द्र के साथ सवद्धकर देना ही सर्वोत्तम है।"[२]

"जिनका चित्त निरतर मुरारी भगवान्के गुणोसे आविष्ट है उनको सासरिक विरह अथवा क्लेश नही होते। और वे श्रीहरि के तुल्य सदैव सुखमय रहते हैं।"[३]

"गोविंद के गुणगान से सुख की जैसी प्राप्ति होती है वैसी शुकदेवजी आदिको आत्मसुखसे भी नही होती तो फिर दूसरो की क्या बात ?"[४]

"इसलिए समस्त वस्तुओ का परित्याग करके सदानन्दपरायण निरुद्ध भक्तोके साथ प्रभु के गुण सर्वदा गाते रहना चाहिए। उसीसे सत् चित् और आनन्दमयता प्राप्त होती है।"[५]

प्रभु गुणगान कीर्तन भक्ति है। अत कीर्तन भक्ति से प्रभु के धर्म उनकी महत्ता सतत स्मरण रहती है। उससे वैराग्य से इन्द्रियो को अनायास ही निर्विपयता विपयो से पराङ्मुख हो जाती है। और लोक वेद व्यापारो से साधक की उपरति हो जाती है।[६] यही निरोध का लक्षण है।

## निरोध प्राप्ति का उपाय

निरोध की उपर्युक्त व्याख्या और लक्षण देने के उपरान्त यह बतलाना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि उक्त प्रकार की निरोध सिद्धि किस प्रकार हो। इसका उपाय बतलाते हुए आचार्य ने स्पष्ट कहा है—

"जिस इन्द्रिय का भगवत्कार्य अथवा सेवा मे उपयोग नही होता हो उसका निग्रह करके अवश्य ही उसे भगवत्कार्य मे लगाना चाहिये।"

---

१ विषया विनिवर्तंते निराहारस्य देहिन ।
रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ गीता० २।५६

२ ससारावेश दुष्टानामिन्द्रियाणां हिताय वे ।
कृष्णस्य सर्वं वस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् ॥ नि० ल० श्लो० १२

३ गुणेष्वाविष्ट चित्तानां सर्वदा मुरवैरिण ।
संसार विरह क्लेशो न स्याता हरिवत सुखम् ॥ ,, ,, ,, १३

४ गुणगाने सुखावाप्तिर्गोविन्दस्य प्रजायते ।
यथा तथा शुकादीनां नैवात्मनि कुतोन्यत ॥ ,, ,, ,, ६

५ तस्मात् सर्वं परित्यज्य निरुद्धै सर्वदा गुणा ।
सदानन्द परैर्गेय सच्चिदानदता तत ॥६॥ वही

६ निरोधस्तु लोक वेद व्यापार न्यास । ना० भक्ति सू० ८

भगवत्कार्य से आचार्य महाप्रभुजी का तात्पर्य 'सेवा' है। इसीलिए स्वमार्ग मे आचार्यजी ने सेवा पर बहुत जोर दिया है। निरोध' के उपरान्त ही साधक भगवत् सेवा का अधिकारी होता है।[१] सेवा से चित्त स्वयमेव ही भगवान् में रमण करने लगता है। अहोरात्र मानवमन भगवान् में गुथा रहे-यही सेवा है।[२] सेवा से स्वरूपभावना और लीला भावना दोनो ही सजग होती हैं। और भगवान् के सिवाय भक्तको दूसरा कोई विचार ही नही आता। 'तन्मयता' जो पुष्टि निरोध का लक्ष्य है-सेवा से ही प्राप्त होती है। यह सेवा देह तथा वित्त से निरन्तर करते रहना चाहिये। देह और वित्त द्वारा सेवा करने से आन्तरविक्षेप दूर होते हैं और कर्मेन्द्रियाँ सेवा में व्यस्त रहती हैं और कभी विपथगामी नही बनती। इसके उपरान्त ही मानसी सेवा सिद्ध होती है।

ऐसे भक्तका मन फिर सासरिक पदार्थो में नही जाता और वह अनासक्त होकर मानसी सेवा का अधिकारी बन जाता है। यह मानसी सेवा ही 'व्यसनावस्था है'। इसकी बाह्य अभिव्यक्ति साधक को लोक वेदातीत बना देती है। व्रज गोपिकाओ की व्यसनावस्था की ही चर्चा अष्टछापी काव्य का प्रधान विषय है।

श्रीमद्भागवत के दशमस्कध की श्रीकृष्ण लीलाओ का उद्देश्य 'निरोध' ही है। इसीलिए आचार्यजी ने अपने दोनो 'सागरो' को भागवत के दशम स्कध की अनुक्रमणिका सुनाकर उन्हे लीलासागर बना दिया था।

### परमानन्ददासजी और निरोध तत्व—

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने चार शिष्यो मे से दो शिष्यो को ही भागवत के दशमस्कध की लीला क्यो सुनाई। फिर सपूर्ण भागवत मे से केवल दशमस्कध को सुनाने का क्या रहस्य हो सकता था। यदि इस तथ्य पर गहरी दृष्टि से विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि महाप्रभु ने जिन पर विशिष्ट और आशु अनुग्रह किया उन्हे निरोध तत्व तक सरल सुगम मार्ग से पहुँचाकर उन्हे सपूर्ण भगवत्लीला के रहस्य का उद्घाटन कर दिया।

दशमस्कधीय लीलाओ को श्रवण करने से पूर्व तक ये दोनो भक्त दैन्य और वैराग्यपरक पदो की रचना करते थे। दीक्षापूर्व के इन पदो का पता नही चलता जो दो चार पद महाप्रभु के सान्निध्य मे गाए गए वे दैन्य परक हैं ही। अत कि दशमस्कध की अनुक्रमणिका सुनाने का कारण स्पष्ट है श्रीमद्भागवत लीला प्रधान और भक्ति रस पूर्ण ग्रन्थ है। उसका प्रयोजन आनन्दस्वरूप भगवान् की दशविध लीलाओ का उद्घाटन है। लीलायें रसस्वरूपा हैं। इसी कारण ज्ञानी भक्त शुकदेवजी और सभी भक्त्याचार्य श्रीमद्भागवत के सतत् पारायण पर बल देते हैं। महर्षि वेदव्यास ने लिखा है 'पिबत भागवत रसमालयम्' अर्थात् जीव जब तक परमतत्व मे लय न हो जाय तब तक श्रीमद्भागवत रस का पान करता रहे। अत भक्तो का निरोध पुष्टि मार्ग मे सतत भागवत पारायण से होता है।

---

१ यस्यवा भगवत्कार्य यदा स्पष्ट न दृश्यते।
तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्य इति निश्चय ॥ नि० श्लो० १६
[ इसी हेतु मे आचार्य ने निरोधलक्षण के उपरान्त ही सेवाफल ग्रथ लिखा। —लखक ]

२ चेतस्तत्प्रवण सेवा तत्सिध्यै तनुवित्तजा।
तत ससारे दुखस्य निवृत्ति ब्रह्मबोधन ॥ सि० मु० २

श्रीमद्भागवतपारायण : भक्तों के लिए निरोध प्राप्ति के लिए सरलतम उपाय है आचार्य श्री कहते हैं—

अथापि धर्ममार्गेण स्थित्वा कृष्णं भजेत्सदा ।
श्रीभागवत मार्गेण स कथंचित् तरिष्यति ।
त० दी० स० नि० प्र० २१८

यही एकमात्र साधन है—

पठेच्च नियमं कृत्वा श्री भागवतमादरात् ।
× × × × × ×
साधनं परमेतद्धि श्रीभगवतमादरात् ।
पठनीयं प्रयत्नेन निर्हेतुकमदम्भतः ॥
त० दी० स० नि० प्र०

साधक की गृहासक्ति किसी प्रकार न छूटे तो श्रद्धापूर्वक भागवतपुराण का पाठ निरंतर करता रहे । आचार्य ने दृढ़ता से कहा है—

अथवा सर्वदा शास्त्रं श्रीभागवतमादरात् ।
पठनीयं प्रयत्नेन सर्वहेतु विवर्जितम् ॥ स० नि० प्र०

श्रीमद्भागवत से जीविका न चलावे । वे कहते हैं—

वृत्त्यर्थं नैन युञ्जीत प्राणैः कंठगतैरपि ।

श्रीमद्भागवतग्रंथ लौकिक हेतुओं का साधक नहीं । वह भगवत्साक्षात्कार का साधन है । और स्वयं भगवत्स्वरूप है । [1] "श्रीभागवतमेवात्र परं तस्य हि साधनम् ।"

श्रीमद्भागवत का स्वरूप इस प्रकार है—द्वादशस्कंध "द्वादशो वै पुरुष" श्रुति के इस कथन के अनुसार वह पुरुषाकार है । श्रीनाथजी का शब्द रूप श्रीमद्भागवत है । श्रीनाथजी अपने उठे हुए बाँए हाथ से भक्तों को बुलाते रहते हैं । उसी प्रकार दशविध लीलाओं का रहस्य जानने के लिए भागवत पुराण भी भक्तों का आह्वान करता है ।

दशविध लीलाओं की चर्चा श्रीमद्भागवत में इस प्रकार है—

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रतः ॥ श्रीमद्भाग० २–१०–१

अर्थात् इस भागवत पुराण में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण ऊति मन्वंतर ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति, और आश्रय इन दस विषयों का वर्णन है । यदि प्रथम स्कंध का विषय-अधिकारी तथा द्वितीय स्कंध का विषय साधन मान लिया जाय तो तीसरे से बारहवें स्कंध तक स्कंधों के विषय इस प्रकार रहेंगे—

प्रथम स्कंध—अधिकारी
द्वितीय स्कंध—साधन
तृतीय स्कंध—सर्ग—आकाशादि पंच भूतोंकी उत्पत्ति
चतुर्थ स्कंध—विसर्ग—विभिन्न चराचर सृष्टि का निर्माण

---

१ देखो–भागवतार्थ प्रकरण—
"इतीदं द्वादशस्कंधं पुराणं हरिरेव सः" ॥ भा० प्र० श्लो० ६

पचम स्कध—स्थात—सृष्टि मर्यादा से विष्णु का श्रेष्ठता
षष्ठ स्कध—पोषण—भक्तो पर अनुग्रह
सप्तम स्कध्—ऊति—कर्मवासनाए
अष्टम स्कध—मन्वन्तर—धर्मानुष्ठान
नवम स्कध—ईशानुकथा—अवतारकथा
दशम स्कध—निरोध—मन का लय
एकादश स्कध—मुक्ति—अनात्मभाव का त्याग और परमात्मा मे स्थिति
द्वादश स्कध—आश्रय—ब्रह्म अथवा परमात्मा

नव प्रकार की लीलाओ वाला ही शुद्ध पुरुषोत्तम है। और दसवी लीला—आश्रय की सिद्धि के लिए ही इन 'नव विधा' लीलाओ की चर्चा श्रीमद्‌भागवत मे है। कहा गया है—

यस्य लीला नव विधा स शुद्ध पुरुषोत्तम ।
दशमस्य विशुद्‌ध्यर्थं नवानामिह् लक्षणम् ॥

तात्पर्य यह है कि दशम स्कध का विषय 'निरोध' है इसीलिए आचार्यजी ने कृपालु होकर अपने प्रिय शिष्यों को दशम स्कध की अनुक्रमणिका सुनाई थी। इसी अनुक्रमणिका को सुनकर सूर और परमानन्ददासजी को 'निरोध' की सिद्धि हुई थी और हृदय मे भगवल्लीला का स्फुरण हुआ था। इस लीला स्फूर्ति से सहस्रावधि पद उनके हृदय सागर से उदित हुये। इसी कारण ये दोनो महानुभाव ही सम्प्रदाय मे सागर नाम से विख्यात हुये।

आचार्यजी ने दशमस्कध की सुबोधिनी के मगलाचरण की प्रथम कारिका मे—

'नमामि हृदये शेषे लीला क्षीराब्धिशायिनम् ।
लक्ष्मीसहस्रलीलाभि सेव्यमान कलानिधिम् ॥

कह कर भगवान को प्रणाम किया है। अर्थात्' लीलासागर भगवान, जो लक्ष्मी रूपी सहस्रावधि लीलाओ से सेवित हैं उन्हे मैं (वल्लभ) प्रणाम करता हूँ।" तात्पर्य यह है कि दशम स्कध की यावन्मात्र लीलायें हैं वे निरोध सिद्धि के लिये है, इस निरोधवाले स्कध मे पाँच मुख्य प्रकरण हैं। महाप्रभुजी ने दशमस्कध के सम्पूर्ण अध्याय इन पाँच प्रकरणो मे विभाजित कर दिये हैं—

| | | |
|---|---|---|
| १—जन्म प्रकरण | ( अध्याय १—४ ) | कुल ४ |
| २—तामस प्रकरण | ( अध्याय ५—३२ ) | कुल २८ |
| ३—राजस प्रकरण | ( अध्याय ३३—६० ) | कुल २८ |
| ४—सात्विक प्रकरण | ( अध्याय ६१—८१ ) | कुल २१ |
| ५—गुण प्रकरण | ( अध्याय ८२—८७ ) | कुल ६ |

इनमे दशम स्कध के प्रथम अध्याय से ४६ अध्याय पर्यन्त पूर्वार्द्ध लीला तथा ४७ से ८७ वे अध्याय तक उत्तरार्द्ध लीला कही जाती है। इस प्रकार महाप्रभु वल्लभाचार्य ने दशमस्कध मे कुल ८७ अध्याय माने हैं। वत्सहरण लीला वाले ३ अध्यायो को वे प्रक्षिप्त मानते हैं। दशमस्कध के उपर्युक्त प्रकार के प्रकरण विभाजन को आचार्यजी सुबोधिनी में इस प्रकार कहते हैं —

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा।
षड्भिर्विराजते योसौ पंचधा हृदये मम॥

अर्थात् "जन्म प्रकरण के चार अध्यायोंकी लीलाओं से तथा तामस प्रकरणके प्रमाण, प्रमेय, साधन, फलादि चार प्रकरणों से युक्त, राजसके प्रमाण प्रमेयादि चारों प्रकरण तथा सात्विकके प्रमेय, साधन और फल सहित ऐश्वर्य, वीर्य, यशादि छः गुणोंके छः अध्यायों द्वारा पांच प्रकार से वह भगवान् (शब्द रूप—श्रीमद्भागवत) मेरे हृदय में निवास करते हैं।"

दशमस्कंध की जो लीलायें आचार्य वल्लभ के हृदयमें विराजती थी उन्ही को उन्होंने सूर और परमानन्ददासजी के हृदयमें स्थापित कर दिया। तामस प्रकरण निःसाधन भक्तों के निरोध के लिये है। इस प्रकरण में पूतना वध से लेकर युगलगीत तक की समस्त लीलाएँ आ जाती हैं। परमानन्ददासजीके संपूर्णकाव्य का यही केन्द्र बिन्दु हैं। यही लीलाएँ उनके पदों का विषय रही हैं।

चौरासीवैष्णवनकी वार्तामें और उस पर हरिरायजीके भावप्रकाश नामक टिप्पण में स्पष्ट संकेत मिलता है कि परमानन्ददासजी को आचार्यजी से बाललीलागानकी आज्ञा मिली थी और उन्होंने बाललीला परक अनेक पद रच कर आचार्य जी को सुनाये थे। नित्य की श्रीसुबोधिनी की कथा श्रवण कर लेने के उपरान्त वे उस प्रसंग को अपने पदों में पुनः उतार देते थे। भगवान का बालकस्वरूप और बाललीला का ध्यान ही कवि का "निरोधस्थल" था। इस निरोधस्थल को पाकर कवि ने अपनी संपूर्ण काव्य प्रतिभाको वहीं केन्द्रित कर दिया और कवि के कोकिल कंठ से अनायास ही फूट पड़ाः—

माई री ! कमलनैन स्यामसुन्दर झूलत है पलना।
बाललीला गावति सब गोकुल की ललना॥[1]

इस प्रकार के अनंत पदकी सुरसरि कवि के कंठ से नित्य ही प्रवाहित होने लगी। कविके मानस पटल पर नित्य किसी दिव्यलीला-धाम के दर्शन होते रहे। दिशा और काल का व्यवधान हट गया और वह किसी लीला-लोक का साक्षात्कार करने लगा। जहाँ पर उसने अपने आराध्यका कोटि-कन्दर्प-लावण्यमय बालरूप देखा और देखा उनका भगवदैश्वर्य। बस इसी अनुभूति-गोमुख से पद-प्रवाह बह चला। कवि देश काल को चीरता हुआ अवतार युग का जीव बन गया और माता यशोदा को बधाई देता हुआ बोल उठा—

जसोदा ! तेरे भाग्य को कहीय न जाई।
जो मूरति ब्रह्मादिक दुर्लभ सो प्रगटे है आई॥
सिव नारद सनकादि महामुनि मिलिवे करत उपाई।
ते नन्दलाल धूलि धूसर वपु रहत कंठ लपटाई॥
रतन जटित पौढाय पालने वदन देखि मुसुकाई।
झूलो मेरे लाल जाऊँ बलिहारी परमानन्द बलिजाई॥ [प० सा० ४३]

उसने बाल रूप भगवान् को नन्दालयके मणि कुट्टिम पर घुटनों के बल रेंगते देखा।

१ चौरासी वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ ८०६

मनिमें आगन नन्द के खेलत दोउ भैया।[1]
गौर स्याम जोरी बनी बल कुँवर कन्हैया॥
× × × ×
बाल विनोद प्रमोद सौं परमानन्द गावैं॥ [ प० सा० ७७]

इस प्रकार कवि जीवन भर भगवानके बाल विनोद मे उलझा रहा, इसके अतिरिक्त उसे न कोई काम था, न व्यापार, न व्यसन।

**बाल रूप से मन का निरोध एक मनोवैज्ञानिक तथ्य:**—यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि एक साधारण से बालक की चेष्टाओ मे भी बडा आकर्षण होता है—उसकी क्षण क्षण की चेष्टाएँ बडे-बडे चिन्तको और वीतरागो को बरबस आकर्षित कर लेती हैं। फिर अलौकिक लीला वपुधारी भगवान के बाल रूप के आकर्षण की तो बात ही क्या हो सकती होगी। भगवान के जिस बाल रूप पर ब्रह्मा, इन्द्रादि देवगण भी व्यामोह में फँस जाते हैं। और जिनकी "लरिकाई से ज्ञानी भक्त काग-भुशुडि जी भी अपना मानसिक विश्राम खो बैठते हैं।[1] उस बालरूप पर अष्टछाप के इन दो सागरो को—विशेषकर परमानन्ददासजी को निरोध सिद्धि होगई तो आश्चय ही क्या? इसका कारण शायद यह हो कि अतिशय चचल मन का निरोध चचलतम वस्तु से ही करना सरल होगा। 'कटक कटकेनैव" के अनुसार चचल मन की औषध बालक की चचल चेष्टाएँ ही हो सकती हैं। यत्र-तत्र सर्वत्र भागने वाला मन यदि कही स्थिर होता है तो वह बालक की चचल चेष्टाओं पर ही। जितना अधिक छोटा शिशु होगा चचलता उतनी ही अधिक होगी। चचलता की तीव्रतम गति को देखने और शिशु की स्वच्छन्द क्रीडा के प्रत्येक स्पन्दन के माधुर्य का आस्वादन लेने के लिये मन को कितना सावधान और एकाग्र अथवा निरुद्ध रखना होता होगा यह शिशु क्रीडा देखने वालो से छिपा नही है। शिशुक्रीडा मे चिर मगन रहने वाली वात्सल्यमयी जननी अपने बालककी हरकतों के प्रति कितनी जागरूक और सावधान रहती है—यह किसी अनुभवी से छिपा नही है। फिर यदि वह एक मात्र दुलारा जीवन और आशा-आकाक्षाओ का आधार हो तो उसकी चेष्टायें उसे कितनी प्रिय होंगी। जीवनाकाश के ऐसे ज्योतिर्मय स्नेहनिधि ध्रुवको पाकर किस अभिभावक का मन इधर-उधर भटकेगा। उसको तो अपने प्रिय वत्स का क्षणिक वियोग भी असह्य हो उठेगा और वह तडप कर पुकार उठेगा।

'हरि तेरी लीलाकी सुधि आवै।[2]
कमलनैन मोहन मूरतिकै मन-मन चित्र बनावै।
कबहुँक निबिड तिमिर आलिगन कबहुँक पिकसुर गावै।
कबहुँक सभ्रम 'क्वासि क्वासि' कहि सग हिलिमिलि उठि धावै॥
कबहुँक नैन मूँदि अतरगति मनिमाला पहिरावै।
परमानन्द' प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे विरह गँवावे [ प० सा० ६३८]

---

१ मोई लरिकाइ मोहिमन करन लग पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावउ मन न लहँ विश्राम॥ रा० च० मा० उ० का० दोहा—१२१

२ इस पद को सुन कर महाप्रभु वल्लभाचार्य तीन दिन तक देहानुसधान भूले रहे थे [ ८४ वार्ता ]

कभी पालनेमे झूलते हुए किलकारी मारते हुए ऐसे दिव्य बालकको जब माँ देखता त उसकी तृप्ति नही होती। अतः उसे कल नही पड़ती।

रतन, जटित कंचन मनिमय,
नंद भवन मधि पालनो।
ता ऊपर गजमोतिन लट लटकत अति,
तहं झूलन जसोदा को लालनो॥
किलकि किलकि बिलसत मन ही मन,
चितवन नैन बिसालनो।
परमानन्द प्रभु की छवि निरखत आवत,
कल न परत ब्रज बालनो॥ [ प० सा० ४१ ]

मन की इसी स्थिति को लक्ष्य कर महाप्रभुजी ने कहा है—

यच्च दुःख यशोदाया नंदादीना च गोकुले
गोपिकाना तु यद्दुःख स्यान्मम क्वचित्॥
गोकुले गोपिकानां तु सर्वेषा व्रजवासिनाम्।
यत् सुखं समभूत् तन्मे भगवान् किं विधास्यति॥

अर्थात् "भगवान् कृष्ण के मथुरा चले जाने पर जो विप्रयोग-जन्य दुःख माता जसोदा और नन्दादि गोकुलवासियों को हुआ और जो विरहजन्य दुःख व्रज गोपिकाओ को हुआ क्या वह दुःख कभी मुझे मिलेगा ? क्या वह (स्वरूपानन्द का) सुखानुभव मुझे होगा ?"

महाप्रभु 'निरोध लक्षण' मे विप्रयोग दुःख और स्वरूपासक्ति जन्य प्रत्यक्ष सुखानुभव-दोनोकी ही याचना करते हैं। परमानन्ददासजी के काव्य में निरोध-सिद्धि तीन प्रकार से मिलती है—

१— लीलापरक निरोध
२—स्वरूपासक्ति जन्य निरोध
३—विप्रयोगजन्य निरोध

लीलापरक निरोध का उदाहरण :—ब्रजगोपिकाओ में मिलता है। ब्रज गोपिकाए अहर्निश हरिलीला मे मत्त रहकर, गृहकार्य करती हुई भी प्रतिक्षण भगवान श्रीकृष्णके ध्यानमे ही रत रहती थी—

हरि लीला गावत गोपीजन, आनन्द मे निसिदिन जाई।
बालचरित्र विचित्र मनोहर, कमलनैन ब्रजजन सुखदाई॥
दोहन, मण्डन, खंडन, लेपन, मंडन, गृह, सुत पति सेवा।
चारियाम अवकास नही पल, सुमिरत कृष्ण देवदेवा॥
भवन, भवन प्रतिदीप विराजत कर कंकन नूपुर बाजे।
'परमान्द' घोप कौतूहल निरखि भाँति सुरपति लाजे॥ [प० सा० ८२]

माताएं तथा ब्रजजन क्रीड़ा रस मे रात दिन मत्त रहते हैं—

भावत हरि के बाल विनोद।
केशव राम निरखि अति बिहंसत मुदित रोहिनी मात जसोदा ॥

" " " " " " "

" " " " " " "
अतिहि चपल सुखदायक निशिदिन रहत केलि रस ओद।
परमानन्द अबुंज लोचन फिरि-फिरि चितवत निज जन कोद ॥ [प० स० ८५]

स्वरूपासक्तिजन्य निरोध—श्याम स्वरूप में अनुरक्त गोपिका दही बेचने निकली है। प्रेम में बेसुध दहीका नाम भूल गई। केवल माधव का नाम ही स्मरण रह गया है। मन उसका श्यामरस में निरुद्ध है। अतः वह कहती है—

कोउ माधौ लेई, माधौ लेई बेचत काम रस।
दधि कौ नाम कहत न आवै, परी जु प्रेम वस ॥
गोरस बेचन चली वृंदावन माउ।
हरि के स्वरूप भलो, परी जु गई साउं ॥
विरह व्याकुल भई, बिसरि गए हैं धाम।
'परमानन्द' प्रभु जगत पावन है नाम ॥

श्यामसुन्दर के भुवनमोहन रूपपर मुग्ध होकर कैसी स्थिति हो जाती है इसका वर्णन कवि ने बड़ी सुदरता के साथ किया है—

अति रति श्याम सुन्दर सौं बाढी।
देखि स्वरूप गोपाललालको रही ठगी सी ठाड़ी ॥
घर नहिं जाइ, पंथ नहिं रेंगति, चलन वलनि गति थाकी।
हरि ज्यौं हरि को मगु जोवति काम मुग्ध मति ताकी ॥
नैनहिं नैन मिले मन अरूझ्यो यह नागरि वह नागर।
'परमानन्द' बीच ही बनमे, बात जु भई उजागर ॥ [प० सा० २६६]

स्वरूपासक्ति जन्य निरोधके वर्णन परमानन्ददासजी ने अनेक स्थलों पर दिए हैं। उनका अंतिम पद[१] तो उनकी निज की निरोध-स्थिति का द्योतक है। उसमे युगलभावनाके साथ संयोग रस का चरमोत्कर्ष द्रष्टव्य है।

विप्रयोग जन्म निरोध—महाप्रभु वल्लभाचार्यने अपने ग्रंथ निरोध लक्षण मे नंदयशोदादि की विप्रयोग जन्म दु.खानुभूति की वाञ्छा की है। अनुभूति को परमानन्द अनुभूति को परमानन्ददासजी ने भी उसी परमानंद की याञ्चा की है—

मेरो मन गोविंद सौं मान्यौ ताते और न जिय भावै हो।
जागत सोवत यहै उत्कंठा कोउ व्रजनाथ मिलावै हो ॥
बाढी प्रीति आनि उर अन्तर चरन कमल चित दीनो हो।
कृष्ण विरह गोकुल की गोपी घरहीमे बन कीनो हो ॥

---

१ राधे बैठी तिलक सँवारति। प० सा० प० सं० ३७१
[कहा जाता है कि प्रस्तुत पद परमानन्ददासजी का अन्तिम पद है—लेखक]

छांड़ि अहार देह सुख और न चाहौं काउ।
'परमानन्द' बसत है घर में, जैसे रहत बटाऊ [ प० सं० ५२६ ]

अतः कवि ने अपने आराध्य को सब कुछ समर्पण कर दिया है और वह उस देशमें जाना चाहता है जहाँ नंदनंदन से भेंट हो जाय और उसका विरह ताप मिट जाय।

"जाइए वह देस जहं नंदनंदन भेटिए।
निरखिए मुख कमल कांति, विरह ताप मेटिए॥
× × × × × × ×
× × × × × × ×
छिन-छिन पल कोटि कल्प बीतत अति भारी।
'परमानन्द' प्रभुकल्प तरु दीनन दुख हारी॥ [ प० सं० ८४६ ]

इस प्रकार क्षण-क्षण पर अपने प्रियतम आराध्यका ध्यान कर विरह गमाने वाले परमानंददासजी के मनोराज्य में विविध भगवल्लीलाओं के सजीव चलचित्रों की सृष्टि चलती रहती थी। सिवाय अपने प्रभुके भक्तका मानस अन्यत्र भूलकर भी आन्दोलित नहीं था। विरह—मिलन की वीचियों मे कभी वह भाव-विह्वल होकर पुकार उठता था "क्वासि, क्वासि"। अर्थात् 'प्यारे तू कहाँ है तू कहाँ है ? भक्त को एक क्षणका भी विरह सह्य नहीं होता अतः वह कभी अतीत की मधुमय स्मृतियोमें डूब कर कहता—

वह बात कमल दल नैन की।
बार-बार सुधि आवत सजनी वह दुरि दैनी सैन की॥
वह लीलारस रास सरद को वह गोरंजनि आवनि।
अरु वह ऊँची टेर मनोहर मिप करि मोहि सुनावनि॥
वे बातें सालें उर अन्तर कौं अरु पीरहि उपजावैं।
'परमानंद' कह्यो न परै कछु हियो सो रूंध्यो आवैं॥ [ प० सं० ५६० ]

उत्फुल्लमल्लिकावाली उस शरदयामिनीमें कोटि-कंदर्प लावण्य-वपु-धारी प्रभु ने अपनी जिस भुवनमोहिनी रासलीला से चराचरको मुग्ध और स्तब्ध कर दिया था वह अब केवल स्मृति-पथ की वस्तु ही रह गई है। और वह स्मृति भक्त के अन्तस् में शल्य की भाँति कसक रही है और उसकी वाणी से परे हो गई है। आज उनके विरह में भक्त गोपिकाएँ कैसे जीवित रह सकती है।

"परमानंद प्रभु सो क्यों जीवैं जो पोपी मृदु बैन की।"

संक्षेप में हम देखते हैं कि परमानन्ददासजी के बाललीला स्वरूपासक्ति एवं विप्रयोग विषयक पदोंमें बडी गहन समाधि कल्प अनुभूति है जिनमें देहानुसंधान को विस्मृत करा देने की अनुपम सामर्थ्य है। उनमे तन्मयता की पराकाष्ठा है और है मिलन की उत्कट अभिलाषा। इस अभिलाषा का पर्यवसान प्रियतम को गाढालिंगन में होता है जबकि वक्षस्थल पर पड़े हुए हार का व्यवधान भी अत्यन्त असह्य हो जाता है—"हारो नारोपितो कंठेमया-विश्लेपभीरुणा।"

रस पायौ मदनगुपाल कौ ।
सुनि सुन्दरि तोहि नीकौ लाग्यो या मोहन अवतारकौ ॥
कठ बाहु धर अधर पान दै प्रमुदित हँसत विहारकौ ।
× × × × × × × × ×,
गाढ आलिंगन दै-दै मिलिबो बीच न राखत हार कौ ॥
× × × × × × × × ×
परमानन्ददास की जीवनि रास परिग्रह दार कौ ॥ [प० स० ४०६]

तात्पर्य यह है कि भक्त प्रवर परमानन्ददासजी की निरोध-भूमि भगवान का बाल और किशोर रूप ही है। जिसमे अनन्त लीला, अनन्त सौंदर्य और अनन्त प्रेम का समावेश है। उनमे स्वरूप भावना और लोला भावना को ही प्रधानता है। दार्शनिक सिद्धान्तो मे वे अधिक नही फँसे ।

---

पञ्चम अध्याय

# परमानन्ददासजी और पुष्टिमार्गीय भक्ति

महाकवि परमानन्ददासजीके जीवन वृत्त और उनकी काव्य-रचना से उनके भक्त, दार्शनिक, कवि और संगीतज्ञ होने मे कोई संदेह नही रह जाता। वार्ता से ज्ञात होता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण में आने के पूर्व से ही वे कीर्तन-सत्सग किया करते थे और 'स्वामी' नाम से प्रसिद्ध थे। वे सेवक (शिष्य) भी बनाया करते थे। तात्पर्य यह है कि महाप्रभुजी की शरण में आने से पूर्व परमानन्ददासजी का जीवन एक आध्यात्मिक जिज्ञासु का था परन्तु तब तक वे किस संप्रदाय के अनुयायी थे—यह स्पष्ट नही होता। उनका गान बहुत अच्छा था और वे कीर्तन बहुत अच्छा करते थे। उनकी कीर्तन की इतनी प्रसिद्धि थी कि जब एक बार मकर-सक्रान्ति के अवसर पर जब वे प्रयागमें संगम पर सत्संग कर रहे थे तो महाप्रभु वल्लभाचार्य के जलघड़िया कपूर क्षत्री ने उनकी कीर्तन-गान सम्बन्धी कीर्ति सुनी और वे अवसर पाकर उनसे सुनने पहुँचे। विचारणीय तथ्य है कि परम अनन्यता के पोषक एवं समर्थक महाप्रभु वल्लभाचार्य के सेवक भी अनन्य ही होते थे। अत: कपूरक्षत्री एतन्मार्गातिरिक्त देव-कीर्तन मे सम्मिलित क्यों हुए और यदि केवल संगीत-प्रेम से अभिभूत होकर उनका वहाँ सम्मिलित होना मान भी लें तो एकादशी के रात्रि-जागरण की बात फिर विशेष अर्थ की नही रह जाती है।

एकादशी रात्रि का जागरण हरिभक्त वैष्णवों में ही प्रचलित हैं। फिर रात्रि के अंतिम प्रहर में परमानन्ददासजीको श्रीनवनीतप्रियके दर्शन हुए। स्वप्न-विज्ञान के आचार्यों का कहना है कि मन की अन्तर्लीन भावनाएँ ही स्वप्न में साकार हुआ करती हैं। अत: परमानन्ददासजीके श्री नवनीतप्रियजी के दर्शन करना उनकी साकार भक्ति मे रत रहने का ही प्रमाण है। स्वप्नोपरान्त वे भगवद्दर्शन के लिए व्याकुल हुए होंगे और तभी कपूर क्षत्रिय उन्हें श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शन तथा आचार्यजी से मिलन कराने के लिए अड़ैल ले आए।[1] अड़ैल में महाप्रभु वल्लभाचार्य के प्रथम दर्शन में ही उनका भक्ति-भाव उमड़ पड़ा और वे तत्काल उनके सेवक होने का सत्सकल्प कर लेते हैं। श्रीमहाप्रभु के भगवल्लीला गान की आज्ञा पाकर उन्होने वहीं तीन चार पदोंकी रचना कर डाली।[2] शरणागति के पूर्व के इन पदों मे परमानन्ददासजी की आध्यात्मिक भावनाका स्पष्ट संकेत मिल जाता है। उनमे भगवद्-विषयक विरह-भावना भी प्रकट होती है। इस सबसे इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि परमानन्ददासजी महाप्रभुके शरण मे आने से पूर्व भी सगुणोपासक वैष्णव थे और भगवद् गुण-कीर्तन मे ही रत रहते थे।

---

१ देखो चौरासी वैष्णव वार्ता। संपा० परीख पृ० ३८ (परिशिष्ट)

२ वे पद हैं:—१ कौन बेरे भई चलेरी गुपालें॥
२ जिय की साध जियहि रही री॥
३ वह बात कमलदल, नैनकी॥
४ सुधि करत कमल दल नैन की॥ चौ० वै० वा० पृ० ४०

भक्ति की प्राचीनता—परमानन्ददासजीकी भक्ति भावना के स्वरूप का विश्लेषण करने से पूर्व यहाँ भारतीय भक्ति-साधना मे कृष्ण-भक्ति-की महत्ता, प्राचीनता और उसके विकासकी अत्यन्त संक्षिप्त चर्चा अप्रासंगिक न होगी। श्रीकृष्ण भक्तिकी जिस मनोहारिणी दिव्य भाव-स्थली पर स्थित होकर सूरदासादि अष्टछापके कवियोने तथा रसखान, मीरां, व्यास, हित हरिवंश आदि अनेक महात्माओने भाव-तन्मयता मे आत्मविस्मृत होकर जिस दिव्यसाहित्यका सर्जन किया वह दुर्लभ भक्तियोग भारत की अपनी आन्तरिक प्रधान चेतना है। वही समस्त वेदो, उपनिषदो, दर्शन, शास्त्रों पुराणो का सार सर्वस्व है और वही संपूर्ण उपासना विधियों का एकमात्र लक्ष्य है। समस्त अध्यात्म साधनाओंमे सुमेरूरूपा भक्ति-साधना कोरा मध्ययुगीन आन्दोलन नही है अथवा न यह कोई भयजन्य अथवा लौकिक स्वार्थसिद्धि का साधन-भूततत्व है। यह तो मानवीय चिरतन भाव है जो कृतज्ञता की अनुभूति से उद्भूत होकर परमप्रेम का रूप धारणकर लेती है। इसीलिए नारदीय भक्तिसूत्र मे इसे परमप्रेमरूपा और अमृतस्वरूपा कहा है। जिसे पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है।[१] यह ईश्वर के प्रति जीवकी परा अनुरक्ति है।[२] इसके मूल तत्व अनादिकालसे मानव मे और बाद मे वैदिक साहित्य मे मिलते हैं। इसे पाश्चात्य विद्वानो के अनुसार न तो इसे ईसाइयत की देन मानना चाहिए, न ही 'कृष्ण' शब्द का क्राइष्ट शब्द से भाषा वैज्ञानिक बादरायण सम्बन्ध जोड़कर उससे सम्बद्ध करना चाहिए। यह तो भारतीय साधना का वह पवित्रतम सिद्धान्त है जिसकी जीवन-धारा अनादि काल से अक्षुण्ण प्रवाहित होता चली आरही है। वास्तव मे वेद तो भक्ति-भावनाके विकसित भावयोग हैं।

वैदिक साहित्यमे भक्ति-सिद्धान्त के अतिरिक्त अन्य कुछ भी महत्वपूर्ण नही है। जिस प्रकार देह मे चैतन्य व्याप्त है उसी प्रकार वैदिक साहित्य मे भक्ति सिद्धान्त व्याप्त है। वैदिक श्रुतियां भक्ति-सिद्धान्तसे ही ओत प्रोत हैं। सूर्य, अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु आदि देवताओ के प्रति कही वैदिक ऋचाओ मे प्राचीन आर्योकी भक्ति-भावनाएँ ही तो मिलती है। उनमे उनका चरम दैन्य, विनय और समर्पण और अनन्यभाव ही समाया हुआ है। वेदो मे बहुदेवोपासना नही। अपितु एक ही देवकी विभिन्न शक्तियां समय-समय पर प्रधानता में आई हैं। "एक सत् विप्रा बहुधा वदन्ति" के अनुसार एक ही तत्व की भिन्न-भिन्न प्रकार से उपासना की गई है। निरुक्तकार महर्षि यास्कने अपने निरुक्तके सातवें अध्याय मे स्पष्ट कर दिया है कि वेदो मे जुदे-जुदे देवताओकी प्रार्थना न होकर आत्मा अथवा ब्रह्म की ही प्रार्थना है। वह ब्रह्म ही अग्नि है, वही वरुण है, वही इन्द्र है, इसीलिए इन्द्रादि देवताओंकी पूजा ब्रह्म अथवा आत्मा की ही नवधा अथवा बहुधा पूजा है। और इसीलिए वेद अद्वैत-भक्ति भावना का ही प्रतिपादन करते हैं। इसी वैदिक अद्वैत-भावना का जब ह्रास होने लगता है और बहुदेववाद अथवा अन्य कोई भय-मूलक-देव-पूजावाद चल पड़ता है तो विश्वात्मा पुनः एक सर्वात्मवाद अथवा अद्वैत भक्ति-मार्ग की प्रतिष्ठा करके लोक-भावना का सही परिचालन करती है।

---

१ सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपाच, अमृतस्वरूपाच ॥
यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धोभवति, अमृतोभवति, तृप्तोभवति ॥
(ना० भ० सू० २,३,४)

२ सा परानुरक्तिरीश्वरे (शा० भा० सू० २)

वेदो के उपरान्त उपनिषदो मे भी वही अद्वैती भक्ति-भावना विकसित हुई है। उनमे आत्म-तत्त्व की उपासना पर ही बल दिया गया है। कठोपनिषद् मे भगवान् की अनुग्रहैकसाध्य भक्ति की ओर सकेत किया गया है। और स्पष्टत अनुकथन, चितन एव वेदपाठादि का तिरस्कार सा कर दिया है।[1] तैत्तरीयोपनिषद् मे "रसो वै स" कहकर उस परब्रह्म को 'रस' या आनन्दरूप बतलाया गया है।

तात्पर्य यह है कि वेदो और उपनिषदो का प्रतिपाद्य विषय भगवद्भक्ति है। "यमेवैष वृणुते तेन लभ्य" मे पुष्टि अथवा अनुग्रहतत्व का ही प्रतिपादन है। तैत्तरीय उपनिषद् के "रसो वै स" से रसस्वरूप परब्रह्म ही मानव का चरमध्येय माना गया है। "रस" "आस्वाद्य" है। कथनीय नही। इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् के तीसरे अध्याय के १७ वें मन मे आया है—

सर्वेन्द्रिय गुणाभास सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्।
सवस्य प्रभुमीशान सर्वस्य शरण बृहत् ॥

मे भक्तिमार्गीय शरणागति की चर्चा है। और "शरण" शब्द का स्पष्ट उल्लेख है।

कैवल्योपनिषद् मे "भक्तिध्यान योगायवै।" कहा गया है। पाँचवी ऋचा मे "भक्त्या स्वगुरु प्रणम्य' मे 'भक्ति' और प्रणति का सम्बन्ध जोड दिया गया है। नारायणोपनिषद् मे "भक्त्यतिशयेन नारायण सर्वेभ्य सर्वावस्यासु विभाति।" मे भक्तितत्व का सकेत है। गोपाल पूवतापिन्युपनिषत्मे अन्तम भगवान श्रीकृष्णका ध्यान करने और उन्ही के भजन करने के लिए कहा गया है—

त रसयेत्। त यजेत्। त भजेत्। इत्यादि।

इस प्रकार उपनिषदो मे भी भक्ति तत्त्व की पर्याप्त चर्चा है। अब देखना है कि श्रीकृष्ण भक्ति की प्राचीनता कब से है। क्योकि कुछ विद्वानों ने कृष्ण भक्ति के सूत्र वेदो मे खोजने का प्रयास किया है। और वैदिक ऋचाओ मे कृष्णलीला परक अर्थ लगाए हैं। इस प्रकार वे कृष्ण-भक्ति का मूल वैदिक साहित्य मे खोजने की चेष्टा करते हैं। इसलिए गोकुलादि स्थानो और भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओ की चर्चा वेदो मे बतलाते है। इस बात का सकेत अणुभाष्य मे आचार्य ने व्याससूत्र के चौथे अध्याय के द्वितीय पाद के १५ वें सूत्र[2] की व्याख्या मे किया है। वे लिखते हैं—

"ननु हृदि बहिश्चरसात्मक भगवत्प्राकट्य तद्दर्शन जनितोविरहभाव तज्जनित-स्तापस्तेन मरणोपस्थितिस्तन्निवर्तन तदौत्कट्य तदा प्राकट्य तत पूर्णस्वरूपानददानादिक लोके क्वचिदपि न दृष्ट श्रुत वा वैकुण्ठेऽपीति "श्रुत इत्याशकामागाह। तानि उक्तानि वस्तूनि परे प्रकृति कालाद्यतीते वैकुण्ठादप्युत्कृष्टे श्री गोकुल एव सन्तीति शेष। तत्र

१ नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥
कठो० प्र० अ० वल्ल० २, २४।

२ "तानि परे तथा ह्याह" ब्रा० सू० ४।२।१५—४

प्रमाणमाह । तथा ह्याहश्रुति । ऋग्वेदे पठ्यते—"ता वा वस्तून्युष्मसि गमध्यै यत्रगावो भूरिश्रगा अयास । अत्राह तदुरुगायस्य वृष्ण परम पदमवभाति भूरि ।"[1] ता तानि वा भगवत्तदन्तरग भक्तयो सबधीनि वास्तूनिवस्तूनिगमध्यै प्राप्तुमुष्मसि कामयामहे । तानि कानीत्याकाक्षाया गूढाभिसधिमुद्घाटयति । यत्र श्री गोकुले गावो भूरि शृङ्गा बहुशृङ्गा रुरुप्रभृतयोमृगाश्च वसन्तीतिशेष । अयास शुभावहा । तत् उक्तगुणविशिष्ट उरुगीयत इत्युरुगायस्तस्य गोप्यो हि सतत त गायन्ति अतएव तदादि भक्तेषु कामान्वर्ष्यतीति वृषा । तस्य परम प्रकृति कालाद्यतीत पद स्थान भगवतो वैकुण्ठ भवति । तत्रैतादृश लीलाऽभावेन तस्मादपि परममुत्कृष्टम् । अत्र भूमावेवभाति प्रकाशत इत्यथ । तथापिस्वदृग् गोचरो न भवतीतिखेदेन अहेत्याह श्रुति । उरुगीयते पर सर्वत्र कामवर्षण भक्तेष्वनेवेति तात्पर्येण वा विशेषणद्वयमुक्तम् यमुनापुलिनतदुपवननिकुज गह्वरप्रदेशाद्रिसान्वाद्यात्मकत्वेन भूरि बहुरूप। तथा चैतादृश यत्परमपदमवभाति तत्सम्बन्धीनि वास्तूनि कामयमह इति वाक्यार्थ सपद्यते। 'ते पदार्थ इति वक्तव्ये सति तानी' त्युक्तिर्या, सा विषयवाक्यानुरोधादितिज्ञेयम् । पुरुषोत्तम सम्बन्ध्यर्थना तत्प्राकट्यस्थान एव प्राकट्य युक्तमिति 'हि' शब्देनाह । यत्र गावो भूरि शृङ्गा अयास । यत्र श्री गोकुले भूरि शृङ्गा अयास शुभावहा

अर्थात् जहाँ बडे-बडे सीग वाली बहुतसी गौएं रहती हो।" तदुरुगायस्य वृष्ण परम पदमवभाति भूरि। उरुगीयते इत्याय तस्य अथवा उरुकीर्ते अर्थात् जिसकी ( भगवान् की ) कीर्ति विशाल है ऐसे भगवान जो (वृष्ण =कामान्वर्षतीति वृषा-तस्य) अपनी भक्ता गोपीजनोकी कामना पूर्ण करने वाले हैं उनका ( परमपद ) वैकुण्ठ जो प्रकृति और दिक्कालादि से अतीत है। अत ( अविभाति भूरि ) जो अत्यन्त प्रकाशमान है उससे भी अधिक वे इस भूमि पर प्रकाशमान हैं। अर्थात् वे भगवान जिनका गोपीजन गान करती हैं और जो गोपीजनो तथा भक्तो की मनोकामना पूर्ण करते हैं। वे ( भगवान् कृष्ण ) वैकुण्ठ की अपेक्षा इस भूमि पर बहुत अधिक प्रकाशमान हैं। इत्यादि।

इस प्रकार श्रुति के उक्त उद्धरण मे भगवान् कृष्ण और उनकी गोकुललीला के सकेतो को वैदिक साहित्य में प्राप्त करने की चेष्टा की गई है। वेदोमे न केवल उपासनात्मक भक्ति ही उपलब्ध होती है अपितु परम प्रेम की पराकाष्ठा रूप प्रेमलक्षणा भक्ति के भी बीज विद्यमान हैं। लीला का नित्यत्व आचाय ने 'अविभागोवचनात्'[2] से सिद्ध किया है। भक्त *उस लीला का आस्वादन करता है। इसी प्रकार*

"जज्ञान एव व्यबाधत स्पृध प्राविश्यद्वीरो अभियोस्य रणम् ।

अवृश्चदद्रिमव सस्यद सृजदस्तभ्नान्नाक स्वपयस्यया पृथुम् ॥ ऋग्वेद—१०-११३-४

इस ऋचाका भी श्रीविट्ठलनाथजी ने अपने ग्रथ विद्वन्मडन मे बहुत सुन्दर भाष्य किया है। वे लिखते हैं —

१ तान्तानि–वेस्थान। वां=भगवदन्तरगभक्तयो=भगवान् और उनके अतरग भक्तों का वास्तुनि= वस्तुनि=स्थानानि ( दखो विदुन्मडन ) अर्थात् स्थल, उष्मसि कामयावहे=इच्छा करते हैं। गमध्यै प्राप्तुम्=प्राप्त करने के लिए—ता वां गमध्यै=उन भगवान् की और उनके भक्तों की वस्तुएं और उनके स्थानों की इच्छा करते हैं। किनस्थानों की ? उत्तर में कहते हैं—'यत्रगावो' आदि।

२ ब्रह्मसूत्र—४ २-१६

"जज्ञान एव गोकुले जातमात्र एव स्पृधः पूतना तृणावर्तादि वैरिणो व्यबाधत विविध प्रकारेण विशेषेण वा हिंसितवान् । पश्चाद्वीरो (विक्रान्तो) मथुरा द्वारकादिषु अभियोस्थमात्म पौरुषानुरूप रण दैत्यैस्सह सग्राम प्राप्यदनुभूतवान् कृतवानित्यर्थ । भूमिष्ठ दैत्याना नाशकत्वमुक्त्वा देवेन्द्रामरग्रहकारित्वमाह ।। अद्रि गोवर्धन गिरिम् अवश्यदुत्पाटितवान् सः स्वत अस्नवदिन्द्र प्रेरित जलमवासृजदधिक्षिप्तवान् निवारितवान् । एतया स्वस्थया गोकुल स्थिति करण धर्मेच्छया पृथु विस्तीर्ण नाकम् अस्तम्नात् प्रतिबद्धवान् इन्द्रादि देवाना मदस्तम्भ कृतवानित्यर्थ ।"

अर्थात्, भगवान् ने गोकुल मे प्रकट होते ही पूतना तृणावर्तादि शत्रुओका विविध भाँति से सहार किया और बाद मे मथुरा द्वारकादि स्थलो मे अपने पुरुषार्थ के अनुकूल दैत्यो से सग्राम किया और उनका नाश करके इन्द्र का मद भग किया और गोवर्धन पर्वत को उठाकर वर्षा के जल से व्रज की रक्षा की ।"[१]

तात्पर्य यह है कि वेदो मे भगवान श्रीकृष्ण की नित्य लीलाओका दिग्दर्शन कराने की सप्रदाय के आचार्यों ने चेष्टा की है। ऐसे अनेक मत्र हैं जिनके कृष्णलीला परक भाष्य आचार्य चरणो ने किए हैं। और जो साप्रदायिक विद्वानो द्वारा मान्य हैं। पर इधर श्रीकृष्ण-लीला और श्रीकृष्ण-भक्ति की प्राचीनता की चर्चा करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद दिवेदी कहते हैं —

' श्री कृष्णावतारके दो मुख्य रूप हैं : एक मे वे यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर हैं, राजा हैं, कसारि हैं। दूसरे, वे गोपाल हैं, गोपीजनवल्लभ हैं राधाधर सुधापानशाली बनमाली हैं। प्रथम रूप का पता बहुत पुराने ग्रन्थो से चल जाता है। पर दूसरा रूप अपेक्षाकृत नवीन है।" आगे वे लिखते हैं—"वैसे तो अवतारो की सख्या बहुत मानी गई है, हमने देखा है कि यह ६ से बढती-बढती अडतीस तक पहुँची है। परन्तु मुख्य अवतार राम और कृष्ण ही हैं। इसमे भी कृष्णावतार की कल्पना पुरानी भी है और व्यापक भी।"[२] इन दो अवतारो की महत्ता स्थापित होने का प्रधान कारण है–इनकी लीलाबहुलता और लोकरजकता। तात्पर्य यह कि श्रीकृष्ण की अवतार-भावना के साथ उनकी लीलाओ मे आसक्ति और उनको परब्रह्म मानकर उनके प्रति आत्म निवेदन भारतीय साधना की एक बहुत प्राचीन और प्रमुख धारा रही है। जो कभी काल प्रभावसे स्थूल और कभी सूक्ष्म होती आई है।

सर्वेशके प्रति आत्म-निवेदन का यह भाव मानव-मन का अनादि भाव है। जागतिक झझाओ से प्रताडित होकर और कभी भाव–विभोरदशा मे भगवल्लीला-रस से अभिभूत होकर मानव मे आदि काल से भक्ति-तत्वका उदय हुआ था। इस स्थिति मे वह अपने आपको किसी भी नाते से उस महान् के चरणो मे अति विनीत भाव से स्वविनियोग कर देना चाहता था। यही भक्ति-भाव स्वतन्त्र साधना-मार्गों मे अलग-अलग रूप से भी चला और बीजरूप से कर्म और ज्ञान वाली भारतीय साधना पद्धति मे भी विद्यमान रहा। कर्मयोग मे फलासक्ति रहित जो कर्त्तव्य कर्म मे आस्था है वह भक्तितत्व ही है।

१ उक्त मत्र में ललित त्रिभंगी श्रीकृष्णचन्द्र की गोकुल मथुरा तथा द्वारका में की गई भिन्न लीलाओं की चर्चा की गई है।—लेखक

२ मध्यकालीन धर्म साधना पृष्ठ–१२८

और उसीसे साधक परमपद का भागी होता है।[1] ज्ञान और योग के क्षेत्र भी श्रद्धा-निर्भर होने के कारण भक्ति विरहित नहीं। तात्पर्य यह है कि आस्था, श्रद्धा, तथा उसका व्यवहार (साधना) ये भक्ति के ही पूर्व रूप है। इस प्रकार किसी भी प्रकार की भारतीय-साधनामे कही भी ऐसा स्थान नही जो भक्ति-तत्व से रिक्त हो। ज्ञान-मार्ग और योग-मार्ग निर्गुण की आराधना बतलाते हैं। भक्ति-मार्ग सगुण की। निर्गुण-मार्ग साधक के लिए कठिन और क्लेशकारक होता है, सगुण मार्ग सुगम और सरल।[2] अत निर्गुण की क्लिष्ट भावना ने ही सगुण भक्तिको परिपुष्ट और पल्लवित किया है।

श्रीमद्भागवत पुराण मे भक्ति तत्व:—वैदिक काल से चली आने वाली भक्ति की अजस्र धारा पुराण युग तक आते-आते अत्यन्त पीनोन्नत हो गई और भागवत के काल में तो उसका महत्व चरम सीमा पर पहुँच गया। श्रीमद्भागवत पुराण आमूल भक्ति-पुराण है और सात्वत श्रुति[3] है। भागवत धर्म का अथवा भक्ति-मार्ग का प्रतिपादक इससे बढकर कोई अन्य ग्रन्थ नही है। यही कारण था कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने सिद्धान्त के लिए प्रमाण-चतुष्टय के अन्तर्गत श्रीमद्भागवत को स्वीकार किया है।[4] और उसे व्यास देव की "समाधि भाषा" कह कर अत्यन्त समान और महत्व दिया है। आचार्य के अनेक ग्रन्थ श्रीमद्भागवत पर ही आधारित हैं। पुरुषोत्तम सहस्रनाम तो भागवत का सक्षिप्त सस्करण है। इसके अतिरिक्त दशमस्कध अनुक्रमणिका, त्रिविधलीलानामावली दशमस्कध के ही सक्षिप्त रूप है। तत्वदीपनिबध का श्रीभागवतार्थ प्रकरण श्रीमद्भागवत की स्वरूप-साधना को और उसके बहिरग परिचय को स्पष्ट करता है। श्री सुबोधिनी भागवत के अन्तरग रहस्य का बोध कराती है। श्रीमद्भगवत के प्रति आचार्य की कितनी निष्ठा थी इसका परिचय सर्वनिर्णय प्रकरण के अनेक श्लोको से मिल जाता है। भागवत के उपक्रम-उपसहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद-उपपत्ति सभी का तात्पर्य भक्ति है। सात्वत पति श्रीकृष्ण वासुदेव के प्रति एकतान भक्ति ही उसका लक्ष्य है।[5] वही उसके प्रतिपाद्य हैं।[6] श्रीमद्भागवत के एकात अनन्य गौरव के मूल मे उसका भक्ति-प्रतिपादन ही

---

१ भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि ! भाव्यते ।
स्वभाव गुणमार्गेण पुंसाभावो विभिद्यते ॥ भाग० ३-२६-७

२ क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त चेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दु खं देहवद्भिरवाप्यते ॥ गी० अ० १२ श्लो० ५

३ संवाद- समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः । म० भा० २-४-७

४ वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैवहि ।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणंतच्चतुष्टम् ॥ त० दी० नि०

५ सर्वै पुसा परो धर्मो यतोभक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति ॥
वासुदेवे भगवति भक्तियोग' प्रयोजितः ।—वही
जनयत्याशु वैराग्यं च यदहैतुकम् ॥ श्रीमद्भाग० १-२।६-७

६ तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वता पतिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येय' पूज्यश्चनित्यदा ॥ वही १-२-१४ ।

है। इस ग्रन्थ के माहात्म्य में ही भक्ति की उत्पति और विकास की कथा एक रूपक के आश्रय से बड़े ही मनोहर ढंग से व्यक्त की गई है।

. व्रजप्रदेश में ज्ञान और वैराग्य नाम के अपने दोनों मुमूर्षु पुत्रों के पास बैठी हुई भक्ति-युवती नारद जी से कहती है कि "मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न हुई "कर्णाटक में बढ़ी, कहीं-कहीं महाराष्ट्र में सम्मानित हुई हूँ। किन्तु गुजरात में मुझे वार्द्धक्य ने आ घेरा था। वहाँ घोर कलियुग के प्रभाव से पाखण्डियों ने मुझे अंग-भंग कर दिया। चिरकाल तक यही अवस्था रहने के कारण मैं अपने पुत्रों के साथ घोर निस्तेज हो गयी थी। अब जब से मैं वृन्दावन आई हूँ तब से पुनः परम सुन्दरी स्वरूपवती नवयुवती हो गयी हूँ।[1]"

प्रस्तुत रूपक में भक्ति के विकास का बड़ा सुन्दर संकेत मिलता है। एक प्रकार से यह भारतीय भक्ति-भावना के विकास की कहानी है जिसमें न केवल भौगोलिक सीमाओं का संकेत है अपितु काल-क्रम का भी सकेत मिलता है। मानव-मन से उदित भक्ति-भावना वैदिक-साहित्य में उल्लसित हुई और भगवान् बुद्ध (ईस्वी सन् पूर्व छठी शताब्दी) से पूर्व वासुदेव भगवान् ने इस भक्ति-योग का महान् उपदेश किया था। परिणाम स्वरूप वासुदेव-अर्चायुक्त भक्तिमार्ग का प्रचार हुआ। पाणिनि तथा प्राचीन शिलालेखों में वासुदेव की पूजा के प्रभूत प्रमाण मिल जाते हैं। फिर संहिताओ मे, पुराणों मे तथा ईस्वी सन् की दूसरी तीसरी शताब्दी से लेकर दसवी शताब्दी तक के संस्कृत-साहित्य मे. तथा इस काल की वास्तुकला शिलालेखों तथा मंदिरों-मूर्तियों आदि मे मध्यकालीन पौराणिक वैष्णव-धर्म के दर्शन होते हैं। यह लंबा काल भक्ति-पादप के उद्भव और विकास का मनोहर इतिहास प्रस्तुत करता है। ११ वी शताब्दी से इसमे बड़ी-बड़ी शाखाएँ फूटनी आरम्भ हुईं। भागवत माहात्म्य का आप्त वाक्य—'उत्पन्नाद्रविडे साहं'—ईस्वी सन् की ४थी शती से ६ वी शती के भक्ति-आन्दोलन का संकेत देता है। यह काल आलवारों के उदय और अस्त का समय है। चौथी शताब्दी में उत्तर भारत में गुप्त वंश के आश्रय में ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहन तो मिला, परन्तु बौद्ध और जैन धर्म जोर पकड़े हुए थे। अतः यहाँ वैष्णव धर्म कुछ अधिक उन्नत अवस्था में नही था। दक्षिण में बौद्ध और जैन धर्म निराश्रित थे। वहाँ केरल प्रदेश में ब्राह्मण-धर्म को अच्छा प्रश्रय मिला हुआ था। इस प्रकार उत्तर भारत में जबकि ७ वी ८ वी शताब्दी तक बौद्ध और जैन धर्म जोर पर थे दक्षिण मे पल्लव और चोल वंशीय नरेश पौराणिक वैष्णव धर्म की उन्नति मे पूरा-पूरा योग दे रहे थे। और अनेक भव्य मदिरो के निर्माण में व्यस्त थे। तात्पर्य इतना ही कि भक्ति आन्दोलन दक्षिण से प्रारम्भ हुआ। और वहाँ शैव और वैष्णव धर्म के आचार्यों ने मिलकर बौद्ध और जैन

---

१ उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता॥
तत्र घोर कलेर्योगात्पाखण्डैः खंडितांगका।
दुर्बलाऽहं चिरंयाता पुत्राभ्यां सह मंदताम्॥
वृंदावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी।
जाताहं युवती सम्यक् श्रेष्ठ रूपा तु सांप्रतम्॥
पद्मपुराणान्तर्गत—भाग० माहात्म्य अ० १ श्लो० ४८, ४९, ५०।

धर्म के समूलोच्छेदन के लिए अथक् प्रयत्न किया। एक प्रकार से आठवीं से सोलहवीं शताब्दी तक का काल भागवत-धर्म का पुनरुत्थान काल है। आचार्य वल्लभ से पूर्व तक भारत में अनेक पौराणिक भक्ति संप्रदाय एवं आस्तिक सिद्धांत अस्तित्व में आ चुके थे।

संप्रदायों से पूर्व आलवार पंथ भागवत धर्मों मे सर्व प्रधान था। तमिल क्षेत्र मे इन्ही आलवारों से भक्ति पल्लवित हुई। प्रमुख आलवार संख्या मे १२ थे। इनमे स्त्री पुरुष, जाति पाँति का कोई भेद नही था। ये लोग पल्लववंशीय राजाओं के युग मे विद्यमान थे। इनका काल ४ थी से ६ वी शताब्दी तक का माना जाता है। शठकोप ( नम्मालवार ) तथा गोदा या आण्डाल इनमे सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। श्रीवल्ली पुत्तुम् मे आण्डालका एक मंदिर अद्यावधि वर्तमान है।

यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि संप्रदायो के अस्तित्व मे आने से पौराणिक-भक्तिमार्ग दब नही गया। बल्कि संस्कृत भाषा तथा लोकभाषा द्वारा पुराणों का प्रचार चालू रहने से पौराणिक वैष्णव धर्म की धारा चलती रही। इस प्रकार वैष्णव-धर्म के तीन युग स्पष्ट हो जाते हैं—

आदि युग—लगभग ईस्वी सन् ६०० पूर्व से लेकर ईस्वी सन् २००-३०० तक।

मध्य युग—ईस्वी सन् ३००-४०० से ईस्वी सन् १००० तक।

तथा अर्वाचीन युग—ईस्वी सन् १०००-११०० से प्रारंभ होने वाला साम्प्रदायिक युग।

अर्वाचीन युग के सम्प्रदायों के उदय होने मे कुछ-कुछ वे ही कारण थे जो आदि युग में भक्ति-भावना के उदय होने मे थे। उस युग मे भी कर्मकाण्ड की जटिलता और वैदिक आचारों की प्रबलता के कारण भगवदनास्था थी। इसीलिए भगवान् को वासुदेव धर्म का उपदेश करना पड़ा। बाद में बौद्ध एवं जैन धर्म की प्रबलता कारण-भूता रही। इस (मध्य) युग मे शबर स्वामी कुमारिल भट्ट जैसे मीमांसको ने कर्ममार्ग का प्रतिपादन करते हुए बौद्ध और जैन धर्म का खण्डन किया। इन्होंने कर्ममार्ग के प्रतिपादन करने के लिए औपनिषदिक ज्ञान-मार्ग का भी खण्डन किया। किन्तु यह कर्मवाद भी थोड़े ही समय में जडवाद ले आया और इसकी प्रतिक्रिया मे श्री गौड्पादाचार्य और उनके प्रशिष्य शंकराचार्य ने पुन. कर्ममार्ग का खण्डन किया और पुनः संन्यास प्रधान ज्ञान मार्ग का प्रतिपादन किया। मध्ययुग के साधकों के लिये सन्यास प्रधान ज्ञान ही मोक्ष का साधन बना। वैष्णवाचार्यों को यह बात नही रुची और उन्होंने प्रेम प्रधान भक्ति-मार्ग की स्थापना के लिए शंकर के मायावाद के खण्डन करने का प्रयत्न किया।[१]

इस प्रकार भक्ति के आदिकालीन उत्थान और साम्प्रदायिकयुगीन उत्थान मे एक मौलिक अन्तर रहा है; और वह यह कि आदिकालीन भक्ति-उपदेशकने अपनी प्रतिभा के बल से अथवा दिव्य दृष्टि से एक नवीन प्रकाश डाला। परन्तु साम्प्रदायिक आचार्यों ने आगम प्रमाणों को प्रमुखता देकर मूल तत्व का ही प्रतिफलन किया है। दूसरे शब्दों मे भक्ति का प्राचीन युग स्वयं-प्रकाश है, जबकि अर्वाचीन युग पर-प्रकाश है। मध्य युग इन दोनो को जोड़ने वाला सेतु है।

---

१ देखो—"हिस्ट्रीकल स्केचेज आव डेकन"

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है सप्रदायो का युग १०००–११०० ई० से प्रारम्भ होता है। स्मरण रखना चाहिये कि इन आचार्यों को आलवारो की गहन भक्ति-भावना विरासत मे मिली थी। आलवारो का सर्वाधिक प्रभाव रामानुज पर पडा। आलवारो की वाणी का सग्रह-जिसे 'दिव्यप्रबधम्' कहा जाता है-परवर्ती आचार्यों की सैद्धान्तिक एव व्यावहारिकी सपत्ति थी।

सप्रदायाचार्यों मे सर्वप्रथम रामानुज हुए। इनका समय १०१७ ई० से ११ ७ तक का है। आलवारो के 'दिव्य प्रबधम्' का सम्पादन सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप मे इन्होने करवाया। इनके उपरात निम्बार्काचार्य हुए। इनका समय ११६४ तक है। इन्होने भी रामानुज की भाँति ब्रह्मसूत्र पर टीका की। इनके उपरात मध्वाचार्य हुए। रामानुज एव निबार्क ने अद्वैत को आशिक प्रश्रय दिया है। किन्तु मध्व ने अद्वैत का बिल्कुल ही तिरस्कार किया है। इनका युग ११६६ ई० से १२७८ तक का है।

तात्पर्य यह कि महाप्रभु वल्लभाचाय के आविर्भाव के पूर्व अपनी-अपनी पद्धति के अनुकूल भक्तिमार्ग का प्रतिपादन करने वाले ४–५ सप्रदाय हुए। इन सब सप्रदायो की भक्ति पद्धति के तारतम्यको दृष्टि मे रख कर महाप्रभु ने अपने भक्तिमार्ग को सर्वाधिक मधुर बनाने का यत्न किया था।

उपर्युक्त विभिन्न सिद्धान्तो के आचार्य-गण महाप्रभु वल्लभाचार्य के पूर्ववर्ती थे। निम्नाकित कतिपय सप्रदाय आचार्य वल्लभ के समसामयिक कहे जा सकते हैं—

चैतन्य सम्प्रदाय, टट्टी सम्प्रदाय, सखी सम्प्रदाय राधावल्लभीय सम्प्रदाय आदि। इन सम्प्रदायो के अतिरिक्त बगाल तथा महाराष्ट्र मे और भी छोटे-मोटे सम्प्रदाय थे। इन सम्प्रदायो के द्वारा प्रतिपादित भक्ति का स्वरूप उत्तरोत्तर प्रगाढ होता गया और भक्ति के रागात्मक पक्ष को विशेष बल मिलता चला गया। और प्रपत्ति अर्थात् शरणागति उसका लक्ष्य होता गया। आचार्य वल्लभ की प्रशस्ति मे एक विद्वान् का कथन है—

निम्बार्के बिम्बमार्के गतवति गमिते शेष भावचशेषे।
मध्वेऽध्वान च विष्णो मृतवति मिलिते शकर शकरार्ये॥
वेदान्छस्त्राणि मज्ञानगर करिवृढास्वस्वरूपेण रक्षन्।
श्री श्रीमदवल्लभार्यो जगदखिल गुरूस्थानमारोहतिस्म॥

तात्पर्य यह कि महाप्रभु वल्लभाचार्य के आचार्यत्व पर अभिषिक्त होने के समय तक अनेक सम्प्रदाय एव मत लगभग अवनत हो चले थे। आचार्य ने तीन बार पृथ्वी पर्यटन किया और भक्ति सुरसरि का भगीरथत्व करके एक बारगी समूचे देशको श्रीकृष्ण भक्ति मे आप्लावित कर दिया।

---

## महाप्रभु वल्लभ के भक्ति विषयक विचार

आचार्य वल्लभने भक्ति की परिभाषा देते हुए कहा है कि 'भगवान् के माहात्म्य ज्ञान पूर्वक जो सुदृढ सर्वाधिक स्नेह है वही भक्ति है।"[1] अर्थात् आचार्य के मत मे भगवन्माहात्म्य का ज्ञान और उनमे सुदृढ स्नेह यही दो वस्तुएँ भक्ति के लिये मुख्यत. अपेक्षित हैं। आचार्यजी की परिभाषा शाण्डिल्य एव नारदीय भक्ति सूत्रों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक एव वैज्ञानिक है। भगवान् मे परम अनुराग होना चाहिए। परन्तु वह परम अनुराग हो कैसे ? जब तक जीवको प्रभुके माहात्म्य का ज्ञान नही होगा, तबतक दृढ अनुराग होना कठिन है। विचार करने की बात है कि आचार्य 'महात्म्य ज्ञान' की बात कहते हैं, स्वरूप ज्ञान की नही। माहात्म्यज्ञान भक्त को अनेक प्रकार से हो सकता है। फिर इस भक्ति मे देश और काल की मर्यादा नही। न वैदिक विधि निषेधो की चर्चा है। साथ ही स्त्री शूद्रादि सभी के लिए इस भक्तिका द्वार उन्मुक्त है यह ऊपर कहा जा चुका है 'भक्ति' शब्द मे भज् धातु का अर्थ सेवा है। और सेवा का अर्थ देते हुए आचार्यजी ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तमुक्तावली मे स्पष्ट कहा है कि चित्त की प्रवणता ही सेवा' है। अतः मानसी-सेवा ही सर्वोत्तम और फलरूपा है।[2] मानसी-सेवा को सर्वोत्तम कहने का कारण भी यही है कि मन ही तो ससार का मूल है। ससार के नश्वर पदार्थो मे अटका हुआ यह मन प्रभु की ओर नही जाता। यदि यह भगवान की ओर जाय तो उन्हीं को अपना प्रियतम मान कर उनमे आसक्त हो जाय। अत मनका ही निरोध सर्व प्रथम अपेक्षित और आवश्यक हैं। निरोध' की स्थिति भगवदनुग्रह से ही सभव हैं। इसी भगवदनुग्रह को लक्ष्य करके आचार्य ने कहा था "पुष्टिमार्ग मे एक मात्र अनुग्रह ही नियामक है।"[3] यह अनुग्रह ही पुष्टि भक्ति का मूल है।

इस पुष्टि भक्ति का निरूपण महाप्रभु वल्लभाचार्य ने लगभग अपने सभी ग्रन्थों में किया है। और भक्ति के उसी आदर्श को सभी अष्टछापी भक्तों ने अपनाया है। परमानन्द दासजीके साहित्य मे भक्ति तत्वको देखने से पूर्व उनके दीक्षा -गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य की भक्ति का स्वरूप समझ लेना समीचीन होगा।

### महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की भक्ति का स्वरूप

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने निखिल जगत् के जीवो को त्रिधा विभक्त किया है :

१—पुष्टिमार्गीय जीव

२—मर्यादामार्गीय जीव

३—प्रवाहमार्गीय जीव

आचार्य के इस त्रिधा विभाजन का आधार श्रीमद्भगवद्गीता का यह श्लोक है.—

"द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एवच।"

---

१ माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ' सर्वतोऽधिक'।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा॥ त० दी० नि०—शा० प्र० श्लो०—४६

२ पुष्टि प्रवाह मर्यादा विशेषण पृथक्-पृथक्।
जीव देह क्रिया भेदै· प्रवाहेण फलेन च॥ पु० प्र० म० भेद-श्लोक

३ अनुग्रहो पुष्टिमार्गे नियामक इति सिद्धान्तः।

अर्थात् 'इस लोक में दो प्रकार की सृष्टि है : एक दैवी सृष्टि और दूसरी आसुरी सृष्टि।" इस प्रमाण से वर्णाश्रमादि वैदिक धर्मकी मर्यादा में आबद्ध जीव समुदाय मर्यादा मार्गीय और जगत् प्रवाह में बहने वाला जीवसमुदाय प्रवाहमार्गीय है।

परन्तु "जो मेरा भक्त है वह मेरा प्यारा है।"[1] इस भगवद्वाक्य के अनुसार जो भगवान के भक्त हैं वे उक्त दोनो प्रकार के जीवों से अलग और श्रेष्ठ हैं। वे ही "पुष्टिमार्गीय' जीव हैं। इनका सर्वत्र उत्कर्ष रहता है।[2] ये पुष्टिमार्गीय जीव भगवान् की देहसे उत्पन्न उनका ही अहैतुक अनुग्रह प्राप्त किए होते हैं। इस अनुग्रह के लिए वेद का ज्ञाता होना, तपस्वी, दानी अथवा याज्ञिक होना आवश्यक नहीं।[3] इसके लिए तो केवल भगवदनुग्रह ही अपेक्षित है। ऐसा अनुगृहीत जीव लोक और वेद में निष्ठा नहीं रखता।[4] इस प्रकार पुष्टिमार्गीय जीवप्रवाह और मर्यादा दोनो से परे है।[5]

ये पुष्टिमार्गीय जीव देह, चिह्न क्रियादि में गुणो में अन्य प्रवाही तथा मर्यादा मार्गीय जीवों जैसे ही होते हैं। अर्थात् तीनों प्रकार के जीवों के देहादि बाह्य दृष्ट्या एकसे ही होते हैं।[6]

पुष्टिमार्गीय जीव दो प्रकार के होते हैं:—

१. शुद्ध पुष्टि जीव।
२. मिश्र पुष्टि जीव।

मिश्र पुष्टि जीव तीन प्रकार के होते हैं:—

१. प्रवाही मिश्र पुष्टि।
२. मर्यादा मिश्र पुष्टि।
३. पुष्टि मिश्र पुष्टि।

भेदों का कारण—शुद्ध मिश्रादि भेद में भगवद् इच्छा ही प्रधान एवं बलवान् है। इन भेदों का रहस्य विविध रस एवं भावों के प्रकट करने में ही है। अतः भगवान् जीवों की विचित्र विविधताओं को निजेच्छा से अङ्गीकार करते हैं। संक्षेप में "लोकवत्तु लीला कैवल्यम्" वाले तत्त्वसूत्र का यही रसिक अभिप्राय है।

शुद्ध और मिश्र पुष्ट भक्तों का साधन दशा में ही साक्षात्धर्मी के साथ संबंध होता है। उन्हें प्रावाहिक विषय अथवा मार्यादिक कर्म, उपासना, ज्ञान विहित भक्ति आदि कुछ नहीं सुहाता। वस्तुतः शुद्ध मिश्र भेद भगवद्रस निष्पत्ति के ही लिए है अतः शुद्ध पुष्टि भक्त एवं मिश्र पुष्टि भक्त दोनों का ही रस निष्पत्ति के हेतु समान महत्व है।

---

१ यो मद्भक्तः स मे प्रियः—श्रीमद्भगवद् गीता

२ सर्वेभ्योऽपि [illegible] पुष्टिरस्तीति निश्चयः। प्र० पु० म० ४

३ नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥ गी० अ० ११ श्लोक ५३

४ यदा यस्यानुगृह्णाति भगवान् आत्मभावितः।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥ श्रीमद्भागवत

५ "प्रवाहमर्यादाभ्यां भिन्नो हि पुष्टिमार्गो निरूपितः"—प्र० पु० म०—श्लोक ८

६ स्वरूपेणावतारेण लिङ्गेन च गुणेन च।
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा क्रियासु वा॥ प्र० पु० म० ११

१. प्रवाह मिश्रित पुष्टि भक्त.—यह भक्त क्रियात्मक होता है। व्रज भूमि आदि स्थलो मे तीर्थ पर्यटन आदि अनेक क्रियाएँ कराते हुए भगवद्रस प्रकट कराना ही इस भक्त के प्रति भगवदिच्छा हुआ करती है।

२. मर्यादा मिश्रित पुष्टि भक्तः—यह भक्त गुणज्ञ होता है। भगवद्धर्म मे उसकी रति होती है। यह भगवान् के गुणगान करता हुआ कालयापन करता है। भगवान् की इस मर्यादा पुष्टि भक्त के प्रति यही इच्छा होती है।

"तव कथामृत तप्तजीवनम्।
कविभिरीडित कल्मषापहम्॥" गोपीगीत

इस प्रकार मर्यादा पुष्टि जीव अपने भव-ताप-तप्त जीवन को श्रवण-मगल भगवत् कथामृत से शात करता हुआ अपने कल्मषो को धोता रहता है। इस प्रकार वह भागवत धर्म का पालन करता है। ऐसे भक्त की कभी अत्याग दशा और कभी मानस त्याग दशा होती है। हृदयस्थ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वगुण श्रवण करके ऐसे परम भावुक भगवदीयो को स्वरूपानन्द मे प्लावित कर देते हैं।

"हृदयगतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्ण. प्लावयते जनान्।"

आदि वचनामृतो का यही आशय है। कितने ही इस प्रकार के मर्यादा पुष्टि जीवो का भगवदिच्छा से ही साक्षात् पुरुषोत्तम मे सायुज्यलय होता है। और पुनः रमण के अवसर पर भगवान प्रकट होकर इन्हे परिपूर्णता का दान करते हैं।[१] यह भक्त स्वकीय देह प्राण, इन्द्रिय अन्तः करण और उनके धर्म एव दार आगार पुत्र, आप्त, वित्त, सर्वात्मभाव से समर्पित करके प्रभु विनियोग के हेतु इन सबको अङ्गीकार करता हुआ निरतर भगवत्सेवा करता है। और भगवान के चरण कमलो का मकरद पान करता हुआ कृतार्थ होता है। प्रियतम प्रभु के गुणगान मे रत यह भगवदीय निरुपधि कृपानद सुधा का आस्वाद करता है।

पुष्टि विमिश्रित पुटि भक्त—यह भक्त सर्वज्ञ होता है। और भगवान् के रसात्मक स्वरूप के समस्त अभिप्रायो का ज्ञाता होता है। स्वय पुष्टिमार्ग का तत्व ही अत्यन्त सूक्ष्म है और दुर्ज्ञेय है। फिर यह भक्त तो पुष्टि मर्यादा का अतिक्रमण करके पुष्टि मिश्रित पुष्टि मार्ग मे प्रवेश करता है अतः जो इसकी स्थिति पर पहुँचता है वही इसकी स्थिति का अनुभव कर सकता है, परन्तु इस स्थिति मे पहुँचना अत्यन्त कठिन है। यह भगवान् के अतिशय अनुग्रह के बिना किसी प्रकार सम्भव नही। इस मार्ग का उपदेश भी नही किया जा सकता। इस स्थिति के भक्त की दो ही दशाएँ होती है: या तो परम विरह दशा या संयोग दशा। विरह दशा अत्यन्त दुःसह होती है। इस दुःसह दशा मे सर्वभाव का उपमर्दन होता है। अतः ऐसी स्थिति मे उपदेश सम्भव नही। और सयोग दशा मे प्रियतम भगवान निकट रहते हैं अत. यों भी उपदेश सम्भव नही। और इस कोटि के विरल रसिक भगवदीयजन यदिचेत् जैसे-तैसे अपने काल को यापन करने के लिए दो अक्षर बोल भी दें तो उत्कृष्ट अधिकारी को निस्सीम लाभ हो जाता है।

---

१ विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः।" और
विष्णो सुमतिं भजामहे॥

पुष्टि मिश्रित पुष्ट भक्त को भगवान् एक प्रकार से मंन्यस्त बना देते हैं। त्याग तो इस भक्त का पृष्ठ लग्न होता है। वह तो सदैव भाव-भावना में ही डूबा रहता है। विकलता और बेचैनी इसकी सहचरियाँ होती है। "ज्ञानं गुणाश्च तस्य एवं वर्तमानस्य बाधका:" इस श्लोक में पुष्टि मिश्रित पुष्ट भक्त की दशा का ही वर्णन है। "स्वस्थता" तो इस भक्त के भाग्य मे है ही नही।

शुद्ध पुष्टि—शुद्ध पुष्टि पुष्ट भक्त मे प्रेम के अतिरिक्त दूसरा कोई तत्व होता ही नही है। "शुद्धाः प्रेम्णातिदुर्लभाः।" के अनुसार ऐसा शुद्ध पुष्टि-पुष्ट रसिक भगवदीय अत्यन्त दुर्लभ होता है। इस स्थिति मे भक्त "प्रियतम रागमसंजातहास्यरुक् सलिल" मे स्नान करता है। प्रिय के चर्वितताबूल का अधिकारी बनकर "करुणाकृतस्मितावलोक" का भाजन बन जाता है। परमाराध्य के चरणारविन्द में उसकी निस्सीम प्रणति और प्रवृष्ट दैन्य ही उसकी नित्य सध्या बन जाती है। तापक्लेश युक्त प्रगाढ भाव ही उसका नाम-संकीर्तन है। अस्तंगच्छत्सूर्याग्नि मे अपने सपूर्ण दिवस के दुख का विसर्जन ही इसका होम है। और प्रियवार्ता कथन ही ब्रह्मयज्ञ और मनोरथ सिद्धि द्वारा सर्वेन्द्रिय का आप्यायन ही इसका तर्पण है।

"रस" ही इस भक्त का जीवन, रस ही अंग और रस ही इसकी संपत्ति है। निरुपधि स्नेह एव निर्भर स्थिति के बिना यह एक क्षण भी जीवित नही रह सकता। तात्पर्य यह है कि "वैष्णावत्व हि सहजम्" इसका स्वरूप है और अन्तर्बाह्य रमाविष्टत्व ही इसका स्वाभाविक धर्म है। गोपी गीत का यह वाक्य "त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् " से ही इसकी स्थिति का आभास मिल सकता है। रसात्मक प्राणेश के प्रत्यक्ष दर्शन के बिना एक-एक पल इसे युग जैसा लगता है। भगवान् भी ऐसे भक्त को काम भोग समर्पण करने के लिए क्रीडा करते हैं। और क्रीड़ा मे विजयेच्छा करते हैं। भक्त के साथ प्रेम व्यवहार करते हैं। भक्त को स्वमाहात्म्यादि का द्योतन कराते हुए उसकी स्तुति करते हैं। भक्त को मोद दान देते हुए उसके भक्तिमदका संपादन करते हैं। और भक्त को उसके 'सुरत-नाथ' के दर्शन हों—इस हेतु वे स्वप्न दान भी देते हैं। भक्त की कान्ति बढाते हैं और भक्त के पास ही जा विराजते हैं।" दिवो दानाद्वा दीपदानाद्वा द्योतनाद्वा कस्य नो भवतीति वा य देव।" इस प्रकार "देव" शब्द का संपूर्ण अर्थ[1] इस रसिक भगवदीय को प्रत्यक्ष हो जाता है।

## परमानन्ददासजी की भक्ति का स्वरूप :—

साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से भक्ति के सामान्य निरूपण के उपरान्त हम परमानन्ददास जी के भक्ति विषयक विचारो की चर्चा प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि वार्ता मे आया है—परमानन्ददासजी ने महाप्रभु वल्लभाचार्य को शरण ग्रहण करने के उपरान्त श्रीमद्भागवत की दशम स्कध की भगवल्लीलाओं के आधार पर पदो की रचना की। उनके उन समस्त पदो को द्विधा विभाजित किया जा सकता है।

---

१ देव "दिवु" धातु से बना है। दिवु धातु क्रीडा विजयेच्छा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति और गति के अर्थ में आता है। "दिवु-क्रीड़ा, विजिगीषा व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गतिषु।"—धातु पाठ।

१. भगवल्लीला विषयक पद।
२. स्वतन्त्र-आत्मानुभूति, दैन्य एव आत्मनिवेदनपरक पद।

उनके लीला विषयक पदो मे यत्र-तत्र भगवदैश्वर्य की चर्चा है। पुन-पुन पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम का अहैतुक भक्त-कृपावश्यत्व और अवतार धारण करके नरलीला करने की बात है।

परन्तु दूसरे प्रकार के आत्मनिवेदन अथवा दीनता के पदों मे उनकी भक्ति का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। उन्होने भागवत का पूर्ण अनुसरण किया है। "नामूल लिख्यते किंचित्" के अनुसार वे शास्त्रीयता मे पूर्ण आस्थावान् है। अत सामान्य भक्ति भावना की दृष्टि से वे नवधा भक्ति को उत्तम बतलाते हैं। भागवत मे नवधा भक्ति का क्रम इस प्रकार दिया हुआ है —

"श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्।
अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्मनिवेदम्॥"[1]

अर्थात् भगवान के गुणो का श्रवण उनका कीर्तन स्मरण चरण सेवा, अचन, वन्दन, दास्य (प्रणति) सखाभाव और आत्म-निवेदन इस प्रकार से नौ प्रकार की भक्ति है। दसवी प्रेमलक्षणा भक्ति है जो किसी पात्र मे ही प्रकाशित होती है।[2]

परमानन्ददासजी ने भागवतोक्त नवधा भक्ति तथा दसवी प्रेम लक्षणा भक्ति की इस प्रकार चर्चा की है।

ताते नवधा भक्ति भली।[3]
जिन जिन कीनी तिन तिन की गति नेक न अनत चली॥
श्रवण परीक्षित तरे राजरिषि कीर्तन तें सुकदेव।
सुमरन तें प्रह्लाद निरभै हरि पद कमला सेव॥
अर्चन पृथु वदन सुफलकसुत, दास भाव हनुमान।
सख्य भाव अर्जुन बस कीने श्रीपति श्री भगवान॥
बल आतम निवेदन कीनो राखे हरिकों पास।
प्रेम भक्ति गोपी वस कीनो वलि परमानन्ददास॥ प० सा० ६६२॥

"राजर्षि परीक्षित श्रवण भक्ति से, शुकदेव जी कीर्तन से, भक्तप्रवर प्रह्लाद स्मरण और लक्ष्मीजी पादसेवन से भगवान की अराधना करती है। महाराज पृथु अर्चन भक्ति के लिए, अक्रूर वन्दन भक्ति के लिए, श्री हनुमान जी दास्यभाव के लिए, अर्जुन सख्यभाव के लिए एव महाराजा बलि आत्मनिवेदन के लिए सर्व विदित हैं। परन्तु व्रज गोपिकाओं ने प्रेमलक्षणा भक्ति से ही भगवान को वश मे किया है। परमानन्ददासजी उन्ही (गोपियों) पर बलिहारी जाते हैं।"

---

१ भागवत ७।५।२३
२ प्रकाशते क्वापि पात्रे-ना० भ० सू०-५३
३ कांकरौली वाली हस्तलिखित प्रति में यह पद इस प्रकार मिलता है।
"ताते दसधा भक्ति भली"

उपर्युक्त पद में नवधा भक्ति की चर्चा भक्ति के साधन रूप में हैं। दसवीं भक्ति प्रेम लक्षणा अनुग्रहैक साध्य है। और उसकी आदर्श स्वरूपा व्रज-गोपिकाएँ हैं। इसलिए परमानन्द दासजी बार-बार गोपीजनों पर बलिहारी जाते हैं। ये कृष्ण भक्ता व्रज गोपिकाएँ भक्ति क्षेत्र मे सर्वोच्च आदर्श रूपा ठहरायी गई है। इनका भाव लोक अनन्य और इनकी प्रेम पद्धति नितान्त निराली है। अतः गोपी प्रेम अथवा गोपियों की कृष्ण भक्ति का स्वरूप समझ लेने पर परमानन्ददासजी की भक्ति का आदर्श स्वयमेव ही स्पष्ट हो जाता है।

वस्तुतः व्रज गोपिकाएँ रसात्मकता सिद्ध कराने वाली शक्तियो की प्रतीक रूपा हैं। और राधा रसात्मक सिद्धि की आधिदैविक स्वरूपा। गोपी प्रेम अनन्य और लोकोत्तर है, उसे आधिभौतिक न समझ कर आधिदैविक ही समझना चाहिए।

ये व्रज गोपिकाएँ तीन प्रकार की थी—

१—अन्य पूर्वा [गोपांगना—पुष्टि]
२—अनन्य पूर्वा [गोपी—मर्यादा]
३—समान्या [व्रजांगना—प्रवाह]

अन्यपूर्वा वे गोपिकाएँ थी जो विवाहिता थीं। और जिन्होंने भगवान् के प्रति आत्मनिवेदन "जार भाव" से किया था। वल्लभ सिद्धान्त का भक्ति आदर्श और भगवत्प्रेम की अनन्यता एवं सर्वसमर्पण अथवा सर्वतोभावेन आत्मनिवेदन का लोक वेद से परे का आदर्श इन्ही मे पूरा-पूरा घटित होता है। यही वे गोपिकाएँ है जिनमे "दारागार पुत्राप्तवित्तादि" का निखिल विनियोग प्रभु के चरणो मे तुलसी दल के साथ हो जाता है। और साधक अथवा भक्त का "स्व" समाप्त हो जाता है। वही यह कथन सत्य उतरता है—"तेरा तुझको सौपते क्या लागै है मोर।"

भक्त गोपी भाव के इस सम्पूर्ण समर्पण मे इतना निश्चिन्त आनन्दमय, विश्वस्त एवं आश्वस्त हो जाता है कि उसे किसी प्रकार का सांसारिक क्लेश, दुःख, पीडा अथवा अभाव नही सताता और आनन्दार्णव मे निमज्जन करता हुआ "निजलाभ तुष्टः" की परम अनुभूति में पहुँच जाता है। आत्मा और परमात्मा के मिलन का आध्यात्मिक रूपक भी इसी "अन्यपूर्वा गोपी भाव" में पूरा उतरता है। यह शुद्धपुष्टि की स्थिति है।[१] इनमे 'माहात्म्य-ज्ञान का अभाव है। माहात्म्य-ज्ञान शून्य भक्त सांसारिक कार्यों को तो निभाता है परन्तु प्रतिक्षण भगवच्चरणारविंद मे ही उसका मन सलग्न रहता है यही 'जारभाव है।[२] भक्त-प्रवर नरसी कहते हैं—

---

१ गोपांगनासु पुष्टिः। गोपीषु मर्यादा। व्रजांगनासुप्रवाहः। या व्रज कुमारिका.................तासां मर्यादात्वमुक्तम्। गोपांगनास्तु भुक्तमुक्ताः भुक्तं गृहे सुखमुक्तं याभिस्ताः किंवा नाशातो लोकवेद भय मुक्तो याभिस्ता मुक्ता कुटुम्बमायापत्यवैभव गेहाधिपति धनवपुः पत्यादिक सकल मर्यादार्था मुक्ता याभिस्ताः। सर्वान् धर्मान्निराकृत्य केवलं पुरुषोत्तममेवभजन्ति तस्मात्तासां पुष्टित्वम। अथ गोपीनां व्रज कुमारीणां गोपीजन वल्लभ भजनेतरभजनं जातम्।.........तस्मात्तासां अनन्यव्रतं विनष्टम्। अतएव तासां मर्यादा भक्तिः। व्रजांगनानां मातृभावेनैवमंग्रहः। तासां ईश्वरे पुत्रभावो वर्तते। तस्मात्तासां प्रवाहत्वम्। इति त्रिविधा गोप्यः। श्रीभगवत्पीठिका।

२ "जार भाव" के इस गम्भीर आत्म निवेदनात्मक बीज रहस्य को न समझने के कारण ही सम्प्रदाय एवं कृष्ण लीला पर आलोचकों की दृष्टि मलीन हो उठी थी। परन्तु भागवतकार स्पष्ट कहते हैं—

तमेव परमात्मानं जार बुद्ध्यापि संगताः।
जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीण बंधनाः॥—भागवत—१०।२६।१५
तथा—तद्विहीनं तु जाराणामिव— ना॰भ॰सू॰—२२

"खातापीता हरता फरता करता घरनूं काम ।
स्वामि नारायण स्वामि नारायण मुख रटिए हरिनाम ।।

अर्थात् खाते-पीते, घूमते फिरते और सम्पूर्ण सासारिक कार्य निभाते स्वामी का ध्यान रखो और मुख से उसका नाम लेते रहो ।

इस "पुष्टि पुष्ट" भक्ति भाव मे प्रेम की सर्वोच्च स्थिति रहती है लोक वेद और मर्यादा का लेशमात्र लगाव नही रहता । यह स्थिति प्रवाही, मर्यादा एव पुष्टि भक्ति से भी ऊँची है । जिस प्रकार कोई अन्यासक्त रमणी अपने पतिग्रह मे रह कर सम्पूर्ण कर्तव्यो को निभाते हुए भी मन को अपने "जार" मे लगाए रहती है । उसी प्रकार का यह भक्त है । प्रेम की यह स्थिति उत्कृष्ट कोटि की है । मन की यह स्थिति स्वरुपासक्ति और लीलासक्ति के परिणाम स्वरूप होती है । इस प्रेमासक्ति के प्रबल प्रवाह मे विधि निषेध अथवा लोक-लाज कुल-मर्यादा वेद मर्यादा सभी अनायास बह जाते है, ढह जाते हैं और भक्त सिवाय अपने प्रियतम के कुछ और जानता ही नही । परमानन्ददासजी की भक्ति का आदर्श यही "अन्य पूर्वा" गोपी प्रेम है । इसकी चर्चा आगे चलकर की जायगी ।

२. अनन्य पूर्वा—गोपिकाएँ वे थी जो अविवाहिता थी । और कात्यायनी आदि देवी की उपासना करके श्रीकृष्ण को अपने पति रूप मे माँगा था । इनमे कुछ तो आजन्म कुमारिकाएँ ही रही और कुछ का विवाह श्रीकृष्ण से हो गया था । यह अनन्यपूर्वा भाव भी गोपी भाव है जिसका उद्देश्य यही है कि जप तप व्रत, एव कृष्णातिरिक्त देवी देवताओ के आराधन का एकमात्र लक्ष्य श्रीकृष्ण प्रेम ही हो । भक्तप्रवर परमानन्ददासजी ने इस भक्ति की ओर भी सकेत किया है ।

३ सामान्या—वे गोपिकाएँ थी । जो भगवान् के बाल रूप पर मुग्ध थी । और उन पर उनका वात्सल्य भाव था । इनमे माता यशोदा एव अन्य व्रजागनाए आ जाती हैं । परमानन्ददासजी ने इस प्रकार के गोपी भाव के भी चित्र प्रस्तुत किये हैं। यहाँ पर हम अलग अलग उनके उपयुक्त गोपी भाव के चित्र प्रस्तुत करते हुए उनके भक्ति के आदर्श के निरूपण की चेष्टा करेंगे ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है परमानन्ददासजी की भक्ति का स्थूल आदर्श 'गोपी भाव' है अत उनके भक्ति परक पदो मे उक्त प्रकार के सभी गोपी भावो का समावेश मिलता । उसके उपरान्त राधा की चर्चा में तो वे शुद्ध पुष्टि वाले गोपी-भाव पर आ जाते हैं । उनकी राधा साक्षात् मूर्तिमती रसात्मा ही प्रतीत होने लगती है ।

परमानन्ददासजी मे अन्यपूर्वा गोपी भाव—यह कहा जा चुका है कि परमानन्ददासजी के काव्य मे दो ही प्रमुख तत्व हैं —

१ स्वरुपासक्ति
२ ' लीलासक्ति

भुवन मोहन नयनाभिराम घनश्याम के अनत कोटि कदर्प दर्प दलन सौन्दर्य को देख कर ग्वालिन मुग्ध हो गई हैं । यह मुग्धावस्था आवलेपन की सीमा को स्पर्श कर गयी हैं ।

अतः गोपी ने कृष्णके दर्शन किए हैं। और उन्ही के साथ लग गई है उसे उठते-बैठते, सोते-जगते कृष्ण के सिवाय कुछ नही भाता। लोक-लाज की उसे तनिक भी पर्वाह नही है—

गोविन्द ग्वालिन ठोरी (ठगौरी) लाई।
वंसीवट जमुना के तट मुरली मधुर वजाई।
रह्यो न परै विनु देखे मोहन ग्रलप ग्रलप समुझाई।
निसदिन गोहन लागी डौलैं लाज सवैं विसराई।
उठत बैठत सोवत जागत जपत कन्हाई कन्हाई।
परमानन्द स्वामी मिलवे कौं और न कछू सुहाई ॥२५५॥

गोपी को कृष्ण के स्वरूप को विना देखे कल नही पडती और न उसे कुछ अच्छा ही लगता है। सौन्दर्यासक्ति का इससे अधिक और क्या स्वरूप हो सकता है। इस ग्रासक्ति का परिणाम है—उन्माद। ग्राचार्यो ने इस "दिव्योन्माद"[१] की सज्ञा दी है। यह प्रेम की वह चोट है जिसकी गहराई और मर्मवेधिनी तीव्रता को प्रेमी ही जानता है। और "उफ" नही करता।

तैं मेरी लाज गंवाई हो दिखनौते ढोटा।
देह विदेही ह्वं गई मिटी घूंघट ग्रोटा॥
छैल छवीले रूप पै भई लोटकपोटा॥
श्रीगोपाल तुम चतुर हो हम मति के खोटा॥
परमानन्द सोई जानति है जाहि प्रेम की चोटा॥२५७॥

यह प्रेम शर मर्म पर जाकर इतना गहरा घाव करता है कि जिस की पीड़ा वाणी का विषय नही। वाणी से कथन करने की शक्ति किसमे है। जव देहानुसधान ही नही। अव वह एक क्षण भी माधव के विना नही रह सकती है—

राधा माधौ विनु क्यो रहै।
एक श्यामसुन्दर के कारन और सवनि की निंदनु सहै॥

" " " "

पियके पाछैं लागी डोलैं वधू वरग सौं वैर वस्यो।
मन क्रम वचन और गति नाहीं वेद लोक लज्जा तजी।
परमानन्द तवतैं सुख भाज्यौ जव तैं पद ग्रभोज भजी ॥२७२॥

वेद मर्यादा, लोक—मर्यादाकी गोपी को चिन्ता नही ग्रव तो कृष्ण के मोर मुकुट के चन्द्र मे उसका मन उलझ गया है। ग्रत- उसने लोक लाज को कुएं मे पटक दिया है। वह घर-घर दुतकारी जाती है फिर भी उसे तनिक भी ग्रपने मान सम्मान की चिन्ता नही।

---

१ एतस्य मोहनाख्यस्य गति कामप्युपेयुषः।
ग्रमाभा कापि वैचित्री 'दिव्योन्माद' इतीर्यते। उ० नी०

चद मैं देख्यो मोर मुकुट को ।

" " "

घर-घर डोलत खात ललकारा नाहिन काहू के बट को ।
परमानन्द लागी ना छूटै लाज कुआ मे पटकौ ।।

वास्तव मे ठीक भी है । उस भुवन मोहन की मोहिनी के आगे ससार की कौन सी वस्तु टिक सकती है ।

मोहन मोहिनी पढि मेली ।
देखत ही तन दसा भुलानी को घर जाइ सहेली ।।
काके मात तात अरु भ्राता काको पति है नवेली ।।
काकी लोक लाज डर कुल व्रत को भ्रमति वन अकेली ।।
ताते कहति मूल मत तोसों एक सग मिलि खेला ।।
परमानन्द स्वामी मन मोहन स्रुति मर्यादा पेलो ।।३७४।।

इस सर्वतोभावेन आत्म निवेदनासक्ति मे वेद मर्यादा का कोई स्थान नही । माता-पिता, भाई बन्धु कुटुम्ब, पति, लोक लाज, कुल व्रत आदि का कोई बन्धन नही । अबतो केवल परमाराध्य प्रियतम ही है उसे पाकर अब चित कही नहीं जाना चाहता है ।

आई गोपी पांयन परन ।
सोई करौ जैसे सग न छूटै राखो स्याम सरन ।।

" " " " "

चित नहि चलत चरण गति थाकी मन न जात गुरु पास ।
परमानन्द स्वामी उदार तुम छोडो वचन उदास ।।३८५।।

रासलीला महोत्सव मे प्रवेशपाने वाली १६ प्रकार की गोपियो मे यही अन्यपूर्वा गोपिकाएँ प्रेमलक्षणाभक्ति वाली है । इन्ही को निरोध प्राप्ति होती है ।

ये हरि रस ओपी गोप तियनतें न्यारी ।।
कमल नयन गोविन्द चद की प्रानन प्यारी ।।
निरमत्सर ते सतत ग्राही चूडामनि गोपी ।।
निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी ।।
जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन गुन गावें ।।
क्यो नहि परमानन्द प्रेम भगति सुख पावै ।। २०३

अन्यपूर्वा गोपिकाओ के लोक वेद मर्यादातीत प्रेम के उदाहरण परमानन्ददासजी के अनेक पदों में भरे पडे हैं । इस गोपी प्रेम को ही आचार्य ने 'पुष्टि पुष्ट भाव' कहा है । इस दिव्य प्रेम की चर्चा ज्ञानी भक्त शुक और व्यास तक करते आए हैं:—

हरिसों एक रस रीति रही री ।।
तन मन प्रान समर्पन कीनो अपने नेम व्रत लै निबहीरी ।।
प्रथम भयो अनुराग दृष्टि सो मानहु रक निधि लूट लईरी ।।
कहति सुनति चित्त औरहि कीनो यह लगन जिय पै डगहीरी ।।
मरजादा ओलघि सवनि को लोक वेद उपहास सही री ।।
परमानन्ददास गोपिन की प्रेम कथा शुक व्यास कही री ।। ८७८।।

अनन्त सौंदर्य राशि पर प्रथम दृष्टि से ही उदय होने वाली स्वरूपासक्ति को उत्पन्न करने वाले अहार्य अनन्य सापेक्ष इस दिव्य प्रेम को आचार्यों ने "मंजिष्ठाराग[1]" का नाम दिया है। इसमें कान्त के भाव की चिन्ता नहीं की जाती है, केवल आश्रय का ही भाव अहर्निश अभिनव वृद्धि पाता हुआ चरम रसात्मकता को पहुंच जाता है। इसमें कृष्ण वियोग जनित ताप ही वृद्धिमान रहता है। और भक्त देहेन्द्रिय मनः प्राण को समर्पित किए रहता है। यह निरुपम प्रेमानुबंधोत्सव अपने स्वरूप में दिव्य है और राधा माधव में ही संभव है।

संप्रदाय में भक्ति दो प्रकार की मानी गई है:—

१. शीतला भक्ति।
२. उष्णा भक्ति।

शीतला भक्ति में मर्यादा होती है। भाव की तन्मय दाहकता उसमें नहीं होती। भक्त गुण गान अवश्य करता है। परन्तु जो प्रेम की तीव्रता एवं दाहकता होनी चाहिए वह नहीं होती। उष्ण विश्वास एवं गूढ भावजन्य प्रेमाग्नि की दाहक ज्वालाएं उष्णभक्ति में ही संभव है। नारदादि ज्ञानी भक्तों में शीतलाभक्ति है गोपीजनों में उष्णा भक्ति होती है। गोपांगनाएँ अन्य भक्तों की भांति भगवच्चरणारविंद की रति ही नहीं मांगती अपितु भगवान के अधरामृत पान की याचना करती है।[2] उनके चर्वितताम्बूल की लालसा ही उनका लक्ष्य है। भागवतकार ने ऐसे कृपापात्र गोपी जनों की ओर संकेत किया है जिन्हें भगवान का आलिंगन चुम्बन, परिरंभण और चर्वित ताम्बूल भी प्राप्त है:—

रासरस रसिकेश्वरी राधा उन्हीं भाग्यशालियों में है जिन्हें यह अगाध रस सिंधु प्राप्त है।

सुनि मेरो बचन छबीली राधा।
तैं पायो रस सिंधु अगाधा।।
जो रस निगम नेति नित भाख्यौ।।
ताकौं तैं अधरातमृत चाख्यौ।।
" " "
तेरो भाग्य मोहि कहत न आवै।।
कछुयक रस परमानन्द गावै।।३१७।।

भागवतकार के रास-क्रीड़ा-वर्णन के आधार पर परमानन्ददासजी ने आलिंगन, चुम्बन, परिरम्भण और चर्वित ताम्बूल की चर्चा की है। यहाँ साम्प्रदायिक उष्णा भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया है:—

---

१ अहार्यो अनन्य सापेक्षो यः कान्त्या वर्धते सदा।
भवेन्मांजिष्ठ रागोऽसौ स्व राधामाधवयोर्यथा।। उ० नी० मणि०

२ इतर राग विस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्। भा० १०।३१।१४

३ तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पल सौरभम्।
चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्ट रोमा चुचुम्बह।।
कस्याश्चिन्नाट्य विक्षिप्त कुण्डलत्विष मण्डितम्।
गण्डं गण्डे सन्दधत्या अदात्ताम्बूल चर्वितम्। भागवत १० ३३।१२-१३

"परमानन्द प्रभु प्रेम जानि के तमकि कचुकी खोली ॥"

चर्वित ताम्बूल की लालसा का उदाहरण :—

मदन गोपाल बलैये लैहो ।
परमानन्द प्रभु चारु बदन को उचित उगार मुदित ह्व लैहों ।

*महारासोत्सव मे सम्मिलित गोपियाँ कान्ताभाव मे लीन है :—*

गोपाल लाल सों नीके खेलि ।
" " " " ॥
बाहू कन्ध परिरम्भन चुम्बन महामहोच्छव रास विलास ।
सुर विमान सब कौतुक भूले कृष्ण केलि परमानन्द दास ॥

"लोक वेद की कानि" से परे की इस परा भक्ति का स्वरूप रास महोत्सव मे ही मिलता है। इसे सप्रदाय मे प्रेमलक्षणाभक्ति अथवा साध्य भक्ति किंवा फल भक्ति पुकारा गया है। वेणुगीत के द्वारा महारास महोत्सव के माध्यम से भगवान ने चरम रसात्मक भक्ति का दान *गोपागनाओ को ही दिया था।*

भागवतकार कहते हैं कि "जो धीर पुरुष व्रज युवतियो के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के चिन्मय रास विलास का श्रद्धा के साथ बार-बार श्रवण और कथन करता है। उसे भगवान् के चरणो मे पराभक्ति की प्राप्ति होती है, और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदय-रोग (काम विकार) से छुटकारा पा जाता है।[1]"

*अनन्यपूर्वागोपी भाव :—अन्यपूर्वा गोपिकाओ की भक्ति की चर्चा के उपरान्त अनन्य* पूर्वा गोपिकाओ की भक्ति का स्वरूप भी परमानन्ददासजी के काव्य मे उपलब्ध होता है। यह कहा ही जा चुका है कि इनमे विवाहिता और अविवाहिता दोनो ही सम्मिलित हैं। साथ ही ये वेद मर्यादा मे आबद्ध हैं। परन्तु कृष्ण की कान्त-भाव से कामना करती हुई अन्य देवी-देवताओ से भी कृष्ण भक्ति की ही याचना करती हैं :—

"हरि को भलो मनाइए।
मान छाडि उठि चन्द्र वदनी उहा लौ चलि आइए ॥
" " " " "
दान नेम व्रत सोई कीजै जिहि गोपाल पति पाइए।
परमानन्दस्वामी सों मिलि कै मानस दुख विसराइए ॥ ३५४ ॥

राधिका ने अच्छी आराधना की है। उसकी आराधना फलवती हो गई है, क्योंकि पति रूप मे नन्दगोप-सुत को पाने के लिए उसने गौरी से वर-याचना की थी।

---

१ विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ॥
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं ।
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ भागवत १० । ३३ ।४०

अराधन राधिका को नीको।
जाके संग मिले हरि खेलत जो ठाकुर सबही को।
पूरब नेम लियो सो सांचो नन्दनन्दन पति करिहौं ॥
" " " " "
गौर स्याम तन यह जोरी पर बलि परमानन्ददासा ॥ २६२ ॥

बड़े पुण्यों से भगवान् के प्रति यह भक्ति-भाव मिलता है—

"ऐसी भक्ति नन्द नन्दन की पुन्यन पुंज लह्यौ।
" " " " "
रजनी अधिक गई परमानन्द लोचन नीर बह्यो।

राधा के भाग्य पर अन्य गोपियाँ सिहाती हैं और कृष्ण की विशिष्ट प्रिया होने का उससे रहस्य भी पूँछती हैं .—

राधे कौन गौर तें पूजो।"
" " " "
परमानन्ददास को ठाकुर तो सम और न दूजो ॥

ब्रज गोपिकाएँ कार्तिक स्नान भी इसी आशा से करती हैं कि नन्दगोपसुत (कृष्ण) पति रूप में उन्हें मिलें।

हरि गुन गावत चली ब्रज सुंदरी जमुना नदिया के तीर ॥
" " " "
जल प्रवेस करि मज्जन लागी प्रथम हेम के मास।
हमरे प्रीतम होयँ नन्दसुत तप ठान्यो इहि आस ॥
" " " "
परमानन्द प्रभु वर देवें को उद्यम कियो मुरारि ॥

सामान्या गोपी भाव :—

तीसरे प्रकार की गोपिकाएँ सामान्या (प्रवाही) हैं। क्योंकि वे कृष्ण को पुत्र भाव से भजती हैं। माता यशोदादि इसी कोटि में आती हैं। पुत्र-भाव से गोद में लेकर माता श्रीकृष्ण का मुख देखती हैं परन्तु साथ ही साथ उनके ऐश्वर्य से भी पूर्ण परिचित हैं।[1]

बदन निहारत है नन्दरानी।
कोटि काम सतकोटि चन्द्रमा कोटिक रवि वारति जिय जानी ॥
सिव विरंचि जाको पार न पावत सेष सहज गावत रसना री ॥
गोद खिलावत महरि जसोदा परमानन्द किय बलिहारी ॥

ब्रज में राक्षस कृत उपद्रवों से जब शान्ति हो जाता है तब गोपिकाएँ उनके माहात्म्य की चर्चा करती हैं :—

---

१. तत्रापि न महात्म्य ज्ञान विस्मृत्यपवादः।
ना० भा० सू०-२२

मोहन ब्रज को री रतन ।
एक चरित्र आज मैं देख्यो पूतना पतन ॥
तृणावर्त लै गयो आकासे ताही को पतन ।
जे जे दुष्ट उपद्रव ठाने तिनही को हतन ।
सुनि री जसोदा या मोहन को रीभन ।
परमानन्ददास को जीवन स्याम है सुत न ॥

वस्तुतः परब्रह्म में पुत्र भाव रखते हुए भी वे प्रवाही गोपियाँ उनके महात्म्य को एक क्षण भी भूलती नहीं है ।

लीला गान मे आसक्त रह कर ये प्रवाही गोपियाँ आनन्द से दिवस व्यतीत करती हैं ।

हरि लीला गावत गोपी जन,
आनन्द मे निसिदिन जाई ।
बाल चरित्र विचित्र मनोहर,
कमल नैन ब्रजजन सुखदाई ॥
दोहन, मण्डन, खण्डन, लेपन,
मंडन गृह सुत, पति, सेवा ॥
चारि याम अवकास नही पल,
सुमिरत कृष्ण देव देवा ॥
भवन भवन प्रति दीप विराजत,
कर कंकन नूपुर बाजे ॥
परमानन्द घोष कौतूहल,
निरखि भाँति सुरपति लाजे ॥[१]

एक गोपी आकर भगवान को गोद मे ले लेती है और हृदय से चिपका कर प्यार करती है । माता यशोदा उसे मना करती है । ग्वालिन अनमनी होकर चली जाती है । वात्सल्य-निधि कृष्ण उसके अन्तर का प्रेम पहिचानते हैं । अतः माता यशोदा उसे फिर बुला लाती है :—

रहि री ग्वालिन जोवन मद माती ।
मेरे छ्गन मगन से लालहि कित लै उछंग लगावति छाती ॥
खीजत ते अबही राखे है न्हानी न्हानी दूध की दाँती ॥
खेलन दे घर अपने डोलत काहे को एतो इतराती ॥
उठि चली ग्वालि लाल लगे रोवन तब जसुमति लाई बहु भाँति ॥
परमानन्द प्रीति अन्तर गति फिरि आई नैननि मुसुकाती ॥

---

१ परमानन्दसागर पद संख्या—७२
तुलना कीजिए—
यादोहनेऽवहनने मथनोपलेप,
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षण मार्जनादौ,
गायन्ति चैनमनुरक्त धियोऽश्रु कंठ्यो,
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ भा० १०।४४।१५

इस प्रकार गोपी प्रेम के शतशः दिव्य चित्र परमानन्ददासजी ने प्रस्तुत कर भक्ति का आदर्श गोपी-प्रेम को ही ठहराया है। वे गोपी-प्रेम को इतना उत्कृष्ट मानते हैं कि उन्हें प्रेम की ध्वजा बतलाते हैं.—

गोपी प्रेम की धुजा।
जिन जगदीस किए बस अपने उर धरि स्याम भुजा।
सिव विरंचि प्रसंसा कीनी, उधो सन्त सराही॥
धन्य भाग गोकुल की बनिता अति पुनीत मुख माँही।
कहा विप्र घर जन्महि पाए हरि सेवा विधि नाँही॥
तेहि पुनीत दासपरमानन्द जे हरि सम्मुख जाँही॥

इन गोपियों के प्रेम की प्रशंसा शिव ब्रह्मा और उद्धव भी करते हैं अतः इनका ही प्रेम धन्य है। गोपी-प्रेम के सामने कुलीनता अथवा विप्रवंश में जन्म का अभिमान आदि सब व्यर्थ है।

गोपी-प्रेम के दिव्य आदर्श की प्रशंसा करते हुए वे अपनी भक्ति का आदर्श भी गोपी-भाव बतलाते हैं और उन पर बलिहारी जाते हैं:—

"प्रेम भक्ति गोपी बस कीनी बलि परमानन्ददास।"

वे सखी-भाव की अतिशय प्रशंसा करते हैं और उसे बड़े पुण्यों का परिणाम बतलाते हैं:—

लगे जो म्पी वृन्दावन रंग।
देह अभिमान सबै मिटि जैहै अरु विषयन को संग।
सखी भाव सहज हि होय मजनी पुरुप भाव होय भंग॥
श्री राधावर सेवत सुमिरत उपजत लहर तरंग॥
मन को मैल सबै छुटि जैहै मनसा होय अपंग॥
परमानन्दस्वामी गुन गावत मिट गए कोटि अनंग॥

सखी भाव या कान्ता भाव आत्म समर्पण मे बडा ही सहायक होता है। सेवा और समर्पण भक्ति के अनिवार्य अङ्ग हैं। यह एक तथ्य है कि नारी भक्ताओं को प्रभु के प्रति अपना प्रियतम मानकर सर्व समर्पण करने में जो स्वाभाविकी सुविधा होती है वह पुरुषो को नही होती। पुरुषों को अपने पुरुषत्व का अभिमान आत्मसमर्पण के लिए अत्यन्त बाधक होता है। अतः दास्य अथवा सख्यभाव की अपेक्षा कान्ताभक्ति को ही नारी भक्ताओं ने प्रायः अधिक अपनाया है। इसलिए बार-बार भक्ति के आदर्श के लिए वे गोपी-प्रेम को ही सर्वोच्च ठहराते हैं। वे कहते हैं यदि गोपी-प्रेम का आदर्श न होता तो इस कलिकाल में औघड पथ फैल जाता, और श्रद्धा, धर्म आदि का लोप हो जाता।

माधौ या घर बहुत धरी।
कहन सुनन कौं लीला कीवी मर्यादा न टरी।
जो गोपिन कौ प्रेम न होतौ अरु भागवत पुरान॥
तौ सब औघड़ पथहि होतौ कथत गमैया ग्यान॥
बारह बरस को भयो दिगम्बर ग्यानहीन संन्यासी॥
खान-पान घर-घर सबहिन कै भस्म लगाय उदासी॥

पाखंड दंभ बढ्यौ कलियुग में श्रद्धा धर्म भयौ लोप ॥
परमानन्ददास वेद पढि बिगरे कापै कीजै कोप ॥

सक्षेप मे परमानन्ददासजी आत्म-साधना के एकान्त क्षेत्र मे गोपी-भाव को ही सर्वोत्तम भक्ति भाव ठहराते हैं। इसी की प्राप्ति के लिए उन्होंने भागवतोक्त नवधा भक्ति का भी प्रतिपादन किया है क्योकि नवधा भक्ति का अन्तिम सोपान ही प्रेमलक्षणाभक्ति का श्रीगणेश है। इस नवधा भक्ति को वैधी भक्ति भी कहा जाता है। इसमे 'राग' का तो अभाव होता है और शास्त्र का अनुशासन ही साधक को भक्ति मे प्रवृत्त करता है।[1]

**परमानन्ददासजी की वैधी भक्ति**—परमानन्ददासजी मे जैसा कि पहले कहा जा चुका है, शास्त्रीय वैधी भक्ति के तत्वो को खोजना व्यर्थ है। क्योकि प्रेम लक्षणा भक्ति का निरूपण करना ही उनका लक्ष्य था। अतः जहाँ उन्होंने गोपी-भाव को भक्ति के क्षेत्र मे सर्व श्रेष्ठ ठहराया है और उसे एकान्त साधना का चरम लक्ष्य माना है। वहाँ शास्त्रीय नवधा भक्ति (वैधी) की भी आनुषगिक चर्चा की है और उसकी पूर्व भूमिकाओं का भी यत्र-तत्र समावेश किया है। अपने प्रसिद्ध पद "ताते नवधा भक्ति भली" मे उन्होने नौ प्रकार की भक्ति के विभिन्न आदर्शों अथवा उदाहरणो को भी दिया है। परन्तु अपने भक्तिपरक पदो मे उन्होंने श्रवणादिक की स्वतन्त्र चर्चा करते हुए रागानुगा भक्ति का ही प्रतिपादन करना अपना लक्ष्य समझा था क्योकि उसके बिना भक्ति की सर्वोच्च सिद्धि असभव होती है।

नवधा भक्ति मे श्रवण, कीर्तन, स्मरण पाद सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, और आत्म निवेदनादि आते हैं उपर्युक्त नवधा भक्तियाँ परमानन्ददासजी मे इस प्रकार हैं:—

वे एकमात्र भागवत को ही श्रवणीय मानते हैं क्योकि उनकी दृष्टि मे वही भक्ति का एक मात्र ग्रन्थ है:—

श्रवण:—जब लग जमुना गाय गोवर्धन,
जब लग गोकुल गाम गुसाई।
जब लग श्री भागवत कथा,
तब लग कलियुग नाही ॥
" " " "
परमानन्द तासौ हरि क्रीडत,
श्रीवल्लभचरन रेनु जिन पाई ॥१ प० स० ६५१

एक स्थान पर वे प्रभु से याचना करते हैं कि यदि उन्हे कान मिले हैं तो निरन्तर श्रवण भक्ति मिलती रहे।

यह मांगौं संकरषण बीर।
चरन कमल अनुराग निरन्तर भावै मोहि भक्तन की भीर।
संग देहौ तो हरि भक्तन को वास देहौ तो जमुना तीर ॥
श्रवण देहु तौ हरि कथा रस ध्यान देहु तौ स्याम सरीर ॥
मन कामना करौ परिपूरन पावन मज्जन सुरसरि नीर ॥
परमानन्ददास कौ ठाकुर त्रिभुवन नायक गोकुल पति धीर ॥ प० स० ५६६

---

१ यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरुप जायते।
शासनेनैव शास्त्रस्यमा वैधीभक्तिरूच्यते ॥ हरिभक्तिरसा. २ लहरी—२

एक और स्थान पर गोपीजनवल्लभ से प्रार्थना है :—

"यह मांगौं गोपीजनवल्लभ।
मानुष जन्म और हरि सेवा ब्रज बसिबो दीजै मोहि सुल्लभ।

" " " "

श्री भागवत श्रवण सुनि नित, इन तजि चित कहूँ अनत न लाऊं ॥
परमानन्ददास यह मागत नित्य निरखौं कबहूँ न अघाऊँ ॥ प० सं० ५६७

एक और स्थल पर वे कहते हैं :—

सेवा मदन गुपाल की मुक्तिहू तें मीठी ॥

" " " "

चरन कमल रज मन बसी सब धर्म बहाए ॥
श्रवण कथन चिंतन बाढ्यौ पावन जस गाए ॥

कीर्तन :—कवि को प्रभु यश गान मे चरम सुख की प्राप्ति होती थी। उसे प्रभु के कीर्तन से आपूर्ण निर्भरता आगई थी। वह कहते हैं :—

"हरि जसु गावत होई सो होई।
विधि निषेध के खोज परै हौं जिन अनुभव देखो जोई ॥

" " " "

राम कृष्ण अवतार मनोहर भक्त अनुग्रह काज ॥
परमानन्ददास यह मारग बीतत राम के राज ॥

जो कृष्ण कीर्तन नही करता परमानन्ददासजी के मत से वह प्राणी व्यर्थ जीता है :—

कृष्ण कथा बिन कृष्ण नाम बिन, कृष्ण भक्ति बिन दिवस जात।
वह प्रानी काहे को जीवत, नहीं मुख बदत कृष्ण की बात ॥

वे एक मात्र अनन्यतापूर्वक अपने आराध्य का ही कीर्तन करना चाहते हैं :—

"बहुतै देवी, बहुतै देवा, कौन कौन को भलो मनाऊँ ॥
हौं स्यामसुन्दर को जनम-करम पावन जसु गाऊँ ॥

" " " "

हौं बलिहारी दास परमानन्द करना सागर काहे न भावै ॥ प० सं० ६८७

कवि के कीर्तन का उद्देश्य यही है कि वह भगवान् के चरण कमल मे अहर्निश प्रेम करता हुआ उनकी सेवा का निर्वाह करता रहे।

तातै गोविन्द नाम लै गुन गायौ चाहौ।
चरन कमल हित प्रीति करि सेवा निरबाहै ॥

" " " "

जिन सेवा सचुपाइए पद अम्बुज आसा।
सो मूरति मेरे हिय बसौ परमानन्ददासा ॥ ७२२॥

स्मरण :—कवि का भगवन्नाम मे दृढ विश्वास था। वह कहता है कि प्रभु का स्मरण जिसने भी किया उसने उच्च से उच्च स्थान पाया :—

माधौ तुम्हारी कृपा तें को को न बढ्यौ ।
मन क्रम बचन नाम जिन लीनो ऊँची पदवी सोई चढ्यौ ॥
तुम जाहि अमल दियो जग जीवन सो पुराण कुतर्क हयौ ॥
गनिका, व्याध, अजामलि गजेन्द्र तिनन कहा हो वेद पढ्यौ ॥
ध्रुव प्रह्लाद भक्त है जेते तिनको निसान बज्यौ बिनही मढ्यौ ॥
परमानन्दप्रभु भक्त वत्सल हरि यहै जानि जिय नाम दृढ्यौ ॥ प० स० ६९८

भगवन्नाम-स्मरण कामधेनु के समान है. —

'कामधेनु हरि नाम लियौ ।
मन क्रम बचन की कौन कहै महा पतित द्विज अभै दियौ ॥
कौन नृपति की हुती कुल बधू गणिका को कहा पवित्र हियौ ॥
जग्य-जोग तौ कियौ महा नृप, कौन बेद गज ग्राह कियौ ॥
द्रुपद सुता दिन हरि सुमिरै नृपति नगन वपु करि न छियौ ॥
असुर नाम त्रैलोक्य मुसक्ति सुत को काहे न पोच कियौ ॥
भव जल व्याधि असाध्य रोग कौं जप तप व्रत औषध न वियौ ॥
गुरु-प्रसाद साकी सम्पति जन परमानन्द रक कियौ ॥ प० स० ७१८

एक स्थान पर वे कहते हैं —

हरिजूको नाम सदा सुखदाता ।
करो जु प्रीति निचल मेरे मन आनन्द मूल विधाता ॥
जाके सरन गए भय नाही सकल बात को ग्याता ॥
परमानन्ददास को ठाकुर, सकर्षण को भ्राता ॥ प० स० ६६४

पाद सेवन :—पुष्टि सप्रदाय मे पाद-सेवा का बडा भारी महत्त्व है । प्रभु के स्पर्श मात्र से भक्त मे तन्मयता आती है और वह आराध्य को सर्वस्व देने के लिए कटिबद्ध हो जाता है । कवि की भगवान् से सीधी साधी माग है :—

यह मागौ जसोदा नन्दनन्दन ।
बदन कमल मेरो मन मधुकर नित प्रति छिन छिन पाउँ दरसन ॥
चरन कमल की सेवा दीजै, दोउ जन राजत विद्युलता घन ॥
नन्दनन्दन वृषभान नदिनी, मेरे सर्वसु प्रान जीवन धन ॥
व्रज बसि अरू जमुना जल पीउँ श्री बल्लभ कुल को दास यही मन ॥
महाप्रसाद पाउँ हरि गुन गाउँ परमानन्ददास दासी जन ॥ प० स० ७३६

परमानन्ददासजी ने अपने को भगवदगीकृत जीवों की श्रेणी मे माना है अत. वे भगवच्चरणारविंद की सेवा ही माँगते हैं कुछ और नहीं —

माधौ हम उरगाने लोग ।
प्रात समैं उठि लाऊँ चरन चित, पाऊँ सब उपभोग ॥
दुर्लभ मुक्ति तुम्हारे घर की सन्यासिन को दीजै ॥
अपने चरन कमल की सेवा इतनी कृपा मोहि कीजै ॥

जहँ राखौ तहँ रहूँ चरन तर परयौ रहूँ दरवार ॥
जाकी जूठन खाऊँ निसदिन ताकी करौ किवार ॥
जहँ पठयौ तहँ जाऊँ विदा लै दूतकारी अधीन ॥
परमानन्ददास की जीवनि तुम पानी हम मीन ॥ प० स० ६०५

अर्चन—अर्चा अथवा पूजा भक्ति की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। भक्त को उसमे असीम सतोष मिलता है। भक्तवर परमानन्ददासजी को भगवान् की सेवा मे मुक्ति से भी अधिक मधुरता प्रतीत होती थी—

सेवा मदन गोपाल की मुक्तिहू ते मीठी।
जानै रसिक उपासिका सुक मुख जिन दीठी॥

" " " "

परमानन्द विचारि कै परमारथ साध्यौ॥
रामकृष्ण पद प्रेम बढ्यौ लीला रस बाध्यौ॥
ताते गोविद नाम लै गुन गायौ चाहौं॥
चरन कमल हित प्रीति करि निरबाहौ॥

*अहर्निश सेवा करने की अभिलाषा ही परमानन्ददासजी की अर्चन भक्ति है।*

वन्दन—वन्दन अर्थात् चरणो मे प्रणिपात अथवा साष्टाग प्रणाम दैन्य का प्रथम लक्षण है।

बलिहारी पद कमल की जिन मे नवसत लच्छन।
धुजा वज्र अकुस जव रेखा ध्यान करत बिचच्छन॥
ते चितत भय ताप हरत सीतल सुखदायक॥
नखमनि की चद्रिका जोति ऊज्वल अजनायक॥ प० स० ६८७

भगवच्चरणारविंद मे तन्मय होकर कवि एक स्थल पर कहता है—

'तिहारे चरन कमल को मधुकर मोहि कबजू करोगे।
कृपावत भगवत गुसाई यह विनती चित्त जू धरोगे॥ प० स० ६५८

गुरु गोविद मे अभेद बुद्धि वाले परमानन्ददासजी ने एक और अन्य स्थान पर इस प्रकार चरण वदना की है—

श्री वल्लभ रतन जतन करि पायो। (अरी मैं)
*बह्यौ जात मोहि राखि लियौ है पिय सग हाथ गहायौ॥*
दुष्ट सग सब दूरि किए हैं चरनन सीस नवायौ॥
परमानन्ददास को ठाकुर नयनन प्रगट दिखायौ॥ प० स० ६५७

दास्य—पुरुष भक्तो के लिए दास्य-भाव अत्यन्त स्वभाविक और सुविधा कारक होता है। दास्य भाववाला भक्त वन्दन, परिचर्या और सपर्या मे असीम उल्लास का अनुभव

करता है। कवि ने दास्य भाव से भगवान के चरणकमलो का बडी भक्ति भाव से स्मरण किया है—

> 'अपने चरण कमल को मधुकर हमहू काहे न करहू जू ।।
> कृपावन्त भगवत गुसाई इहि बिनती चित धरहू जू ।। प० स० ६६२

अन्यत्र वे कहते हैं —

> माधौ हम उरगाने लोग ।
> " " "
> जहाँ राखौ तहँ रहूँ चरन तर पर्यो रहूँ दरबार ।।
> जाको जूठन खाऊँ निसदिन ताको घरो किवार ।।
> जह पठवौं तह जाऊँ विदा लै दूतकारी अधीन ।।
> परमानन्ददास को जीवनि तुम पानी हम मीन ।। प० स० ६०५

और अत मे एक पद मे तो भक्तराज परमानन्ददास जी ने अपने को भगवान् का दासानुदास बताया है। अपनी चरम दैन्य भावना और भक्ति भावना मे वे विनय करते हैं—

> 'माधौ यह प्रसाद हौं पाऊँ ।'
> तव भृत भृत्य परचारक दास को दास कहाऊँ ।।

श्रीमद्भागवत मे पुष्टि-सूत्र जो वत्रासुर चतुश्लोकी मे मिलता है उसका पूर्ण निर्वाह परमानन्ददासजी मे इस स्थल पर मिल जाता है। वत्रासुर कहता है—

> अह हरे तवपादैक मूल दासानुदासो, भविताऽस्मिभूय ।
> मन. स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक्कम करोतुकाय ।।

सख्य—सख्य भाव मे दास्य की अपेक्षा कुछ अधिक सकोच राहित्य रहता है। उसमे विनय और शील का वह गभीर रूप नही मिलता जो दास्य मे होता है। परन्तु प्रेम की गहराई अवश्य बढ जाती है और सतत साहचर्य की निरतर अभिलाषा बनी रहती है। *यहीं से रागानुगा भक्ति का प्रथम सोपान समझना चाहिए। कान्ताभाव मे भी गभीर सख्यत्व* का समावेश रहता है।

> लगे जो स्री वृन्दावन रग ।
> सखीभाव सहज होय सजनी पुरुष भाव होय भग ।।
> श्री राधावर सेवत सुमिरत, उपजत, लहर तरग ।।
> मन के मैल सबै छुटि जैहै, मनसा होय अपग ।।
> परमानन्दस्वामी गुन गावत मिटि गए कोटि अनग ।। प० स० ७२८

परमानन्ददास भगवान को छोडकर किसी और को अपना स्नेही अथवा प्रेमास्पद बनाना ही नही चाहते। क्योकि परम उदार प्रियतम भगवान के अतिरिक्त वैसा स्नेह कोई निभा भी नही सकता।

"तुम तजि कौन सनेही कीजै।
सदा एक रस को निबहत जाकी चरन रज लीजै॥
यह न होइ अपनी जननी तें पिता करत नहिं ऐसी॥
बन्धु सहोदर तेउ न करत है, मदन गोपाल करत हैं जैसी॥
पुत्र अरु लोक देत है ब्रजपति अरु वृन्दावन वास बसावत॥
परमानन्ददासको ठाकुर नारदादि पावन जस गावत॥ प० सं० ७०३

सख्य भावापन्न होकर वह उनके निकट जाना चाहते हैं —

"चल री सखि नन्दगाम जाय बसिए।
खिरक खेलत ब्रज चन्द सौं हँसिए॥"

" " "

जल भरि लोचन छिन छिन प्यासा।
कठिन प्रीति परमानन्द दासा॥ प० सं० ६४१

आत्म निवेदन :—आत्मनिवेदन वैधी भक्ति का अन्तिम सोपान है किन्तु रागानुगा का श्रीगणेश है। इसमें भक्त का अपना कुछ नहीं रह जाता वह पुकार उठता है :—

'तेरा तुझको सौंपते क्या लागै है मोर।"

पुष्टि संप्रदाय 'आत्मनिवेदन" का ही परिपुष्ट रूप है। जहाँ अन्य संप्रदायों की भक्ति की चरम सीमा मानी है वहाँ से पुष्टिमार्ग प्रारम्भ होता है। परमानन्ददासजी को आत्मनिवेदन मे असीम सुख का अनुभव हुआ था। अतः कवि ने आत्मनिवेदन परक पदों को स्थान-स्थान पर रखा है :—

"बढ्यो है माई माधौं सो सनेहरा।
जैहौं तहाँ, जहाँ नन्दनन्दन राज करौं यह गेहरा॥
अबतो जिय ऐसी बनि आई कियौ समर्पन देहरा॥
परमानन्द चली भीजत ही बरसन लाग्यो मेहरा॥ प० स० ६४२

आसक्ति की पूर्णतन्मयता मे कवि का सकल्प है :—

"हौं नंदलाल बिना न रहूँ।
मनसा वाचा और कर्मना हितकी तोसौं कहूँ॥
जो कछु कही छोडि सिर ऊपर सो हौं सबै सहूँ॥
सदा समीप रहूँ गिरिधर के सुन्दर बदन चहूँ॥
यह तन अर्पन हरिको कीनो यह सुख कहाँ लहूँ॥
परमानन्द मदन मोहन के चरन सरोज गहूँ॥ प० स० ३३५

परमानन्ददासजी का विश्वास है कि जो व्यक्ति सर्वतोभावेन उन भगवान की शरण मे चला आता है वह किसी प्रकार से सासारिक पकड मे नही आता और वह बलवान काल से भी सुरक्षित रहता है। भगवान् रूपी पारसमणि का स्पर्श करते ही वह खरा स्वर्ण बन जाता है।

'बडी है कमलापति की ओट ।।
सरन गए ते पकडि न आए कियो कृपा की ओट ।।
जाकी सभा एक रस बैठत कौन बडो को छोट ।।
सुमिरत ध्यान अघ भव भजन वहा पडित कहा खोट ।।
जदपि काल वली अति समरथ नाहिन ताकी चोट ।।
परमानन्द प्रभु पारस परसत कनक लोह नहि खोट ।। प० स० ६६४

इस प्रकार का चरम आत्मनिवेदन परमानन्ददासजी ने व्रज वासियो मे ही अनुभव किया है। वे ही सर्वतोभावेन आत्मनिवेदन करके त्रिगुणातीत हो जाते हैं।

"व्रज वासी जानें रस रीति।
जाके हृदय और कछु नाही नन्दसुवन पद प्रीति ।।
करत महल मे टहल निरन्तर जाम जाय सब बीति ।।
सर्वभाव आत्माविनिवेदित रहैं त्रिगुणातीत ।।
इनकी गति और नहि जानत बीच जवनिका भीति ।।
कछुक लहत दासपरमानन्द गुरु प्रसाद परतीत ।। प० स० ७३३

यह वैधी भक्ति का एक भेद हुआ। वैधी भक्ति का दूसरा भेद "रागानुगा भक्ति" है।[1] परमानन्ददास मे रागानुगा भक्ति साहचर्य और सौ दर्य जन्य है। सौदर्य एक ऐसी दिव्य धारणा है जो नितान्त आत्म रुचि पर निर्भर करती है। और जिसमे प्रतिक्षण नवीनता के दर्शन होते हैं। सौंदर्य शाश्वत चिर नवीनता की अजस्र धारा का ही नाम है। गगा के पावन स्त्रोत की तरह इसमे नवीनता, पावनता, और अखण्ड माधुर्य निहित रहता है इसीलिए शास्त्रकारों ने कहा है —

"क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयताया।"

क्षण क्षण पर नवीनता को प्राप्त करती रहने वाली वस्तु ही रमणीय कही जाती है। यह अनन्त है अखण्ड है। इसमें अनन्यर्पण है अत अनन्त आसक्ति है। वही सौंदर्य साहचर्य भावना का जनक है।

अनन्त रूप राशि सपन्न श्रीकृष्ण अचानक गोपी के सामने पड गये हैं, आँखें चार हुईं और उसी क्षण गोपी देहानुसधान खो बैठी। उसे कुछ नही सुहाता बस अब केवल मिलन का ही हठ है। अत परमानन्ददासजी कहते हैं —

औचकहि हरि आय गए।
हौ दरपन लै मांग सभारत चार्‌यो हू नयना एक भये ।।
नैंक चितै मुसिकायगए जू हरि मेरे प्रान चुराइ लये ।।
अब तो भई है मोय मिलन की बिसरे देह सिंगार ठये ।।
तबतें कछू न सुहाय विकल मन ठगी नद सुत स्याम नये ।।
परमानद प्रभु मौं रति बाढी गिरिधरलाल अनद भए ।। प० स० ३०४

---

१ वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा। (ह० भ० र० सि० रलहरी)

इस दिव्य आत्म-निक्षेप की स्थिति मे माता पिता, घर, समाज, कुटुम्ब का न तो कोई भय है न ही उसकी चिंता। यहाँ तक कि लोक परलोक की भी पर्वाह नहीं।

"मरी गुपाल सौं मेरो मन मान्यौं कहा करैगो कोउ री ॥[1]
अबतौं चरन कमल लपटानी जो भावै सो होउ री ॥
माई रिसाइ, बाप घर मारै, हँसे बटाउ लोग री ॥
भय तौ जिय ऐसी बनि आई विधना रच्यौ सजोग री ॥
वरु ये लोक जाइ किन मेरो, अरु परलोक नसाइ री ॥
नद नदन हौं तऊ न छांडौ, मिलौं निसान बजाइ री ॥
बहुरै यह तन धरि का पैहौं वल्लभ भेष मुरारि री ॥
परमानद स्वामी के ऊपर सरवसु दैहौं वारि री ॥ प० स० ३०५

आत्म-निक्षेप का इससे उत्तम उदाहरण और क्या हो सकता है। प्रिय के सौंदर्य से अभिभूत गोपिका को प्रिय का प्रत्येक अग, उसका सचार, भ्रू भग, मुरली-वादन यहाँ तक कि उसका प्रत्येक स्पदन आत्म-विस्मृति के लिए पर्याप्त है।

भावै मोहि मोहन वेनु बजावन।
मदन गोपाल देखि हौं ही रीझी मोहन की मटकावन।
कुण्डल लोल कपोल मधुरतम लोचन चारु चलावन ॥
कुन्तल कुटिल मनोहर आनन मीठे धेनु बुलावन।
स्याम सुभग तन चदन मडित उर कर अग नचावन ॥
परमानन्द ठगी नद नदन दसन कुन्द मुसकावन।

सौंदर्य की इस दिव्यानुभूति ने ही साहचर्य भावना को जन्म दिया है। और इस साहचर्य ने समस्त लोक लाज को लात मार दी है। परमानन्ददासजी इसी रागानुगा एकान्त भक्ति के प्रबल पोषक हैं। उनके काव्य मे पद पद पर सौन्दर्य और साहचर्य के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। परन्तु जहाँ एक ओर वे विधि-निषेध से परे एकान्त भक्ति की दिव्य भूमि में पाठक को घसीट लेजाते हैं वहाँ दूसरी ओर सम्प्रदाय के भक्ति सिद्धान्तों का समन्वय भी करते चलते हैं। उपर्युक्त राग अथवा स्नेह की इस स्थिति मे सासारिक राग अथवा गृहासक्ति का सर्वथा नाश हो जाता है। जिसका निदर्शन परमान ददासजी ने पदे-पद किया है।[1] कृष्ण रति जन्म जीवन की इस कृतार्थता की ओर कवि ने बार-बार सकेत किया है।

सुन्दरता गोपालहिं सोहै।

" "
वेद पुरान निरूपत बहुविधि ब्रह्म नराकृति रूप निवास।
बलि बलि जाऊँ मनोहर मूरति हृदय बसो परमानन्ददास ॥ प० स० ४४६

---

१ 'स्नेहाद्राग विनाश स्यादासक्त्या स्याद्गृहारुचि । भ० व० ४
गृहस्थानां बाधकत्वमनात्मत्व च भासते ॥
यदा स्याद् व्यसन कृष्णे कृतार्थ स्यात्तदैवहि ॥ वही ५

## परमानन्ददासजी की द्विविधि ग्रासक्तियाँ

परमानन्ददासजी के सम्पूर्ण भक्ति काव्य का रहस्य उनकी दो ही प्रकार की ग्रासक्तियों मे है —

१. स्वरूपासक्ति।
२ लीलासक्ति।

स्वरूपासक्ति·—यह परमानन्ददास जी मे पदे-पदे मिलती है। भुवन मोहन भगवान् के दिव्य स्वरूप, उनकी वाँकी वाँकी ग्रौर उनकी निराली ग्रदा मे कवि शिखान्त ग्रवमज्जित हो गया है। उसने उस लोकोत्तर दिव्य सुषमा का अपने ग्रन्तराल मे मानस-प्रत्यक्ष किया है। ग्रौर उसी कारण भगवान् के सौंदर्यपरक ग्रनेक पद उसके ग्रगाध मानस से स्वत निर्गत हो चले थे। परमानन्ददासजी के स्वरूपासक्ति वाले पदो मे सौंदर्यानुभूति की जो गहराई है वह देखने योग्य है। ग्रनुभूति की वैसी तीव्रता ग्रौर गहराई हमे सूर जैसे एकाध ही कवि मे मिलती है ग्रन्यथा, सौंदर्यासक्ति के वैसे उदाहरण कही देखने मे नही ग्राते।

सौंदर्य ग्रौर कृपा के ग्रागार भगवान् कृष्ण के प्रति कवि की चरम कोटि की विनय स्वयमेव प्रस्फुटित हुई थी। भक्ति के ग्रावेश मे उसके दैन्य की सीमा नही थी। समस्त ससार को भूलकर उसने सर्वतोभावेन प्रभु के चरणो मे ग्रात्मनिवेदन कर दिया था। ग्रत परमानन्ददास जी मे हमे भक्ति की सातो भूमिकाएँ, छहो प्रकार की शरणागति ग्रौर नारदीय-भक्ति-सूत्र कथित एकादश ग्रासक्तियो के दर्शन हो जाते हैं। नीचे सभी के सक्षिप्त उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

भक्ति की भूमिकाएँ·—ज्ञान की सप्त भूमिकाग्रों की भाँति शास्त्रकारो ने भक्ति की भी सात भूमिकाएँ ग्रथवा सोपान माने हैं। ये हैं·— दीनता, मानमर्षिता, भय दर्शन, भर्त्सना, ग्राश्वासन, मनोराज्य ग्रौर विचारणा।

परमानन्ददासजी के विनय ग्रौर भक्ति परक पदो मे हमे सातो ही के दर्शन हो जाते हैं·—

दीनता —नितान्त ग्रभिमान शून्यता के साथ प्रेम ग्रौर विनय का मिश्रण दीनता है। यह प्रपत्ति की प्रथम स्थिति है, बिना चरम दैन्य के भगवान अनुग्रह नही करते। ग्रौर दैन्य के विना भक्त निरभिमान नही होता। जब तक भक्त—

"निज प्रभुमय देखत फिरहिं कासन करहिं विरोध।"

की स्थिति पर नही पहुँच जाता तब तक समझना चाहिए उसमे प्रपत्ति का भाव उदय ही नही हुग्रा। परमानन्ददासजी ने "सकल भुवन" मे प्रभु की ग्रनुभूति की है ग्रौर इस कारण ग्रनन्यता उनमे स्वयमेव प्रादुर्भूत हुई है—

तुम तजि कौन नृपति पै जाउँ।
मदन गोपाल मडली मोहन सकल भुवन जाको ठाउँ॥
तुम दाता समर्थ तिहुँपुरके जाके दिए ग्रघाउँ॥
परमानन्ददास को ठाकुर मन वाञ्छित फल पाउँ॥ प० स० ६८०

इस चरम दैन्य में वे भक्तों को सहिष्णु बनने की सलाह देते हैं :—

ब्रज बसि बोल सबन के सहिए ।
जो कोउ भली बुरी कहै लाखे, नन्दनन्दन रस लहिए ॥

" " "

परमानन्द प्रभु के गुन गावत आनन्द प्रेम बढैये ॥ प० सं० ६७१

एक स्थान पर वे कहते हैं—

तुम तजि कौन नृपति पैं जाउँ ।
काकैं द्वार पैठि सिर नाउँ परहथ कहा बिकाउँ ॥
तुम कमलापति त्रिभुवन नायक विस्वंभर जाकौ नाउँ ॥

" " "

परमानन्द हरि सागर तजि के नदी शरण कत जाउँ ॥ प० सं० ६६८

**मानमर्षता** :—इसमें भक्त अपना अभिमान विर्सजित कर देता है । और दैन्य की स्थिति पुष्ट हो जाती है । उसे सिवाय भगवच्चरणारविंद के दूसरा कुछ नही सुहाता । परमानन्ददासजी अपनी विह्वल दशा मे पुकार उठते हैं :—

"अपने चरण कमल को मधुकर हमहू काहे न करहू जू ॥
कृपावंत भगवंत गुसाईं इहि बिनती चित धरहू जू ॥ प० सं० ६६२

**भयदर्शन** :—चंचल और दुष्ट मन यदि अन्य उपाय से नही मानता तो उसके लिए भय दिखाना आवश्यक हो जाता है परमानन्ददासजी ने "बड़ी हानि" का भय एक स्थान पर प्रस्तुत किया है :—

- "हरि के भजन को कहा चहियत है,
श्रवन नैन रसना पद पानि ॥
वैसी संपति आइ बनी है,
जो न भजे ताहि बड़ी हानि ॥प० सं० ६७८

**भर्त्सना**:—सही रास्ते पर लाने के लिए "धिक्कृति" ,भी एक अव्यर्थ उपायहै । भक्त मन को इस उपाय से भी वश में करते आए हैं । भर्त्सना में गाली गलौज, क्षोभ का भाव निहित रहता है:—

"गई न आस पापिनी जैहै ।
तजि सेवा वैकुण्ठनाथ की नीच लोग के संग रहै ॥प० सं० ७३०

**आश्वासन** :—कभी-कभी आश्वासन से भी क्रूर अवश मन मान जाता है, प्रभु की असीम शक्ति पर जब भक्त का ध्यान पहुँचता है तो लोभी स्वभाव के मन को भी समझा दिया जाता है परमानन्ददासजी ने भी मन को लालच दिया है:—

"क्यों न जाइ एसे के सरन ।
प्रतिपालै पोखे माता ज्यौं चरण कमल भव सागर तरन ॥ प० सं० ६७६

एक स्थान पर वे लिखते हैं —

हर को भक्त मानें डर वाको।
जाको कर जोरें ब्रह्मादिक देवता सब दिन दडवत है जाको ॥ प० स० ६८३

एक और स्थल पर वे कहते है —

सब सुख सोई लहै जाहि काह पियारो।
करि सतसग विमल जस गावे रहे जगत त न्यारो ॥ प० स० ६८४

मनोराज्य —इस स्थिति म भक्त चितनशील अधिक हो जाता है। बाह्य जगत से उसका नाता टूट जाता है और वह आप आपकी सुनता है आप आपकी कहता है। इसी स्थिति मे वह मन के साथ सख्य भाव निभाता हुआ उस समझाता रहता है।

'जाहि विस्वभर दाहिनी, सो काहे न गावें।
कुबिजा ते कमला करी इहि रुचित्तें पावें ॥ प० स० ३१५

वे कहते हैं —

तातें न कछुओ मागि हो रहौं जिय जानी।
मन कलपित कोटिक करें उदधि लहरि समानी ॥

एक और स्थल पर वे कहते हैं —
कबहू करि हौं धौं दया।
हस्त कमल को हमहू ऊपर फेरि जैहो हया ॥

विचारणा—विचार विवेक का पूर्वज है। विचारणा की स्थिति मे भक्त चरम गम्भीर बन जाता है और वह सत्य निष्कर्षो पर पहुँच कर जगत् की वास्तविकता को जान लेता है। अत उसकी समस्त चचलताएँ विलीन हो जाती हैं।

माधो ! करि गई लीक सही।
साची छाया स्यामसु दर की आदि अन्त निबही ॥
जाको राज दियो सो अविचल, मुनि भागौति कही ॥"

इत्यादि।

भक्ति की उपर्युक्त सप्त भूमिकाओ के उपरान्त परमानन्ददासजी मे षड्विधा शरणागति भी उपलब्ध होती है। उन छहो शरणागति के स्वरूप की चर्चा करने से पूर्व हम शरणागति की परिभाषा पर विचार लेना चाहिए। भक्ति और शरणागति अथवा प्रपत्ति मे थोडा अन्तर है।

## भक्ति और प्रपत्ति का भेद

भक्ति मे प्रेम का प्राधान्य है। अत भक्ति आनन्दस्वरूपा है। इसलिए वह आस्वाद्य है। प्रेम अथवा भक्ति बडे के प्रति 'श्रद्धा' बन जाती है। बराबर वाल के साथ प्रेम, प्रणय और छोटे के प्रति वात्सल्य का रूप ले लेती है। फिर भक्ति अपने विशुद्ध रूप मे रस रूपा है।

ग्रौर पात्रानुसारद्विधा त्रिधा, नवधा होती हुई इक्यासी प्रकार की ग्रौर फिर चौरासी प्रकार की होकर पात्रानुकूल ग्रनन्त प्रकार की हो जाती है। परन्तु प्रपत्ति अथवा शरणागति में दैन्य का प्राधान्य है ग्रौर निस्साधनता इसका तत्व है। यह तीन प्रकार की है—

१. भगवान् द्वारा भक्त का स्वीकार।

२. भक्त द्वारा भगवान् का स्वीकार।

३. ग्रथवा भक्त ग्रौर भगवान् दोनो की परस्पर स्वीकृति ग्रर्थात् मिश्र प्रपत्ति।

पुष्टि भक्तो मे तीनो ही प्रकार की प्रपत्तियो के उदाहरण मिलते हैं। गोपियाँ वे भक्ताएँ है, जिनका स्वय भागवान् ने स्वीकार किया है।

## प्रथम प्रकार की प्रपत्ति—

*ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिका.।*
मामेव दयित प्रेष्ठमात्मान मनसागताः॥
ये त्यक्त लोक धर्माश्चमदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥ भाग १०।४६।४

## द्वितीय प्रकार की प्रपत्ति—

इसमे विभीषण ग्रथवा भक्तवर वृत्रासुरादि ग्राते हैं—

विभीषण कहते हैं—

भवन्त सर्व भूताना शरण्य शरण गत।
परित्यक्ता मया लका मित्राणिच धनानि च॥ वा० रा० यु० १६।५

ग्रर्थात् "ग्राप सर्वभूतो के शरण्य है। मैं ग्रापकी शरण मे ग्रा गया हूँ। मैं लका का ग्रपने मित्रो का ग्रौर धन का परित्याग करके ग्राया हूँ।"

मिश्रप्रपत्ति का सर्वोत्तम उदारहण ग्रर्जुन है। एक स्थान पर ग्रर्जुन स्पष्ट स्वीकार करते हैं—

"शिष्यस्तेऽह शाधि मा त्वा प्रपन्नम्॥ गीता

भगवान् भी उसे *ग्रनन्य ग्रनुगृहीत* भक्त स्वीकार करते हैं—

न वेद यज्ञाध्ययनैर्न दानै।
न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रै.॥
एव रूप शक्य ग्रह नृलोके।
द्रष्टुं त्वदन्येन करूप्रवीर॥ गी० ११।४८

तथा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रजः॥
*ग्रह त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ गी० १८।६६*

ग्रर्थात् हे ग्रर्जुन! न वेद पाठ से न यज्ञ से न दान से न कर्म काण्डादि से न उग्र तप मुझे इस प्रकार से इस नर लोक मे तेरे ग्रतिरिक्त कोई नही देख सकता। समस्त धर्मों को छोड कर तू मेरी शरण मे ग्राजा, मैं तुझे समस्तपापो से मुक्त कर दूँगा। तू सोच मत कर।"

प० सा० २१

उपर्युक्त श्लोकों से पता चलता है कि अर्जुन भगवान् का विशिष्ट कृपा पात्र जीव था। परन्तु उपर्युक्त तीन प्रपत्तियो मे से प्रथम दो प्रकार की प्रपत्तियाँ ही मुख्य है। जिसमे प्रथम प्रकार की प्रपत्ति अर्थात् भगवान् द्वारा भक्त का स्वीकार पुष्टि मार्गीय प्रपत्ति है। और दूसरे प्रकार की प्रपत्ति मर्यादामार्गीय प्रपत्ति है। परमानन्ददासजी मे उक्त दोनों ही प्रकार की प्रपत्तियाँ पाई जाती हैं। गोपी-प्रेम मे पुष्टिमार्गीय प्रपत्ति का उदाहरण मिलता है। गोपियों के माहात्म्य की चर्चा करते हुए वे कहते हैं।

भोगी भोग करत सब रस को।
नद नदन जसोदा को जीवन, गोपिन दान मान, पति, सर्वसु को॥
तिल भर सग तजत नही निज जन गान करत मन मोहन जसु को॥
तिल-तिल भोग करत मन भावत परमानन्द सुख लै यह रस को॥ प० स० ४७६

एक और स्थान पर वे लिखते हैं —

ये हरि रस ओपी सब गोप तियन ते न्यारी॥
कमल नयन गोविंद चद की प्राननप्यारी॥
निरमत्सर जे सतत ताहि चूडामनि गोपी॥
निरमल प्रेम प्रवाह सकल मरजादा लोपी॥ प० स० २०३

मर्यादामार्गीय प्रपत्ति के अन्तर्गत छ प्रकार की शरणागति की चर्चा की जाती है:—

आनुकूल्यस्य सकल्प प्रातिकूलस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्वे वरण तथा॥
आत्मनिक्षेप कार्पण्ये षड्विधा शरणागति॥

अर्थात् प्रभु के प्रति अनुकूलता का सकल्प, प्रतिकूलता का त्याग, प्रभु सदैव रक्षा करेंगे—यह विश्वास, अपने रक्षक रूप मे प्रभु का वरण, अपने को सर्वथा सौंप देना और दीनता। यही छ प्रकार की शरणागतियाँ है। परमानन्ददासजी ने इन प्रपत्तियो की अपने काव्य म यथा स्थान चर्चा की है—

### अनुकूलता का संकल्प—

इस सकल्प के बिना काम ही नही चल सकता। इसमे अनन्यता के बीज निहित हैं। यदि भक्त ऐसा सकल्प न करे तो उसकी शरणागति सपन्न ही नही हो सकती।

या व्रत ते कबहू न टरौंरी।
वसीवट मडप वेदी रचि कुवर लाडिलो लाल वरौंरी॥ प० स० ७१२

### प्रतिकूलता का विसर्जन—

यह पहली शरणागति की पूरक स्थिति है। इसमे प्रिय के प्रतिकूल आचरण के त्याग की अपूर्व दृढता है। "अनन्यता" की उत्तरोत्तर वृद्धि है।

नद लाल सौं मेरी मन मान्यौ कहा करेगो कोई री।
हौं तो चरण कमल लपटानी जो भावै सो होय री॥
गृह, पति, मात, पिता, त्रासत, हँसत बटाउ लोग री॥ प० स० ३२३

एक स्थान पर वे कहते हैं :—

तातें न कछु मागि, हों रह्यो जिय जानी ।।

" " "

आन देव कत सेइए विगरे पै अपकारी ।।प० स० ६६१

" " "

छांडि न देत झूठे अति अभिमान ।
*मिलि रस रीति प्रीति करि हरि सौं सुन्दर है भगवान ।।*
यह जीवन धन ओस चारि को पलटत रग सो पान ।। प० स० ३४७

रक्षा का विश्वास :—इस विश्वास से भक्त को बडा भारी मानसिक बल और दृढ भरोसा प्राप्त होता है। इससे भक्त मे विघ्नो का सामना करने की शक्ति आती है। परमानन्ददासजी ने प्रभु को ही "सर्व समर्थ" समझ कर निश्चितता प्राप्त की है।

*ताते तुम्हरो मोहि भरोसो आवै ।*
दीन दयाल पतित पावन जस, वेद उपनिषद गावै ।।

" " "

ऐसो को ठाकुर जे जन कौं सुख दे भलो मनावै ।।प० स० ६६६

## रक्षक रूपमें प्रभु का वरण—

भगवान को रक्षक के रूप मे वरण करके भक्त एक प्रकार से अभेद्य कवच मे सुरक्षित हो जाता है। उसे किसी प्रकार की आधि व्याधि नही सताती और निश्चित होकर भक्ति-साधना मे लग जाता है। परमानन्ददासजी ने "कमलापति की ओट" को सर्वोपरि सर्व प्रथम माना है—

बडी है कमलापति की ओट ।
*सरन गये ते पकडि न आए कियो कृपा को कोट ।।प० स० ६६४*

" " "

साचो दिवान है री कमलनयन ।।प० स० ७००

## आत्मनिक्षेप —

आत्म-निक्षेप मे भक्तपूर्ण भगवदवलंब लेकर निर्भरा स्थिति पर पहुँच जाता है। यहीं उसे शाश्वत सुख का आभास मिलने लगता है। और वह भगवान से खुलकर व्यवहार करने लगता है। सीधे-सीधे भगवान से अपना सबध जोड लेता है परमानन्ददासजी ने अपनी सम्पूर्ण निर्भरता का परिचय इस प्रकार दिया है —

तुम तजि कौन नृपति पै जाउ ।।
काके द्वार पैठि सिर नाउ परहथ कहा विकाउ ।।

" " "

परमानन्द हरि सागर तजि कै नदी शरण मत जाउ ।।प० स० ६८०

कार्पण्य—

में दैन्य, विनय, प्रेम, उपालम्भ आदि भाव रहते हैं इसमें भाव शबलता रहती है। प्रभु से प्यार वढ़ जाता है और भक्त उन पर अपना अधिकार सा समझ लेता है.–

"अनुग्रह तौ मानो गोविंद।
बांके चरन कमल दिखरावहु वृन्दावन के चंद॥

" " "

अपराधी आदि सर्वं कोऊ हौं प्रथम नीच मतिमंद॥
ताको तुम प्रसिद्ध पुरुषोत्तम गावत परमानन्द॥प० सं० ६६६

संक्षेप मे परमानन्ददासजी मे षड्विधा शरणागति अथवा प्रपत्तिपरक पद भी पर्याप्त रूप हमें मिल जाते हैं।

नारदीयभक्तिसूत्रोक्त आसक्तियां और परमानन्ददासजीके भक्ति विचार:—

नारदीय भक्ति सूत्र मे एकादश आसक्तियो की चर्चा इस प्रकार आई है।

गुण माहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्ति रूपाएक-धाप्येकादशधा भवति—ना० भ० ८२

यद्यपि प्रेमलक्षणा भक्ति रसात्मक और अखण्ड है, तथापि अपने विशिष्ट प्रकारों मे यह ग्यारह प्रकार की हो गई है। यहाँ हम प्रत्येक आसक्ति का अलग-अलग उदाहरण प्रस्तुत करने की चेष्टा करेगें।

१. गुणमाहात्म्यासक्ति :—इसमें भक्त को प्रभु के गुण और महात्म्य का ज्ञान[१] रहता है और वही उसकी प्रेम स्वरूपा भक्ति का कारण होता है :—

गोविंद तिहारो स्वरूप निगम नेति नेति गावैं।
भक्ति हेतु स्यामसुन्दर देह धरें आवैं॥
योगी मुनि ग्यानी ध्यानी सुपने नहिं पावैं॥
नन्द घरनि बाँधि बाँधि कपि ज्यौं लै नचावैं॥

" " "

परमानन्द प्रेम कथा सबहिन ते न्यारी॥ प० सं० ८६२

२. स्वरूपासक्ति :—परमानन्ददासजी मे स्वरूपासक्ति के अनेक पद हैं। वस्तुतः उनके काव्य के दो ही विषय हैं :—

स्वरूपासक्ति और लीलासक्ति। अतः स्वरूपासक्ति का एक उदाहरण—

"सुन्दर मुख की हौं बलि-बलि जाउं॥
लावननिधि, गुननिधि, सोभा निधि, देखि-देखि जीवत सब गाउं।
अंग-अंग प्रति अमित माधुरी प्रगटत रस रुचिर ठाउ॥
तामें मृदु मुसुकानि हरत मन, न्याय कहत कवि मोहन नाउ॥

---

१ माहात्म्यज्ञान पूर्वस्तुसुदृढः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यथा॥ त० दी० नि०-४६

सखा अंग पर बाम बाहु धरैं यह छवि को बिनु मोल बिकाउं ॥
परमानन्द नन्दनन्दन को निरखि निरखि उर नैन सिराउं ॥ प० सं० २६६

तथा

अति रति स्याम सुन्दर सौं बाढी ।
देखि स्वरूप गोपाललाल को रही ठगी सी ठाड़ी ॥ प० सं० ३६७

## पूजासक्ति

याते जिय भावै सदा गोबर्धन धारी ।
इन्द्र कोप ते नन्द की आपदा निवारी ॥
जो देवता अराधिय सो हरि के भिखारी ॥
अन्य देव कत सेइए बिगरैं पै अपकारी ॥
दुःसासन के कोप ते द्रौपदी उबारी ॥
परमानन्द प्रभु सांवरो भगतन हितकारी ॥ प० सं० ७१६

## स्मरणासक्ति

जब ते प्रीति स्याम सौं कीनी ।
ता दिन ते मेरे इन नयननि मैं कबहूं नींद न लीनी ॥
सदा रहति चित चाक चढ्यौ सौ औरे कछू न सुहाय ॥
मन में करत उपाय मिलन कौं इहै बिचारत जाय ॥
परमानन्द प्रभु पीर प्रेम की अपने तन मन सहिए ॥
जैसे बिथा मूक बालक की अपने तन मन सहिए ॥ प० सं० ६०८

## दास्यासक्ति

माधौ यह प्रसाद हौं पाउं ।
तब भृत भृत्य भृत्य परचारक दासको दास कहाउं ॥
यह मन मत मोहि गुरुन बतायो स्याम धाम की पूजा ॥
यह बासना घरैं नहिं कबहूं देवन देखौं दूजा ॥
परमानन्ददास तुम ठाकुर यह नातौ जीयत न टूटैं ॥
नन्दकुमार जसोदा नन्दन हिलिमिलि प्रीति न छूटैं ॥ प० सं० ७२८

## सख्यासक्ति

भावै तोहि हरि की आनन्द केलि ।
मदन गुपाल निकट कर पाए ज्यौं भावै त्यौं खेलि ॥
कमल नैन की भुजा मनोहर अपने कंठ लै मेलि ॥
प्रेम बिबस अरु सावधान ह्वै छूटी अलक सकेल ॥
तरुण तमाल नन्द के नन्दन प्रिया कनक की बेली ॥
यह लपटानी दासपरमानन्द मुदित पायन सौं ठेली ॥ प० सं० ८५५

## सख्यासक्ति का एक और उदाहरण

हसत परस्पर करत कलोल ।[१]
व्यजन सबै सराहे मोहन, मीठे कमल दल बदन के बोल ॥
तोरे पलास पत्र बहुतेरे पनवारो जोर्यो विस्तार ॥
चहुँदिसि बैठी गुवाल मडली जेवन लागे नन्द कुमार ॥
सुर विमान सब कौतुक भूले जग्य पुरुषहै नीके रग ॥
शेष प्रसाद रह्यो सो पायो परमानन्ददास हो सग ॥ प० स० ८६४

## कान्तासक्ति

ता दिन ते मोहि अधिक चटपटी ।
जा दिन ते देखे इन नयनन गिरिधर बाँधे पाग लटपटी ॥
चले री जात मुसुकात मनोहर, हँसि जो कही इक बात अटपटी ॥
हौं सुनि स्रवन भई अति व्याकुल परी जी हृदय मे मदन सटपटी ॥
कहा री करू गुरुजन भये बैरी अरी मोसों करत खटपटी ॥
परमानन्द प्रभु रूप विमोही नन्द नन्दन सौं प्रीति अति जटी ॥ प० स० ६६६

एक अन्य स्थल पर

कौन रस गोपिन लीनों घूंट ।
मदन गुपाल निकट करि पाए प्रेम काम की खूंट ॥
निरख स्वरूप नन्दनदन को लोक लाज गई छूट ॥
परमानन्द वेद मारग की मर्यादा गई टूट ॥ प० स० ८८०

## वात्सल्यासक्ति

वात्सल्यासक्ति मे परमानन्ददासजी के अनेक पद हैं जो बडे सरस और मार्मिक हैं। उदाहरणार्थ :—

माई मीठे हरि जू के बोलना ।
पाँय पैंजनी रुन झुन बाजैं आगन प्रति डोलना ।
काजर तिलक कठ कठुला मनि पीताम्बर को चोलना ॥
परमानन्ददास को ठाकुर गोपी झुलावै झोलना ॥प० स० ४५३

एक स्थल पर माता अभिलाषा करती है :—

जा दिन कन्हैया मोसों मैया कहि बोलेगो ।
ता दिन अति आनन्द गिनौरी माई रुमुक झुमुक व्रज गलिन मे डोलैगो ॥
प्रात ही खिरक जाँय दुहिबैकों धाइ बधन बछरवा के खोलैगो ॥
परमानन्द प्रभु नवल कुमर मेरो गवालिनके सग वन मे किलोलैगो ॥ प० स० ६८४

---

१ प्रस्तुत पद दानघाटी छाक के अवसर का है। इससे भक्त कवि अपने भावलोक में अपनी उपस्थिति की कल्पना करता है।

एक और स्थल पर :—

जब नन्दलाल नयन भरि देखे ।
एकटक रही सभार न तनको मोहन सूरति पेखे ।।
स्याम बरन पीताम्बर काछे अरु चंदन की खोर ।।
कटि किंकनी कलराव मनोहर, सकल त्रियन चित चोर ।।
कुण्डल झलक परत गडनि पर जाइ अचानक निकसे भोर ।।
श्रीमुख कमल नन्द मृदु मुसकनि लेत कपि मन नन्द किसोर ।।
मुक्ता माल राजत उर ऊपर चितए सखी जबै इहि ओर ।।
परमानन्द निरखि सोभा ब्रज वनिता डारति तृन तोर । प० सं० १३६

## आत्मनिवेदनासक्ति

हरि सौं एक रस रीति रही री ।
तन मन प्रान समर्पन कीनों अपनो नेम व्रत लै निबहीरी ।।
प्रथम भयौ अनुराग दृष्टि सौं मानहु रंक निधि लूट लई री ।।
कहति सुनति चित औरहि कीनो यहै लगन जिय पैज गहीरी ।।
मरजादा औलधि सबनि की लोक वेद उपहास सही री ।।
परमानददास गोपिन की प्रेम कथा सुक व्यास कही री ।।२११।।

## तन्मयासक्ति

कमल नयन बिन और न भावै ।
अहनिस रसना कान्ह कान्ह रट ।।
रुदन करिकें नैन गवाएं ।
विलख बदन ठाढ़ो जोवति बट ।।
तुमरे परस बिन वृथा जात है,
मेरे उरज धरे कंचन घट ।।
नद गोप सुत तवहि मिलहुगे ।
जबहि होहिगी सीस सकुल लट ।।
दुर्लभ भई देह छाँड़ सुख,
और बात बिसरी मलिन भए पत ।।
परमानन्द प्रभु अबहि बिसरि गयो,
हमरो खेल रमन जमुना तट ।।६१०।।

## अन्यत्र

मोहन मोहिनी पढि मेली ।
देखत ही तन दसा भुलानी को घर जाइ सहेली ।
काके मात तात अरु भ्राता को पति है नवेली ।।
काकी लोकलाज डर कुल व्रत को भ्रमति बनहि अकेली ।
" " "
परमानन्द स्वामी मन मोहन स्तुति मर्यादा पेली ।।३७४।।

परमविरहासक्ति

जिय की साधि जिय ही रहि री ।
बहुरि गोपाल देखन नहीं पाए बिलपति कुञ्ज अहोरी ।।
इक दिन सो जु सखी यह मारगु बेचन जात दहोरी ।।
प्रीति कै लएँ दान मिस मोहन मेरी बाँह गहोरी ।।
बिनु देखे छिन जात कल्प भरि बिरहा अनल दहोरी ।।
परमानन्द स्वामी बिनु दरसन, नैननि नदी बहोरी ।। प० सं० ६०४

अथवा

वह बात कमल दल नैन की ।
बार बार सुधि आवत सजनी वह दुरि दैनी सैन की ।।
वह लीला वह रास सरद को गोरज रंजित आवनी ।।
अरु वह ऊँची टेर मनोहर मिस करि मोहि बुलावनी ।।
वे बातें सालति उर अंतर, को पर पीरहि पावै ।।
परमानन्द कह्यो न परै कछु हियो सो रूंध्यो आवै ।। प० सं० ६३३

एक अन्य स्थल पर

सुधि करत कमल दल नैन की ।
भरि भरि लेत नीर अति आतुर, रति वृन्दावन चैन की ।।
दै दै गाढ़े आलिंगन मिलती कुंज लता द्रुम ऐन की ।।
वे बातें कैसे कै बिसरति, बाँह उसीसे सैन की ।।
बसि निकुञ्ज रस रास खिलाए व्यथा गवाई मैन की ।।
परमानन्द प्रभु सो क्यों जीवहि जो पोखी मृदु बैन की ।। प० सं० ६३८

हरि तेरी लीला की सुधि आवै ।
कमल नैन मन मोहन मूरति मन मन चित्र बनावै ।।
एक बार जाहि मिलत मया करि, सो कैसे बिसरावै ।।
मुख मुसकान बंक अवलोकनि चाल मनोहर भावै ।।
कबहु निबिड़ तिमिर आलिंगत कबहुक पिक सुर गावै ।। प० स० ६३६
कबहुँक सम्भ्रम क्वासि क्वासि कहि मोनहि उठि धावै ।।
कबहुँक नैन मूंदि अंतरगति मनिमाला पहिरावै ।।
परमानन्द प्रभु स्याम ध्यान करि ऐसे बिरह गँवावै ।।

नारदीय भक्ति सूत्रोक्त उपर्युक्त एकादश आसक्तियों के उदाहरणों के उपरान्त यहाँ परमानन्ददासजी के भक्ति विषयक सामान्य विचारों पर विचार किया जायगा ।

परमानन्ददास जी जहाँ एक ओर भक्ति के लिए एकान्त "गोपी भाव" की भक्ति को आदर्श रूप में स्वीकार करते हैं, दूसरी ओर वे भक्ति के मर्यादा रूप अथवा उसके लोकपक्ष के निर्वाह की भी उपेक्षा नहीं करते । वे भक्ति के सामान्य साधन जैसे—नाम—माहात्म्य, गुरु महिमा, अनन्यता, संप्रदाय के प्रति आस्था, गुरुमंत्र में अगाध विश्वास, सत्संग और षडग

सेवा-साधना को भी प्रमुखता देते हैं। नीचे उनकी भक्ति के सामान्य स्वरूपके निर्वाहके उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

नाम माहात्म्य—भगवन्नाम मे परमानन्ददासजीकी अटूट आस्था है। ये प्रभु का नाम सर्वोपरि, सर्वसमर्थ, सर्व कल्पपापह मानते हुए उसे भक्ति का अन्यतम साधन मानते हैं—

१. हरि जू को नाम सदा सुखदाता।

२. कृष्ण कथा बिन, कृष्ण नाम बिनु, कृष्ण भक्ति बिनु दिवस जात।
यह प्रानी काहे जीवत, नही मुख बदत, कृष्ण को बात॥

३. बड़ी है कमलापति की ओट।
" "
सुमिरत नाम अघ भव भंजन कहा पंडित कहा बोट॥

४. काम धेनु हरि नाम लियो।
मन क्रम बचन की कौन संमति कहे महा पतित द्विज अभै कियो।

५. ताते गोविन्द नाम लै गुन गायो चाहौं।
चरन कमल हित प्रीति करि सेवा निरबाहौं॥

६. जो जन हृदय नाम धरै।
अष्ट सिद्धि नव निधि को अपुरी लटकत लारि फिरै॥

गुरु महिमा—आचार्य वल्लभ से दीक्षा प्राप्त कर लेने पर वे गद्‌-गद्‌ होकर कृतार्थता का अनुभव करते हुए कहते हैं—

१. श्री वल्लभ रतन जतन करि पायो।
बह्यो जात मोहि राखि लियो है पिय संग हाथ गहायो॥

गुरु और गुरु पुत्र मे अभेद भाव का अनुभव करते हुए वे कहते हैं—

२. तिहारे चरन कमल को मधुकर मोहि कबजू करोगे।
कृपावत भगवत गुसांई यह बिनती चित जू धरोगे॥

३. जब लग जमुना गाय गोवर्धन जब लग गोकुल गाम सुहाई।
" " "
परमानन्द तासों हरि क्रीड़त स्रीवल्लभ प्रभु चरन रेनु जिन पाई॥

४. प्रात समैं उठि, करिए स्रीलछमन सुत गान।
प्रकट भए स्रीवल्लभ प्रभु देत भक्ति को दान॥
स्री विट्ठलेश महाप्रभु रूप के निधान॥

५. प्रात समैं रसना रस पीजै लीजै श्री वल्लभ प्रभुजी को नाम॥

६. बन्दो सुखद स्री वल्लभ चरन॥

७. मंगलं मंगलं व्रज भुवि मंगलं मंगलं महि श्री लक्ष्मण नंद ।
८. गुरु कौ निहारि पोत पद अंबुज, भव सागर तरिबे के हेत ॥
प्रेरक पावन कृपा केसव की परमानन्द दास चित चेत ॥

गुरु मंत्र में अगाध विश्वास—वल्लभ संप्रदाय मे प्रथम दीक्षा अष्टाक्षर मंत्र की है। 'श्रीकृष्ण: शरण मम' मंत्र बालको को दिया जाता है। इसे नाम—श्रवण कहा जाता है। इसके उपरान्त आचार्य महाप्रभु के वंशधर गोस्वामी बालकों से दीक्षा मंत्र अथवा शरण मंत्र लेने की परिपाटी है। यह ६५ और किन्ही के मत में ८६ अक्षरों वाला गद्यात्मक मंत्र है। इसे ही आत्मनिवेदन मंत्र कहते हैं। इसमे अनंतकाल से वियुक्त जीव प्रभु को स्त्री, गृह, पुत्र, मित्र धन, शरीर, इन्द्रियो आदि का सपूर्ण समर्पण करता हुआ प्रभु को अपना एकमात्र रक्षक, स्वामी, सखा मानता है और कहता है 'कृष्ण मैं तेरा हूँ।' यही मंत्र महाप्रभु वल्लभाचार्य को भगवान् श्रीनाथजी से श्रावण शुक्ल एकादशी को ठकुरानी घाट पर प्राप्त हुआ था। तब से आज तक महाप्रभुजी के सेवक इसी मंत्र से दीक्षित होकर इस मंत्र को अपने जीवन मे चरितार्थ करते रहने की साधना करते हैं।

परमानन्ददासजी ने उक्त मंत्रके भाव का यत्र तत्र समावेश किया है और उसे भक्ति भाव से बार-बार दुहराया है—

हरि सौं एक रस प्रीति रही री।
तन मन प्रान समर्पन कीनो अपनो नेम वृत लै निबही री।

" " " "

कहत सुनत चित अनत न अटक्यों वहै लगि जियै ढई री ॥

कवि की समर्पण पर पूरी आस्था थी। अतः साम्प्रदायिक सिद्धान्तानुकूल पूर्ण समर्पण का निर्वाह उसने बलिराजा मे देखा था। अतः वह कहता है—

१. बलि राजा को समर्पन साचो।
२. बढ्यो है माई माधौं सौं सनेहरा।

" " "

अब तौ जिय ऐसी बनि आई कियो समर्पन देहरा।

गुरु द्वारा समर्पण मे ही सिद्धि है। आचार्य श्री ने आज्ञा दी है—

अदान्ते मनसि ज्ञान योगार्थं न यतेत् बुध.।
गुरु सेवा परो भूत्वा भक्तिमेवसदाभ्यसेत् ॥[1]

अतः कवि ने भी वही कहा है—

सब सुख सोई लहै जाहि कान्ह पियारो।
जिन जगदीस हृदै धरि गुरू मुख ऐको छिनुन बिसार्यो।
बिन भगवंत भजन परमानंद जनम जुआ ज्यौं हार्यौ ॥

१ श्रुति गीता श्लोक—२०

अनन्यता—भक्ति साधना में अनन्यता बीज तत्व है अतः इसका बड़ा भारी महत्व है। गीता में इसी को अव्यभिचारिणी भक्ति[१] कहा है। भगवान कहते हैं जो लोग मेरा अनन्य भाव से भजन करते हैं उनको मैं सुलभ हो जाता हूं।[२]

महाप्रभु वल्लभाचार्य विवकधैर्याश्रय ग्रन्थ में कहते हैं—

अन्यस्य भजनं तत्र स्वतो गमनमेवच।
प्रार्थना कार्य मात्रेऽपि ततोऽन्यत्र विवर्जयेत् ॥वि० धै० आ० १४

अर्थात् भक्तिपंथ में और विशेष कर अनुग्रहमार्ग मे अन्य का भजन अथवा कामना और सिद्धि के लिए प्रार्थना आदि वर्जित है। अतः आचार्य के शिष्य परमानन्ददासजी ने भी संप्रदाय की परम्परा के अनुकूल अनन्यता पर बहुत ही बल दिया है क्योंकि बिना अनन्यता के तन्मयता प्राप्त नही होती। साधना के तीनों पक्ष साधक साधन और साध्य तीनो की एकता का ही नाम तन्मयता है। अतः परमानन्ददासजी कहते हैं—

१. प्रीति तौ एक ही ठौर भली।
यह जु कहा मति चरन कमल तजि फिरै जु चली चली॥

तथा

मोहि भावै देवाधि देवा।
" " "
तीन मुख देवता ब्रह्मा विष्णु अरु महादेवा॥
संख चक्र सारंग गदाधर रूप चतुर्भुज आनन्दकंदा॥ पं० सं०–६९७
गोपीनाथ राधिका वल्लभ ताहि उपासै परमानन्दा॥

वस्तुतः तथ्य तो यह है कि भक्ति की गाडी अनन्यता और समर्पण के दो पहियों पर ही चलती है। अतः परमानन्ददासजी ने भी भक्ति साधना मे समर्पण और अनन्यता की अनेक स्थलों पर चर्चा की है। संप्रदाय में अनन्यता का बडा महत्व है। वहाँ श्रीकृष्ण भगवान् के अतिरिक्त किसी अन्य का स्वामी और रक्षक रूप मे वरण ही नही है।

सम्प्रदाय के प्रति आस्था—भक्ति साधना में किसी परिपाटी किंवा विशिष्ट सम्प्रदाय का अनुयायी होना अत्यावश्यक है। यो तो सभी मार्ग उसी एक आराध्य की प्राप्ति के लिए है। परन्तु स्वल्प जीवन वाला मानव एक ही मार्ग का पथिक बन कर लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। अतः वल्लभ कुल के प्रति परमानन्ददासजी ने अपना गहरी निष्ठा प्रकट की है। वे कहते हैं—

हरि जसु गावत होइ सो होई। प० सं०—६३६
परमानन्ददास यह मारग बीतत राम के राज॥

---

१ मयि चानन्य योगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्त देश सेवित्वमरतिर्जन संसदि। गी० १३।१०

२ अनन्य चेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्य युक्तस्य योगिनः॥ ८।१४

एक और स्थान पर वे कहते हैं—

यह मांगो जसोदा नन्द नन्दन।
वदन कमल मेरो मन मधुकर निति प्रति छिन-छिन पाऊँ दरसन।

" " "

नन्द नन्दन वृषभान नंदिनी मेरे सर्वस प्राण जीवन धन।
ब्रज बसि अरु जमुना जल पीऊँ वल्लभ कुल को दास ये ही मन॥
महाप्रसाद पाउं हरि गुण गाउं परमानन्द दास दासी जन।

एक और स्थान पर वे कहते हैं :—

यह मांगो गोपी जन वल्लभ।[1]
मानुष जन्म और हरि सेवा ब्रज बसिवो दीजै मोहि सुल्लभ॥
स्री वल्लभ को होऊँ चेरो वैष्णव जन को दास कहाऊं॥

" " " "

परमानन्ददास यह मांगत नित निरखौं कबहूँ न अघाऊँ॥ प० सं० ५६७

सत्संगके प्रति श्रद्धा :—

कवि ने सत्संग को भगवद् भक्ति का अनिवार्य साधन माना है। अतः भक्तों के संग के लिए वह भगवान से प्रार्थना करता है :—

यह मांगो संकर्षण वीर।[2]
चरन कमल अनुराग निरन्तर भावै मोहि भक्तन की भीर॥
संग देहो तो हरि भक्तन को वास देहो स्री जमुना तीर॥ प० सं० ४६६

एक स्थान पर वह कहता है :—

श्रीजमुना यह प्रसाद हौं पाउं।[3]
तुम्हरे निकट रहौं निसि वासर कृष्ण नाम गुन गाउं॥

" " "

बिनती करो यहै बर मागौं और संग बिसराउं॥ प० सं० ७५२

भागवत के प्रति श्रद्धा :—

सम्प्रदाय में भागवत का बहुत बढा महत्व है। आचार्य ने अपने सिद्धान्त की प्रामाणिकता के लिए भागवत को प्रमाण चतुष्टम के अन्तर्गत रखा है।

वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि व्यास सूत्राणि चैवहि।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम्॥[4]

---

१ परमानन्द सागर से पद संख्या ५६७
२ " " ४६६
३ " " ७५२
४ तत्वदीपनिबंध श्लोक सं०७

अर्थात् "वेद (उपनिषद्) गीता, ब्रह्मसूत्र तथा भागवत ये चारों ही प्रमाण चतुष्टय के अन्तर्गत हैं।"

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने तो भागवत को अपने इष्टदेव भगवान् श्रीनाथजी का स्वरूप ही माना था। भूमंडल की परिक्रमा के अवसर पर उन्होंने सभी प्रमुख तीर्थों में जाकर भागवत के पारायण किये थे। अपने अष्टछापी दो सेवकों को भागवत और विशेष कर दशमस्कंध की अनुक्रमणिका को सुनाया था। जिन दो महानुभावो ने आचार्य से दसमस्कंध की अनुक्रमणिका का श्रवण किया था वे लीला-रस के सागर कहलाए। बाद मे उन दोनों सागरों ने भागवत के लीला प्रसंगों का किस प्रकार अनुसरण किया था यह तो आगे चलकर लीला के प्रसंगों मे बतलाया जायगा। किन्तु इन दोनो महानुभावो ने अपने पदों मे भागवत का बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है। परमानन्ददासजी ने अनेक स्थलों मे भागवत और उसके रसिक "कोर मुनि" (शुकदेव जी) को सादर स्मरण भी किया है।

वे कहते हैं :—

१. जब लग जमुना गाय गोवर्धन जब गोकुल गाय गुसाँई।
   जब लग श्री भागवत कथा' तब लग कलियुग नाहीं॥

२. माधौ या घर बहुत घरी।
   कहन सुनन को लीला कीनो मर्यादा न टरी॥
   जो गोपिन के प्रेम न हो तो अरु भागवत पुरान॥

३. माधौ करि गई लीक सही।
   सांची छाया स्याम सुन्दर की आदि अन्त निबही॥
   जाको राज दियो सो अविचल मुनि भागौति कही॥

४. सेवा मदन गुपाल की मुक्ति हू ते मीठी।
   जाने रसिक उपासिका शुक मुख जिन दीठी॥

५. निरख मुख ठाड़ी है जु हँसे।
   "   "
   यह लीला ब्रह्मा सिव गाई नारदादि मुनि ग्यानी॥
   परमानन्द बहुत सुख पायौ अरु शुक व्यास बखानी॥

६. जो रस रसिक कीर मुनि गायो।
   सो रस रटत रटत निसि वासर सेष सहस मुख पार न पायो॥

तात्पर्य यह है कि श्रीमद्भागवत और ज्ञानी मुनि शुकदेव को परमानन्ददासजी ने भक्ति भाव से बार-बार इसीलिए स्मरण किया है कि भागवत के वक्ता श्री शुक भक्ति के अखंड स्रोत हैं। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ तो भक्ति का सागर ही है। समस्त दर्शनों विशेष कर ज्ञान और योग के सम्पूर्ण सिद्धान्तो के ऊपर भक्ति मणि को शीर्ष स्थानीय बनाने का संपूर्ण श्रेय श्रीमद्भागवत ग्रन्थ को ही है। स्वयं श्रीमद्भागवत पुराण को समझने के लिए और उसका रहस्य जानने के लिए विद्वत्ता की उतनी अपेक्षा नहीं जितनी भक्ति की। "भक्त्या भागवतं शास्त्रम्" का यही तात्पर्य है। इसी कारण समस्त धर्मों शास्त्रों, संप्रदायों एवं भक्ति ग्रन्थों पर श्रीमद्भागवत का पूरा-पूरा प्रभाव है। श्रीमद्भागवत साक्षात् भक्ति स्त्रोत

है, इसीलिए संपूर्ण अष्टछापी एवं कृष्ण भक्तों ने भक्तिरूप महान् ऋण के लिए इस अनुपम ग्रन्थ को भक्ति भाव से स्मरण किया है।

सेवा :—सेवा और भक्ति मे अन्योन्याश्रय है। सेवा से प्रेम (रसमयता) का उदय होता है। और उसी प्रेम के कारण सेवा बनती है। पुष्टि संप्रदाय सेवा पर बहुत ही महत्त्व देता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सेवा पर बहुत जोर दिया है। संप्रदाय का व्यहार पक्ष जो "पुष्टि मार्ग" के नाम से अभिहित किया जाता है, अद्योपान्त सेवा पर ही निभर है। सेवा भक्ति के प्रथम सोपान—दैन्य की जननीहै। और चित्त को केन्द्रित करने वाली है। महाप्रभु जी कहते हैं :—

चेतस्तत्प्रवणं सेवा तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा।[1]
ततः संसार दुःखस्य निवृतिर्ब्रह्म बोधनम्॥

अर्थात् "चित्त को प्रभु मे पिरोना" अथवा तल्लीन कर देना ही सेवा है। और उसकी सिद्धि के लिए तनुजा ( शरीर से ) वित्तजा ( स्वोपार्जित द्रव्य से ) मन लगाकर करनी चाहिए। ऐसा करने से संसार के दुःखो से छुटकारा हो जाता है और "ब्रह्म का यथार्थ स्वरूप जानने मे आता है।"

हरिरायजी कहते हैं—'सेवा तु स्वामिनो यस्समये यदपेक्षन्ते तदेव समर्पणीयम्।' अर्थात् जिस समय प्रिय आराध्यको जो चाहिए वही समर्पण करना सेवा है। [भगवत्प्रकृति-वर्णनम्]

वस्तुतः सेवा धर्म परम गहन है। और योगियों के लिए भी अगम्य है। सेवा की इसी कठिनाई और जीव की असमर्थता की ओर लक्ष्य करके महाप्रभु जी ने स्पष्ट कहा है कि ":— अपने गुरुदेव की आज्ञानुसार सेवा करते रहना चाहिए, भगवदिच्छा से यदि उसमे कभी बाधा आ पड़े तो चिन्ता न करे और सदैव चित्त को सेवा परायण रखकर सुख पूर्वक रहे।"[2]

सम्प्रदाय के सेव्य स्वरूप :—

महाप्रभु आचार्यजी स्वयं भगवान नवनीतप्रियजी के सेवक थे और भागवत के सतत स्वाध्यायी। उनके जीवन के दो कार्य थे—श्री नवनीतप्रियजी की सेवा और श्रीमद्-भागवत का चिंतन। उनके ये दो कार्य गंगा की शाश्वत धारा के समान अहर्निश चला करते थे। उनका सिद्धान्त था कि इन दो में से यदि एक भी अनवरत रूप से चलता रहे तो उस जीव की जीवन भर भगवान मे दृढ आसक्ति रहती है और वह कही नाश को प्राप्त नही होता।[3] इस सिद्धान्त के अनुसार आगे चलकर आचार्य जी के पुत्र गुसाईं जी ने भी श्रीनवनीत-प्रियजी के अतिरिक्त अपने सातों पुत्रो को भगवत् सेवार्थ सात स्वरूप विरासत मे दिए थे। जो आज भी उनके वंशधर के सेव्य रूप मे चले आ रहे हैं। इन सात स्वरूपो के अतिरिक्त श्रीनाथजी का स्वरूप सभी का सेव्य है। इस प्रकार कुल मिलाकर ९ स्वरूप हुए। जिनका विवरण इस प्रकार है :—

---

१ सिद्धान्मुक्तावली श्लोक सं० २

२ सेवाकृतिगुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया।
अतः सेवा परं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्॥ नवरत्न श्लोक ७

३ सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत्।
यावज्जीव तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम॥ भ० व० ६

१. श्रीमहाप्रभु जी के सेव्य—श्रीनाथ जी अथवा गोवर्धननाथजी : वर्तमान मे नाथद्वार में।
२. श्रीमहाप्रभु जी के एवं श्रीगुसाईं जी के सेव्य श्रीनवनीत प्रियजी : श्रीनाथद्वार में।
३. श्रीमथुरेशजी श्री गिरिधर जा के सेव्य : जतीपुरा में (पहले कोटा में थे)
४. श्रीविट्ठलनाथजी श्रीगोविंदराय के सेव्य : श्रीनाथद्वार में।
५. श्रीद्वारकाधीशजी श्री बालकृष्णजी के सेव्य : कांकरौली में।
६. श्रीगोकुलनाथजी श्री गोकुलनाथ जी के सेव्य : गोकुल में।
७. श्रीगोकुलचन्द्रमा जी श्री रघुनाथ जी के सेव्य : कामवन में।
८. श्रीबालकृष्ण जी श्रीयदुनाथ जी के सेव्य : सूरत में।
९. श्री मदनमोहनजी श्रीघनश्याम जी के सेव्य : कामवन मे।

इन नौ स्वरूपो की सेवा महाप्रभु वल्लभाचार्य के समय से आज तक अबाध रूप में चली आ रही है। महाप्रभु जी के द्वितीय पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने सेवा का बहुत ही सुन्दर क्रम निर्धारित किया था। उनके विषय में तो प्रसिद्ध है कि :—

सेवा की अद्भुत रीत।
श्री विट्ठलेश सो राखे प्रीत ॥ (सूर-सेवाफल)

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सेवा के तीन क्रम रखे थे—राग, भोग, और शृङ्गार। साथ ही नित्य सेवा-क्रम और वार्षिक उत्सव सेवा-क्रम। नित्य सेवा क्रम मे आठ दर्शनों का व्यवस्था की गई है। ये अष्ट दर्शन इस प्रकार है :—

१. मंगला प्रातः ५ बजे से ७ तक।
२. शृङ्गार प्रातः ७ से ८ तक।
३. ग्वाल प्रातः ९ से १० तक।
४. राजभोग प्रातः १० से १२ तक मध्याह्न।
५. उत्थापन—मध्याह्नोत्तर ३, ४ तक।
६. भोग—सायं ५ तक।
७. संध्यार्ति सायं ६ बजे से ६॥ तक।
८. शयन सायं ६ ॥ से ८ तक।

आठों दर्शन के साथ राग अथवा कीर्तन की व्यवस्था भी की गई है। अष्टसखा अपना कीर्तन सेवा के लिए प्रसिद्ध हैं ही। इनमें भी विशिष्ट समय पर एक-एक सखा का ओसरा होता था। उसी समय पर वह मंदिर में पहुँच कर कीर्तन सेवा करता था।

ये आठों दर्शन सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा "मनः पूतं" सिद्धान्त पर निर्धारित नहीं किए गए हैं। अपितु इनका आधार भागवतानुसारी लीला भावना है। यहाँ संक्षेप में हम इन अष्ट-दर्शन की आधार भूमि लीला-भावना का संकेत भर करेंगे।

१. मंगला दर्शन :—

प्रातः तीन बार घंटा नाद किया जाता है। त्रिवार घंटा नाद में त्रिगुण (सत, रज, तम) का संकेत है। त्रिगुणातीत परब्रह्म जो निज भक्तों के कारण सगुण वपुधारी है, उसे

जगाया जाता है और ( मगल मगल व्रजभुवि मगल ) का घोष किया जाता है। इसी सम मंगल भोग धराया जाता है :—

"सौमगल्य गिरो विप्राः सूतमागध वदिनः । भागवत १० ।५ ।५
तदनन्तर भगवान को शृङ्गार धराया जाता है ।

२. शृंगारः—

धूलि धूसरितागस्त्व पुत्र मज्जनमावह ।
" " "
त्वच स्नातः कृताहारो विहरस्वस्वलकृतः ।। भाग १०। ११। १८—१

३. ग्वाल भोग :—

इसे गोपीवल्लभ भोग भी कहते हैं। इसमे ग्वाल बालो के साथ भगवान् के भो अरोगने की भावना है ।

तिष्ठन् मध्य स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः ।
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुक् बाल केलि. ।। भाग १०। १३। ११

४. राज भोग .—

यह तीन प्रकार से हैं .—

१ नन्द यशोदा के गृह मे भोजन
२ व्रज सुन्दरियो द्वारा लाया भोजन (छाक) अथवा निमन्त्रण (कुनवारा)
३ वन्य भोजन

१. नन्द यशोदा गृह मे भोजन :—

अल विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडा श्रान्तोऽसिपुत्रक ।
हे रामागच्छ तातासु सानुजः कुलनन्दन ।
प्रातरेव कृताहार तद् भवान् भोक्तुमर्हति ।। १०। ११। १५। १६

२. व्रज सुन्दरियो द्वारा लाया हुआ भोजन—

चतुर्विध बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ।
अभिसस्रुः प्रिय सर्वा. समुद्रमिव निम्नगा. ।।
१०।२३।१६

वन्य भोजन

निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलं फलाशनः ।
दध्योदन समानीत शिलाया सलिलान्तिके ।।
समोनीयैर्बुभुजे गोपैः सङ्कर्षणान्विता. ।।

३. वन भोजन अथवा (छाक)

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारुढः क्षुधार्दिता. ।।
...... ...... ......
...... ...... ......
भुक्त्वा शिवयानि बुभुजुः सम भगवता मुदा ।।
भाग० १०।१३।६,७

५. अनोसर और उत्थापन– इसे अनोसर ( अनवसर ) अर्थात् "न अन्यस्य अवसरः=अनवसरः" कहा जाता है। वास्तव में यह अन्तरंग सखाओं का ही समय होता है। यह ठाकुरजी के मध्याह्न-विश्राम का समय है—

क्वचित् पल्लव तल्पेषु नियुद्ध श्रमकर्शितः।
वृक्ष मूलाश्रयः शेते गोपोत्संगोपबर्हणः।।
पाद संवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः।
अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन्।।

१०।१५।१६-१७

६. भोग—यह संध्याकालीन भगवान् का भोजन है। इसमे फलादि भी रहते हैं—

श्रीदामा नाम गोपालो राम केशवयोः सखा।
सुबल स्तोकः कृष्णाद्याः गोपा प्रेम्णेदमब्रुवन्।।
······ ······ ······
फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च।।
अथतालफलान्यादन् मनुष्या गतसाध्वसाः।

१०।१५।२१-४१

तदनन्तर

जनन्युपहृतं . प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ।।

१०।१५।४६

७. सध्यार्ति—यह समय प्रभु के वन से पधारने का होता है।

तं गोरजश्छुरित कुन्तल बद्ध बर्हं।
वन्य प्रसून रुचिरेक्षण चारुहासम्।।
वेणुं, क्वणन्तमनुगैरनुगीत कीर्तिम्।
गोप्योदिदृक्षित दृशोऽभ्यगमन् समेताः।।

१०।१५।४२

८. शयन – संध्यार्ति के उपरान्त प्रभु सुखद शैया पर पौढा दिये जाते हैं—

संविश्य वर शैयायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे।।

१०।१५।४६

भागवत के आधार पर उपर्युक्त सेवा-क्रम पुष्टि संप्रदाय मे प्रचलित है। पुष्टिमार्ग मे नन्दगोप सुत ही परमाराध्य और सेव्य है। उन्ही का यह सेवा-क्रम है। व्रजभूमि मे नित्यलीला करने वाले कृष्ण की यही 'यथा देहे तथा देवे' सेवा है। अतः संप्रदाय के सेवक विशेषकर अष्टछापी सखागण इसी सेवा क्रम को लक्ष्य मे रखकर नित्य नये अनन्त पदों की रचना करते थे। उनके पद नित्य सेवा क्रम से भी है, और वर्षोत्सव क्रम से भी।

नित्य सेवा के पदों मे—अवसरानुकूल-सेवा परक पदो के साथ प्रभु की राग सेवा ही इन कवियों का उद्देश्य था।

परमानन्ददासजी ने नित्य सेवा परक अनेक पदों की रचना की है। साथ ही उनकी कीर्तन सेवा का विशिष्ट 'ओसरा' प्रात.काल मगला तथा राज भोग रहता था। फिर भी नित्य सेवा के उनके कतिपय कीर्तन इस प्रकार है—

१. महाप्रभु वल्लभ स्मरण—

प्रात समय उठि करिए श्री लक्षमण सुत गान।

२. यमुना जी के पद—

परमानन्ददासजी ने यमुनाजी पर अनेक पद लिखे हैं।[1]

३ मगल मगल का अनुसरण—

१—मगल माधो नाम उचार।
२—मगल मगल व्रज भुवि मगल ॥

४. जगायवे के पद
५. कलेउ के पद।
६. खण्डिता के पद।
७. शृगार के पद।
८. ग्वाल के पद।
९. पनघट के पद।

१०. राजभोग के पद.—उष्ण काल और शीतकाल के अलग-अलग। भोग सरवे के पद, बीरी के पद, फल-फलारी के पद।

११. आरता के पद।
१२. अनोसर और उत्थापन के पद।
१३. आवनी के पद।
१४. भोग (व्यारू) के पद, बीरी के पद, दूध (धैया) के पद।
१५. पौढायबे के पद, शयन समय के पद, कहानी के पद।

नित्य सेवा विषयक कीर्तन सेवा मे अनवरत सावधान रहकर परमानन्ददासजी ने सेवा की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उसे मुक्ति से भी अधिक मधुर बतलाया है

१. सेवा मदन गुपाल की मुक्ति हू ते मीठी—प० स० ७२२
२. ताते गोविंद नाम लै गुण गायो चाहो।

× × ×

चरण कमल हित प्रीति करि सेवा निरबाहौं।
३ यह मागौ जसोदानन्दन। ३

× × ×

चरण कमल की सेवा दीजै दोउ जन राजत विद्युल्लता घन ॥

---

१ देखो-परमानन्द सागर 'नित्य सेवा पदों' का क्रम—लेखक द्वारा सपादित।

परमानन्ददासजी में हमें भागवतोक्त पडंग सेवा-साधना भी मिलती है । श्रीमद्भागवत में सेवा के छः अंग इस प्रकार बतलाये गये हैं :—

तत् तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्म पूजाः
कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ॥
संसेवया त्वयि विनेति पडंगया किम्,
भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥ भागवत ७।९।५०

अर्थात् हे पूज्य भगवान् ! आपकी सेवा के छः अंग हैं ।

१. नमस्कार
२. स्तुति
३. समस्त कामों का समर्पण
४. सेवा-पूजा
५. चरण कमलों का चिन्तन
६. लीला कथा का श्रवण

परमानन्ददासजी के काव्य में उपर्युक्त के पडंग सेवा निम्नलिखित प्रकार से आई है—

१. नमस्कार : —चरण कमल बन्दो जगदीस के जे गोधन संग धाए ।
२. स्तुति :—पद्म धरयो जन ताप निवारन ।
३. समस्त कामों का समर्पण

हौं नन्द लाल बिना न रहूं ।
× × ×
मनसा वाचा और कर्मणा हित की तोसौं कहूं ।
यह तन अर्पन हरि कों कीनों वह सुख कहां लहूं ॥
परमानन्द मदन मोहन के चरण सरोज गहूं ॥

४. सेवा पूजा :—

यह माँगौ गोपी जन वल्लभ ।
*मानुप जनम और हरि सेवा ब्रज बसिवो मोहि दीजै सुल्लभ ॥*

५. चरन कमलों का चिन्तन :—

यह मागों संकरपण बीर ।
चरन कमल अनुराग निरन्तर भावै मोहि भक्तन की भीर ॥

६. लीला कथा का श्रवण :—

श्री भागवत श्रवण सुनि नित,
इन तजि चित कहूं अनत न लाउँ ।

उपर्युक्त पडंग-सेवा-साधना के अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने भक्ति-वृद्धि के लिए सभी संभव उपायों का अवलंब लिया है । उन्होने यमुनास्तुति, गंगास्तुति और गंगास्नान में बड़ी आस्था प्रदर्शित की है । वे कहते हैं कि :—

१ परमानन्द सागर से–पद संख्या ७२२ ।

गंगादिक तीरथ प्रसाद भक्तन के भावन ।
मन कामना करो परिपूरन पावन मज्जन सुरसरि नीर ।।

यद्यपि सप्रदाय मे यमुना की मान्यता बहुत अधिक है फिर भी यमुना के सबध से सम्प्रदाय मे गगा का भी महत्त्व माना गया है । इसीलिये 'गगा दशहरा' का त्योहार मनाया जाता है । इसी प्रकार उन्होने सभी भगवद् भक्तो का सादर स्मरण किया है । अपने प्रसिद्ध पद "ताते नवधा भक्ति भली" मे परीक्षित शुकदेव' व्यास, प्रहलाद, पृथु, अक्रूर, हनुमानजी, अर्जुन, बलि सभी का स्मरण करके व्रज गोपिकाओ को सर्वोपरि माना है। उनको तो प्रेम की ध्वजा ही कह दिया है। और अन्त मे 'सहज प्रीति" को ही आदर्श मानकर उसे ही प्रमुखता दी है। यह 'सहज प्रीति' भक्ति का बीज भाव है । वे कहते है :—

सहज प्रीति गोपालै भावै ।
मुख देखै सुख होय सखीरी प्रीतम नैन मिलावे ।।
सहज प्रीति कमल रवि माने सहज प्रीति कमोदिनी अरु चन्द ।।
सहज प्रीति कोकिला बसतै सहज प्रीति राधा नन्द नन्द ।।
सहज प्रीति चातक अरु स्वातै सहज प्रीति कृष्ण अवतारै ।।
मन क्रम वचन दास परमानन्द सहज प्रीति कृष्ण अवतारै ।। प० स० २८५

जिन अनन्यता की चर्चा गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने चातक-प्रेम मे की है, वही अनन्य प्रेम का आदर्श परमानन्ददासजी को भी है। यह वैधी भक्ति के आगे का सोपान है, जिसमे लोक-वेद मर्यादा की सीमाओं का तिरोधान हो जाता है। और आराध्य के प्रति पूर्ण समर्पण अथवा आत्मनिवेदन होकर पराभक्ति की स्थिति आ जाती है। इसी पराभक्ति को लक्ष्य कर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने कहा था :—

नात परतरो मन्त्रो नातः परतर· स्तवः ।
नातः परतरा विद्या तीर्थं नात परात्परम् ।। (निरोध-२०)

अर्थात् 'इस पराभक्ति से बढकर न तो कोई मन्त्र है न कोई स्तोत्र ही है । न कोई विद्या है। और न कोई तीर्थ ही है।" अत परमानन्ददासजी भक्ति के माहात्म्य के विषय मे पुकार कर कहते हैं :—

कमल नयन कमलापति त्रिभुवन के नाथ ।
एक प्रेम ते सब बने जो मन होई हाथ ।।
सकल लोक की सपदा जो आगे धरिए ।
भक्ति बिना मानै नहि जो कोटिक करिए ।
दास कहावन कठिन है जोलौं चित धरिए ।
परमानन्द प्रभु साँवरो पैयत बडभाग । प० स० ६६१

ऐसे ही भाग्यवान भक्त हृदय को लक्ष्य कर किसी ने कहा है :—

कुल पवित्र जननी कृतार्था,
वसुन्धरा पुण्यवती च तेन ।।

अपार संविस्सुख-सागरेऽस्मिन्,
लीनं परं ब्रह्मणि यस्य चेतः ।

अर्थात् "उसी का कुल पवित्र है उसी की माता कृतार्थ है, उसी से यह वसुन्धरा पुण्यवती है जिसका मन भक्ति के अपार भावानन्दरूपसुख में डूब गया है ।"

## परमानन्ददासजी में पुष्टि भक्ति :—

"पोषणं[1] तदनुग्रहः कह कर जिस अनुग्रह तत्व को महाप्रभु जी ने बीज रूप से श्रीमद्-भागवत के द्वितीय स्कंध से लेकर और वृत्रासुर चतुः श्लोकी से पल्लवित कर गोपी प्रेम के आदर्श के आधार पर पूर्ण विकसित किया उसे परमानन्ददासजी ने ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है ।

वे कहते है,

अनुग्रह तो मानों गोविंद ।
बाँके चरन कमल दिखरावहु वृन्दावन के चंद ।
× × ×
अपराधी आदि सबै कोउ अधम नीच मति मंद ।
ताकौ तुम प्रसिद्ध पुरुषोत्तम गावत परमानन्द ।

अनुग्रह मार्ग को आगे चलकर वृत्रासुर के शब्दों की पुनरावृत्ति सी करते हुए वे कहते हैं :—

-"माधौं यह प्रसाद हौं पाउं ।
तव भृत भृत्य भृत्य परिचायक दास को दास कहाउँ[2] ।।"

अपने को दास का दासानुदास बतलाने के उपरान्त वे गोपीभाव पर आकर पूर्ण आत्मनिवेदन कर देते हैं यही उनकी पुष्टि-भक्ति का स्वरूप है ।

"रस पायौ मदन गुपाल को ।
सुनि सुन्दरि तोहि नीको लाग्यो या मोहन अवतार को ।।
कण्ठ बाहु धरि अधर पान दै प्रमुदित हँसत बिहार कौं ।।
गाढ आलिगन दै दै मिलिबौ बीच मैं राखत हार कौं ।।
× × × ×

---

१. स्थितिर्वैकुण्ठ विजयः पोषणं तदनुग्रहः ।
मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्म वासनाः । भाग २।१०।४

२. अहं हरे तव पादैकमूल दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः ॥
× × × ×
ममोत्तम श्लोक जनेषु सख्यं ।
संसार चक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।
त्वन्माययात्मात्मजदार गेहे ।
ष्वासक्तचित्तस्यन नाथभूयात् ॥ भाग ६। ११। २४-२७

वेनु बजावत नाचत गावत यह विनोद सुख सार को।
परमानन्ददास की जीवनि रास परिग्रह दार को।

उष्ण भक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण कवि के काव्य में मिलते हैं। तात्पर्य यह है कि पुष्टि भक्ति के क्रमिक विकास का इतिहास ही परमानन्ददासजा के पदों का रहस्य है जिससे उनकी पुष्टिमार्गीय भक्ति का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

तथ्य तो यह है कि परमानन्ददासजी भक्त पहले हैं बाद मे और कुछ। दर्शन उन जैसे भक्तो का क्षेत्र नही था, अतः उनमे दार्शनिक तत्त्वो का सागोपाग निरूपण खोजना व्यर्थ होगा। काव्य-रचना भी उनका उद्देश्य नही था। एकान्त भक्ति की भावुकता विह्वलता और प्रेमोन्माद में उनके मुख से जो भी निकला वही काव्य बन गया। वह सब भक्ति प्रधान है। उनके भक्ति भाव परक पदो में संगीत और काव्य गुण तो आदेशानुसारी भृत्यो की भाँति पीछे लगे चले आये हैं। उनमे न तो सूर जैसी सकोच-शून्यता है, न तुलसी जैसा मर्यादा-बंधन, न नन्ददास जैसा दर्शन-प्रेम। उनमे सीधा सादा गोपी-भाव है जो अद्‌भुत माधुर्य से ओत प्रोत हैं। जिसकी तुलना अन्यत्र करना कठिन है। अत: अपने में तन्मय रहने वाले परमानन्ददासजी एकान्त भावुक भक्तो की अन्यतम कोटि मे ही रखे जा सकते है।

षष्ठ अध्याय

# भगवल्लीला और परमानन्ददासजी

वार्ता मे आया है कि दीक्षा के उपरान्त महाप्रभु वल्लभाचार्यने परमानन्ददासजी को दशमस्कधकी अनुक्रमणिका का श्रवण कराया था। जिसे सुनकर उनके हृदय मे भगवल्लीलाका स्फुरण हुआ था।[1] इसी भगवल्लीला को लेकर वे नित्य नये पद बनाते थे। अतः विचारणीय है कि यह भगवल्लीला है क्या? जिसके महत्त्व मे सूर, परमानन्ददास आदि अष्टछाप के कवियों ने सहस्रावधि और लक्षावधि पदो की रचना कर डाली थी और फिर भी लीलारस का माधुर्य वाचातीत और अकथनीय ही रहा।

इस लीला-रहस्य की ओर सकेत करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक मार्मिक बात कही है। वे लिखते है :—

"लीला भारतीय भक्तों की सबसे ऊँची कल्पना है। हम जानते हैं कि भगवान् अगम हैं, अगोचर हैं, अकल हैं, अनीह है। हम यह भी जानते हैं कि वे अनुभवैकगम्य हैं। साधक उन्हे अपने स्वरूप से ही समझ सकता है। वे गूँगे के गुड हैं, अनिर्वचनीय है पर ये सब ज्ञान की बातें हैं।

भगवान ज्ञान से अगम्य हैं। क्योकि ज्ञान बुद्धि का विषय है, और बुद्धि हमारी सीमा को बतलाकर ही रुक जाती। बुद्धि से बढकर जो है वह आत्मा है—बुध्देरात्मा महान्परः। भगवान का स्वरूप आत्मा से जाना जाता है अथवा अनुभव किया जाता है। भगवान् सत्चित्आनन्द स्वरूप हैं। आनन्द से ही उन्होने सृष्टि रची है। वह स्वय आनन्द रूप हैं, अमृत रूप हैं— रसोवैसः। और फिर भी रहस्य यह है कि वे रस पाकर ही आनन्दी होते हैं। ऐसा क्यों होता है 'रसस्येवाय लब्ध्वानन्दी भवति" ऐसा क्यो? क्योकि यह उस अपूर्व लीलाधर की लीला की लीला है। लीला ही लीला का कारण है। लीला ही लीला का लक्ष्य। केवल भगवत्साक्षात्कार बडी बात नही है, लीला बड़ी बात है। और भगवान का प्रेम[2]"

उपर्युक्त उद्धरण का तात्पर्य है :—

---

१. "तब आचार्य जी ने आपु परमानन्ददास सों कही जो परमानन्ददास बैठो। तब परमानन्ददास श्री आचार्यजी को साष्टांग दंडवत करिके बैठे। पीछे श्री आचार्य जी आपु भीतर पधारि भोग सराय के परमानन्ददास कों बुलायके श्रीनवनीतप्रियजी की सन्निधान कृपा करिके नाम सुनायो, ता पाछे ब्रह्म संबंध करवायो। पीछे श्री भागवत दशमस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाए। तब परमानन्ददासजी ने श्री आचार्य जी के आगे बाल लीला के पद गाए।" [चौ० वै० की वार्ता परीख संस्कृत पृष्ठ-८०४]

२. मध्यकालीन धर्म साधना–पृष्ठ–१२२ १३६

१. लीला रसात्मक है, आनन्दात्मक है।
२. लीला अपने में पूर्ण निरपेक्ष और स्वतन्त्र है।
३. लीला का कोई दिव्य कारण नही। वह नितान्त प्रभु इच्छा है।

४. लीला और भक्ति अथवा प्रेम मे परस्पर गहरा सबध है। अर्थात् लीला में चरम-आसक्ति ही चरम प्रेम है। लीला रस और भक्ति अपने अन्तिम बिंदु पर एक हैं। आगे चलकर आचार्य द्विवेदी 'लीला' के हेतु की ओर सकेत करते हुए लिखते हैं :—

"यद्यपि अवतार का हेतु एक यह भी है कि धर्म की ग्लानि और अधर्म के अभ्युत्थान को भगवान् स्वय आविर्भूत होकर दूर करे परन्तु मुख्य कारण तो भक्तो के लिए लीला का का विस्तार ही है।[२]'

आचार्य द्विवेदी जी के कथन की पुष्टि करते हुए हम सप्रदाय के मार्मिक विद्वान् श्रीचीमनलाल शास्त्री का मत भी उधृत करते है —"प्रभु पोतानी लीला भक्तोने माटेज करेछे। आ प्रमेय मार्ग छे। कृपा-साध्य मार्ग माँ प्रभु पोताना भक्त ने तामस, राजस, 'सात्विक भाव दूरकरी निर्गुण केवी रीते करेछे तेते विचारिए। निर्गुणत्व पछीज फल मलेछे।[१]"

अर्थात् भगवान अपनी लीला भक्तो के लिए ही करते हैं। यह प्रमेय मार्ग है। अनुग्रह साध्य मार्ग मे भगवान् अपने भक्त के तामस, राजस, सात्विक भाव दूर करके उसको निर्गुण कैसे बना देते है इसका विचार करेंगे। क्योकि निर्गुणत्व प्राप्त होने पर ही फल मिलता है।"

उपर्युक्त दोनो विद्वानो के कथनो का तात्पर्य यही है कि लीला भक्तो के लिए है। और भक्तो मे भी भक्ति के एकान्त-रागानुगा स्वरूप के स्थिरीकरण के लिए है। लीला का और कोई लक्ष्य नही है। न कोई अन्य प्रयोजन।

लीला की परिभाषा देते हुए श्रीसुबोध रत्नाकरकार ने लिखा है कि बिना आयास के उल्लास से की गई चेष्टा का नाम लीला है।[२] एक दूसरे स्थान पर लीला को "कैवल्य" का स्वरूप बतलाया गया है।[३]

लीला वस्तुत. भक्तो को लय करने के लिए है। उसका रस लय पर्यन्त पान करने योग्य है 'पिबत भागवत रसमालयम्।" पहिले कहा जा चुका है कि श्रीमदभागवत के १२ स्कधो के विषय क्रमश. विषय, अधिकारी तथा सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति तथा आश्रय है। इस क्रम से भगवल्लीला वाला दशम स्कध "निरोध" विषयक है। इसका तात्पर्य है कि 'भगवल्लीला" का उद्देश्य भक्तो का निरोध है। "निरोध" वाले दशम स्कध के ८७ अध्याय (क्योकि वस्त्र हरण वाले तीन अध्याय महाप्रभु वल्लभाचार्य प्रक्षिप्त मानते है) पाच प्रकरणो मे विभाजित है। उनमे भी प्रारम्भ के ५ वें अध्याय से ३२ वे अध्याय तक अर्थात् कुल २८ अध्याय तामस प्रकरण के हैं

१. पुष्टि मार्गोपदेशिका पृष्ठ–२१३
२. "अनायासेन हर्षात्क्रियमाणा चेष्टा या सा लीला।" श्री सुबोध रत्नाकर कारिका नवम् [पृष्ठ–६]
३. "लीलावत्तु कैवल्यम्।"

इन अध्यायों को तामस प्रकरण इसलिए कहा गया है कि उनमें व्रजलीला के अन्तर्गत निस्साधन भक्तों को नित्य लीला मे ग्रहण किया है। निःस्साधन व्रज भक्तो का निरोध दशमस्कधीय लीलाओं मे हुआ है।[1] तात्पर्य यह है कि भगवान् ने जन्म से लेकर द्वारकागमन तक की संपूर्ण लीलाएँ व्रज भक्तो के आनन्द अथवा निरोध-प्राप्ति के लिए ही की हैं। उनमे भी व्रज-लीलाएँ विशिष्ट भक्तो के लिए की थी। आचार्य वल्लभ ने 'यशोदोत्सगलालित" कृष्ण को ही सेव्य बताकर उन्ही की सेवा, अर्चा, लाड़-प्यार और अष्टदर्शन की सेवा पद्धति से बाल-भाव की उपासना पर विशेष बल दिया था। उनके अष्टछापी चारो शिष्यो सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास और कृष्णदासादि का संपूर्ण काव्य इसी व्रजलीला (गोकुल लीला) में केन्द्रित है। इन कवि महानुभावों ने भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर मथुरागमन तक के अनेक प्रसंगों को लेकर "सहस्रावधि" तथा "लक्षावधि" पदों का "भावरत्नाकर" प्रस्तुत कर दिया था। और इसीलिए ये लोग संप्रदाय मे "सागर" के नाम से विख्यात हुए। यह तो कहा ही जा चुका है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने केवल दो को दशमस्कध की अनुक्रमणिका सुनाई थी। अतः इन दोनो महानुभावों का भगवल्लीला विषयक दृष्टिकोण वही था जो आचार्यश्री का। अतः पहिले आचार्य का लीला विषयक दृष्टिकोण और उनका वर्गीकरण समझ लेना चाहिए। तभी इन दोनों महानुभावों का लीला निरूपण बुद्धिगम्य हो सकता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रीमद्भागवत के दशमस्कंध का तात्पर्य निरोध-लीला है। अर्थात् भगवान् कृपामय होकर भक्तों का निरोध करते हैं। इसीलिए प्रभु ने अनेक लीलाएँ की हैं। अतः आचार्य ने संपूर्ण दशमस्कंध को पाँच प्रकरणों मे विभाजित किया है—

१. जन्म प्रकरण
२. तामस प्रकरण
३. राजस प्रकरण
४. सात्विक प्रकरण
५. गुण प्रकरण

इनमें तामस प्रकरण में वर्णित निरोध-लीला के चार प्रकरण हैं—

१. स्नेह
२. आसक्ति
३. व्यसन
४. फल

आचार्य ने अपने भक्तिवर्द्धिनी ग्रन्थ मे प्रेम की तीन अवस्थाएँ बतलाई हैं:—

व्यावृत्तोपि हरौ चित्तं श्रवणादौ यतेत् सदा।
ततः प्रेम तयासक्तिर्व्यसनंचयदा भवेत्॥

---

१ ये भक्ताः शास्त्र रहिताः स्त्रीशूद्रादिज बांधवाः।
तेषामुद्धारकः कृष्णः स्त्रीणामत्र विरोधनः॥
येषां निरोधकः शास्त्र योगादि विनिरूपितम्॥
शेषाभावस्तत्र हरेर्न कदाचिद् गमिष्यति॥
सुबोधिनी दशमस्कंध अ. १—कारिका

तामसप्रकरण की लीलाएँ भी इसी प्रकार विभक्त हैं :—

१. प्रेमलीला [प्रमाण] :—अध्याय ५ से ११ तक :—नन्द-महोत्सव, पूतनावध शटकासुर, तृणावर्तवध, उलूखललीला, यमलार्जुनउद्धार, वत्सासुर-बकासुरउद्धार।

२. आसक्ति लीला [प्रमेय] :—अध्याय १२ से १८ तक :—धेनुकासुर-वध कालीनागमर्दन, दावानलपान, प्रलवासुरवध, वेणुवादन।

[वत्सहरण के १९, २०, २१ अध्याय महाप्रभु जी के मत से प्रक्षिप्त है]

३. व्यसन लीला [साधन] :—अध्याय २२ से २५ तक अथवा २८ तक :—वस्त्रहरणलीला, विप्रपत्नियो पर अनुग्रह, गोवर्धनलीला, वरुणलोक से नन्दराय जी का प्रत्यानयन, गोपियों को वैकुण्ठ दर्शन।

४. फल लीला :—अध्याय २६ से ३२ अथवा ३५ तक रास लीला से युगल गीत तक के प्रसंग इन्ही चारों प्रकरणो को प्रमाण प्रमेय साधन और फल भी कहा जाता है।

## तामस प्रकरण के नामकरण का कारण :—

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने सुबोधिनी के ऊपर अपना टिप्पण देते हुए विशेष प्रकाश डाला है। उनका तात्पर्य है कि भक्ति-मार्ग का मुख्य सिद्धान्त है कि भगवान् पुरुषोत्तम ही एकमात्र फल है। उन्हींके सबंध से अन्यत्र भी फल प्राप्ति की बात कही गई है। यह पुरुषोत्तम रूपी फल प्राप्ति-'भाव' से ही होती है। उस भाव के लिए भावानुसार ही कार्य होते हैं। अतः त्रिविध जीवो में जो सात्त्विक जीव हैं वे ज्ञान मार्ग की ओर झुके हुए होते हैं। अतः ज्ञान विहित मार्ग मे रुचि रखते हैं। उनमे स्नेह का अभाव होता है। राजस प्रकृति वाले कर्मों की ओर रुचि रखते हुए लौकिक कर्मों में भी आसक्ति रखते हैं। अतः उनके चित्त मे विक्षेप बना रहता है। और चित्त में स्थिरता नही होती। किन्तु जो तामस भक्त हैं उनमें ज्ञानादि का अभाव रहता है। वे एक प्रकार से मुग्ध होते हैं। लौकिक में वे मूढ होते हैं, अपनी बात के आग्रह के सिवाय वे कुछ समझते ही नही। अतः ऐसे तामस भक्तो के हृदय मे भगवान के लिए सहज स्नेह होता है। उन पर वाह्य प्रभाव नही होता। ज्ञानियों की भाँति उनके चित्त में चंचलता भी नही होती। न उनकी भाँति वे तर्क-वितर्क के भ्रम मे फँसे होते हैं। अतः उनके भाव सरल, सहज और शुद्ध होते है। ऐसे भक्तों को निरोध सिद्धि एकदम हो जाती है। वे अपने परमाराध्य प्रियतम के बिना और कुछ जानते नही। अतः अपने हृदय का निखिल प्रेमोन्माद प्रभु के चरणों में ऊँडेलकर वे निश्चिन्त हो जाते हैं। उनके निरोध मार्ग में कोई अन्तराय नही आता है। यदिचेत् किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित हो भी जाय तो वह भगवद् कृपा से स्वयमेव टल जाता है। और उन्हें निरोध-सिद्धि में कोई कठिनाई नहीं होती।

ब्रज भक्त तामस भक्त थे। उनके भाव इतने दृढ़ थे कि सिवाय भगवान् के उन्हें अन्य कोई बात सुहाती ही न थी। प्रभु ही उनका धर्म प्रभु ही उनका अर्थ, प्रभु ही उनका काम और प्रभु ही उनका मोक्ष था। प्रभु के अतिरिक्त उन्हें न स्वर्ग की कामना थी, न

मोक्ष की न, किसी अन्य ऐश्वर्य की। मुक्ति की तो उन्होंने पद-पद पर निन्दाकी है। "मुकुति निरादरि भगति लुभाने" वाले सिद्धान्त वादी ये भक्त-स्वर्ग अपवर्ग और मुक्ति को भगवत्प्रेम के आगे तुच्छ गिनते थे।[१] ये व्रज भक्त निर्गुण और निस्साधन थे। पुष्टिमार्ग में साधन होते भी नहीं। मर्यादा मार्ग में साधनों का बल होता है। अतः श्रीमद्भागवत की तामस प्रकरण की लीला *निर्गुणमार्ग की पुष्टि-भक्ति की लीला है। यही समझना चाहिए।*

*लीला रहस्य :*—आचार्य ने भगवल्लीला के पूतनावधादि समस्त प्रकरणों के आध्यात्मिक रहस्यों को भी स्पष्ट किया है। जैसे पूतना को आपने "अविद्या[२]" का नाम दिया है। अतः भगवान् का प्राकट्य ही भक्तों को आनन्द देने के लिए और निरोध भक्तों की सिद्धि के लिए ही है। आनन्द का दान तथा निरोध पंचपर्वा अविद्या की निवृत्ति के बिना संभव नहीं अतः सर्व प्रथम अविद्या रूप पूतना का ही उन्होंने प्राण हरण किया था।[३]

यह निरोध भी तीन प्रकार का है—[४]

१. वाचिक
२. कायिक
३. मानसिक

पूतनावध वाचिक निरोध है। शटकासुर वध कायिक और तृणावर्त-वध मानसिक निरोध है।[५]

इसी प्रकार भगवान ने मृत्तिका भक्षण द्वारा स्वमाहात्म्यज्ञान कराते हुए माता का मोह-नाश, उलूखल लीला द्वारा मदनाश, वत्सासुर वध द्वारा आसुर भाव का समूलोच्छेदन, करते हुए लोभ तथा अनृत का नाश किया है।[६]

*तात्पर्य यह कि समस्त दशमस्कंधीय लीलाओं का लक्ष्य निरोध सिद्धि और आनन्द* सिद्धि के ही लिए है। यही भगवल्लीला रहस्य है। ये समस्त लीलाएँ त्रिधा विभक्त हैं। स्नेह लीलाओं के उपरान्त, आसक्ति लीलाएँ और उसके उपरान्त व्यसन लीलाएँ आती हैं। प्रारम्भ में भगवान् के प्रति वात्सल्यभाव तदुपरान्त सख्य भाव फिर माधुर्य भाव अथवा कान्ताभाव। यही भाव भक्ति का फल है। पुरुषोत्तम प्राप्ति ही फल है। अतः कान्ताभाव ही उत्तोमोत्तम

---

१ न नाक पृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योग सिद्धीरपुनर्भवं वा सामंजमत्वाविरहय्य वाञ्छे॥ [भाग ६।११।२५]

२ अविद्या पूतना नष्टा गन्धमात्रावशेषिता। सुबो० ता० प्रकरण अध्याय २

३ भगवान्भक्तानामानन्ददानार्थं निरोधार्थं च प्रकट स्तदुभयमपि पंचपर्वाविद्यानिवृत्तिर्विना संभवतीति प्रथममविद्यारूपा पूतनैव मारिता [टीका-त्रिविध नामावली]

४ वाचिकं कायिकं चोक्तं मानसंतूच्यतेऽधुना—सुबोधिनी कारिका अध्याय २

५ शकट-भंगे भगवदर्थं कायिक व्यापारो जातः।
गोकुलं सर्वमावृण्वन्नित्यभवास्या रूपेण तृणावर्तं गमने सति स्वस्थापितस्थले भगवद्दर्शनेन मनो भगवन्निष्ठमभूदिति मानसो निरोधोऽप्युक्तः।

६ वृकोदंभ रूपः यस्य तुण्डौ लोभानृत रूपौ। टी०—त्रिविध नामावली, पृष्ठ १२०

भाव है। अष्टछाप के कवियो ने इसी कान्ताभाव तक प्राय अपने काव्य को केन्द्रित रखा। उत्तरोत्तर भाव-वृद्धि इस बात की द्योतक है कि उनका लक्ष्य इस कान्ताभाव की ओर ही था।

## परमानन्ददासजीके लीला विषयक पदः—

आचार्य से दशमस्कधीय अनुक्रमणिका सुनने के उपरान्त परमानन्ददासजी ने उन्हीं लीलाप्रसगो को लेकर को पद रचना की और इस प्रकार "सहस्रावधि" पद बनाकर उन्होंने भगवान् नवनीतप्रियजी और तदुपरान्त श्री गोवर्धननाथजी की कीर्तन सेवा की। अत. उन्होंने अपने लीलापरकपदोमे श्रीमद्भागवत का और विशेष कर दशमस्कध का ही अनुसरण किया है। सूरदासजी की भाँति परमानन्ददासजी के परमानन्दसागर का स्कधात्मक अनुसरण उपलब्ध नही होता। मुख्य रूप से वे दशमस्कध और उसमे भी पूर्वार्द्ध तक ही सीमित रहे है। अत परमानन्ददासजी का भगवल्लीला वर्णन उद्देश्य 'निरोध सिद्धि" ही था। अन्य कुछ नही। उन्होने परब्रह्म के अवतार का हेतु भक्त कल्याण ही माना है परन्तु लोक कल्याण को भी उन्होने महत्त्व दिया है त्रिभुवन नायक कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुसमर्थ कमलापति विष्णु जो क्षीर समुद्रशायी हैं वही पूर्ण पुरुषोत्तम, ब्रह्मा, इद्रादि देवताओं की प्रार्थना पर व्रज मे वसुधा भार उतारने के लिए अवतीर्ण हुआ है —

'सो गोविन्द बिहारे बालक। १

.. ... ... ...

... ... ... ...

ब्रह्मा महादेव इन्द्रादिक विनती करि यहाँ लाये।
परमानन्ददास को ठाकुर बहुत पुन्य तप कौ फल पाये। प० स० ७

तात्पर्य यह कि परमानन्ददासजी के मान्य-नायक पूर्ण पुरुषोत्तम, लीला नायक परब्रह्म हैं। जो व्यापि वैकुण्ठवासी शेषशायी क्षीर समुद्रवासी भी हैं और विष्णु के अवतारी भी हैं। जो अपने चारो कर कमलो मे शख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए हैं—

पद्म धर्यो जन ताप निवारन।

... ... .... ...

.... .. ... ...

दीनानाथ दयाल जगत गुरू आरति हरत भक्त चिंतामनि।
परमानन्ददास को ठाकुर औसर मो छाडो जिन।" प० स० ३१

कवि ने यहाँ उस चतुर्भुज विष्णु भगवानकी ओर सकेत किया है जिसने कारागार मे वसुदेव देवकीको दर्शन दिए थे भागवतकार लिखते हैं—

तमद्भुत बालकमम्बुजेक्षणं।
चतुर्भुज शख गदार्युदायुधम्॥
श्रीवत्सलक्ष्म गलशोभिकौस्तुभम्।
पीताम्बर सान्द्र पयोदसौभगम्॥ भाग० १०।३।९

परमानन्ददासजी उस अवतारी भगवान् का गुण गान करते हैं जो प्रत्यक्ष ब्रह्म होकर भी नराकृति धारण करके जगत् को मोहित करने के लिए लीलावतारी है—

आनद की निधि नदकुमार।[१]

वही गोवर्धन गोप, गोपीजन, नद यशोदा को आनन्द देने के लिए अवतीर्ण हुआ है। वही गोचारण मुरलीवादन करते हुए वृन्दावन मे खेलता और खाता फिरता है। वही कवि का परमाराध्य है। इसी अवतारी ब्रह्म को लेकर कवि ने अपने लीला विषयक पदो का विस्तार किया है। और अपनी मौलिक उद्भावनाओ को रखते हुए भी भागवत के मूलाधार से न कही च्युत होता है, न विचलित।

अवतार का हेतु और अवतारी कृष्ण का स्वरूप स्पष्ट करने के उपरान्त परमानन्ददास जी ने पूतनाउद्धार, शकटभजन तृणावर्तउद्धार, नामकरणबाललीला, उलूखलबधन, यमलार्जुनउद्धार, वत्सासुर, बकासुर उद्धार अघासुर उद्धार, आदि के साथ-साथ, बाललीला, दानलीला, गोचारण मथुरा गमन, कसउद्धार, उद्धव गोपी सवाद, आदि प्रसगों पर अनेक पदों की रचना की है। अत जन्म से लेकर मथुरा गमन और गोपी-सवाद उद्धव-सवाद तक ही भक्त कवि की लीलागान सीमा है। उसके उपरान्त वे विनय दीनता, और भक्ति माहात्म्य से अपने 'सागर' का उपसहार कर देते हैं।

तात्पर्य यह है कि अपने भगवल्लीला विषयक पदों के क्षेत्र मे परमानन्ददासजी ने तत्परता के साथ श्रीमद्भागवत का अनुसरण किया है। उतना किसी अन्य कवि ने क्वचित् ही किया है। यहाँ हम उनके लीला विषयक पदो मे श्रीमद्भागवत का अनुसरण देखने की चेष्टा करेंगे। क्योंकि कविने यत्रतत्र "कीर मुनि" और भागवत की महत्वपूर्ण चर्चा की है।

## श्रीमद्भागवतोक्त कृष्णलीला और परमानन्ददासजी

सूर के समान परमानन्ददास जी का 'सागर' भागवत की स्कधात्मक पद्धति पर नहीं। न वे भागवत के कृष्ण लीलातिरिक्त प्रसगो का स्पर्श ही करते हैं। अत उनका 'सागर' श्रीमद्भागवत का अनुवाद नही कहा जा सकता है। श्रीमद्भागवत की सर्ग-विसर्गादि लीलाओ को न लेकर वे केवल दशम स्कध की निरोधाफल रूपा बाल, पौगण्ड किशोर लीला को ही अपना काव्य लक्ष्य बनाते हैं। उनका उद्देश्य केवल निरोध-सिद्धि था। परन्तु जहाँ उनका काव्य भागवल्लीला के लिए श्रीमद्भागवत पर निर्भर है, वहाँ अभिव्यक्ति और उक्ति म पूर्ण स्वतत्र, मौलिक और निरपेक्ष है। उन्ह जो लीलाएँ अधिक प्रिय और लोकमगलकारिणी लगी, उन्हीमे उनका मन अधिक रमा। शेष प्रसग केवल चरित-विकास मात्र की दृष्टि से है। उदाहरण के लिए जन्म और बधाई पर उनके अनेक पद हैं, परन्तु छठी पूजन, पलना पर बहुत थोड़े हैं। इसी प्रकार अन्नप्राशन, कर्ण-वेध आदि सस्कारों एव शकट, उलूखल, देहली लघन, मृत्तिकाभक्षण आदि प्रसगो की चर्चा मात्र है। परन्तु बाल-लीला, दधि-लीला, माखन-लीला गोवर्धनलीला, आदि प्रसगो पर अनेक और लम्बे-लम्बे पद हैं।

---

१ परमानन्दसागर पद सख्या २६

अत श्रीमद्भागवत पर अगाध श्रद्धा होते हुए भी कवि ने रुचि स्वातन्त्र्य एव कवि अधिकार पूर्ण सुरक्षित रखा था। उन्ही रुचि स्वातन्त्र्य के प्रकाश मे हम उनके लीलापरक पदो मे भागवत से साम्य देखने की चेष्टा करेंगे। क्योकि 'वार्ता' मे उनकी चर्चा के अन्तर्गत यह स्पष्ट आया है कि वे आचार्यश्री द्वारा सुबोधिनी जो श्रवण करते थे और कथा समाप्ति के उपरात उन्ही प्रसगो को वे भाषा पदो मे निबद्ध कर महाप्रभुजी को सुना दिया करते थे।[१] अधिकाशरूप से कवि का मन बाललीला वर्णन मे ही रस लेता था। उन्हीं प्रसगो मे कवि को सयोग रस का अनुभव होता था।[२] यही कारण था कि बाल, पौगण्ड और किशोर लीलाश्रा के अतिरिक्त कवि को कुछ अच्छा नही लगा।[३] महाप्रभुजी को "श्रीमद्भागवत पीयूष समुद्रमथनक्षम कहा गया है। अत वे भागवत के मार्मिक प्रसगो के सूनात्मक सकेत पूर्ण अधिकारी निज सेवको और भक्तो को दिया करते थे। उनकी दशमस्कन्धानुक्रमणिका तथा त्रिविध लीला नामावली" ऐसे ही सस्कारी पुष्टि पुष्ट जीवो के लिए है। ऐसे सस्कारी भक्तो के लिए भगवत्सयोगरस झीने पर्दे की ओट मे रहता था, जो अनुग्रह होते ही हट जाता था। श्री आचार्य ने भगवल्लीलासागर कवि के हृदय मे स्थापित किया था। इसी लिए उसका काव्य भी 'सागर' है।

जैसा कि कहा जा चुका है कवि के लीला पदो का क्रम श्रीमद्भागवतानुसारी है। यदि "परमानन्दसागर" की सूची बनाई जाय तो आचार्य कृत त्रिविधलीलानामावली, के बाल चरित्र वाले अष्टोत्तरशत नाम एव प्रौढ लीलावबोधन के एकसौअट्ठाईस (शत विंशतिरष्ट) नामो का पूरा पूरा निर्वाह उनके सागर की लीला पदो म मिलेगा।[४] इतने पर भी आश्चर्य और आनन्द की बात यह है कि कवि की मौलिकता सपूर्णत अक्षुण्ण रहती है। यहाँ कवि के सागर से कतिपय वे उदाहरण प्रस्तुत किए जारहे हैं जहाँ श्रीमद्भागवत की स्पष्ट छाया दीख पड रही है —

## बाल लीला

परमानन्दसागर

हरि जन्मत ही आनन्द भयो।

... . .

बसुदेव देवकी मतो उपायो पलना मांझ लयो।

---

१ "और आचार्य जी आपु श्री बोधिनी की कथा कहते सो ता समय (जा) प्रसग की कथा श्री आचार्य जी के श्रीमुख तें सुनते ताही प्रसग के कीर्तन कथा भाष पाछे परमानन्ददास श्री आचार्यजी को सुनावतें।" चौ० वै० वा० पृष्ठ ८०७ परीख सस्करण।

२ चौ० वै० वा० पृष्ठ—८०६

३ सर्वोत्तमस्तोत्र-श्लोक—१३

४ सो श्री भागवत सो श्रीगुसाईंजी अमृत को समुद्र करि कै वर्णन किए सो श्री आचार्यजी आपु अनुक्रमणिका द्वारा श्रीभागवत रूपी समुद्र परमानन्ददास के हृदय में स्थापन कियो। तासौं वैष्णव तौ अनेक श्री आचार्य जी के कृपा पात्र है, परन्तु सूरदास और परमानन्ददास दोउ 'सागर' भये

कमला कंत दियौ हुँकारो यमुना पार दयो ।

... .... ...

परमानन्द दास को ठाकुर गोकुल प्रगट भयौ ।

श्रीमद्भागवत :—

यदि कसाद्विभेपित्वंतर्हिमां गोकुलं नय । १४। ३। ४६
मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा ।
गभीर तोयौघ जवोंमि फेनिला ।।
भयानकावर्त शताकुला नदी ।
मार्गं ददौ सिंधुरिव श्रियःपतेः । १० ३। ५१

परमानन्दसागर

जनम लियो शुभ लगन विचार ।

... .... ...

... ... ...

मुदित भए बसुदेव देवकी परमानन्द दास बलिहार । प० सं० ३६

श्रीमद्भागवत

तमद्भुत बालकमंबुजेक्षणं चतुर्भुजं शखं गदार्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीताम्बरसाद्र पयोद सौभगम् । १०।३।६

परमानन्दसागर

घर-घर तें नर नारी मुदित जुरि जूथन धायो है ।
लैंलै साज समाज सबै व्रंज राज पै आयो है । [पद सं०-६]

श्रीमद्भागवत

गोपाः समाययू राजन् नानोपायन पाणयः । १०।५।८

परमानन्दसागर

फूले ग्वाला मानो रण जीते आनन्द फूले बाग।
हरद दूबि दधिगोरोचन छिरके मच्यो भदैव्या फाग ।।

श्रीमद्भागवत

हरिद्रा चूर्ण तैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ।
गोपा. परस्परं हृष्टाः दधि क्षीर घृताम्बुभिः ।
आसिचन्तो विलिपंतो नवनीतैश्चचिक्षिपुः । १० ।५।१४

परमानन्दसागर

दई सुवच्छ लच्छ द्वै गैयाँ नन्द बढायो त्याग ।
गुनी गनक बदी जन मागध पायो अपनो भाग । पद सं०-५

श्रीमद्भागवत

धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलंकृते ।
नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलंकार गोधनम् ।

सूत मागधवन्दिम्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥
तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ॥ १०। ५। ३। १५-१६

परमानन्दसागर

हरि लीला गावत गोपीजन आनन्द मे निसिदिन जाई।
बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नयन ब्रज जन सुखदाई।
दोहन मडन खंडन लेपन मंडन गुरु सुत, पति सेवा।
चारि याम अवकास नही पल सुमिरत कृष्ण देवदेवा।

श्रीमद्भागवत

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप।
प्रेखेंखनार्भ रुदितोक्षणमार्जनादौ ॥
गायति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकंठ्यो।
धन्याव्रजस्त्रिय उरुक्रम चिन्तयाना ।१०। ४४। १५

परमानन्दसागर

' यशोदा बदन जोवै बार-बार नैन प्यारे।
मधुपनि की पाति वर्नो मलक घुघुमारे।
जो सुख ब्रह्मादिक कों कबहुं न दीनी।
धरा द्रोण बसुवादिसंत्य बचन कीनो ॥

श्रीमद्भागवत

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया।
करिष्यमाण आदेशान् ब्राह्मणास्तमुवाचह। १०। ८। ४८

परमानन्दसागर

मात जसोदा दह्यौ विलोवै प्रमुदित बाल गोपाल जस गावै।

श्रीमद्भागवत

यानि यानीह गीतानि तद् बाल चरितानि च।
दधि निर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत। १०। ६। २।

परमानन्दसागर

कश्यप पिता अदिति माता प्रकटे वामन रूप।
भादो मास सुभग सुदी द्वादसी लीनो रूप अनूप।

श्रीमद्भागवत

श्रोणाया श्रवण द्वादश्यां मुहूर्ते अभिजितिप्रभुः। ८। १८। ५

परमानन्दसागर

दधि मथति ग्वालि गर्बीलीरी।
कनक भुनक कर कंगन बाजे बाहु डुलावति ढीलीरी।
... ... ...
परमानन्द नन्दनन्दन को सर्बसु दियौ है छबीली री।

श्रीमद्भागवत

रज्ज्वाकर्ष श्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च ।
स्विन्नं वक्त्र कवर विगलन्मालती निर्ममन्थ ॥
ता स्तन्य काम आसाद्य मथ्नन्ती जननी हरिः ।
गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत् प्रीतिमावहन् ॥ १० । ६ । ३-४

परमानन्दसागर

चंचल अचपल कुच हारावली बेणी चल खसित कुसुमाकर ।

श्रीमद्भागवत

*स्विन्नं वक्त्र कबर विगल न्मालती निर्ममन्थ ।* [वही]

परमानन्दसागर

ऐसे लरिका कतहुँ न देखे बाट सुचालिगांऊ की माई ।
माखन चोरत भाजन फोरत उलटि गारि दै मुरि मुसुकाई ।

श्रीमद्भागवत

मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डभिनत्ति ।
द्रव्यालाभे सगृह कुपितो यात्युपक्रोश्यतोकान् ॥ १० । ८ । २९

परमानंदसागर

तेरे री लाल मेरो माखन खायो ।
भरी दुपहरी सब सूनोघर ढंढोरा अब ही उठि धायो ।
.... ... ...
छीके ते काढ़ि खाट चढि मोहन कछु खायो भू ढरकायो ।
.... ... ...
*लरका पांच सात संग लीनै रोके रहत सांकरी खोरि ।*

श्रीमद्भागवत

शृण्वत्याः किलतन्मातुरिति ह्योचुः समागताः ।
... ... ...
.... ... ...
ध्वान्तागारे धृत मणिगणं स्वागमार्थ प्रदीपम् । १० । ८ । ३०

परमानंदसागर

द्वार उघारि खोल दये बछरा बेखेट गैया चुरवाई ।

श्रीमद्भागवत

वत्सान् मुंचन् क्वचिदसमये क्रोशसंजात हासः ॥

इस प्रकार बाल लीला प्रसंगों की भागवत में जहाँ सूत्रमय चर्चा है, वहाँ परमानंददास जी ने अनेक पदो मे भगवान की नटखट लालाओं का अत्यन्त सरस हृदयग्राही वर्णन किया है ।

दधिभाण्ड फोड़कर ग्वालबालों पर दही छिड़क कर भाग जाना, गोओं के वत्सों को असमय में खोल देना, बन्दरो को मक्खन खिला देना आदि अनेक सरस मधुर प्रसंग तो उन्होने अनेक वार उठाये हैं। ऐसा विदित होता है कि प्रभु की इन व्रज-लीलाओं मे आनंदित परमानन्ददासजी और अधिक आगे वढना ही नही चाहते।

परमानंदसागर

काधारोहन माँगि सखोरी नन्द नन्दन सों मैं कीनी ढीठी।

श्रीमद्भागवत

एवमुक्तः प्रियमाह स्कंध आरुह्यातामिति।
ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत। १०। ३०। ३९

परमानंदसागर

रास विलास गहे कर पल्लव इक इक भुजा ग्रीवा मेली।
द्वै द्वै गोपी विच विच माधो निरतत सग सहेली।
व्रज बनिता मधि रसिक राधिका बनी सरद की राति हो।
इक इक गोपी विच बिच माघो बनी अनुपम भाँति हो॥
... .... ...
निरखति क्यो ससि भाइ सीस पर क्यो हूँ न होत प्रभात हो।

श्रीमद्भागवत

रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपी मंडल मण्डितः।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयो द्वयोः। १०। ३३। २

तथा

एवं शशांकाशु विराजिता निशाः। १०। ३३। २६

गोवर्धन लीला प्रसंग मे तो परमानन्ददासजी ने अपनी मौलिक्ता और भागवत के आधार का इतना विचित्र समन्वय प्रस्तुत किया है कि पाठक मुग्ध होकर उनकी अभिव्यंजना शक्ति की प्रशंसा किये बिना नही रह सकता।

परमान्दसागर

यह विस्मय चित मोहि कौन की करति पुजाई।
याकौ फल है कहा कहो तुम व्रजपति राई।
नाम कहा या देव को कौन लोक कौ राज।
इतनो बलि यह खात है हमारो करत कहा काज।

श्रीमद्भागवत

कथयतां मे पितः कोऽय संभ्रमो य उपागतः।
किं फलं कस्य चादेशः वा साध्यते मखः। १०। २४। ३

इसी, प्रकार कैशोर-लीला में भी श्रीमद्भागवत का दृढ़ अनुसरण किया गया है।

परमानन्दसागर

परमानन्द प्रभु प्रेम जानि कैं समकि कंचुकी खोली।

श्रीमद्भागवत

पार्श्वस्थाच्युत हस्ताब्जं श्रान्ताधात्स्तनयोः शिवम्। १०। ३३। १४

परमानन्दसागर

कंठ बाहु धरि अधर पान दै प्रमुदित लेत विहार को।

अन्यत्र

बाहुँ कंध परिरंभन चुम्बन महा महोच्छव रास विलास।
सुर विमान सब कौतुक भूले कृष्न केलि परमानन्ददास।

श्रीमद्भागवत

जग्राह बाहुना स्कंधं श्लथ द्रय मल्लिका:।
कस्याश्चिन्नाद्य विक्षिप्त कुंडलत्विषमंडितम्।
गण्डं गण्डे सन्दधत्या अदात्ताम्बूल चर्वितम्। १०। ३३। १३

परमानन्दसागर

चंदन मिटत सरस उर चंदन देखत मदन महीपति भूल।
बाहु कंध परिरंभन चुम्बन महामहोच्छव रास विलास॥

श्रीमद्भागवत

चंदनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्बह। १०। ३३। १२

वस्तुतः परमानन्ददासजी के लीला पदों की सीमा भगवान् के ६ व वर्ष तक ही सीमित है। ५ वें से ७ वें वर्ष तक की लीलाओं की तो इतनी पुनरावृति मिलती है कि जिसके कारण उन्हें बाल और पौगण्ड अवस्था का श्रेष्ठ कवि माना जाता है। भक्तवर नाभादास जी ने उन्हें बाल और पौगण्ड अवस्था का विशेष कवि कह कर ही अपने भक्तमाल में प्रणाम किया है :—

"ब्रजबधू रीति कलियुग विषे परमानन्द भयो प्रेम केतं।
पौगण्ड बाल, किसोर, गोप लीला, सब गाई।
ब्रज वधू रीति कलियुग विषं परमानन्द भयो प्रेम केत। भ० म० प्र०—५५६

तात्पर्य यह कि पौगण्ड। बाल और किशोर लीला के अनन्य गायक परमानन्ददासजी ने श्रीमद्भागवत के उन श्लोक-सूत्रों के आधार पर अपने लीलासागर-परमानन्दसागर में अनंत पदों की उद्भावना [भले ही वे आज उपलब्ध न हों] की है। आज कुछ ही प्रतिनिधि-पदों के आधार पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि उनका काव्य विषय ही ब्रजलीला था। उनका ब्रज-नित्य ब्रज है। गोवर्धन, नित्य गोवर्धन है। लीला नित्य लीला है। जिसे वे आजीवन गाते रहे। वियोगी हरि के शब्दों में वे ब्रजलीला प्रेमी थे—

ब्रज लीलामृत रसिक रुचिर पद रचना नेमी।
गिरिधारन श्रीनाथ सखा वल्लभ पद प्रेमी।

पहले कहा जा चुका है कि परमानन्ददासजी ने अपने आराध्यकी लीला का गान बाल पौगण्ड और किशोर अवस्था तक ही सीमित रखा है। अतः उनके लीला विषयक पद त्रिधा विभाजित किये जा सकते हैं।

१. बाललीला विषयक पद।
२. पौगण्ड-लीला विषयक पद।
३. किशोरलीला विषयक पद।

किशोर लीला-पदो के अन्तर्गत राधा के प्रणय, विषयक पद, दानलीला, मानलीला, आदि वर्णन आते हैं। उसके उपरान्त मथुरागमन तथा ब्रज मे उद्धवागमन उनके लीला-वर्णन के प्रसग हैं। इसके उपरान्त दीनता और भक्ति विषयक पद हैं इन सभी पदों मे ये श्रीमद्भागवत का पल्ला दृढता से पकडे हुए हैं। ऊपर बाललीला विषयक पदोंमे भागवत से साम्य प्रस्तुत किया जा चुका है। पौगण्डलीला के अन्तर्गत चीरहरण एव गोवर्धन धारण आदि प्रसग आते हैं। ये प्रसग श्रीमद्भागवत से अतिशय साम्य रखते हैं। उदाहरण के लिए —

परमानन्दसागर

मानरी मान मेरो कह्यौ
... . . ...
प्रथम हेमन्त मास व्रत आचरि कत जमुना जल सीत सह्यौ।
नन्द गोप सुत मागि भलो वर माग अपनेते जु लह्यौ।

श्रीमद्भागवत

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्द व्रज कुमारिकाः।
... ... ...
... ... ....
नन्दगोपसुतं देव पतिं मे कुरु ते नमः। श्रीमद्० १०। २२। १–४

परमानन्दसागर

जिति ते रस रहे रसिक बर।
... ... ....
... ... ...
अधरोहन मागि सखीरी नन्द नन्दन सौं मैं कीनी ढीठी।
जुवति जोति को भाजन समुझत नाहि कछु करौं मीठी।

बाल पौगण्ड, किशोर लीलाओ के अतिरिक्त कतिपय ऐसे तथ्य भी हैं। जिन्हें परमानन्ददासजी ने भागवत के ही आधार पर लिख लिए हैं। वसुदेव तथा नंदादि गोप कंस को वार्षिक कर देते थे। इसकी चर्चा भागवत मे भी मिलती है।

परमानन्दसागर

नंदादिक सब ग्वाल बुलाए अपनी वार्षिक लेन।

श्रीमद्भागवत
करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ।

भागवत से निरपेक्षता—उपर्युक्त कतिपय उद्धरणों में परमानन्दसागर और श्रीमद्भागवत में परस्पर लीला-साम्य दिखलाया गया है। परन्तु इससे यह तात्पर्य नहीं कि परमानन्दसागर श्रीमद्भागवत की छाया मात्र है। परमानन्दसागर में तीनों ही प्रकार की लीलाओं-बाल, किसोर और पौगण्ड में कवि की अनेक मौलिक कल्पनाएँ भी हैं। इसके अतिरिक्त राधाअष्टमी के पद, दानलीला, घटाओं के पद, नाव के पद, पवित्रा, राखी, जवारे, दशहरा, धनतेरस, रूपचतुर्दशी, देवोत्थापिनी भोगी संक्रान्ति, मकरसंक्रान्ति, वसन्तोत्सव, होरी, धमार, चांचर, संवत्सर, रामनवमी अक्षय तृतीया, स्नान यात्रा, फूलमंडली आदि प्रसंगों के पद उनकी मौलिक उद्भावानाओं के उत्तम उदाहरण हैं। भागवत मे उक्त प्रसंगों की चर्चा नहीं। ये अन्य पुराणसंहितादि के आधार पर है।

इसके अतिरिक्त महाप्रभु वल्लभाचार्य का स्मरण, गुसाईंजी की बधाई, आत्मनिवेदन, राग, भोग, शृङ्गार, ग्वाल, खंडिता, हिलग आदि के पद भी उनके स्वतंत्र प्रसंग हैं।

मथुरागमन, कंस-वध, उद्धवागमन, आदि यद्यपि श्रीमद्भागवत के ही प्रसंग हैं तथापि इनमें कवि की मौलिक कल्पना देखने योग्य है। सूर की भाँति भक्तवर परमानन्ददासजी ने भ्रमरगीत तथा स्वीय दैन्य परक पदों में हृदय निकाल कर रख दिया। यद्यपि परमानन्ददासजी का भ्रमरगीत सूर की अपेक्षा अत्यन्त संक्षिप्त है।[१] फिर भी विरह की चरम अनुभूति में जो निर्वेद पूर्ण दयनीय दशा हो जाती है, उसकी अभिव्यक्ति में उच्चकोटि का कौशल दिखलाया गया है। तात्पर्य यह कि परमानन्ददासजी ने यद्यपि भागवत का अनुसरण किया है तथापि अपनी मौलिकता उन्होंने सर्वत्र सुरक्षित रखी है। सूर की भाँति वे अपने काव्यक्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्र एवं निरपेक्ष रहे हैं। वस्तु का उन्होंने कविसुलभ-मौलिक-अधिकार के साथ उपयोग किया है।

परमानन्ददासजी के भ्रमरगीत परक पदों से भागवत का साम्य प्रायः नहीं के बराबर है, इसके अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने पुष्टिमार्गीय परंपरानुसार राधा को स्वकीया माना है। राधा की उन्होंने स्थान-स्थान पर चर्चा की है। किन्तु श्रीमद्भागवत में राधा की स्पष्ट चर्चा उपलब्ध नही होती।

"अनयाराधितोनूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नोविहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः॥ भा० १०।३०।२८

विद्वानों ने इस श्लोक से भागवत में राधिका के संकेत की कल्पना करली है। परन्तु वस्तुतः राधा का स्पष्ट उल्लेख भागवत में नहीं है। परमानन्ददासजी ने राधाको भगवान् की आद्या

१ [भक्तपरमानन्ददासजी विप्रलंभकी अपेक्षा संयोग—शृङ्गार के ही मुख्य कवि हैं जब कि सूर विप्रलंभ के—लेखक]

शक्ति अथवा ह्लादिनी शक्ति के रूप में ग्रहण कर उनके जन्मोत्सव से लेकर विवाह और प्रथमसमागम तक की चर्चा कर डाली है। यह सब उन्होने श्री सुबोधिनीजी के आधार पर किया है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सुबोधिनी में राधा के स्वरूप की अवतारणा की है और इसीलिए संयोग-रसरसिक परमानन्ददासजी ने अपने सागर में 'राधा-प्रकरण' को महत्त्व दिया है। वस्तुतः आचार्य वल्लभ यदि सूत्रात्मक हैं, तो सूर—परमानन्द भाष्यात्मक। इसी प्रकार चीरहरण प्रसग में कवि ने गोपियों की कृष्णासक्ति ही दिखलाई है। भागवत में जो उपदेशात्मक अंश हैं उसे कवि की सरस प्रेमाधिक्यता ने दवा दिया है। पूतना-वध, शकट-भंजन, तृणावर्तउद्धार, बकासुर-अघासुरमर्दन, काली नाग निष्कासन का कवि ने प्रासंगिक चर्चाएँ भर करदी हैं। भागवत की भाँति इन्हे सुव्यवस्थित रूप में नही दिए। न इनके प्रति कवि का आध्यात्मिक अर्थ का मोह ही दिखाई देता है।

कवि ने दोही प्रसंगों पर अधिक महत्ता दी है। रासक्रीडा तथा गोवर्धन धारण। रासक्रीडा, गोपी प्रेम का परमोच्चस्थल है। अतः कवि ने उसे बडी सरसता से वर्णित किया है। गोपी प्रेम कवि की भक्ति का आदर्श था ही। दूसरा जो लम्बा प्रसंग कवि ने लिया है। वह है गोवर्धन-पूजा का। गोवर्धन पूजा का दार्शनिक दृष्टिकोण जो भागवतकार ने लिया है उसे परमानन्ददासजी ने नही लिया। न ही वे भगवान् कृष्ण द्वारा प्रस्तुत कर्म मार्ग वाले तर्क को प्रश्रय देते हैं। कवि को तो गोवर्धन पूजा प्रसंग नितांत इन्द्रमान-मर्दन, और लोकरक्षण विशेषकर व्रज और व्रज भक्तों के रक्षण के कारण ही प्रिय था। इसलिए उसने इन प्रसगों को उठाया और विकसित किया। अपने परमाराध्य की जन्मस्थली और गुरुदेव वल्लभाचार्य के इष्टदेव श्रीनाथजी की लीला भूमि होने के कारण गोवर्धन के प्रति कवि की प्रगाढ पूज्य बुद्धि रही है। अतः 'शैलोऽस्मि'[१] कह कर जिस पर्वतको स्वयं भगवानने अपना विग्रह स्वीकार किया है उसकी महत्ता से अभिभूत होकर कवि ने इस प्रसग को पर्याप्त बढाया है। व्रजवासियों को देवयज्ञ करते देख कर भगवान् ने प्रश्न किया है और नंद उसका उत्तर देते हैं आगे चलकर भगवान् अपनी योग माया से उनकी बुद्धि फेर कर उन्हे गोवर्धन पूजा के लिए राजी कर लेते हैं। भागवत मे भी नन्द और श्रीकृष्ण का यही प्रश्नोत्तर है। किन्तु योगमाया से बुद्धि फेरने की चर्चा वहाँ नही। वहाँ श्रीकृष्ण कर्म वाद पर ही बल देते हैं 'कर्मैव गुररीश्वरः[२]'। कर्मवाद की इस प्रधानता को परमानन्ददासजीने नही लिया। इसी प्रकार भागवत मे भगवान् श्रीकृष्ण योगेश्वर कर्तुंमकर्तुमन्यथाकर्तुंसमर्थ, सर्वभवनक्षम के रूप में चित्रित हुए हैं। किन्तु परमानन्ददासजीने अपने आराध्य को रसिक शिरोमणि नहुनायक', भक्त पराधीन, राधा-सर्वस्व, व्रज-जनवल्लभ, निकुंज-लीलानायक ही चित्रित किया है।

---

१ देहानुच्चावचाञ्जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा।
शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ श्रीमद्भागवत १०।२४।१७

२ श्रीमद्भागवत—१०।२४।३५

रसात्मा, रसेश श्रीकृष्ण की सहचरियों एवं स्वामिनियों–ललिता, चंद्रावलि राधा आदि की चर्चा उन्होंने भागवत से पूर्ण स्वतंत्र होकर की है। इसी प्रकार खडिता आदि के पद, दानलीला के पद, परमानन्ददासजा मौलिक उद्भावनाएँ हैं। इनमे परमानन्ददासजी की भाव प्रवणता, सरसता तथा व्यंग्यात्मकता का अच्छा परिचय मिलता है। गोपी-प्रेम तो कवि का सर्वस्व और उसकी अपनी ही वस्तु है। सर्वत्र वही स्वरूपासक्ति, वही आत्म समर्पण-भावना और वही आराध्य के प्रति पूर्ण विनियोग। परमानन्दसागर मे राधा-कृष्ण प्रेम के सरस, मधुर प्रसग इतने लौकिक पुट मे चित्रित हुए हैं कि उन्हे लोक-दृष्टि भक्ति क्षेत्र मे ले जाते हुए संकोच खाती हैं और अश्लीलता का आरोप करती है परन्तु यह कवि की एकान्त भावना और सप्रदाय का कठोर भक्ति पद्धति का अनुसरण है।

परमानन्ददासजी ने भागवत के बहुत से प्रसंगो को महत्त्व नहीं दिया है। जैसे नन्द-हरण, वत्सहरण शंखचूड़ वधादि के प्रसंग। वेणु अथवा मुरली को कवि ने सूर की भाँति स्वतंत्र रूप से लिया है। किन्तु सूर की तरह न तो उसे सौतिया रूप दिया है, न ही उसे नाद ब्रह्म का प्रतीक माना है। वेणु अथवा मुरली प्रसंग मे भी गोपी-प्रेम की उत्कृष्टता और कृष्ण का भुवन मोहन रूप का ही प्रतिपादन कवि का लक्ष्य रहा है।

रास, हिंडोले आदि के प्रसंगों में भी परमानन्ददासजी के स्वतन्त्र प्रसंग हैं। यह प्रसंग इतने सरल, मधुर और जन-मानस के लिए मोहक हैं कि पाठक भाव-विभोर होकर कुछ क्षणों के लिए उनका परब्रह्ममाहात्म्य भूल जाता है।

परमानन्दसागर का मथुरा-गमन प्रसंग तथा व्रज में उद्धवागमन भागवत के अनुसार होकर भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। यह प्रसंग परमानन्ददासजीने संक्षिप्त ही रखा है। बस, इसके उपरान्त कवि के उपलब्ध सागर में दशमस्कंध के उत्तरार्ध की लीलाएँ नही मिलती।

तात्पर्य इतना ही कि यदि परमानन्ददासागर और श्रीमद्भागवत की तुलना की जाय तो हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं:—

१. परमानन्दसागर स्वतन्त्र, भागवत निरपेक्ष, गेयशैली में लिखा हुआ होकर भी दशमस्कंध की लीला प्रधान वस्तु पर आधारित है।

२. उसमे स्कंधात्मक पद्धति का अभाव है।

३. परमानन्दसागर में श्रीकृष्ण की बाल पौगण्ड किशोर लीलाओं की चर्चा है।

४. उसमें अन्य पुराणों का श्रीकृष्णाख्यान तो है पर अन्य कथाओं का अभाव है।

५. परमानन्दसागर में जो यत्किंचित् प्रबन्धात्मकता है वह श्रीकृष्ण लीलाओं को लेकर ही है।

६. परमानन्दसागर मे सरस लीलाओ को दार्शनिक क्षेत्र मे घसीटने का व्यर्थ प्रयास नही।

७. भागवत के जो स्थल कवि ने लिये हैं उन्हे ज्यो का त्यो लेकर उनमे अपनी मौलिकता और माधुर्य को लाने की सफल चेष्टा की है।

८. कवि का मन भागवत के दशमस्कध और उसमे भी पूर्वार्द्ध के मुख्य प्रसगो में ही रमा है। अन्य स्कधो को कवि ने छुआ तक नही।

९. रामनौमी, नरसिंह जयन्ती, वामनजयन्ती आदि प्रसग भागवत के आधार पर अवश्य हैं। परन्तु कवि की दृष्टि उन पर इसलिए गयी है कि सप्रदाय मे ये जयन्तियाँ महत्वपूर्ण मानी जाती है। अत यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि परमानन्दसागर भी सूरसागर की भांति भागवत निरपेक्ष ग्रन्थ है।

सप्तम अध्याय

# परमानन्दसागर में श्रीकृष्ण, राधा, गोपियाँ, रास, मुरली और यमुना

श्रीकृष्ण—

परमानन्ददासजी का सपूर्ण काव्य पुष्टि संप्रदाय की परम मर्यादा लिए हुए है। आचार्य वल्लभसे दीक्षा लेने के उपरान्त वे संप्रदायसे इतने अभिभूत होगये थे कि उस राजमार्गको छोड़कर वे एक इंच भी इधर-उधर नही हटना चाहते थे। अतः कृष्ण, राधा, गोपी, रास, मुरली आदि सभी के विषय मे उनकी संप्रदायानुसारिणी मान्यताएँ हैं।

गोपालतापिनी उपनिषद् मे 'कृष्ण' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है:—

कृषिर्भू सत्ता वाचकः णश्च निर्वृति वाचकः।
तयोरैक्यं परंब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।।

इसी श्लोकको 'श्रीकृष्ण शब्दार्थ निरूपण' ग्रन्थ मे श्रीहरिरायजीने भी उद्धृत किया है। इसका तात्पर्य है कि 'कृष्' धातु सत्ता वाचक है और 'ण' आनन्द वाचक है। ये दोनों मिलकर 'कृष्ण' बनते हैं जो परब्रह्म के वाचक हैं।[1] अब प्रश्न है कि यह सत्ता किसकी? उत्तर में हरिरायजी आगे कहते हैं कि यह सत्ता रस की समझनी चाहिये।[2] गोपीजनो के हृदय मे विराजने वाली रससत्ता का ही नाम 'कृष्ण' है।[3] इस रससत्ता से जो 'आनन्दरूप' प्रगट होता है वही "कृष्ण" है। यह सदानन्द स्वरूप है। 'कृष्ण' श्रुति स्मृति प्रतिपादित परमानन्द का ही नाम है। यह परमानन्द अथवा परमतत्त्व भूतमात्र के अन्तःकरण मे स्थित है। और सर्वव्यापी घट-घटमे निवास करने वाला है। वे कहते है (१)' 'यह जगत् जो भगवान् का प्रपंच कार्यरूप है, नित्य है और भगवद्रूप है। वही सर्व वेदान्तवेद्य है उसके अन्तःस्थित, कूटस्थ, सच्चिदानन्द और अव्यक्त होते हुए भी वह व्यक्त आश्रयरूप भगवान् है। यह जगत् उसका चरण रूप लोक अथवा उसका निवास स्थान अथवा आधार रूप ब्रह्म है। उसमे स्थितिकरनेवाला, लोक और वेद से परे पुरुषोत्तम रसात्मा है इसीलिए उसे श्रृंगार रस रूप सभी ने माना है।[4]

---

१ कृषिर्भू वाचकः शब्द इति श्रुत्यंतरेण च। सदानन्दो हि भगवान् स्फुटं कृष्णो निरूपितः
श्रीकृष्ण शब्दार्थ श्लोक—३।

२ सत्ता तथानन्द इति विघूर्नं नैव कुत्रचित्।
इत्युक्तमस्मदाचार्यैरतोविवरणेः मतिः। वही-श्लोक-२

३ अत कृष्णः सदानन्दः स्वामिनी हृदयलालितः।

४ प्रपंचो भगवत्कार्यस्तथा नित्यस्तदात्मकः।
सर्व वेदान्त वेद्योहि तदंतःस्थितिरक्षकः।१।
कूटस्थः सच्चिदानन्दऽव्यक्तो व्यक्त समाश्रयः।
पुरुषोत्तम रूपांघ्रि तल्लोकस्तस्य चामनम्। २
तदंतःस्थो लोक वेदाप्रथितः पुरुषोत्तमः।
स रसात्मतयाप्रोक्त शृङ्गारः सर्वसम्मतः।।३।।
श्रीमत्प्रभोः सर्वान्तरत्व निरूपणम्।

वह रसात्मा सिद्ध पुरुषोत्तम रूपवान होकर भी अनन्त शक्ति संपन्न, अप्राकृत, निजानन्द रूप, लोक-वेदातीत अपने व्यूहों से युक्त होकर वसुदेवके घर में उत्पन्न हुआ। वह रसेश श्रीकृष्ण लौकिक इन्द्रियादिको से गम्य नही। उसे प्रत्यक्ष करनेवाली इन्द्रियाँ अलौलिक होनी चाहिये। अतः व्रज सीमान्तनियों अथवा गोपीजनो ने भगवान् के साथ जो रसात्मक संयोग किया वह भावात्मक संयोग है। श्रीकृष्ण अन्तःस्थित रस स्वरूप है। इस प्रकार संप्रदाय में श्रीकृष्ण साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। पुरुषोत्तम के तीन रूप है।

१. आधिभौतिक-नारायण लक्ष्मीपतिः (क्षरस्वरूप)।

२. आध्यात्मिक-अक्षर ब्रह्म।

३. आधिदैविक-पुरुषोत्तम।

भगवान् श्रीकृष्ण विषयक साम्प्रदायिक मान्यता के आधार पर यदि हम परमानन्ददासजीके चर्चित श्रीकृष्ण पर विचार करें तो स्पष्ट हो जाता है कि उनके श्रीकृष्ण संप्रदायानुकूल रसात्मा, रसेश, भावनिधि, परम कारुणिक लोकवेदातीत शृंगाररूप, गोपीजनवल्लभ, भक्तप्रिय आनन्दरूप भावात्मा कृष्ण हैं जो पूर्ण पुरुषोत्तम परंब्रह्म हैं और निकुंजलीला नायक हैं :—

१. सो गोविंद तिहारे बालक।
प्रकट भए घनस्याम मनोहर धरें रूप दनुजकुल कालक।
कमलापति त्रिभुवन नायक भुवन चर्तुदस पति है सोई।
उतपति प्रलय काल को करता जाके किये सबै कछु होई।
सुनौ नन्द उपनन्द तथा यह आयो छीर समुद्र को वासी।
बसुधा भार उतारन कारन प्रगट ब्रह्म वैकुण्ठ निवासी।
ब्रह्म महादेव इन्द्रादिक विनती करि यहाँ लाये।
परमानन्ददास को ठाकुर बहुत पुन्य तप कै तुम पाये।

प्रस्तुत पद मे परमानन्ददासजीने उसी परब्रह्म भुवन चर्तुदश नायक क्षीरसागर में शेषशायी की चर्चा की है, जो वैकुण्ठ मे भी रहता है। वही भूभार उतारने के लिए व्रज में अवतरित हुआ है। परमानन्ददास का ठाकुर वही है

"प्रगट भए हरि श्रीगोकुल में।
परमानन्ददास को ठाकुर प्रगटे नन्द जसोदा के गृह में"

अवतार लेकर भी वह अजन्मा है।

नन्द महोच्छव हो बड कीजै।
.... .... ...
नाचो गावो करो बधाई अजनम जनम हरि लीनों।
यह अवतार बाल लीला रस परमानन्द ही लीनो।

श्रीकृष्ण विषयक साम्प्रदायिक भावना का यह संपूर्ण निर्वाह भागवत में चित्रित श्रीकृष्ण के अनुसार ही है। अतः भागवत के अवतारी कृष्ण और पुष्टि संप्रदाय में मान्य लीलानायक कृष्ण में कोई तात्विक अथवा मौलिक अन्तर नहीं।

भागवत में कृष्ण पूर्णावतार हैं।
"एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।" १।३।२८
अतः अवतार चार प्रकार के हैं।[१]

१. पूर्णावतार-श्रीकृष्ण।
२. अंशावतार-नृसिंह, राम, वासुदेव।
३. कलावतार-मत्स्य कूर्म, वाराह।
४. आवेशावतार-वामन, बुद्ध, कल्कि।

परमानन्ददासजी मुख्यतः भागवतानुसारी लीला गायक हैं। अतः भगवान् की नराकार कृत लीलाओं का वर्णन करते हुए वे पूर्ण अवतारी भगवान् कृष्ण परब्रह्म पुरुषोत्तम का ही संकेत करते हैं।

> गावत हम गोपाल भरोसैं।
> गावत बाल विनोद गुपाल के नारद के उपदेसे।
>
> ... ... ... ...
>
> ब्रह्म रुद्र इन्द्रादि देवता जाको करत विचार।
> पुरुषोत्तम सबही के ठाकुर यह लीला अवतार।
>
> ... ... ... ...
>
> चरन कमल मन राखि स्यामके बलि परमानन्ददास।

परमानन्ददासजी के कृष्ण विष्णु के भी अवतार हैं।

> आनन्द की निधि नन्दकुमार।
> प्रगट ब्रह्म नटभेष नराकृति जगमोहन लीला अवतार।

इन अवतारी कृष्ण ने पहले चक्र, शंख, गदा, पद्म धारण किए हुए विष्णु रूप में भी दर्शन दिए हैं—

> पद्म धर्‌यौ जन ताप निवारन।
> चक्र सुदर्सन धर्‌यौ कमलकर भक्तन की रक्षा के कारन।
> शंख धर्‌यौ रिपु हृदय (उदर) विदारन गदाधरी दुष्टन संहारन।
> चार्‌यौ भुजा चार आयुध धरे नारायन भुवि भार उतारन।

परन्तु वहाँ रसात्मक और रसेश है और निकुंज नायक हैं।

> मोहन नन्दराय कुमार।
> प्रगट ब्रह्म निकुंज नायक भक्त हित अवतार।
>
> ... .... .... ...
>
> बलराम सहित विनोद लीला सेस संकर देत।
> दासपरमानन्द प्रभु हरि निगम बदति नेत।

---

१ श्री नारायणो गो देव भक्त साधूनामनुग्रहार्थं चतुर्धा भवनि।—'भगवद् पीठिका'।

आचार्य ने स्पष्ट कहा है गो समूह मे, कुज मे, वशी वट मे, गोवर्धन, व्रज तथा वृ दावन म जो पुष्टि स्वरूप है वह सदैव पूर्ण है।[१] नन्द के घर मे जो मर्य्यादा पुष्टि स्वरूप है वह अष्टावरण सयुत होता है।[२] इसका आभास मृत्तिका-भक्षण लीला मे मिल जाता है। ऊपर कहा जा चुका है—सम्प्रदाय मे लक्ष्मीपति नारायण पुरुषोत्तम का आधिभौतिक स्वरूप है। इसीलिए इन अष्टछापी भक्तों ने अपने पूर्ण पुरुषोत्तम कृष्ण के साथ उनके नारायणत्व की भी चर्चा की है। परमानन्ददासजी कहते हैं—

> अब यह नाम तुम्हारे सुत को सुनि चित दे नन्द।
> कृष्ण नाम केसव नारायन हैं हरि परमानन्द ॥
> पद्मनाभ माधो मधुसूदन वासुदेव भगवान्।
> और अनन्त नाम इनके हैं कहो कहाँ लौ आन ॥ प० सा० पद ५६

तात्पर्य यह कि परमानन्ददास जी के कृष्ण रसात्मा, लीलानायक, निकुंजविहारी होकर भी भवतभयहारी, दुष्ट सहारक हैं। इसीलिए कवि भगवान के लोकमगलकारीस्वरूप को भी कही नही भूला है। और इसी कारण गोवर्धनलीला से वे अत्यन्त प्रभावित थे। जल-वर्षा की विभीषिका की कल्पना करके अपने प्रिय व्रजभक्तो की रक्षा के लिए भगवान् का गोवर्धन को उठाने का वह कार्य भक्तकवि को अतिशय प्रिय लगा था। अत सभी भक्त कवियोने और विशेष कर परमानन्ददासजीने उस लीला की बार-बार महिमा गाई है। इसीलिए श्रीकृष्ण के लोकमगलस्वरूप गोवर्धनधरण का विग्रह—श्रीनाथ स्वरूप—उनका परमाराध्य था। इस लीला को उन्होंने बडा विस्तार दिया है।

तात्पर्य इतना ही कि परमानन्ददासजी के कृष्ण परब्रह्म पुरुषोत्तम, वैकुठ निवासी क्षीरसमुद्रशायी निकुज नायक पुरुषोत्तम लीला अवतारी हैं। जिनके लिए श्रुतियाँ नेति नेति कहती हैं। वे भक्तो के लिए नर लीला करते हैं और गोपीजनों के साथ क्रीडा भी। लीला वर्णन मे परमानन्ददासजी अपने कृष्ण को लोकोत्तर नही बना देते। वे भक्तो की पीडा का अनुभव करते हैं साथ ही गोपियो के मनोभावो को भी जानते हैं।

## श्रीराधा—

परमानन्ददासजी ने कृष्ण जन्म की बधाई की ही भाँति राधा अष्टमी (भाद्र शुक्ल अष्टमी) की बधाई भी गाई है। राधाके जन्म महोत्सव से लेकर उनके श्रीकृष्ण के साथ विवाह पर्यन्त अनेक पद परमानन्दसागर मे उपलब्ध होते हैं। अत उन्होने श्रीराधा को अत्यन्त महत्व दिया है। अत विचारणीय है कि कवि ने राधा तत्व का समावेश कहाँ से किया। क्योंकि कवि लीलागान मे कठोर भागवतानुसारी है। और श्रीमद्भागवत मे श्रीराधा की चर्चा स्पष्ट रूप से कही भी उपलब्ध नहीं होती। 'अनयराधितोनूनम्' मे 'राधा' की खीचतान को प्रत्यक्ष-पर्यवसायिनी मनीषा ग्रहण करने को प्रस्तुत नही होती। अत स्पष्ट

---

१ 'गोगणे कुजे वटे गोवर्धने तथा व्रजे वृन्दावने चैव पुष्टि स्वरूप यदस्ति, स पूर्णस्तु सर्वत्र। भगवत्पीठिका।

२ "अथ नन्दस्यगृहे मर्यादा पुष्टिस्वरूप यदस्ति तस्य स्वरूपवर्ण्यते, अष्टावरण सयुत भवति। आवरणानि पृथ्वी। आप। तेज। वायु। आकाश। महत्तत्व। अहकार प्रकृति। अष्टावरणानि। अष्टाभि सह मुकुन्दो अष्टावरण युक्त चतुर्व्यूह सयुक्तोस्ति।" भगवत्पीठिका।

है कि राधा के संबध मे कवि ने ब्रह्मवैवर्त, पद्मपुराणादि का समाश्रय लिया है। उधर सूर-साहित्य के अध्येताओ ने सूर की राधा विषयक कल्पना उनकी अपनी विशेषता बतलाई है। पाश्चात्य विद्वानो ने राधा विषयक कल्पना ईस्वी शताब्दी के बाद की बतलाई है। क्योकि वेदो तक राधा का नाम घसीटना अनेक विद्वानो को मान्य नही। इस विषय मे डा० हरवशलाल शर्मा लिखते हैं—"यद्यपि पौराणिक पडित राधा का सबध वेदो से लगाते हैं परन्तु ऐतिहासिक प्रमाणो के अभाव मे कृष्ण की प्रेमिका राधिका को वेदो तक घसीटना असगत ही प्रतीत होता है। गोपाल कृष्ण की कथाओ से परिपूर्ण भागवत, हरिवश और विष्णुपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों मे राधा का अनुल्लेख अनेक प्रकार के सदेहो को जन्म देता है। गोपालतापिनी, नारद पञ्चरात्र तथा कपिल पञ्चरात्र आदि ग्रन्थ इस विषय मे प्रामाणिक नही कहे जा सकते। क्योकि वे बहुत बाद की रचनाएँ है। राधा कृष्ण का उल्लेख हाल की गाथा सप्तशती मे है। पचतंत्र मे भी राधा का उल्लेख है।"[१] आदि। इस प्रकार डा० शर्मा राधा की कल्पना को बहुत परवर्ती मानते हैं।" ब्रह्मवैवर्त पुराण के उत्तर खण्ड मे राधा का विस्तृत उल्लेख मिलता है।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने राधा को भागवत सप्रदायके पुनरुत्थान युग १४ वी शताब्दी की कल्पना मानकर उनकी भावात्मक सत्ता मानी है। डा० शर्मा का निष्कर्ष है कि राधा की भावात्मक सत्ता ब्रह्मवैवर्त से पहिले से चली आरही थी और ब्रह्मवैवर्त पुराण तक आते-आते उस पर धार्मिक छाप लगादी गई।[२] सूर से पूर्व राधाके स्रोत—डा० शर्मा ने ब्रह्मवैवर्तपुराण और जयदेव का गीतगोविंद दो ही माने हैं इसके अतिरिक्त विद्यापति चण्डीदास पर वे गीत गोविंद का प्रभाव मानते हैं। रूप गोस्वामी—जिन्होने राधा के शास्त्रीय रूप पर बल दिया है—सूरके समसामयिक कहे जाते हैं। निम्बार्क सप्रदायके भट्टजी का युगलशतक सं० १३५२ का है अतः जयदेव से सूर के काल तक राधा विषयक अनेक ग्रन्थो के प्रणयन का अनुमान करके भी डा० शर्मा ने सूर की राधा का स्रोत ब्रह्मवैवर्तपुराण ही माना है। और कतिपय मौलिक कल्पनाओ के साथ सूर पर जयदेव, विद्यापति और चंडीदास के प्रभाव को माना है।

वस्तुतः यहाँ राधा का मूल स्रोत बताना मेरा प्रकृत विषय नही परन्तु इतना अवश्य है कि श्रीमद्भागवत पुराण अपने विषय की दृष्टि से पुरातन सनातन होकर भी वर्तमान रूप की दृष्टि से ८ वी ९ वी शती से पूर्व नही जाता। अन्य सभी पुराण उससे पूर्ववर्ती हैं। सभी प्रमुख पुराणो का उल्लेख श्रीमद्भागवत मे मिल जाता है। अतः पुराणो का प्रणयन काल उपनिषद् और स्मृति काल से लेकर श्रीमद्भागवत के काल-अर्थात् ८ वी शती तक तो माना ही जा सकता है। यदि भागवतान्तर्गत पुराणो की सूची[३] को कालक्रमानुसार मानें तो पद्मपुराण ब्रह्मपुराण के उपरान्त दूसरे नम्बर पर आता है। पद्मपुराण का काल ८ वी शताब्दी से कई शताब्दी पूर्व होना ही चाहिए। पद्मपुराण के तृतीय ब्रह्मखड के ७ वे अध्याय मे राधा-जन्माष्टमी की महिमा वर्णित है। इस प्रकार राधा की न केवल भावात्मक सत्ता ही अपितु ऐतिहासिक सत्ता ८वी शताब्दी से कई शताब्दियों पूर्व की है। श्रीमद्भागवत मे राधा के उल्लेख न होने के कई कारण हैं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि 'राधा

---

१ सूर और उनका साहित्य। पृ० २६५

२ वही

३ श्रीमद्भागवत—१२। १३। ४—६

भाव' की साधना की चर्चा श्रीमद्भागवतकार ने अप्रत्यक्ष रूप से ही की है। सम्प्रदाय मे श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त पद्मपुराण, विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्तादि की भी मान्यता है इसी कारण आचार्य वल्लभ ने पुरुषोत्तम सहस्रनाम मे स्पष्ट स्वीकार किया है—

"पंच सप्तति विस्तीर्णं पुराणान्तरभाषितम्।"[1]

अतः महाप्रभु वल्लभाचार्य ने स्वय राधा की चर्चा की है और पुराणान्तरो के आधार पर की है। आचार्य की राधा-चर्चा के आधार पर ही अष्टछापी सागरो ने राधा-भाव को अपना काव्य विषय बनाया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अतिरिक्त भविष्य,[2] पद्म,[3] स्कदादि पुराणो मे राधा की चर्चा मिल जाने से आधुनिक विद्वानो के राधा विषयक मत अटकल के ही आधार पर प्रतीत होते हैं।

बाद मे देवीभागवत[4] नारद पचरात्र, निर्वाण तन्त्र, राधातन्त्र, आदि में भी राधा का उल्लेख है। इनमे भी बहुत से ग्रन्थ श्रीमदभागवत से पूर्व के हैं। अत आचार्य वल्लभ ने गोपी प्रेमभागवतसे तथा राधाप्रेम अन्यान्य ग्रन्थो से लेकर अपने भक्तिमार्ग के मूल बीज 'प्रेमतत्व' का विशाल प्रासाद खडा किया था। और यह कहा ही जा चुका है कि इन दोनो 'सागरो'-सूर तथा परमानन्द-पर आचार्य वल्लभ का पूरा-पूरा प्रभाव और उनके ग्रन्थो की पूरी-पूरी छाप है। अतः ये दोनो ही सागर राधा तत्व के लिए किन्ही अन्य प्रभावो के ऋणी अथवा नितात मौलिक न होकर सीधे-सीधे आचार्य वल्लभ और उनके ग्रन्थों के ही अनुसारी हैं। आचार्य वल्लभ अविरुद्धाश का ग्रहण सर्वत्र से करते हैं और विरुद्धाशको कल्पान्तर की लीला मानकर समाधान कर देते हैं। वे अपने साधन प्रधान भक्तिमार्गमे बालोपासना द्वारा वात्सल्य और सख्यभाव वाली आसक्तियो का आविर्भाव करके माधुर्यभाव अथवा कान्ताभाव वाली आसक्ति की अत्यन्त आवश्यकता को राधाभाव में पर्यवसित कर देते हैं। क्योकि सपूर्ण भक्ति विधियो का वही पर्यवसान है। इसके बिना कोई भी भक्ति पद्धति अपने चरमसौन्दर्य पर नही पहुंच पाती। एकान्त अथवा प्रेमलक्षणाभक्ति किंवा रागानुगा भक्ति का अतिम परिपाक कान्ताभाव अथवा स्वकीयाभावमे ही है। इसलिए आचार्य 'राधाभाव' के लिए भागवतातिरिक्त ग्रन्थ स्रोतो पर समाश्रित हैं। इधर अष्टछाप के माने हुए विद्वान डा० दीनदयालजी न जाने कैसे लिख गए हैं—"और श्री वल्लभाचार्यजी के किसी भी ग्रन्थ मे इस प्रकार राधा का वर्णन नही है। उन्होने अनेक स्थलो पर अपने ग्रन्थो में गोपी भाव से मधुर भक्ति का उपदेश अवश्य दिया है।"[5]

इस कथन से हिन्दी जगत मे बडा भ्रम फैला है। और एतद्विषयक परवर्ती उल्लेखो ने डा०गुप्त के इस तथ्य का अधानुकरण किया है। अपने परिवृढाष्टकमे आचार्य ने भागवत की

१ पुरुषोत्तम सहस्रनाम-श्लोक-४६
२ मन्नाम लक्ष जापेन यत्फलं लभते नरः।
तत्फल स समाप्नोति राधा कृष्णेति कीर्तनात्। भवि० पु० कृ० नारद सं०।
३ चिदानन्द वृषभान पुरी नाम्ना, चिदानन्द प्रदायनी॥
राधा नाम्नाविमोदिनी॥ पद्म० पुरा० उ० खण्ड अध्याय १६२
तथा यथा राधा प्रिया विष्णो स्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।
सर्व गोपीषुसैवैका विष्णोरत्यन्त वल्लभा।
४ आत्मा रामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका। स्कद पु० स० अ० २ श्लोक २१
५ देखो—अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय पञ्चम अध्याय पृ० ५२७ ५२८

गूढ शैली का अनुसरण करते हुए 'पशुपजा रहस्येकां'[1] की चर्चा की है। परिवृढाष्टक की यह 'पशुपजा' अन्य कोई नहीं वृषभान गोपकी कन्या श्रीराधिका ही है। 'परिवृढ' शब्द ही 'प्रमुख' वाची है।[2] श्रीराधिका श्रीकृष्णकी प्रथम स्वामिनी है। स्वामी श्रीकृष्ण हैं। उसी अष्टक में आचार्यजीने राधा के दर्शन से कृष्ण के हृदय में 'रति' का प्रादुर्भाव माना है।[3] इसी प्रथम-दर्शनजन्य 'राग' के प्रादुर्भावको[4] सूरने अपने प्रसिद्ध पद:—

"बूझत स्याम कौन तू गौरी" मे व्यक्त किया है। आज तक ब्रजखोरीमें यह अपूर्व सौंदर्य देखने में नही आया था। गोली राधिका ने चटसे उत्तर देदिया कि वह ब्रजकी ओर इसीलिए नही आती कि सुना जाता है उधर नटखट, माखन चोर श्याम रहता है। श्रीकृष्ण ने चट उत्तर दे दिया कि वे उसका क्या चुरा लेंगे? बात समझ में आगयी; और दोनों लोकोत्तर सौंदर्य कलिंदजाके कूल पर जा पहुंचे।

परिवृढाष्टक की इस 'एकान्त पशुपजा' को राधा मानने से किसी विरोध हो सकता है। परन्तु आचार्य की यह गूढ़ शैली यदि किसी की स्थूल प्रमाणेच्छिका बुद्धि ग्रहण न करना चाहे तो भी अन्य प्रमाणों का अभाव नही। आचार्य ने राधा का स्पष्ट उल्लेख अपने श्रीकृष्णप्रेमामृत, ग्रन्थ में स्पष्ट किया है।

यमुनानाविको गोपी परावार कृतोद्यमः।
राधावरुंधनरतः कदंब वनमंदिरः। [श्रीकृष्ण० प्रे० श्लो० २४]

आगे चलकर मिलता है—

गोपिका कुच कस्तूरी पंकिलः कोकिलालसः॥
अलक्षित कुटीरस्थो राधा सर्वस्वसंपुटः।

एक और स्थान पर—

रासोल्लास मदोन्मत्तो राधिकारति लंपट। [वही श्लो० ३३]

अपने एक और दूसरे स्तोत्र श्रीकृष्णाष्टक मे महाप्रभु वल्लभाचार्य लिखते हैं—

श्रीगोप गोकुल विवर्धन नंदसूनो।
राधापते व्रजजनार्तिहरावतार॥
मित्रात्मजा तट विहारण दीनबंधो।
दामोदराच्युत विभोमम देहि दास्यम्॥ [श्लोक १]

उसी में आगे चलकर—

श्री राधिकारमण माधव गोकुलेन्द्र।
सूनो यदूत्तम रमार्चित पादपद्म॥ [वही श्लो० २]

---

१ कलिदोद्भूतायास्टमनुवरंती पशुपजां। आचार्यकृत परिवृढाष्टक श्लोक-१

२ स्वामीत्वीश्वरः पतिरीशता।
अधिभूर्नायकोनेता प्रभुः परिवृढोऽधिपः। अमरकोष- तृतीयकाण्ड श्लोक-१०।१०
'परिवर्हति परिवृंहति वा, प्रभौ परिवृढः'—अमरकोष।

३ राधायाश्चैव दुर्गाया विधानं श्रुति चोदितम्।६।४०।२
तथा
कृष्ण प्राणाधिका देवी सा तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति।६।५०।१७

४ 'रति प्रादुर्भावो भवतु सतनं श्री परिवृढे।' परिवृढाष्टक।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भागवत के आधार पर जो स्तोत्र, नामावली अथवा अष्टक आदि लिखे है उनमे भी गोपी, गोप, रुक्मिणी आदि के नाम के साथ राधा का नाम आता है।[1] अत "राधातत्व" को भागवत के उपरान्त का नही अनुमान किया जाना चाहिए। महाप्रभु ने राधातत्व को माधुर्य भाव के पूर्ण परिपाक के लिए साकेतिक रूप से भागवत से और स्पष्ट रूप से अन्य स्रोतो से ग्रहण किया है और परिपुष्ट कान्ताभाव के आदर्श के ही लिए उसका उपयोग किया है।

सूर और परमानन्द दोनो ही सागरो को महाप्रभु के गेय शैली से ओत प्रोत इन्हीं अष्टको और सगीतात्मक स्तोत्रो मे राधातत्व के दर्शन हुए थे। आगे चलकर गोस्वामी विट्ठलनाथजी और हरिराय जी आदि ने तो राधा को स्वामिनी कहकर अनेक छोटे मोटे ग्रन्थो की रचना की। 'राधा प्रार्थना-चतुश्श्लोकी" मे गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने राधा की बडी महिमा वर्णन की है। और पदेपदे कृपा याचना की है—

> कृपयति यदि राधा बाधिताशेष बाधा।
> किमपरमवशिष्ट पुष्टिमर्यादयोर्मे ॥
> यदि वदति च किंचित् स्मेरहासोदितश्री ।
> द्विजवर मणि पक्त्या मुक्ति शुक्त्या तदाकिम् ॥
> श्याम सुन्दर शिखण्ड शेखर स्मेरहास्य मुरली मनोहर।
> राधिकारसिक मा कृपानिधे स्वप्रिया चरण किंकरी कुरु ॥
> प्राणनाथ वृषभानुनदिनी श्रीमुखाब्ज रस लोल षट्पद।
> राधिकापद तले कृतस्थितिस्त्वा भवामि रसिकेन्द्र शेखर।
> सविधाय दशने तृण विभो प्रार्थये ब्रज महेन्द्रनदन।
> अस्तु मोहन तवातिवल्लभा जन्मजन्मनि मदीश्वरी प्रिया ॥[2]

अर्थात् "यदि राधा कृपा कर दें तो मेरी सपूर्ण बाधा नष्ट हो जाती है और पुष्टि तथा मर्यादा मे फिर मेरे लिए क्या अवशिष्ट रह जाता है। और यदि वे अपनी सुन्दर मदमुस्कान से जिसमे स्वच्छ मणि—पक्ति के समान दन्तावली सुशोभित हो रही हो, कुछ आदेश देदें तो मुक्तिरूपी सीप से मुझे क्या प्रयोजन है। "हे मयूरपिच्छधारी श्यामसुन्दर। हे मन्दमुसकान-मुरली मनोहर। हे राधिका रसिक मुझे अपनी प्रिया के चरणो की सेविका (सेवक) बनादो।"

'हे प्राण धन। हे श्री राधिका के मुख कमलके भ्रमर। हे रसिकेन्द्र शेखर। श्री राधिका के पद तलो मे मेरी स्थिति कर दीजिये।"

'हे प्रभो। हे ब्रजनन्दन। मैं अपने मुखमे तृण दबाकर (अतिशय दीनता पूर्वक) प्रार्थना करताहूँ कि आपकी प्राणाधिक प्रिया राधा मेरी स्वामिनी हो।"

इसी प्रकार सप्रदाय मे परमसमान्य आचार्य चरण श्री हरिरायजी ने भी राधा विषयक अनेक स्तुतियाँ लिखी हैं। और महाप्रभु वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र गोस्वामीविट्ठलनाथजी के महत्व और राधा भाव को अत्यन्त ही प्रमुखता दी है। अत सूरदास और परमानन्ददास को राधाभाव अपने आचार्य चरणो ही से मिला था।

---

१ देखो त्रिविध लीला नामावली राधा सदपरायनम [दशम० ना० श्लो० ली ४८]

२ राधा प्रार्थना चतुश्श्लोकी

**परमानन्ददासजी की राधा का स्वरूप :—**

प्रारम्भ से ही कवि ने अपने 'सागर' मे कृष्ण की भाँति राधाजन्म महोत्सव पर बधाई लिखी है। रसिकिनी राधा भी पालने मे झूल रही हैं :—

"रसिकिनी राधा पलना झूले।
देखि-देखि गोपीजन फूलें ।।

आगे चलकर लाडिली किशोरी राधा के चरणों को कवि ने 'सुरतसागरतरन" कह कर नमस्कार किया है :—

धन धनलाडिली के चरन।
नन्द-सुत-मन मोदकारी 'सुरतसागर तरन' ।।

इसी से कवि का रसात्मक दृष्टिकोण व्यंजित हो जाता है। कवि ने तो "स्याम ताकी सरन" कहकर राधा को श्याम से अधिक महत्त्व दे दिया है। आगे चलकर राधा थोड़ी सयानी होती है; और वे हिण्डोले में झूलती हैं। उनके दिव्य सौंदर्य पर उमा-रमा-और रति न्योछावर करने योग्य हैं। अखिल भुवनपतिने उन्हे अपने हाथ से सवारा है।[1] वे साक्षात् नव निकुञ्ज की शृंगार रूपा हैं।

"प्रगट्यौ नव कुञ्जकौ सृंगार।"

क्रमशः राधा और बड़ी होती हैं। गोपिकाओं के साथ यमुना पर जल भरने जाती हैं। दधि बिलोती है। अचानक उन्होने एक दिन यमुना-स्नान करने के उपरान्त कृष्ण को देख लिया है। बस, उन लावण्य-निधि पर वे सदैव के लिए निछावर हो गईं। राधा माधव की ही गईं, और माधव राधा के। क्रमशः रति परिपक्व हो कर क्रमश. व्यसनरूपा हो गई। और अब एक पल भी एक दूसरे के बिना रहा नही जाता।

"राधा माधव सौं रति बाढी।
... ... ...
चाहति मिल्यौ प्राण प्यारे कौ परमानन्द गुन गाढी ।।

मुग्धा राधा अहर्निश श्यामसुन्दर का ही चिंतन करती है। यह पुरातन प्रीति है। एकांगी नहीं हैं। रसिक शिरोमणि गोपालको भी राधा बहुत ही भाती है।

"राधा रसिक गोपालहिं भावै।"

इधर राधा भी माधव के बिना नही रह सकती।

'राधा माधव बिनु क्यों रहे।"

लोक वेद से परे का यह अनुराग अपनी चरम प्रणयावस्था में परिपक्व होकर परिणय मे परिवर्तित हो गया। और देवोत्थापिनी एकादशी के दिन राधा माधव का विवाह भी हो गया :—

"व्याह की बात चलावत मैया।
बरसाने वृषभानु गोपकें लाल की भई सगैया।।"

विवाह हुआ, द्वाराचार हुआ और वर-वधू एक घर मे आये। वर-वधू के मिलन का समय आगया।

---

१ परमानन्दसागर पद संख्या—२४७

"कुञ्ज भवन में मगलचार। ..
नव दुलहिन वृषभान नदिनी दूल्हे स्री ब्रजराज कुमार।"

इस प्रकार मुग्धा राधा के विवाहान्त शताधिक सरस चित्र परमानन्ददास जी ने अपने 'सागर' मे प्रस्तुत किये है। अतः सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि—

१. परमानन्ददासजी ने राधातत्व आचार्य वल्लभ एवं गोस्वामी विट्ठलनाथ से ही लिया है।
२. राधा पुष्टिमार्गीय की भावना के अनुकूल स्वकीया हैं।
३. राधा की प्रीति अलौलिक है।
४. वे साक्षात् आद्याशक्ति और लक्ष्मी का भी अवतार हैं और हैं कृष्ण की अनन्यप्रिया।
५. अवस्था मे वे कृष्ण से दो वर्ष बड़ी हैं।
६. परमानन्ददासजी की भक्ति का चरम आदर्श "राधाभाव" मे पर्यवसित होता है।

सूर की भाँति परमानन्ददासजी की राधा अतिशय मौन, कष्ट-सहिष्णु, सुरत-वचिता नही हैं। अपितु वे रूप मुग्धा गौरवशालिनी सुरत-लब्धा, कृष्ण-केलि रता हैं। उनका प्रणय क्रमशः विकसित होकर परिणय मे पर्यवसित हुआ है। श्री राधा को लेकर परमानन्ददासजी पर वल्लभाचार्य एवं गोस्वामी विट्ठलनाथजी का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

गोपी :—

श्रीमद्भागवत में भक्ति की सर्वोच्च स्थिति व्रज सीमान्तिनियों में बताई गई है। स्वयं भगवान् ने कहा है :—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे व्यक्तदैहिका:।
मामेव दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गता:॥
ये त्यक्तलोकधर्मांश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥ श्रीमद्भ १०।४६।४

लोक-वेद-मर्यादा का त्यागकर, सासारिक संपूर्ण विषयों का भगवच्चरणारविन्दों में विनियोग[१] करने वाली ये व्रजाङ्गनाएँ परमानन्ददासजी के शब्दो में 'प्रेम की धुजाएँ' हैं। ज्ञानी भक्त श्री शुकदेव को भगवान् मे इनका 'रूढ भाव' अनुभव करके कहना पड़ा था—

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविंदएव निखिलात्मनि रूढभावा:।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य [१०। ४७। ५८]

भगवच्चरणारविंद मे इन गोपियों की अनिर्वचनीय आसक्ति देखकर बड़े-बड़े ज्ञानी भक्त भी इनकी चरण रेणु लेने के लिए लालायित हो गठे थे[२] उसका मूल कारण इनकी सात्विक रति ही थी। गोपियो की भक्ति-चर्चा त्रिभुवन को पुनीत करने वाली है अतः सभी कृष्ण भक्ति-संप्रदायों मे गोपी-भक्ति आदर्श रूपा मानी गई हैं। भावानुसार इन्हे स्वकीया, परकीया सहचरी, स्वामिनी आदि रूपों मे भक्तों ने स्मरण किया है। वस्तुतः पुष्टिमार्ग मे सभी भावो का समन्वय है।

---

१ मैवं विभोर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सन्त्यज्य सर्वं विषयांस्तव पादमूलम्। [१०। २९। ३१]
२ आसामहोचरणरेणु जुषामहंस्यां वृन्दावने किमपिगुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्द पदवींश्रुतिभिर्विमृग्याम्॥
तथा
वन्दे नंद व्रजस्त्रीणांपादरेणुमभीक्ष्णशः। यासांहरिकथोद् गीतं पुनातिभुवनत्रयम्।।१०। ४७।६२-६३

आचार्य वल्लभ ने अपने संन्यासनिर्णय में इन्हें भक्तिमार्ग का गुरु ठहराया है।

"कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ता गुरवः साधनं च तत्।"
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते ॥सं० नि०—८

उन्होंने गोपियों की विरहजन्य पीड़ा की प्राप्ति के लिए भगवान् से कामना की है—

'गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम्। यत्सुखं समभूत्तन्मेभगवान् किं विधास्यति ॥२

आचार्य ने गोपियों मे प्रेम की पराकाष्ठा मानी है—

"पराकाष्ठा प्रेम्णां पशुपतरुणीनां क्षितिभुजाम्।" परि० श्लोक० ५

उनके शब्दों मे भक्तिमार्गीय सन्यास की वे उच्चतम उदाहरण स्वरूपा हैं :—

'भक्तिमार्गीय संन्यासस्तु साक्षात्पुष्टि-पुष्टि श्रुति रूपाणां रासमंडल मंडनानां; स्वयमेवोक्तम्—संत्यज्य सर्व विषयांस्तवपादमूलं प्राप्ता इति। [गायत्री भाष्य']

सर्वस्व त्यागकर रास-क्रीड़ा में सम्मिलित होने वाली श्रुतिरूपा गोपिकाएँ भक्ति मार्गीय संन्यास का उत्तम उदाहरण हैं। इसीलिए नारदीय भक्ति सूत्र में उनके अनुराग को आदर्श माना है—

'यथा व्रजगोपिकानाम्'—ना० भ० सू०—२१

'क्योंकि समस्त कर्मों को अर्पण करना और भगवत् विस्मृति मे परम व्याकुल हो जाना'[१]—व्रजगोपिकाओं का ही स्वभाव है।

गोपियाँ रस की समर्थक रूपा शक्तियाँ हैं। वस्तुतः प्रेम रस में मग्न हुए भक्तों का नाम ही 'गोपी' है। गोपा अर्थात् स्त्री नही स्त्रीभाव वाले भक्त। हृदय प्राधान्य तत्व का नाम 'स्त्री' है। अतः पूर्ण "स्त्रीभाव" ही 'गोपी भाव" है। गीता मे इसी को 'परमभाव' का नाम दिया गया है।

'परमभावमजानन्तो०"[२]

इसी का दृष्टान्त है—"योषाजारमिव प्रियम्।"

गोपियों के इस 'परमभाव' की ओर लक्ष्य करके ही एक लेखक ने लिखा है—

"When beings are perfected they reach the plane of Krishna, which is beyond the seven fold plane of the comsic ego. The Gopis are such perfected beings."

अर्थात् "जो प्राणी पूर्णता की भूमि पर पहुँचे हुए होते हैं वही कृष्ण तक पहुँचे हुए होते हैं। वे इस प्रपंच के सप्तावरण को भेद कर पूर्णता प्राप्त प्राणी हैं।"

अतः गोपीभाव अर्थात्-सर्वोत्तमआत्मसमर्पण-अथवा "सहजभाव"। इस प्रेम में वेद-शास्त्र, विधि-निषेध, विवेक आदि की सत्ता नही रहती। न संयोग न विप्रयोग। प्रेम की इस उत्कृष्ट स्थिति का नाम ही 'गोपी-भाव' है।

समस्त व्रज गोपिकाओं को आचार्य जी ने तीन वर्गों में विभक्त किया है।

१. गोपांगनाएँ :—

जो वेद मार्ग की चिन्ता न करके श्रीकृष्ण को ही अपना पति मानती थी। ये विवाहित गोपिकाएँ हैं। इन्हे 'अन्यपूर्वा' भी कहा जाता है।

---

१ नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति [ना० भ० सू०—१६]
२ गीता

महाप्रभु जी इन्हें लक्ष्य करके कहते हैं।

"गोपांगनासुपुष्टिः" श्रीभगवत्पीठिका।

२. गोपी-अथवा अनन्यपूर्वा से कुमारिकाएँ हैं। यह 'नन्दगोप सुत' को पति भाव से वरण करना चाहती हैं।

"गोपीपु मर्यादा—श्रीभगवत्पीठिका।

३. व्रजांगना :—इन्हें सामान्या भी कहा जाता है। ये कृष्ण में पुत्र-भाव रखती हैं। व्रजांगनासु प्रवाहः। श्रीभगवत्पीठिका।

परमानन्ददास जी ने उक्त तीनों ही प्रकार की गोपिकाओं का चित्रण किया है।

१. कृष्ण जन्म पर बधाई लेकर आने वाली गोपियां तथा माता यशोदादि सामान्या अथवा व्रजांगनाएँ हैं।

सुनोरी आज मंगल बधायो है :—
घर-घर तें नर-नारी मुदित हरि ढूंढन धायो है।

२. व्रतचर्या अथवा हेमन्त में कात्यायनी दुर्गा आदि की पूजा करने वाली गोपिय अनन्यपूर्वा अथवा मर्यादावाली व्रजकुमारिकाएँ हैं।

"मान री मान मेरो कह्यो।

... ...

नन्द गोप सुत माँगि भलो वरभाग आपनेतें जु लह्यो।

३. लोक वेद मर्यादा का त्याग कर प्रभु में अहर्निश अनुरक्त रहने वाली ये गोपियां अन्यपूर्वा है। ये ही पुष्टि पुष्टि गोपियां हैं। इन्ही को लक्ष्य कर परमानन्ददासजी ने कहा है—

ये हरि रस ओपी गोपी सब गोप तियन ते न्यारी।

... ... ...

जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन गुन गावै।
क्यों नहिं परमानन्द प्रेम भगति सुख पावै।

तात्पर्य यह है कि 'गोपीभाव' की चर्चा परमानन्ददासजी ने अपने संपूर्ण काव्य में सर्वाधिक की है। संभवतः उनके जीवन का लक्ष्य उसी भाव को पूर्ण रूप में प्राप्ति करना था। अतः एकान्त प्रेम की वे भाव-दशाएँ जो लौकिक जगत् में मर्यादा पूर्ण नहीं कही जा सकती परमानन्ददासजी ने निसंकोच उन्हें अपने काव्य का विषय बनाया था। उनकी गोपियाँ मानवी होती हुई भी इस धरा से दूर किसी अनिर्वचनीय लोक के लोकोत्तर प्रेम की दिव्य आदर्श रूपा हैं। जिनका प्रेम नितान्त अलौकिक और एकान्तिक है।

वेणु अथवा मुरली :—

मुरली का स्त्रोत भी अन्य प्रसंगों की भाँति श्रीमद्भागवत ही है। श्रीमद्भागवत का वेणु-गीत अत्यन्त प्रसिद्ध प्रसंग है। वेणु को प्रेमलक्षणाभक्ति का प्रतीक मानते हुए महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सुबोधिनी दशमस्कंध की कारिका में उसे ब्रह्मानन्द से भी ऊपर बतलाया है।[१] यह वेणु ही सबका भगवदीयत्व संपादित करती है और सांसारिक विषयों से विमुख

१ श्रोत्रयैव सा हि सर्वेषां भगवदीयत्वं संपादयति। आनन्दमेव सा प्रकटा द्रवीभूता ब्रह्मानन्दादप्यधिका आनन्द सारभूता सा न कथंचित् साधनता मापद्यते स्वतः। सुबो० दशमस्कंध २१ श्लोक-५

करके जीव को भगवदभिमुख करती है। क्योंकि वेणु-रव से ही भगवान् का लीला विशिष्ट स्वरूप प्रत्यक्ष होता है।[1]

वेणु-रव तारतम्य से रस-'भगवद्रस'-का विकास करता हुआ गोपियों को भगवदभिमुख करता है। वेणु के सप्त छिद्रों को सुधारस से पूरित करने के लिए भगवान् उसे अपने अधरों पर रखते हैं और उससे नाद (ब्रह्म) की उत्पत्ति होती है। यह वैधी भक्ति से ऊपर परमफल प्राप्ति की स्थिति है। यह मुखारविंद की भक्ति है, चरणों की नहीं। वैधी अथवा शीतला-भक्ति में लगी गोपिकाएँ मुख की उष्ण भक्ति[2] का रहस्य जानकर भी वेणु से ईर्ष्या करती है। आगे चलकर ब्रज सीमन्तनियों को भगवान् ने रास क्रीड़ा में इसी उष्ण भक्ति का कृपा भाजन बनाया था।[3] यह मुख्य भक्ति 'तापात्मक भक्ति' कहलाती है। इसमें भक्त को अत्यन्त ताप रहता है। कबीर की विरहिणी भी इसी में झुरझुर मरती है। जायसी की विरहिणी भी इसी विरह से अपने हाड़ों को किंगरी बनाती है। मीरां भी इसी उष्ण भक्ति में रैन दिन व्याकुल रहती है। पपीहा, चातक, मृग, पतंगादि इसी उष्ण भक्ति के उदाहरण हैं। सूर ने वेणु-रव से बिद्ध गोपियों का जो मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है वह भी उष्ण-भक्ति का रहस्य है। इसी कारण उस मुरली ध्वनि को सुनकर सिद्धों की समाधि टल जाती है जमुना का जल स्थिर हो जाता है और पाषाण द्रवीभूत हो जाते हैं। और देव-विमान स्थगित हो जाते हैं।

*ब्रज गोपिकाएँ जब इस मुरली-रव को सुनते ही विदेह हो जाती है। और चित्र लिखी* सी हो जाती है।[4] मुरली के दिव्य प्रभाव से अभिभूत एक गोपी तो भोजन तक नहीं बना सकती क्योंकि सूखा ईंधन सरस और गीला हो जाता है और चूल्हा बुझ जाता है।

मुरहर ? रंधन समये मा कुरु मुरली रव मधुरम्।
नीरसमेधो रसतां कृशानुरप्येति कृशतरताम्। गीत गो०

---

१ तादृशं नादं प्रकटितवान् यच्छ्रवणेन गुणलीला विशिष्टमुद्बुद्ध रसात्मकं स्वरूपं सर्वेन्द्रिय प्राणान्तःकरण जीवेषु पूर्णमाविर्भूत्। दशम स्कंध-२१ श्लोक-५

२ भक्तिर्द्विधा पदांभोज वदनांबुजभेदतः।
प्रथमा शीतला भक्तिर्यतः श्रवण कीर्तनात्। भ० द्वै० निरूपण
तथा तत्रैव मुख्यसंबंध सुलभा नारदादिषु।
द्वितीया दुर्लभा यस्यादधरामृत सेवनात्।

३ तद्भाव भावना रूपा विरहानुभवात्मिक।
गोप सीमन्तीनां च सा दत्ता हरिणा स्वतः। —हरिरायजी कृत भक्ति द्वैविध्य निरूपण श्लोक-३

४ मेरे सांवरे जब मुरली अधर धरी!
सुनि धुनि सिद्ध समाधि टरी।
मुनि थके देव विमान। सुर-वधु चित्र समान।
… … …
झरना झरत पाषान।—सूरसागर दशमस्कंध
और भी—अंगनि की सुधि भूल गई।
स्याम अधर मृदु मधुर मुरलिका चकृत नारि भई।
तथा—मुरली सुनत अचल चले।
थके नर जल झरत पाहन, विफलु वृच्छहु फले॥

अतः कृष्ण मुखचन्द्र से निष्ठ्यूत मुरली निनादामृत अखिल भुवन को उद्दीप्त करने वाला है।[१]

अतः स्पष्ट है कि यह साधारण मुरली नही है। भागवतकार के तात्पर्य को समझकर आचार्य वल्लभ ने इसके अलौकिकत्व को स्पष्ट किया है। महाप्रभुने स्वयं इस शंका का समाधान किया है कि वृन्दावन के उपवन मे बजाई गई मुरली अपने-अपने घरों में स्थित दूर दूर व्रज मे रहने वाली, गृहकार्य संलग्न गोपिकाएँ उसे कैसे सुन पाई[२] और फिर पुष्टि एवं मर्यादा वाली गोपिकाएँ ही रास मे सम्मिलित हुईं। वात्सल्यभाववाली प्रवाही यशोदादि गोपिकाएँ वृन्दावन-रास मे नही सम्मिलित हुईं। निश्चय ही वेणुनाद कोई दैवी तत्व है जो चराचर को मोहित करने वाला है और जिसमें जीव को समाधि कल्प स्थिति में ला देने की शक्ति है। इस वेणुनाद से त्रिबिंदु-क्रिया-ज्ञान-शक्ति-का एकीकरण होकर श्रोता ऐहिकता से पार होकर मुक्तावस्था मे पहुँच कर समाधि में उद्बुद्ध होता है। भगवान् कृष्ण के अधरामृत से निस्सृतनाद वेणु के इस अलौकिकत्व का लगभग सभी वैष्णव कवियों एवं अष्टछापी भक्तों ने प्रतिपादन किया है। सूरने तो मुरली नाद के अलौकिकत्व को पदे पदे प्रकट किया है। उसकी उष्ण-भक्ति का संकेत करते हुए यहाँ तक कह डाला है कि यह मुरली स्वयं भगवान् के अधरशैया पर सोती हुई नटनागर से अपने पैर दबवाती है।

मुरली तउ गोपालहिं भावति।  
सुनरी सखि जदपि नन्दनंदहिं नाना भाँति नचावति।  
राखति एक पाव ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति।  
कोमल अंग आपु आग्या गुरु कटि टेढ़ी है जावति।  
अति अधीन सुजान कनौड़े गिरिधर नारि नवावति।  
आपुन पौढ़ि अधर सिज्जा पर कर पल्लव पदपलुटावति।  
भृकुटी कुटिल फरक नासापुट हम पर कोप कुपावति।  
'सूर' प्रसन्न जानि एको छिन अधर सुसीस डुलावति।

सूर की मुरली गोपियों की सौत है। गिरिधारी श्रीकृष्ण उसके परम कृतज्ञ हैं। अतः गोपिकाएं उससे पराजित हुई सी अनुभव करती हैं। भगवान् भक्त के आगे ही कृतज्ञ होते हैं। "अहं भक्त पराधीनो" के अनुसार वे भक्त परवश है। अतः निश्चय ही वेणु साधना की यह सर्वोच्च भूमि है जहाँ भगवान् पराधीन हो जाते हैं। वस्तुतः मुरली का आधिदैविकत्व ही

१ कृष्ण वक्त्रेन्दु निष्ठ्यूतं मुरली निनदामृतम्।  
उद्दीपनानां सर्वेषां मध्य प्रवरमीर्यते। उ० नी० पृ० २८४

२ आसमन्तात् श्रुत्वा आधिदैविकत्वात्। अन्यथा कथं वनस्थितो वेणुनादो व्रजस्थिताभिः गोपिकाभिरेव श्रूयते, यथा सर्वे देवा उत्थिता एवं स्मरोऽपि उद्दीपन विभावत्वाच्च नादस्यतन्मध्ये काश्चन स्मरेण मूर्च्छिता एवं काश्चित् पुनः कृपया भगवत्संगं प्राप्य कृष्णस्य परोक्षे विद्यमानाभ्यः स्वसधर्मीभ्यः स्वसखीभ्यः अनुभवकरणानन्तरमेवावर्णयन् वर्णितवत्यः। सुबोधिनी दश स्कंध-कारिका श्लोक-२

३ मधुपतिगौश्चारयन्वेणुं चुकूज। वसताधिपतिः सरसः श्रृङ्गारात्मा धर्मं कुर्वन् क्रिया ज्ञान शक्ति सहितो देवनोद्बोधनाय वेणुनादं कृतवान्। उद्बुद्धा देवताः सामाग्र्यभावान्नरता भवंतीति भगवतो मधुपतित्वं निरूपितं तैर्जुष्टानि सरांसि महीध्राः पर्वताश्च यस्मिन् तानेव एकवद्भावः –वही।

भागवत का प्रतिपाद्य विषय है। आचार्य वल्लभ का यही मन्तव्य है। मुरलीतत्व वह दिव्य-तत्व है जो निरोध अथवा समाधि का सुलभ माध्यम है। सभी अष्टछापी भक्त कवियों ने मुरली के इसी अलौकिकत्व एवं दिव्यत्व की ओर संकेत किया है।

## परमानन्ददास जी का मुरली प्रसंग—

आचार्य वल्लभ के तात्पर्यानुसार परमानंददासजी ने भी मुरली में वही आधिदैविकत्व आरोप किया है। मुरली-रव की उसी समाधि-दात्री शक्ति की उन्होंने भी चर्चा की है जो अन्य सूर आदि अष्टछाप के कवियों में मिलती है। मुरली नाद पर गोपिकाएँ कुरंगिनी की भांति मुग्ध हैं। जिस प्रकार मृगी प्राणेन्द्रिय अन्तःकरणादि को विस्मृत कर नाद-लुब्धा हो जाती है उसी प्रकार परमानंददास जी की गोपिकाएँ भी नटवर कृष्ण के मुरली-नाद पर आत्म विस्मृत है।

आवत मदन गोपाल त्रिभंगी।
.... .... ...
वचन रसाल सुरति सबु भूली सुनि बन मुरली नाद कुरंगी।

इतना ही नहीं वे पागलपन की स्थिति को पहुँच गयी हैं। बछड़े दूध पीना छोड़ देते हैं। पशु-पक्षी-सरिताए सभी अचल हो गयी हैं और केवट की नौका नहीं चल पाती है। यह मुरली स्वभाव से ही रसस्वरूपा है।

आजु नीको बन्यौ राग आसावरी।
मदन गोपाल वेणु नीको बाजत मोहन नाद सुनत भई बावरी।
... ... ... ...
... ... ... ....
परमानंद स्वामी रतिनायक, या मुरली रस रूप सुभावरी। प० सा० २५०

परमानंददासजी को अष्टांग योग-यम नियम आसन प्राणायाम-मुरली के आगे व्यर्थ प्रतीत होते हैं। मुक्ति-भुक्ति धर्माचरण, योगाभ्यास आदि सब इस मुरली रव के आगे व्यर्थ हैं।

मेरो मन गह्यौ माई मुरली को नाद।
आसन पौन ध्यान नहिं जानो कौन करै अब बाद विवाद।
... .... ....
... ... ....
परमानंद स्याम रंग राती सबै सहौंमिलि अंग लोग।

श्याम के हाथ में मुरली लेते ही गोपिका गृह त्याग कर बन की ओर चल देती है। वह दिव्य वेणु नाद "दारागार पुत्राप्त वित्तादि" का मोह छुड़ाने का एक दिव्य साधन है।

कर गहि अधर धरी मुरली।
... .... ...
... ... ....
जाको नंद सुनत गृह छाड्यो प्रचुर भयो तब मदन बली।
... ... ...
काके मात पिता अरु भ्राता के पति है कौन नवेली।
वाको लोक लाज डर कुल अन को बन भ्रमति अकेली।

मुरली के ऊपर गोपियो को खीज भी है क्योंकि वह उनकी नित्यचर्या मे बड़ा अंतराय पहुँचाती है :—

> जकि रही सुनि मुरली को टेर।
> इतते हौं निकसी पानी मिस तबहि भई गाइन की बेर।
> मोरचद्रिका धरे स्यामघन चपत नयन की हेर[१]।

सूर की भाँति परमानंददासजी की गोपियों मे भी मुरली के प्रति विवश दैन्य एव परवश आत्म समर्पण के दर्शन होते हैं :—

> हौं तो या ननउ की चेरि।
> नद नंदन के अधरनि लागति स्रवन सुनत सुख केरि।
> ... ... ...
> परमानद गुपालहिं भावै लाख बार हित मेरि।

निष्कर्ष इतना ही कि परमानददासजी का मुरली वर्णन भगवान की वह दिव्य शक्ति है जो भक्तो के निरोध के लिए हैं। इसका अदभुत प्रवाह चराचर पर व्याप्त है।

## यमुना—

संप्रदाय मे श्री यमुनाजी का वड़ा महत्व है। महाप्रभु श्री हरिराय जी ने तो भगवान एवं वल्लभाचार्य तथा श्री यमुना जी को तुल्य माना है।[२] श्री यमुना भगवान् की नित्य लीलास्थली की सतत सहचरी है। अतः वे भगवान् का स्मरण कराने वाली होने के नाते भाव वृद्धि करने वाली है। जिस प्रकार विरहतत्व साधक के हृदय स्थित भाव की वृद्धि करता है यमुना भी प्रभु-प्रेम की वृद्धि करती है।

> भगवान् विरहं दत्वा भाव वृद्धिं करोतिहि।
> तथैव यमुना स्वामि स्मरणात्स्वीय दर्शनात्।
> अस्मदाचार्यवर्यास्तु ब्रह्म सम्बन्धकारणात्।
> ताप क्लेश प्रदानेन निजाना भाव वर्द्धका:॥[३]

अर्थात् विरह के द्वारा भाव वृद्धि करने से भगवान्; स्वामी का स्मरण कराने से श्री यमुना एवं ब्रह्म सम्बन्ध कराने से आचार्य वल्लभ—तीनों ही सजातीय धर्म वाले हैं। अतः तुल्य है।

श्रीमद्भागवत में श्री यमुना के आधिभौतिक-प्रवाह रूप का माहात्म्य उतना प्रदर्शित नहीं किया गया जो आग चलकर सम्प्रदाय में उतना मान्य हो गया। प्रभु प्रेम की स्मारिका होने के नाते ही आचार्य वल्लभ ने भगवान् की तुर्य प्रिया यमुनाजी को बड़ा महत्व दिया है। आपने यमुनाष्टक में उन्होने यमुना को "सकल सिद्धि की हेतु सुरासुर से पूजित", मुकुन्द रति वर्द्धिनी अखिल भुवन-पावनी अनन्त गुण भूषिता कहकर प्रणाम किया है।[४] उनकी महिमा का गान करते हुए आचार्य चरण कहते हैं कि श्री यमुना के भक्त गण यमराज कृत बाधा इसलिए

१ तुलना कीजिए—बर्हापीड़ं नटवरवपुः ।१०।२१।५
२ अथ च पुष्टि प्रभोः श्री यमुनाः श्रीमदाचार्य चरणानां च समानो धर्मः।
३ हरिराय जी कृत यमुनाष्टक पर टिप्पणी।
४ यमुनाष्टक श्लोक स० १, २, ३, ४ आदि।

नही पा सकते कि उसकी भगिनी यमुना के पुत्र है अर्थात् भान्जे हैं। और अपने भान्जों को कोई भी मामा कष्ट नही पहुंचाता।[1] [और यदि पहुंचावे तो कंस की भांति विनाश को प्राप्त होवे।] अतः यमुना भक्त हित सपादयित्री दो स्वरूपो मे विराजती है। एक तो भगवान् की पत्नी रूप में, दूसरे चतुर्थ यूथ की स्वामिनी के रूप में। यह उनका आधिदैविक रूप है। दूसरा जल प्रवाह रूप। यह रूप आधिभौतिक है और प्रत्यक्ष है। इस जल रूप आधिभौतिक रूप को श्री हरिराय जी ने द्रवीभूत रसात्मक स्वरूप बतलाया है।[2] अतः विविधि लीलोपयोगिनी कालिन्दी की स्तुति आचार्यवर्य ने इसलिए की है कि भगवान् ने उन्हे अष्ट विधि ऐश्वर्य दिया है। इसीलिए आचार्य ने आठ श्लोको से उनकी स्तुति की है।[3]

यमुना का श्रीकृष्ण-प्रिया रूपमें वर्णन स्कंदपुराण[4] एव गर्ग सहिता[5] मे पर्याप्त रूप से मिलता है। स्कदपुराण मे तो यहां तक मिलता है कि श्रीराधा की नित्य सेवा करने के कारण ही श्री यमुनाजी को श्रीकृष्णका विरह नही होता। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की श्री यमुना के प्रति प्रभुतुल्यमान्यता के कारण सभी अष्टछापी कवियों ने यमुना को भगवान् की प्रियाके रूप मे ही स्मरण किया है। नित्य सेवा मे तो भगवन्मन्दिर में सेवक यमुना का स्मरण करके ही सेवा का अधिकारी होता है। अतः महाप्रभुजीकी इस गहरी मान्यता के कारण सभी संप्रदायी कवियो ने यमुनाजी विषयक पद पहले गाए हैं।

परमानंददासजी ने भी श्री यमुना विषयक अनेक पद लिखे हैं और उनसे कृष्ण प्रेमकी याचना की है।

> श्री यमुना यह प्रसाद हो पाउं।
>
> तुम्हरे निकट रहों निसिवासर राम कृष्न गुन गाउ।
>
> ... ... ...
>
> बिनती करौं यही बर मांगौं अधमन सग बिसराउ॥

परमानंददासजी ने श्री यमुनाजी के आधिदैविक और आधिभौतिक दोनों ही स्वरूपो की भावना की है। उन्होने यह भी स्पष्ट स्वीकार किया है कि यमुना माहात्म्य उन्होंने जगद्गुरू श्री वल्लभाचार्य से ज्ञात किया है :—

---

१ यमुनाष्टक श्लोक सं०—६

२ वस्तुतो भावात्मा भगवान् "रसो वैसः" इति श्रुते.।
तदा स्वरूपत्वादेतेऽपि तथा। तथा श्री यमुनाऽपि द्रवीभूत रसात्मक तत्स्वरूपत्वेन॥ श्री हरिराय कृत टिप्पणम्।

३ भगवताअष्टविधैश्वर्यं कालिन्दी दत्तमिति ज्ञापनाय अष्टाभिः श्लोकै स्तुवन्ति। श्री हरिराय कृत टिप्पणम्।

४ आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका।
तस्या दास्य प्रभावेण विरहोऽस्मान्न संस्पृशेद्। स्क० पु० वै० अ० श्लो० २

५ कृष्णे साचात्कृष्ण रूपत्वमेव वेगावर्त्ते वर्ततेमत्स्य रूपी।
उर्मावूर्मौ कूर्मरूपी सदा ते बिंदौ बिंदौ भाति गोविंद देवः। गर्गसंहिता माधुर्यखण्ड यमुनास्तवे श्लो० ५

यह जमुना गोपालहि भावै ।
जमुना नाम उच्चारत धर्मराज ताकी न चलावै ।१
...                                    ...
तीथ माहात्म्य जग जगतगुरू सों परमानददास लही ।[1]
यमुना के कृष्ण प्रियात्व की ओर भी उन्होंने सकेत किया है:—
जमुना सुखकारिनी प्रानपतिके ।
......          ......          ...
पिय सग गान करे अति रस उमडि भरि देत करतारी लेत झटकै ।
......          ......          .......
यमुना के साथ अब फिरत हैं नाथ ।
औरभी
जमुने पियको बस तुम कीने ।

सक्षेप मे इतना ही कि परमानददासजी की यमुना विषयक सभी मान्यताएँ सप्रदायानुकूल एव आचार्य वल्लभ के सिद्धान्तानुसार हैं ।

रास—

श्रीमद्‌भागवत में रास लीला प्रसग पर पाँच अध्याय हैं। इन्हे ही रास पचाध्यायीके नाम से पुकारा जाता है । वैष्णव सप्रदायों मे रास पचाध्यायी को भागवत का हृदय पुकारा जाता है। यदि सपूर्ण भागवत को देह माने तो रास पचाध्यायी को इस महापुराण को हृदय मानना चाहिए । यों भी पीठिका-भावना मे श्री गोपेश्वरजी लिखते हैं—

"शब्दात्मको भगवान् निबधे भावनातरे चास्ति। प्रथम द्वितीय स्कधौ चरणौ तृतीय चतुर्थी, जघे उरु दक्षिण श्री हस्त. स्तनभागौ । हृदयम्, शिर वाम श्रीहस्त क्रमेण ।" इसके अनुसार दशमस्कध हृदय है । दूसरे शब्दो मे सपूर्ण श्रीमद्‌भागवत का तात्पर्य इसी स्कध में है। अध्याय २९ से ३३ तक का (आचार्य वल्लभ के अनुसार अध्याय २६ से ३० तक, क्योंकि वत्सहरण लीला प्रक्षिप्त हैं) यह भाग तामस फल प्रकरण के नाम से पुकारा गया है । इसमे तामस (नि साधन) भक्तों के निरोध का वर्णन है और वह अत्यन्त गुप्त होने से फल प्रकरण कहलाता है ।

रास की व्याख्या किन्ही सज्जनों ने "रसाना समूहो रास "कहकर की है, किसी ने उसे "चारु क्रीडा"[2] बतलाया है । परन्तु आचार्य वल्लभ ने "रास" की व्याख्या करते हुए कहा है—"बहु नर्तकी युक्तो नृत्य विशेषो रासः।" अर्थात् बहुत सी नर्तकियों से युक्त नृत्य विशेष का नाम "रास" है [सुबो०] इस रास का उन्होंने आध्यात्मिक अर्थ लगाया है । उन्होंने रास पचाध्यायीके आरभ मे ही सुबोधिनी में स्पष्ट कर दिया है कि "ब्रह्मानद रूपी हृदय सरोवर में निमग्न गोपीजनो का उद्धार करके उनको भजनानदका दान करने के लिए ही प्रभु

---

१ यमुनाष्टक श्लोक स०—६

२ रास कन्दुक खेलाद्या चारु क्रीडाय कीर्तिना । उ० नी० सखि० पृ० २७८

ने रास क्रीड़ा की है।[1] इस रास लीला के नायक श्रीकृष्ण हैं। 'कृष्ण' का अर्थ ही सदानंद है। वह आनंद-रूप-रस-स्वरूप है गोपिकाएँ इस स्वरूप की शक्तियाँ हैं। भगवान का स्वरूप भावात्मक है। भक्त उन्हें जिस भाव से भजता है वे उससे उसी भाव से मिलते हैं।[2] रासलीला भक्तों के भावों की अभिव्यक्ति है। दूसरे रसात्मक ब्रह्म का स्वशक्तियों के साथ रमण ही 'रासलीला' है। जिसे भागवतकार ने इतना सरस हृदयग्राही और मनोज्ञ बना दिया है।

रासलीला दिव्य है। इसका एकमात्र उद्देश्य कन्दर्प का दर्प दलन है। भागवत गूढ़ार्थ दीपिका के लेखक ने अपनी टीका में स्पष्ट लिखा है कि 'इन्द्र वरुण आदि के विजय में क्या विशेषता है। ब्रह्मादिक को जय करके काम को बड़ा दर्प हो गया था अतः उसी काम को भगवान् ने पराजित कर दिया। इसलिये भागवत का लक्ष्य रासक्रीड़ा वर्णन है।[3]

जीव गोस्वामी भी रास क्रीड़ाका यही तात्पर्य बतलाते हैं। वे कहते हैं "अथ ब्रह्मेन्द्राग्नि वरुणादीनां दर्पं शमयित्वा कंदर्पस्य दर्पं शमयितुं युगपदनेक रमणीं कदम्ब संवलित रासात्मना कस्यमारिप्सुभर्गवानेकदा स्वयोगवैभवं प्रादुश्चकार।"[4] अर्थात् ब्रह्मा, इन्द्र अग्नि आदि का दर्प दलन करके भगवान् ने कामदेव का दर्प दूर करने के लिए ही अनेक रमणियों से संवलित होकर रास नाम की क्रीड़ा को किया।" भगवान् श्रीकृष्णने इस लीला में कामका भी मथन कर डाला है। इसलिए भागवतकार ने स्तुति करते हुए उन्हें "साक्षात्मन्मथमन्मथ:" कहा है।

आचार्य वल्लभने सुबोधिनी की कारिकाओं में स्पष्ट कर दिया है कि समस्त क्रियाएँ वही की वही (काम क्रीड़ा जैसी) होने पर भी उसमें काम का लेश नहीं। यहाँ उन गोपियों के कामकी निवृत्ति निष्काम (भगवान) से हुई है। यदि 'काम' की 'काम' से ही पूर्ति होती तो उससे संसार की उत्पत्ति होती। काम का अभाव करके पूर्ण काम भगवान् सतत निष्काम ही बने रहे इसमें कोई संशय नही है। यहां किसी प्रकार मर्यादा का भंग भी नही है। उल्टा वह सायुज्य मोक्षरूपी फल को देने वाला है। इसी कारण इस लीला को श्रवण करने वाले लोग निष्काम होते हैं। क्योंकि भगवान् का रास लीला चरित्र सर्वथा निष्काम है। उसमें काम का लेशमात्र उद्बोध नही। इसके लिए महात्मा शुकदेवका कथन यहाँ स्पष्ट है।[5]

---

१ ब्रह्मानंदात्समुद्धृत्य भजनानंद योजने।
लीला या युज्यते सम्यक् सा तुर्ये विनिरूप्यते ॥ सु० दशम स्कंध अध्याय २९ का० १

२ यंयं वापि स्मरन्भावं। गीता ८।६

३ इंद्र वरुणादि विजये किं चित्रम्? ब्रह्मादि जय सरूढदर्पः कामोऽपि भगवता पराजितः। इति ख्यापनीय क्रमप्राप्तां भगवत कृतां रास क्रीड़ा वर्णयितुमुपक्रियते—श्रीधक्रियति कृत भा० गू० दी० द० स्कंध।

४ जीवगोस्वामी कृत बृहत्क्रम संदर्भ।

५ क्रिया सर्वापि सैवात्र परं कामो न विद्यते।
तासां कामस्य सपूर्तिर्निष्कामनेति तास्तथा ॥
कामेन पूर्तिः कामः ससारं जनयेत्स्फुटः।
कामाभावेन पूर्णस्तु निष्कामः स्यात् न संशयः।
अतो न कामि मर्यादा भंगना मोक्षफलापि च ॥
अतएवतत्श्रुतेर्लोको निष्कामः सर्वथा भवेत्।

...... ...... ......

अतः कामस्य नोद्बोधः तत्र शुकवचः स्फुटम् ॥

ग्राचार्य वल्लभ एव जीवगोस्वामी ग्रादि भगवदीयजन जो श्रीमद्भागवत के तात्पर्य के ग्रनन्य मर्मज्ञ हैं रासलीला रहस्य के विषय मे एक स्वर ग्रौर एकमत हैं। सप्रदाय के सभी ग्रन्य व्रज भाषी-कवियो ने एव ग्रष्टछाप के कवियो ने रास लीला प्रसग को बड़े उत्साह ग्रौर समारोह के साथ उठाया है। ग्रौर उसे लौकिक पद्धति से वर्णन करके भी उसके मूल प्रयोजन को नही ग्रोझल होनदिया है। सूर ग्रौर नददासजी के रासलीला प्रसग तो भक्तों के सर्वस्व हैं। नददासजी की रास-पचाध्यायी हिन्दी साहित्य मे मणि की भाँति उद्दीप्त ग्रौर मूर्धन्य है। इन सभी भक्तो ने रास लीला के ग्राध्यात्मिक ग्रथवा ग्रलौकिक तात्पर्य को दृष्टि-पथ मे रखा है।

## परमान्ददासजीके रास लीला विषयक पद

परमानददासजी ने रास क्रीडा का वर्णन श्रीमद्भागवत के ग्राधार पर किया है। उन्होने भी रास के ग्रलौकिकत्व की चर्चा की है।

रास मडल मे बन्यो माधो,
गति मे गति उपजावै हो।
.. ...

सरद विमल निसि चद विराजित,
क्रीडत जमुना कूलै हो।
परमानद स्वामी कौतूहल,
देखत सूर नर भूले हो।

भागवत के "भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्ल मल्लिका"[१] वाले वातावरणको तो तेपरमानददासजी ग्रपने पदो मे ज्यो ग्रपने पदो मे ले ही ले ग्राये हैं किन्तु ग्राकाश में स्थित देवों के विस्मय को भी चित्रित करना वे नही भूले हैं। महारास मे एक एक गोपी के साथ एक एक कृष्ण हो गये हैं :—

मडल जोरि सबै एकत भए निर्तत रसिक सिरोमनी।
मुकुट घरे सिर पीतपट कटितट बाँधे तान लेत बनी ठनी।
एक एक हरि कीनी व्रज बनिता ग्ररु सोहैं जनी जनी।
चढि विमान सुर जुवति निरखि कै कहैं परस्पर गिरिधर धनी।
... ... ...

ग्रज वनिता मध रसिक राधिका बनी सरद की राति हो।
.... ... ...

एक एक गोपी बिच बिच माधौं बनो ग्रनूपम भाति हो॥
रास में ग्रालिगन चुम्बन परिरभण की चर्चा श्रीमद्भागवत के ही ग्रनुसार है—
रास रच्यो बन कुँवर किसोरी।
...... ......

ग्रालिगन, चुम्बन परिरभन परमानद डारत तृन तोरी॥

१ श्रीमद्भागवत—१०।२६।१

वह रात्रि जैसा कि श्रीमद्भागवतमें आया है ब्रह्मरात्रि थी जोकि मानवीयमान से कल्पों के बराबर थी।[1]

> बन्यौ ताल भरसक राधे सरद चाँदिनी राति।
> ... ... ....
>
> रथ टेकि ससि हर रह्यौ सिर पर होत नहीं परभाति।
> अंत मे कामदेव तक उस दृश्य में आत्मविस्मृत हो जाता है।
> गोपाल लाल सो नीके खेलि।
> विकल भई संभार न तन की सुन्दरि छूटे बार सकेलि।
> चंदन मिटत सरस उर चंदन देखत मदन महीपति भूल।
> ... ... ...
>
> बाहु कंध परिरंभन-चुम्बन महामहोच्छव रास विलास।
> सुर विमान सब कौतुक भूले कृष्ण केलि परमानंददास।[2]

अकस्मात् भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं। और गोपियाँ विरहगीत ( गोपी गीत ) गाती हुई डाल-डाल पात-पात से पूछती फिरती हैं।

'माई री डार डार पात पात बूझत बन राजी।'[3]

कृष्ण एक सखी को लेकर तिरोहित हुए हैं। वह थक गई है अतः उसे कंधे पर उठा लेते हैं। उसे गर्व होता है, अतः कृष्ण उसे भी छोड़ जाते हैं और वह अपनी भूल पर पछताती है।[4]

> "कांधारोहन मांगि सखीरी नंद नंदन सौ मैं कीनी ढीठी।
> .... .... ...
>
> अब अभिमान करौं नहिं कबहूँ तेरे हाथ देउं लिखि चीठी।

१—*परमानंददासजी का रास भागवतानुसारी मुख्यतः शरद् रास है। उन्होंने जयदेव* और सूर की भांति बसंतरास और शरद्रास को मिला नहीं दिया है। उन्होंने भागवत के अनुसार उसे शरद्रास ही रखा है।[5] इस प्रकार अन्य सभी प्रसंगों की भांति परमानंददासजी रास क्रीड़ा प्रसंग में भी श्रीमद्भागवत और आचार्य वल्लभ के वचनों पर कट्टरता से आश्रित हैं। संक्षेप में यदि हम परमानंददासजी के लीला विषयक पदों पर विचार करें तो हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं:—

परमानंददासजीकी लीला भावना सम्पूर्ण आनंद भावना है। लीला आनंदात्मक है। उसका उद्देश्य भक्तों को सुख देना है। लीला पूर्ण निरपेक्ष और स्वतंत्र है। लीला और भक्ति में कोई अन्तर नहीं उन्होंने अपने सभी लीला विषयक पदों में वे अपनी स्वाभाविक कल्पना और मौलिकता के साथ श्रीमद्भागवत महाप्रभु वल्लभाचार्य की सुबोधिनी-इन्ही दो ग्रन्थों का अत्यधिक समाश्रय लिया है। इसके अतिरिक्त वे अपने समसामयिक

---

१ ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः। १०। ३३। ३९

२ श्रीमद्भागवत—१०।३३।२५-२६

३ श्रीमद्भागवत—१०।३०।४-६

४ श्रीमद्भागवत—१०।३०।३९-४०

५ वही १०।३२।१२

अन्य अष्टछापी कवि सूरदास, कुम्भनदास, आदि की समशैली का भी अवलंबन लिए हुए हैं। वे अपने काव्य मे लीला के आध्यात्मिक तात्पर्य को अत्यधिक प्रबल नही होने देते। इससे भगवल्लीलाओं का प्रकृत माधुर्य अक्षुण्ण बना रहा है। उसी प्रकार वे भागवत के अन्य स्कंधो की कथाओं के पचड़े मे नही पडे हैं। उन्होंने यावदर्थ लीलाओ को ही अपनी काव्योपयोगिनी बनाया है। उनकी वृत्ति भगवान् की बाल से लेकर किशोर लीलाओ तक ही रमी है। आगे नही।

कवि ने महाप्रभुजी के वचनों का सर्वाधिक अनुसरण किया है। राधा, गोपी, मुरली, यमुना, रास, गोकुल, वृन्दावन आदि सबके विषय मे उनकी वे ही मान्यताएँ हैं जो महाप्रभु जी की थी। उसी प्रकार उनके लीला गान मे विस्तार की अपेक्षा गहनता अधिक है। लीला विशिष्ट पदो मे सरलता, सुकुमारता, माधुर्य और स्वाभाविकता कूट कूट कर भरी हुई है। यदि सूर अपनी मानलीला के लिए और नंददास अपनी रास पंचाध्यायी के लिए अद्वितीय हैं तो परमानददासजी अपनी बाल लीलाओ के लिए अप्रतिम हैं। संक्षेप मे लीला गान के वे अपने क्षेत्र मे अद्वितीय है। भागवत तथा महाप्रभुजी के वचनो का इतना अधिक सटीक अनुसरण शायद ही किसी अन्य अष्टछापी कवि मे मिलता हो।

---

# अष्टम अध्याय

## परमानंददासजीका काव्य पक्ष

यह तो कहा जा चुका है कि अष्टछाप के कवियों का उद्देश्य कोरी काव्य रचना करना नहीं था। वे मुख्यतः भक्त थे और श्री गोवर्धननाथजी के मंदिर में कीर्तन सेवा करना ही उनका नित्य का प्रिय कार्य था। वे अपने मानव जन्म का विनियोग अपने आराध्य के चरणों में कर चुके थे। अतः उनके काव्यों में भक्ति-तत्व मुख्य है और काव्य-तत्व गौण। इसी प्रकार परमानंददासजी भी मुख्य रूप से भक्त पहिले हैं कवि अथवा कीर्तनकार उसके उपरांत। सभी अष्टछापी कवियों को हम तीन रूप में देख सकते हैं।

१—भक्त

२—कवि

३—लीला गायक अथवा कीर्तनकार

इसके अतिरिक्त इन भक्ति-कवियों में दार्शनिकता ढूंढ़ना व्यर्थ है। प्रसगवश यदि इन कवियों से दार्शनिक तत्वों–ब्रह्म, जीव, जगत् मायादि—की चर्चा आ गई है तो उसके आधार पर इन्हें दार्शनिक नहीं कहाजा सकता। इसी प्रकार इन्हें कोरा कवि समझ कर इनके काव्यों का अनुशीलन करके उसमें काव्य शास्त्रीय गुण दोष ढूंढना और उनकी समीक्षा करना इनका एकांगी अध्ययन ही होगा। फिर भी इनका काव्य-सौष्ठव गौण नहीं। वार्ता में तो सूरदास और परमानंददास को 'सागर' कहा गया है। यद्यपि भगवल्लीला गायक होने के नाते इन्हें 'सागर' की उपाधि से विभूषित किया गया है तथापि पदों की बहुसंख्यकता भी उसमें एक कारण है। यद्यपि सूरदास की भांति परमानंददासजी ने भागवत के सभी स्कंधों की कथा को अपने पदों में वर्णन नहीं किया है, न उनकी भांति अन्य पौराणिक आख्यानों को ही लिया है, फिर भी उनके श्रीकृष्णलीला विषयक पदों की संख्या बहुत बड़ी है और उनकी वैज्ञानिक शैली से समीक्षा होनी ही चाहिये। परमानंददास जी संप्रदाय में सूर के समकक्ष ठहराये गये हैं। अतः यह आश्चर्य की बात है कि जहां सूर के काव्य पर अनेक समीक्षात्मक ग्रंथ लिखे गये हैं वहां परमानंददासजी पर अद्यावधि एक भी स्वतन्त्र समीक्षात्मक ग्रंथ उपलब्ध नहीं। जितनी थोड़ी बहुत चर्चा उनकी हुई है वह अन्य अष्ठछापी कवियों के साथ ही। अतः उन पर स्वतंत्र समीक्षात्मक ग्रंथ की आवश्यकता बनी रह जाती है।

## परमानंददासजीका काव्य-विषय

परमानंददास जी मुख्यतः लीला-गायक हैं उसमे भी उन्होंने बाल लीला को ही अधिक प्रधानता दी है। महाप्रभु वल्लभाचार्य से दीक्षा लेने के उपरान्त उन्होंने भागवत के दशमस्कंध की अनुक्रमणिका श्रवण की और उनमे सूर की भांति हरि-लीला का स्फुरण हुआ। तब से महाप्रभु जी के साथ रह कर नित्य सुबोधिनी का अनुसरण करते हुए लीला परक पदों की रचना करने लगे। कहा जाता है कि अडैल मे निवास करते हुये वे महाप्रभुजी के नित्य संपर्क में रहतेहुए उनके श्रीमुख से जो भी सुबोधिनी श्रवण करते, उसे ही बाद मे पदोंमें ग्रथित कर देते थे।

बाद में ब्रज आने पर और सूरदास जी के साथ श्री गिरिराज पर श्री गोवर्द्धननाथ जी के मंदिर मे कीर्तन सेवा करने लगे थे। कीर्तन-सेवा मुख्यतः 'राग सेवा' है। इसमे भगवान की ब्रज लीलाएँ शास्त्रीय पद्धति पर गाई जाती हैं। अतः सभी अष्टछापी कवियो की शैली स्वाभाविक रूप से क्रमबद्ध मुक्तक गेय शैली बन गई। इस क्रमबद्ध मुक्तक गेय शैली मे परमानददासजी ने असंख्य पदो मे भगवल्लीला गान किया है। इस पद शैली मे स्वभावतः भावो का उद्‌गार, वर्णन की सक्षिप्तता, संगीत की मधुरता, तन्मयता कोमल-कांत-पदावली एव सरस भावपूर्ण कोमल-प्रसगों की योजना रहती है। इसी कारण इन कवियों का मुख्य काव्य विषय श्री भगवान कृष्ण की मधुर मोहक ब्रज लीलाएँ हैं। ब्रज से बाहर के लीला प्रसंगों का उन्होने गान नही किया। रसात्मा रासेश्वर रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण का प्रेम स्वरूप ही उनका काव्य विषय था, तदतिरिक्त उन्हें कोई विषय अपने काव्य के लिए उचित लगता ही न था। भावावेश और एकांत तन्मयता के साथ लीलासक्ति स्वरूपासक्ति और भावासक्ति के जो मधुर पद उनके मुख से निकले वे ही सागर बन गए। उनमें काव्य की शृंखला अथवा घटनाओ की संक्षिप्तता, किंवा दार्शनिक तथ्यों की सावधानी बन गई तो बन गई, अन्यथा कवि उसके प्रति सजग किंवा प्रयत्नशील नही था, न उसने इन सब बातो की चिन्ता ही की। वे कृष्ण लीला गान मे मतवाले रहकर गोकुल प्रसग तक ही सीमित रहे अतः उनके पद कृष्ण जन्म से लेकर प्रायः मथुरा गमन और उद्धवागमन तक पाये जाते हैं।

निम्नांकित सूची परमानंदसागर के उन सभी विषयों की है जो कवि को अपने 'सागर' के लिए रुचिकर हुए:—

१. श्रीकृष्ण स्तुति।
२. कृष्ण जन्मबधाई--छठी, पलना, करवट, उलूखल, देहली-उल्लंघन आदि।
३. बाल-लीला—मृत्तिका-भक्षण--विश्व दर्शन आदि।
४. राधा जन्म बधाई।
५. पालने के पद।
६. गोदोहन, गो-चारण आदि।
७. गोपियो का उपालभ, यशोदा का प्रत्युत्तर।
८. राधा कृष्ण की परस्पर आसक्ति, प्रेमालाप हास्य-विनोद।
९. राधा कृष्ण मिलन, गोपी-प्रेम, बाल-लीला आदि।
१०. दान-लीला, पनघट प्रसंग, गोपियों की स्वरूपासक्ति।
११. गोवर्धन लीला, अन्नकूट, गोपाष्टमी, व्रतचर्या।
१२. वन से प्रत्यागमन, गोपियो की उत्कंठा।
१३. राधा-मान, कृष्ण का दूती-कार्य।
१४. गोपियो की आसक्ति, राधा-कृष्ण का सौंदर्य वर्णन।
१५. रास, निकुंज-लीला, मुरली, राधा कृष्ण की युगल लीला, वन-विहार, सुरतान्त वर्णन-शृंगारिक पद।
१६. खण्डिता के पद गोपियों का उपालंभ।
१७. वसन्त, होरी, चाँचर, धमारके पद, फूलडोल।
१८. कृष्ण का मथुरागमन।

१९. गोपियों का विरह ।
२०. उद्धव का ब्रज में आगमन, भ्रमरगीत ।
२१. ब्रज का महात्म्य, ब्रज भक्तों का माहात्म्य ।
२२. यमुना का माहात्म्य, गंगाजीका माहात्म्य, भगवान् और भगन्नाम का माहात्म्य। भक्ति का माहात्म्य, गुरू महिमा ।
२३. स्व-समर्पण, दैन्य, विनय, आत्मप्रबोध ।
२४. महाप्रभु वल्लभाचार्य, गोस्वामी विट्ठलनाथजी तथा उनके सात पुत्रों की बधाई ।
२५. नृसिंह जयन्ती, वामन जयन्ती, रामनवमी के पद ।

उपर्युक्त पदों की सूची में वर्ष भर के उत्सव तथा नित्यसेवा के पद दोनों का ही समावेश इस सूची से स्पष्ट है। परमानंददासजी का काव्य विषय दशमस्कंध उसमें भी विशेषकर पूर्वार्द्ध तक का ही लीलागान है। इन्हीं सरस, कोमल रमणीय प्रसंगों को लेकर कवि अपने काव्य जगत में रमता रहा।

## परमानंददासजी की शैली

कृष्ण काव्य के सरस प्रसंगों के आधार के कारण और कवि की कोमल ललित प्रसंग रुचि के कारण उनकी शैली सहज ही संगीतात्मक अथवा गेय बन गई है। सभी पद गेय और क्रमबद्ध मुक्तक हैं। इनमें भागवत के श्रीकृष्ण लीला—कथानकों की गहरी छाया है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के प्रसंगों को लेकर कवि ने अपनी दिव्य प्रतिभा और कल्पना के कारण 'गागर में सागर' भर देने का सफल प्रयास किया है।

गेयपद शैली कहीं तो सत्वरगामिनी, और कहीं प्रसंग की सरसता, मनोरमता के कारण मंथर, गम्भीर और व्यंजक होती है। कहीं तो उसमें गतिशील प्रबंधात्मकता और कहीं प्रबंध की मधुरता और भाव-गहनता आजाती है। गेयपद शैली में भाव-सौंदर्य के साथ कोमल कान्त पदावली, संगीतात्मकता और संक्षिप्ता भी रहती है। वस्तुत: अनंत घटना संकुल कृष्ण-चरित गेयपद शैली के अत्यन्त ही अनुकूल पड़ता है। भुवन सुन्दर नयनाभिराम श्रीकृष्ण का चरित इतना मनोज्ञ और अभिराम है कि उससे भावोन्माद और संगीत की सृष्टि स्वयमेव हो जाती है। यदि रामचरित के गान से किसी गद्यात्मक मनोवृत्ति का 'कवि' होना सहज संभाव्य हो जाता है तो कृष्ण-चरित भी किसी को सहज ही भावुक भक्त बना सकता है। इसी कारण अधिकांश क्या लगभग सभी कृष्ण-चरित-गायक मुक्तककार सहज ही भक्त कवि बन गए हैं। इनकी एक लम्बी परंपरा के विषय मे चर्चा करते हुये 'सूर और उनका साहित्य' के विद्वान् लेखक ने लिखा है—'वास्तव मे यह कोई नई शैली नही थी, अपितु भारतीय साहित्य में युग युगान्तर से चली आती हुई एक परम्परा थी जिसमें विशेष विभूतियों द्वारा समय समय पर परिवर्तन, परिवर्द्धन, और संशोधन होते रहे हैं। इस गीत शैली का उद्भव कब हुआ यह निर्णय करना अत्यन्त दुष्कर है किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि गीतों का इतिहास इतना ही पुराना है जितना स्वयं भाषा का। भाषा के मूल तत्वों में गीत के भी मूल तत्व निहित मिल जाते हैं।

वस्तुतः गीत मानव-जीवन के आदिम युग से ही चले आ रहे हैं। वेदों में भी गीत शैली के दर्शन होते हैं। उसके उपरान्त लौकिक संस्कृत तो गीतों से भरपूर है। स्तोत्रों, स्तुतियों, अष्टको की तो लौकिक संस्कृत साहित्य में कमी नहीं। उसके उपरान्त अपभ्रंश

साहित्य के तीन प्रमुख बंधों—दोहा बंध, पद्धडिया बंध, एवं गेयपद बंध में अन्तिम गेयपद बंध वही गीत शैली की परंपरा है। हां गेय पदो का अपभ्रंश साहित्य अधिक नहीं।[१] यही परम्परा जीवित रह कर आगे बढी और आगे चल कर हिन्दी साहित्य मे खूब पल्लवित हुई। वही परम्परा अष्टछाप के कवियो को अपनी भक्ति-भावना व्यक्त करने के लिये पूर्ण विकसित रूप मे प्राप्त हुई थी। यह शैली व्रज के अष्टछापी कवियों के हाथ मे पड़ कर इतनी निखरी कि इस काल का गीति-काव्य इस शैली का चरमोत्कर्ष कहा जासकता है। इस शैली का साम्राज्य इतना बढा कि व्रज भाषा मे प्रबंध काव्य लिखने का किसी को साहस ही न हुआ। इसी को लक्ष्य करके आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूष धारा जो काल की कठोरता मे दब गई थी अवकाश पाते ही लोक भाषा की सरसता मे परिणत हो कर मिथिला की अमराइयों मे विद्यापति के कोकिल कंठ से प्रकट हुई और आगे चलकर व्रज के करील कुंजो के बीच फैले मुरझाये मनो को सीचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्री कृष्ण की मधुर-लीला का कीर्तन करने उठी"।[२]

गीति शैली की परम्परा के विवेचन से और सक्षिप्त चर्चा से यह निष्कर्ष निकलता है कि गीति शैली की एक सुदीर्घ श्रृंखला थी जो सस्कृत और उस से पूर्व वैदिक साहित्य से चली आ रही थी। और कृष्ण भक्त कवियो मे आकर उस शैली का चरमोत्कर्ष हुआ। इसलिये आचार्य शुक्लजी ने तो सूरसागर को एक बडी लम्बी चली आती परम्परा का विकसिततम परिणाम माना है।

वे लिखते हैं—"सूरसागर किसी पहले से चली आती हुई परम्परा का—चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास सा जान पडता है," आगे चलनेवाली परम्परा का (प्रथम) रूप नहीं।"[३]

और जब परमानंदसागर सूरसागर के टक्कर का कहा जाता है तब निश्चय ही वह भी गीति परम्परा का एक विकसिततम रूप है। दोनो सागरों मे अन्तर केवल इतना ही है कि सूरसागर में भागवत के सभी स्कधो के कथानको का—चाहे संक्षेप में ही सही—थोडा बहुत समावेश है, परन्तु परमानंदसागर जिस रूप में आज उपलब्ध है—मुख्यतः दशमस्कंध और उसमें भी पूर्वार्द्ध तक ही सीमित रहा है। परन्तु अपनी सरसता संगीतात्मकता और विषय की अनुकूलता की दृष्टि से उसमें सफल गेयपद शैली के पूर्ण दर्शन होते हैं।

## परमानंददासजी के गेय पदों का वर्गीकरणः—

परमानदसागर में मुख्यतः दो शैलियो के दर्शन होते हैं:—

१—कथात्मक गेय पद शैली।

२—प्रसगात्मक गेय पद शैली।

१—कथात्मक गेय पदों के अन्तर्गत वे पद आते हैं जो श्रीमद्भागवत के काव्य-प्रसंगो की ओर सकेत देते हुए प्रसग को आगे वढाते हैं। जैसे—जन्म बधाई, छठी, पालने के पद, अन्न

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० २६।

२ भ्रमरगीत सार—भूमिका पृ० १-२।

३ वही पृ० ११।

प्राशन, करवट, ऊखलबंधन, गोचारण, दानलीला, गोवर्धन लीला आदि। इनमें भगवान की महिमा की बार बार पुनरावृत्ति, संस्कारों के नाम, भोजन सामग्री के नाम जो वस्तु-परिगणन-शैली के आधार पर हैं—आते हैं। इन पदों में थोड़ी सरवरगामिता है।

२—प्रसंगात्मक गेय पद:—ये वे पद हैं जो किसी एक सरस कोमल प्रसंग को उठा कर लिखे गये हैं और जिनमें भावों का उन्माद कल्पना की रमणीयता, भावों की सरसता और कोमलता के साथ लाक्षणिकता एवं विविध व्यंजना के साथ चरम भाव-सौंदर्य के दर्शन होते हैं इसके साथ ही इन पदों के अन्तर्गत स्वरूपासक्ति सौन्दर्यानुभूति हृदय के विविध भावों, मनोदशाओं मनोवैज्ञानिक तथ्यों के दर्शन होते हैं। इनमें इतनी तन्मयता होती है कि एक एक पद में पाठक भाव-विभोर होकर उसकी पुनरावृत्ति करता हुआ भी कभी तृप्त नही होता। येही पद 'सिर चालन' कराने वाले पदों की कोटि में आते हैं। इनमें संयोग-विप्रयोग की विविध मनोदशाओं का चित्रण होता है। भक्ति, दैन्य, आत्म-समर्पण, विश्वास, धैर्य, स्थिरमतित्व दृढ़ता, कातरता, गांभीर्य, भावुकता, कोमलता कौर मुग्धता आदि तत्वों का इन पदों में समावेश होता है। सरलतम शब्दों में गहनतम अनुभूति इन पदों की अपनी विशेषता होती है। परमानन्ददासजी के बाललीला, स्वरूपसौन्दर्य, भक्ति-भाव, दैन्य, संयोग-विप्रयोग आदि प्रसंगो पर जो पद हैं वे इसी प्रकार के हैं।

उपर्युक्त दो शैलियों के अतिरिक्त परमानन्ददासजी मे किसी अन्य शैली के दर्शन नहीं होते। सूर की दृष्ट-कूट पद शैली का उनमें प्रायः अभाव है।[१] क्लिष्टता तो उन्हें छू तक नही गई है। साथ ही पाण्डित्य-प्रदर्शन अथवा अभिव्यक्ति में घुमाव फिराव उन्हें पसंद नही। सीधी साधी सरल अभिव्यक्ति और हृदय से निर्गत सरस प्रेम का प्रवाह ही उनके काव्य का निखिल सौंदर्य सँभाले हुये हैं; और इसी में उनका पूर्ण विश्वास भी है। परन्तु वस्तु की दृष्टि से उनकी उभय शैलियों को झाँका जाय तो वह अपनी अनुभूति की गहनता और दृष्टिकोण की एकांतिकता की प्रधानता के कारण वह आत्म प्रधान (Subjective) ठहरेगी, विषय प्रधान (Objective) नहीं। क्योंकि वे वस्तु वर्णन को उतनी प्रधानता नही देते, जितना भाव-चित्रण को। इसी कारण उनके पद एक राशि अथवा एक समूह के रूप में मिलते हैं, जिसे भाव-राशि कहना चाहिए और जिसका उद्गम स्थल उनका मानस है। एकांत-समाधि के उन सरस क्षणों में—जब कि वे भगवल्लीला का साक्षात्कार अपनी भावस्थली में कल्पना के नेत्रों से किया करते थे तब तो सरस पदों की सुरसरि धारा वेगमय होकर फूटकर चलती थी। जिसके लिये किसी प्रकार का सर्गात्मक विभाजन या काव्य-शास्त्रीय नियमों के विधि-निषेध का बाँध नहीं बंध सकता था। अपनी स्वच्छन्द गति में बहती हुई उनकी काव्य धारा कल्पना के उभय कूलों में कभी इधर के सैकत-तट को स्पर्श करती है तो कभी उधर के। उनका यह भाव-क्षेत्र प्रेम-तत्व से नितान्त ओत-प्रोत था। इसके अतिरिक्त उनके काव्य मे कोई अन्य तत्व नही। सूर तो श्रीमद्भागवत के अन्य प्रसंगों मे उलझे हैं, परन्तु परमानन्ददास को सरस लीला वर्णन के अतिरिक्त किसी अन्य प्रसंग के लिए अवकाश ही नहीं। प्रेम और शृङ्गार की प्रबल एकान्त-भावना के कारण परमानन्ददासजी के काव्य पर यह आक्षेप किया जाता है कि उसमें समाज मर्यादा की अवहेलना की गई है किन्तु वस्तुतः यह आरोप अविचार पूर्ण ही ठहरता है - क्योंकि

१ परमानन्ददासजी का केवल एक ही कूट पद लेखक को प्राप्त हुआ है। देखो—परमानन्दसागर का ६१२ संख्यात्मक पद। लेखक द्वारा सम्पादित संस्करण।

श्रीमद्भागवत और सुबोधिनी के रहस्यों को जानने और सम्प्रदाय की पद्धति पर कठोर दृष्टि रखने के उपरान्त उनके काव्य मे अमर्यादा कहीं रह ही नही जाती। वस्तुतः उनका काव्य प्रेम-काव्य है। जिसमे रागानुगा प्रेम-लक्षणा भक्ति की ही पुष्टि है जिसको लोक-वेद-मर्यादा की कोई अपेक्षा नही। परमानन्ददासजी के काव्य मे चित्रित प्रेम के गहन स्वरूप को समझने के लिये साधारण लोक-बुद्धि या तथाकथित मर्यादा-दृष्टि से काम न लेकर साम्प्रदायिक भाव-पद्धति को समझना चाहिए जिसमे मन की अखिल वृत्तियाँ भगवदभिमुख हो जाती हैं। सक्षेप में परमानन्ददास जी अथवा अन्य अष्टछापी कवियों मे लोकमंगल की भावना का सादा स्थूल-स्वरूप न होकर वह व्यष्टि-साधना के माध्यम से मिलेगा। इन कवियो ने पूर्णतः 'स्वान्तः सुखाय' लिखकर भी लोक कल्याण की अवहेलना नही की है। हां, तुलसी की भांति इन कवियों का लोक कल्याण सीधा (Direct) अथवा प्रत्यक्ष नही है। उसमे सूक्ष्म अप्रत्यक्ष लोक-मंगल का भाव ही दृष्टिगोचर हो सका है। यहाँ सूक्ष्म अथवा अप्रत्यक्ष लोकमंगल से मेरा तात्पर्य इन लीलागायक कृष्ण भक्त कवियों की लोक पावनी अनन्य भक्ति से है जिसमें लोक-हित अथवा भूत-कल्याण-भावना स्वयमेव आगई है। यही कारण है परमानन्ददास जी ने गोवर्द्धन-लीला को अपने काव्य मे विशेष महत्व दिया। कृष्ण माखन चोर हैं, गोपी चित चोर हैं किन्तु आराध्य के इन लोक रंजक स्वरूपो की इतनी पुनरावृत्ति नही जितनी पूतना-वध, शकट संहार, तृणावर्त-वध, कालीय-मर्दन, यमलार्जुन-उद्धार आदि प्रसगो की। दानव-सहार पर बार-बार कवि ने प्रसन्नता प्रकट की है। भगवान के इस लोक रक्षक रूप की बार बार चर्चा करने और पाठकों के सामने उनके प्राणि-हित पूर्ण कार्यों को लाने मे कवि को अत्यन्त प्रसन्नता और गौरव है। उसका उद्देश्य भगवान के लोक-मंगल रूप का उद्घाटन करना ही है। कवि को वे ही प्रसंग बार बार प्रिय हैं जिनमें भगवान ने मानव के कल्याण का सप्रयत्न सम्पादन किया है। परमानन्ददासजी और सभी अष्टछापी कवियों की अप्रत्यक्ष रूप से यही काव्य मे लोक-मंगल-साधना है। तुलसी जैसे लोकमंगल के पक्षपाती कवि सीधे साधे मानवावतार का उद्देश्य दुष्ट-दलन, असुर-संहार बतलाकर धर्म-राज्य की स्थापना के लिए प्रबन्ध-काव्य का उद्देश्य स्थिर कर लेते हैं। किन्तु ब्रज भक्तो के परमाराध्य श्रीकृष्ण दुष्ट-दलन और असुर-सहार तो करते ही हैं अपनी अलौकिक मधुर लीलाओं से भक्तों के मन का निरोध भी करते हैं। कर्तव्य-सौन्दर्य और आनन्द का अद्भुत सामंजस्य ही कृष्ण चरित की विचित्र विशेषता है। लोकचित्ता-नुरंजनकारिणी लीलाएँ मुख्यतः मनके निरोध के लिए ही हैं। फिर भी कवि ने कहीं कहीं लोकमंगल-भावना का स्पष्ट भी उल्लेख किया है—

'देवदिवारी सुभ एकादशी, हरि प्रबोध कीजै हो आज।
निद्रा तजो हे गोविन्द, सकल विस्व हित काज॥"

अधुना परमानन्ददास जी के काव्य की उपर्युक्त द्विविध शैली पर आधुनिक समीक्षा प्रणाली की दृष्टि से विचार किया जायगा। काव्य के दो पक्ष हैं—

१—भाव पक्ष।
२—कला पक्ष।

१—भाव पक्ष में वस्तुगत भाव कल्पना, रसानुभूति आदि पर विचार किया जायगा।
२—कलापक्ष के अन्तर्गत, अलंकार, छन्द, भाषा, आदि पर।

## परमानन्ददास में भाव-व्यञ्जना—

मानव हृदय भावों का सागर है। भाव ही हृदय का निज स्वभाव है। भाव के अभाव में हृदय सत्ता नहीं रहती। पवनान्दोलन से जिस प्रकार समुद्र प्रतिक्षण तरंगायित रहता है उसी प्रकार हृदय भी अपने चतुर्दिक् जगत् से भावमय बना रहता है। मानव की निखिल अनुभूतियाँ भाव-जन्य ही तो हैं। जिस प्रकार वायु के झोंकों से सागर-जल पर प्रतिक्रिया होती है ठीक उसी प्रकार हमारे हृदय पर भी बाह्य जगत् की क्रियाओं, घटनाओं एवं परिस्थितियों से प्रतिक्रिया होती है। अन्यथा हृदय के अनन्त भाव सुप्तावस्था मे ही रहते हैं। बाह्य प्रभाव उन्हें जाग्रत कर देते हैं। जिन बाह्य प्रभावों से ये उद्बुद्ध अथवा अभिव्यक्त होते हैं उन्हें 'विभाव' कहा जाता है ये विभाव दो प्रकार के हैं—

१—आलम्बन।
२—उद्दीपन।

१. आलंबन विभाव—आश्रय अथवा दृष्टा के सुप्त भावों को जागरित करते हैं और

२. उद्दीपन विभाव—आश्रय अथवा दृष्टा के उद्बुद्ध अथवा जागरित भावों को उद्दीप्त अथवा तीव्र करते रहते हैं।

आश्रय अथवा दृष्टा के हृदय में जो प्रधान भाव आलम्बन के कारण उद्बुद्ध होता है उसे ही स्थायी भाव संज्ञा दी जाती है तथा जो वीचिवत् छोटे-छोटे अन्य भाव आश्रय के हृदय में उद्बुद्ध होकर मुख्य भाव को परिपुष्ट करके विकसित किया करते हैं उन्हें संचारी भाव कहा जाता है। आश्रय अथवा दृष्टा अपने उद्बुद्ध स्थायी भाव से प्रेरित होकर जो चेष्टाएँ किया करता है उन्हें अनुभाव पुकारा जाता है। यह तीनों—विभाव, अनुभाव और संचारी भाव-मिलकर आश्रय अथवा दृष्टा हृदय मे स्थित स्थायी भाव को परिपुष्ट करके उसे रस में परिणत कर देते हैं अथवा रस दशा में पहुँचा देते हैं। तात्पर्य यह कि 'रस' भाव की निष्पन्न अथवा परिपक्व स्थिति का ही नाम है। रस की कच्ची दशा ही भाव-दशा है। यह भाव दशा ही विभावानुभाव संचारियों से परिपक्व होकर रस दशा कहलाती है। आचार्य भरत ने हृदय के अनंत भावों में से मुख्य आठ माने हैं। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय।

मम्मट ने इनका इस प्रकार उल्लेख किया है:—

'रतिर्हासश्चशोकश्च, क्रोधोत्साहो भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायि भावाः प्रकीर्तिताः॥'

मम्मट ने निर्वेद को भी एक स्थायि भाव मानते हुए शान्तरस को भी नवम रस माना है।

'निर्वेदो स्थायि भावोस्ति शान्तोपि नवमो रसः॥'

परमानंददास जी अपनी बाललीला और किशोरलीला के लिए प्रसिद्ध हैं। अतः उनमें वात्सल्य और शृङ्गार-संयोग और विप्रयोग इन दो रसों का सुन्दर परिपाक मिलता है। सूर की भाँति शृङ्गार का रसराजत्व परमानंददासजी ने भी सत्य सिद्ध कर दिखलाया है। परमानंददासजी मुख्य रूप से प्रेम-तत्व के कवि (Poet of love) हैं। उन्होने सूर की भाँति भगवान् की शील शक्ति और सौंदर्य की तीन विभूतियों में से सौंदर्य को ही अपने काव्य के लिए चुना है।

कवि के काव्य में वाल पोगण्ड और किशोर लीलाओं का चित्रण मिलने के कारण जीवन की सम-विषम-विविध परिस्थितियो का भले ही चित्रण नही है, न उन्हे प्रत्यक्ष लोक मंगल की चिन्ता है। वे तो राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओ के एकान्त गायक, गोपी-भाव के अनन्य उपासक ब्रज लीलाओं के माधुर्य मे तन्मय रहने वाले आमुष्मिक जीव थे। उनके काव्य मे भगवान कृष्ण की वही बाल सुलभ चपलता, माखन-चोरी, गोपी-प्रेम, गोदोहन, गोचारण, राधा-मिलन, यशोदा के वात्सल्य आदि प्रसंगो के साथ वेणु, रास, यमुना, वृन्दावन निकुञ्ज-क्रीडा आदि के वर्णन मिलते हैं। दुष्टो के दमन श्रीकृष्ण के हाथो से होता अवश्य है परन्तु इन अष्टछापी कवियों की मनो-वृत्ति भगवान के उस दुष्ट-संहारी लोक-मगल स्वरूप के ऊपर अधिक नही टिकी। क्योंकि दुष्टदलन कार्य को वे भगवान का अनिवार्य कर्तव्य सा समझते हैं। क्योंकि भक्तरक्षण उनकी प्रतिज्ञा है।

दूसरे भगवान की इन लीलाओ का आध्यात्मिक पक्ष भी इन कवियो को स्पष्ट था। अतः वे रागानुगा प्रेम लक्षणा भक्ति की तन्मयता मे विभोर रहने वाले भक्त थे। दुष्टो के वध जैसे कठोर प्रसंगो के चित्रण मे इनकी कोमल वृति कैसे रमती। साथ ही अष्टछाप के सभी कवि और विशेषकर परमानंददासजी भगवान् कृष्ण के बाल स्वरूप के उपासक हैं। उनके आराध्य यशोदोत्संग-लालित है। अत' उनकी मनोवृति मे परुष प्रसग प्रवेश नहीं पाते। इसीलिए उनका वात्सल्य चित्रण अत्यन्त सफल हुआ है।

## परमानंददासजी में वात्सल्य भाव—

परमानंददासजी ने पालने से लेकर पौगंड अवस्था तक के पदो में वात्सल्य भाव की बड़ी मधुर धारा बहाई है।

माईरी कमल नैन स्याम सुन्दर झूलत हैं पलना।

... .... .... .... ... ... ... ... . ...

लाल अंगूठा गहि कमल पानि मेलत मुख मांही।
अपनो प्रतिबिंब देखि पुनि पुनि मुसकाही॥

यह स्वाभाविक होता है कि पालने मे पडा हुआ बालक अँगूठा पीता रहता है। परन्तु केवल इतने चित्रण से ही कवि तृप्त नही हुआ, वह कहता है कि शिशु अपने अँगूठे का प्रतिबिंब भी देख रहा है। और इसी कारण वह मुस्कुरा रहा है।

शिशु के सौंदर्य पर भी परमानंददासजी की दृष्टि जाती है। देखने वाले के हृदय मे यही शिशु-सौंदर्य वात्सल्यभाव की वृद्धि करता हुआ उसे रसकोटि तक पहुँचा देता है—

झुलावें सुत को महरि पलना कर लिए नवनीत।
नैन अजन गाल मसबिंदुका तन ओढे पट पीत॥

पालने के शिशु मे कुछ स्वाभाविक चेष्टाएँ भी होती हैं—

वेनु देखत मंद हसत है कबहुँ होत भयभीत।
दे करतार बजावत गोपी-गावत मधुरे गीत॥

सौंदर्य निधान कृष्ण न केवल यशोदा ही के प्यारे हैं, अपितु गोकुल की गोपी मात्र के दुलारे हैं। गोपियां काम काज करके दिन मे दो चार बार कृष्ण को देख अवश्य जाती है। इससे उनको दही वेचने मे लाभ होता है।

मुख देखन कौं हौं आई लालको ।
काल मुख देखि गई दधि बेचन जाति ही दधि गयो बिकाई ।
दिन ते दूनों लाभ भयो घर काजर बछिया जाई ।
आई हौं धाय साथ की मोहन देहौं जगाई ॥
सुन प्रिय वचन विहंस उठि बैठे नागर निकटि बुलाई ।
परमानंद स्यानी ग्वालन सैन संकेत बुलाई ॥

वात्सल्य और स्नेह भरे ऐसे अनुपम चित्र परमानंददास के काव्य में भरे पड़े हैं ।

कृष्ण थोड़े समय मे ही घुटनों चलने लगे हैं । अतः नंद-निकेतांगण की निराली शोभा है:—

मनि मय आंगन नंदराय के बाल गोपाल करैं तहां रंगना ।
गिरि गिरि उठत घुटरुवन टेकत जानुपानि मेरे छंगना ॥

इन लौकिक लीलाओं के बीच भी परमानंददासजी अलौकिक भगवदैश्वर्य को भूलते नही । वे तुलसी की भाँति उसकी पुनरावृत्ति करते चलते हैं । सूर इतनी जल्दी भगवदैश्वर्य की पुनरावृत्ति नही करते । परमानंददासजी की इन पुनरावृत्तियो मे पौराणिक गाथाओ का पुट है । इसी कारण कही कहीं वात्सल्य मे अद्भुत रस का विचित्र समावेश हो गया है ।

वात्सल्य के ये अलौकिक चित्र स्वभाविकता के इतने निकट आगए हैं कि पाठक की कल्पना सजीव हो उठती है और गृह्य वातावरण का एक जीता जागता चित्र सामने आ जाता है । कृष्ण को माखन चोरी के अपराध मे माता ने बांध दिया है और बालक कृष्ण करुणा भरी दृष्टि से इधर उधर देख रहे हैं । किसी गोपी ने उन्हे देख लिया है अतः वह यशोदा को झिड़क रही हैं । :—

गोविंद बार बार मुख जोवै ।
कमल नयन हरि हिलकनि रोवत बंधन छोड़ि यह सोवै ।
.... ... ...
कहा भयो जो घर के लरिका चोरी माखन खायो ॥
नई मटुकिया दह्यौ जमायो, देव न पूजन पायो ॥
तिहि घर देव पितर काहे के जिहि घर कान्ह रुवायो ।

कवि ने 'हिलकनि' से बालक के रोने का जो स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया है उससे दृष्टा, श्रोता एवं पाठक की कल्पना के सामने वात्सल्य भाव का एक मनोरम चित्र उपस्थित हो जाता है । इन पदों मे रोते कलपते, हिलकियां लेते कृष्ण आलवन हैं, माता और माता के साथ वाली सखी की झिड़की उद्दीपन के अन्तर्गत तथा रोष, क्षोभ, निर्वेद, आन्तरिक स्नेह आदि अनुभाव हैं । वात्सल्य भाव के ऐसे प्रसंग कवि की सजीव कल्पना शक्ति एवं चित्रोपम शैली से रस कोटि तक पहुँच गया है ।

उपर्युक्त पदों में वात्सल्य भाव के सफल चित्रण की चर्चा की गई है अब शिशु-सौन्दर्य के भी कुछ चित्र हैं जो पाठक को एक दिव्य भाव-लोक में डुबो देते हैं ।

सुन्दर आउ नंदजू के छगन मँगनियाँ।
कटि पर आड़बंद अति झीनों भीतर झलकत तनियां।
लाल गोपाल लाड़ले मेरे सोहत चरन पैंजनियाँ।
परमानन्ददास के प्रभु की यह छवि कहत न बनियां।

वात्सल्य का चरम विकास माता के इन शब्दों में मिलता है—

जा दिन कन्हैया मोसों मैया मैया कहि बोलैगो।
ता दिन अति आनन्द गिनौंरी माई, रुनक झुनक व्रज गलिन में डोलैगो।
प्रात ही खिरक जाय दुहिवे कों, धाइ बन्धन बछरवा के ढीलैगो॥
परमानन्द प्रभु नवल कुमर मेरो ग्वालिन के संग बन में किलौलैगो॥

धूल धूसरित अंग और बालक के नंगे घूमने के बहुत से स्वाभाविक वर्णन परमानन्ददासजी ने दिये हैं:—

जसोदा तेरे भाग्य की कही न जाय।

.... .... ...

ते नंद लाल धूर धूसर वपु रहत गोद लपटाय।

... ... ...

माई तेरो कान्ह कौन ढंग अब लाग्यो।
मेरी पीठ पर मेलि कछरा वहै देख जोत है माग्यो॥
पाँच बरस को श्याम मनोहर व्रज में डोलत नांगो।
परमानन्ददास को ठाकुर कांधे परयो न तागो।

यज्ञोपवीत की अवस्था से पूर्व की लीलाओं में परमानन्ददास जी की चित्तवृति अत्यधिक रमी है।

सूर की भाँति उनके कृष्ण भी मणि-खंमो में अपना प्रतिबिंब पकरने दौड़ते हैं।

बाल विनोद खरे जिय भावत।
मुख प्रतिबिंब पकरिवेको हरि हुलसि घुटरुवन धावत।

इसी प्रकार कृष्ण का पैंजनी पहिन कर चुटकी की ताल पर नाचना, दूध के दो दाँतों की किलकारी, बछिया की पूंछ पकड़ना आदि मनोहर प्रसंग परमानन्ददासजी को अत्यन्त ही भाये है। साथ ही वे स्वाभाविक गृह्य वातावरण की सृष्टि करने में भी अत्यन्त पटु हैं। कोई गोपी प्रेम के आवेश मे यशोदा के यहाँ चली आई है। कृष्ण को अपने वक्षस्थल से लगाना चाहती है। माता ने अभी अभी बालक को किसी प्रकार चुपकर के सुलाया है। माता यशोदा गोपी को कृष्ण को उठाने के लिए मना कर रही हैं। निराश गोपी जाना ही चाहती है कि कृष्ण उठ पड़े और रोने लगे, गोपी के मन की साध पूरी हुई। ऐसे स्वाभाविक वात्सल्यमय प्रसंग हमें प्रायः नित्य घरों में देखने को मिल जाते हैं। वात्सल्य का इससे अधिक स्वाभाविक चित्रण क्या हो सकेगा। कल्पना की यह दिव्य उड़ान देखने योग्य है—

रहि री ग्वालिन तू मदमाती।
मेरे छगन मगन से लालहि कित ले उछंग लगावत छाती।

खीजत ते अब ही राखे हैं, न्हानी न्हानी दूध की दाँतीं।
खेलत है घर अपने डोलत काहे कों ऐती इतराती॥
उठि चली ग्वालि लाल लगे रोवन, तब जसुमति लाई बहुभाँती।
परमानन्द प्रीति अंतरगति फिर आई, नैनन मुसकाती।

इस प्रकार बाल-हठ से चंद खिलौना माँगना, माता का खीझ भरा प्रेम उसकी अभिलाषा, भविष्य की सुन्दर कामनाएं, ज्योतिषियों को हाथ दिखाना, गोचारण जाने के लिये विचार, ब्याह की बात चलना, साथियों के साथ क्रीड़ाएँ, माता के पास शिकायतें आना, जीवन के ऐसे सरस स्वाभाविक प्रसंग हैं जो हम नित्य अनुभव करते हैं। परमानन्ददासजी ने इन्हें प्रस्तुत कर अपनी जिस सिद्ध कल्पना शक्ति का और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है वह देखने योग्य है। इसी को लक्ष्य कर उनका 'सागर' सूरसागर की टक्कर का कहा जाता है।

पौगण्ड लीला में भी परमानंददासजी की भावाभिव्यक्ति देखने योग्य है। बालकों के समूह और उनकी क्रीड़ा के कितने ही सजीव चित्र कवि ने प्रस्तुत किए हैं—

गुड़ी उड़ावन लागे बाल।
सुन्दर पतंग बाँधि मन मोहन, बाजत है मोरन की ताल।
कोऊ पकरत कोऊ ऊँचत है, कोऊ देखत नैन विशाल॥
कोऊ नाचत कोऊ करत कुलाहल कोऊ बजावत खरो करताल॥
कोऊ गुड़ी सों गुड़ी उरझावत, आपुन खेंचत डोर रसाल।
परमानंददास स्वामी मन मोहन रीझि रहत एक ही काल॥

पतंग के पेंच लड़ाने, बालकों के अपने अपने क्रीड़ा संबंधी अनेक कार्य, गेंद खेलने में होड़, घोड़े पर दौड़ आदि अनेक रसमय प्रसंग परमानंददासजी की विशेषता है। उनमें एक रसता (Monotony) का आरोप नहीं किया जा सकता। इन सब क्रीड़ाओ और लीलाओं के भीतर एक प्रच्छन्न स्वरूपासक्ति की अबाध धारा उनके काव्य में बहती रहती है। जो उनके सौन्दर्य-तत्व के प्रति सावधानी की द्योतक है। साथ ही जिसका चरम विकास किशोर लीला में राधा के प्रणय प्रसंग में हुआ है।

पालने में शिशुकी विविध चेष्टाएं, नंद-निकेतांगण की क्रीड़ाएँ माता के हृदय की विविध अनुभूतियों और इसी प्रकार व्रज लीलाओं के वर्णन में परमानंददासजी सूर के समक्ष आजाते हैं।

कृष्ण बड़े हो गए हैं। गोदोहन सीखने की जिज्ञासा है।

बाबा जू मोहि दुहन सिखावो।
गाय एक धौरी सी मिलवों हौं हूँ दुहौं बलदाऊ दुहावो।

गोदोहन की कला आजाने पर अब थोड़ी शरारत भी सीख गए हैं। गोपियों की दोहनी छिपा देते हैं। कभी खिड़क का दरवाजा खोल देते हैं जिससे बछड़े दूध पी जाते हैं और गायों की चोरी हो जाती है।

छोटा मेरी दोहनी दुराई ।
मोपें तें लीनी देखन कों, यह धों कौन बड़ाई ।
... .... ... .... ... .... ... ...

द्वार उघार खोल दिए बछरा वेखट गैयाँ चुरवाई ।

कभी कभी बड़े भैया की शिकायत रोहिणी मैय्या से की जाती है ।

मैया निपट बुरो बलदाऊ ।
कहत है बन बड़ो तमासो सब लरिका जुरि आऊ ।
मोहूँ कों चुचकार चले ले जहाँ बहुत घनो बन झाऊ ॥
जहाँही ते कहि छाँड़ि चले सब काटि खाइरे हाऊ ।
डरप्यो कांप के उठि ठाड़ो भयो कोऊ न धीर धराऊ ॥
परि परि गयो चल्यो नही, वे भाजे जात अगाऊ ।
मोसों कहत मोल को लीन्हो आप कहावत खाऊ ॥
परमानन्द बलराम चबाई, तैसेई मिले सखाऊ ॥

प्रस्तुत पद मे कितनी स्वाभाविकता, व्यंजकता एवं भाव सुन्दरता है । कृष्ण की खीज उपालभ, सभी देखने योग्य है । बाल स्वभाव का और उसकी सीधी साधी शिकायत का एक और मार्मिक चित्र—

देख री रोहिनी मैया कैसे हैं बलदाऊ भैया ।
जमुना के तीर मोहि झुझुवा बतायो री ॥
सुबल सीदामा साथ, हँसि-हँसि बूझै बात ।
आप डरपे और मोहि डरपायो री ॥

कितना स्वाभाविक चित्र है । बाल भाव का जैसा सरल मोहक चित्रण परमानंददासजी ने किया है वैसा दूसरी जगह दुर्लभ है । साथ ही कवि ने वस्तु के अनुकूल ही सरलतम भाषा का प्रयोग किया है । बालक कृष्ण को सखा काला-काला कह कर खिजाते हैं और बड़े भैया उनका पक्ष नही करते इससे अधिक दुख की क्या बात हो सकती है ।

कारी कहि कहि मोहि खिझावत ।
नहिं बरजत बल अधिक अनेरो ॥

प्राय: बच्चे अलाय बलाय खाकर पेट भर लेते हैं । न भोजन की परवाह है, न किसी प्रकार की अन्य चिंता । खेल मे मस्त, साथ ही कभी कभी वह कुत्ते के पिल्ले पकड़ लेते हैं और उन्ही के साथ खेलते हैं कितना स्वाभाविक बालभाव है । परमानंददासजी की सूक्ष्म दृष्टि बच्चों की इस चपल वृत्ति पर भी जा टिकी है वे लिखते हैं—

लाल कों भावे गुड गांडे अरु बेर ।
और भावै याहे सेंद कचरिया लाओ बवा बन हेर ॥
और भावै याहे गैयन मे बसिबो संग सखा सब टेर ।
परमानंददास को ठाकुर पिल्ला लायो घेर ॥

प्रस्तुत पद इतना स्वाभाविक है कि सम्भवतः ऐसा चित्रण शायद ही किसी कवि ने किया हो। पिल्ला पकड़ना प्रायः पौगंड अवस्था मे ही होता है। पौगंड से छोटी अवस्था का बालक पिल्ले से डरता है। पौगंड अवस्था से बडी अवस्था का बालक पिल्ले से खेलना पसंद नही करता, अत परमानंददासजी को बच्चों की पिल्ले पकडने की यथार्थ अवस्था का पूरा पूरा ज्ञान था। यही कवि की उच्च कोटि की सूक्ष्म दृष्टि है। भोजन का समय हो गया है। माता पिता को चिंता हुई बालक कहाँ गया या तो गायो के साथ होगा या खिडक मे बछडो के साथ खेलता होगा।

देखो री गोपाल कहाँ है खेलत।
कै गैयन संग गए अगाऊ, कै खिरक बछरन संग खेलत ॥
× × × × × × × ×
ऐसी प्रीति पिता माता की पलक ओट नहिं कीजै ॥

इतने मे कृष्ण आगए हैं। यशोदा मैया सखाओ सहित उन्हे भोजन कराती है। कभी माता को चिन्ता होती है कि सवेरे का गया हुआ श्याम भूखा होगा, आज उसे प्रातराश (कलेवा) भी नही मिला है। और उसकी याद भी बडी देर मे आई—

नैंक गोपालैं दीजो टेर।
आज सवारे कियौ न कलेऊ सुरत भई बडि बेर।
ढूंढत फिरत जसोदा मैय्या कहाँ कहाँ हो डोलत ॥

वात्सल्यमयी माता पलक ओट नही करना चाहती और भोजन मे विलंब भी सहन नही कर सकती—

प्रेम मगन बोलत नंदरानी।
× × × × × × × ×
भोजन वार अबार जानि जिय सुरत भई आतुर अकुलानी।
ढूंढत घर घर आँगन लौं तन की दसा हिरानी ॥

दधि विलोने और माता को खिजाने तथा गोपियों के उपालम्भ के पदों मे परमानन्ददासजी तथा सूर में बहुत साम्य है। जिस प्रकार मृत्तिका-भक्षण में सूर भगवदैश्वर्य का वर्णन किए बिना नही रह सके हैं उसी प्रकार दधि मथन-लीला मे मथानी पकडने मे वे समुद्र मथन वाली पौराणिक गाथा को घसीटे बिना नही रह सके। सूर के प्रसिद्ध पद—'जब मोहन कर गही मथानी' में सूरदासजी ने एक वातावरण प्रस्तुत किया है, किन्तु परमानन्ददास जी उस कथा को बडे अनायास ढंग से ले आए हैं—

गोविन्द दधि न बिलोवन देही।
वार बार पांय परत जसोदा कान्ह कलेऊ लेही ॥
... .. .
एक एकते होय देव दैत्य सब कमठ-मंदराचल जानी।
देखत देव लक्ष्मी कपी जब गही गोपाल मथानी ॥

सूर के समुद्र मथन वाले पद को पढने से पाठय का एक लोकोत्तर घटना की कल्पना होने लगती है और वह दधि मथन के साधारण से आनन्दमय वातावरण से ले जाकर पाठक को एक माहात्म्यमय आतकपूर्ण मनोराज्य की स्थिति मे पहुँचा देते हैं जहाँ अलौकिकता अथवा भौतिकता से परे की स्थिति का भान होने लगता है परन्तु परमानददासजी ने वैसा नहीं किया है। भगवान् का ऐश्वर्यद्योतन मात्र का सकेत करना उनका मूल उद्देश्य है और कुछ नही। इस प्रकार बाल भाव के विविध चित्र जो हम सूर में पाते हैं परमानन्ददासजी मे भी उसी गहराई के साथ मिलते हैं। उनके बाल और सख्य के चित्रण मे विविध चेष्टाओ का वर्णन, सूक्ष्म निरीक्षण, बालमनोविज्ञान स्वभावोक्ति का चमत्कार, बालको की ईर्ष्या, असूया, रागद्वेष आदि उतनी ही सफलता उतनी ही विदग्धता और उतनी पूर्णता के साथ चित्रित हुए हैं जितने सूर म। अन्य अष्टछापी कवियो से वे बाल लीला के चित्रण में निस्सदेह अधिक सफल हैं।

गोदोहन और गोचारण के प्रसगो मे वे वही घोष बस्तियो का घरेलू वातावरण ले आए हैं जो प्राय सर्वविदित और सर्वलक्षित है किन्तु उनकी मौलिकता उनकी अभिव्यक्ति और सूक्ष्म निरीक्षण मे वात्सल्य रस को स्वतत्र रस रूप मिल गया है। सूर के उपरात वात्सल्य रस का सफल परिपाक परमानन्ददासजी मे ही मिलता है। इन दो सागरो ने वात्सल्यरस की परिपक्वता को जिस कोटि पर पहुँचाया है उस सीमा तक हिन्दी का कोई अन्य कवि क्वचित् ही पहुँचा हो। तथाकथित सभ्य जगत से दूर जनसकुलता से नितात निरपेक्ष घोष बसतियों में जो एक आत्मीय भाव और निजी वातावरण होता है उसका सफल चित्रण कवि मे है। वहाँ परस्पर के आदान प्रदान सभी क्षेत्रों मे चला करते हैं। उनमे पलपल पर परावलम्बन अथवा परस्पर समाश्रयता का वातावरण होता है। कवि ने वैसा ही वातावरण प्रस्तुत करने की भरपूर चेष्टा की है। गोपी श्रीकृष्ण को बुलाने आती हैं क्योकि उसकी गैया उन्ही से परच गई हैं अत कृष्ण ही उसे दुह सकेंगे।

> तुम पतियात स्यामसुन्दर तुम्हरे कर पहिचाने।
> ऊँचे कान करत मोय देखत हुमकि हुमकि ह्वोय ठारी।

गोपी दही बेचने जाना चाहती है। कृष्ण के मुख देखने से बौनी हो जाती है। अत वह एक क्षण के लिए सवेरे सवेरे मुख देखने ही चली आई है।

> (१) काल मुख देख गई ही दधि बेचन, सबरो गयो है बिकाई।
> दिन ते दूनों लाभ भयो, घर काजर बछिया जाई॥

सवेरे सवेरे आने का एक और बहाना—

> (२) तुम्हारे खरिक बताई हो वृषभान हमारी गैयाँ।

अपनी गायो को ही ढूंढने वे कृष्ण के खिडक में चली आई। कैसा स्वाभाविक एव मनोरम वातावरण है।

गोपाल की गाय बडी सुन्दर है। उस पर भी शृङ्गार बहुत अच्छा हुआ है अत गोपवृन्द किलकारी मार रहा है।

> नीकी खेलें गोपाल की गैया।
> कूकें देत ग्वाल सब ठाडे यह जु दिवारी नीकी भैया।

## परमानन्ददासजी में रस-व्यंजना—

परमानन्ददासजी मुख्यतः प्रेम के कवि हैं। उनकी काव्य-सीमा जन्म-महोत्सव से मथुरागमन और उद्धवागमन तक है। तदनंतर उनकी भक्ति-भावना, आत्म-निवेदन एवं दैन्य सम्बन्धी पद हैं अतः विषय की रुचि ने निश्चित परिधि में रहते हुए भी सभी मुख्य रसों को थोड़ा बहुत ले लिया है। एक दो रसों को छोड़ वे सभी रसों के कवि है। सूर की भाँति श्रृंगार और वात्सल्य का रस सिद्ध कवि उन्हें कहा जा सकता है। उनका काव्य प्रेम तत्व से भर पूर है। अतः प्रेम के विविध रूपों अनुभावों एवं उनके मर्म अथवा मार्मिक पक्षों के उद्घाटन में उनकी वृत्ति खूब रमी है अन्यत्र नहीं। रसराज श्रृंगार के उभय पक्षों-संयोग और विप्रयोग—की विविध अनुभूतियों में ही उनकी चित्तवृति रमी है। अतः उनके सागर में श्रृंगार रस की ही प्रधानता है। हास्य, करुण, विप्रलंभ वीर अद्भुत और शान्त अल्प मात्रा में है। तथा रौद्र भयानक का अभाव सा है। यहाँ उनके काव्य में श्रृंगार रस के परिपाक की चर्चा की जाती है।

किशोरावस्था की सरस भूमि में पदार्पण करते वही 'प्रेम' अथवा पूर्व राग नाम की उस वृति का हृदय में उदय होने लगता है जिसमें एक विचित्र मादकता विशिष्ट उल्लास विचित्र सम्मोहन होता है। यह जीवन-वन का वसंत है। इसी मे मानव की अनादि वासना नवीन रूप में उद्बुद्ध होकर दूसरे को पाने का तकाजा करती है।

इस 'एकोऽहं बहुस्याम्।" भावना को लक्ष्य करके महाकवि प्रसाद ने कामायनी में लिखा है:—

> "नव हो जगी अनादि वासना।
> मधुर प्राकृतिक भूख समान।
> चिर परिचित सा चाह रहा था,
> द्वन्द्व सुखद करके अनुमान॥

हृदय की यह अनादि वासना जो द्वन्द्व की चाह रखती है, साहचर्य के लिए छटपटाती है। यह साहचर्य ही राग, अनुराग, स्नेह, प्रेम, अनुरक्ति प्रणय आदि विविध दशाओं में होता हुआ अन्त में परिणय में पर्यवसित हो जाना चाहता है। युगों के बिछुड़े युग्म मिल जाते हैं। भारतीय संस्कृति इसका मूल कारण प्राक्तन संस्कार मनाती है। वस्तुतः इसमें कोई स्थूल हेतु तो दृष्टिगोचर होता नहीं।

हृदय की इस सरस अनुभूति के लिए ही भवभूति ने कहा था—

> "व्यतिपजति पदार्थाम् अन्तरः कोपि हेतुः

'कोऽपि हेतुः' को स्पष्ट करने के लिए किसी ने साहचर्य का पल्ला पकड़ा, किसी ने सौन्दर्य का और किसी ने संस्कार का। परन्तु गुण-श्रवण, चित्रदर्शन और स्वप्न दर्शन को भी अनुराग की उत्पत्ति के कारण मानते हुए 'कोऽपि हेतु' के कुछ कारणों का उल्लेख काव्यों में मिलता है।

अष्टछाप के कवियों ने इस क्षेत्र में बहुत ही स्वाभाविकता से काम लिया है। शृगार के रससिद्ध कवि महात्मा सूर ने राधा के प्रथम दर्शन मे ही अनुरक्ति के बीजाकुरों की विकासोन्मुख दर्शन की चेष्टा की है —

"बूझत स्याम कौन तू गोरी"

यह प्रथम दर्शन और प्रथम सभापरा क्रमश घनीभूत होता चला गया और अत मे उस चिर सयोग का आदर्श बन गया जो अपनी गुरता में हिमालय से भी अधिक दृढ, गगा से भी अधिक पवित्र एव निर्मल, विस्तार में सागर से भी विशाल और उच्चता में आकाश से भी उच्च है। भारतीय दाम्पत्य-जीवन का आदर्श राधाकृष्ण से बढकर कोई नही। युग-युग से राधा-कृष्ण की प्रेम कहानी जनमन पावन करती चली जा रही है। परमानददासजी की राधा इस प्रकार अचानक नही मिल जाती। वह भी गोप मडली की एक प्रमुख सदस्या है। शैशव के सुकुमार दिनो से साहचर्य चला है। नद और वृषभान गोप सबकी गाए यमुना कछार मे चरने जाती हैं। राधा-कृष्ण का यही नित्य काय है। वे भी गाऐं चराने जाते हैं साहचर्य और सौन्दर्य ने परस्पर आसक्ति के भाव अकुरित कर दिए हैं। राधा के आकर्षण ने गाय चराने मे विशेष रस उत्पन्न कर दिया है। राधा की मुस्कान पर कृष्ण निछावर है —

"गाय चरायवे को व्यसनु।
राधा मुख लाय राख्यो नैननिको रसु ॥
कबहुँक घर कबहुँक बनु खेलन को जसनु ॥[1]
परमानद प्रभुहि भावै तेरेइ मुख हँसनु ॥

राधा क्रीडोत्सव की नित्य सहचरी है। वह घर और वन सर्वत्र साथ रहती है। यदि प्रात कृष्ण उठने में विलब कर देते हैं तो राधा किसी न किसी बहाने से उनके यहाँ पहुँच ही जाती है। प्रेम की यह प्रच्छन्न धारा कितनी सरस, मधुर है इसकी गहनता की इयत्ता नहीं "यह गुप्त प्रीति अबाध रूप से चली चलती है। लोक मे प्रकट हो जाने पर भी इसका ऊष्णताप न्यून नही होता—

मैं हरि की मुरली बन पाई।
सुन जसुमति सग आपुनो, कुमर जगाय देन की हौं आई।
सुनि तिय वचन बिहसि उठि बैठे अतरयामी कुवर कन्हाई ॥
मुरली के सग हुती मेरी पहुँची दै राधे वृषभान दुहाई ॥
मैं तिहारी पहुँची नहि देखी, चलौसग देऊँ ठौर बताई ॥
बाढी प्रीति मदनमोहन सौं घर बैठे जसुमति बौराई ॥
पायो परम भावती जी को दोऊ पढ़े एक चतुराई ॥
परमानन्ददास ओहि बूझौ जिन यह केलि जन्म भरि गाई ॥

कैशोर की यह चतुरता क्रमश विकास पथ पर है। राधा कृष्ण से मिलने के बहाने ढूंढती है अत कभी भोजन के लिए निमत्रण देने आती हैं —

---

१ क्रीडोत्सव।

कहति है राधिका ग्रहीरि ।
ग्राजु गोपाल हमारे ग्रावहु न्यौति जिमाऊं खीरि ॥
बहुत प्रीति ग्रतर गत मेरे, नैन ग्रोट दुख पाऊँ ॥
तुम हमरो कोऊ बिलगु नही मानै, लरिकाई की बात ॥
परमानन्द प्रभु नित उठि ग्रावहु भवन हमारे प्रात ॥

राधा को विनय है कि कृष्ण उसके यहाँ नित्य प्रात काल पहुँचा करें। लडकपन की ग्रवस्था होने से उनकी परस्पर प्रीति पर कोई संदेह भी नही कर सकेगा। राधा पल भर भी उनको नेत्रो से ग्रोभल नही कर सकती यह प्रीति बढ चली—

राधा माधौं सो रति बाढी ।

वयः संधि ग्रा पहुँची है। कामोद्‌भव हो चला है। स्वरूप-सौन्दर्य से हटकर दृष्टि गुणों पर जा टिकी है।

"चाहति मिल्यौ प्राणप्यारे कौ परमानन्द गुण ग्राढी"

राधिका मुग्धा नायिका हैं, भगवान के स्वरूप पर भोली भाली मृगी की भाँति मुग्ध हैं, सशंक नेत्रो से भी यमुना तट, निकुज ग्रथवा किसा एकान्त वनस्थली मे प्रतीक्षा करती रहती हैं—

'हरि ज्यो हरि को मगु जोवति काम मुग्धमति ताकी ।"

प्रेम की इस गहनता मे ग्रब परिणाम यह हुग्रा कि एक दूसरे के बिना रह नही सकते। इस तन्मयता के कारण लोक निंदा का पात्र भी बनना पड रहा है—

राधा माधौ बिनु क्यो रहे ।
एक स्याम सुन्दर के कारन ग्रौर सबनि की निंदन सहे ॥

यह प्रणय परिणय मे पर्यवसित हुग्रा ग्रौर राधा परिणीता होगई ।

"राधे बैठी तिलक सँभारति ।
... ... ...
ग्रतर प्रीति स्याम सुदर सौं प्रथम समागम केलि सँभारति ॥

परमानन्ददासजी ने राधा को स्वकीया मानकर शृङ्गार के वे मोहक चित्र प्रस्तुत किए जो बरबस पाठक को मुग्ध कर देते हैं।

नववधू सकोच शीला राधा को मोहन बातो मे भुला लेते हैं—

"मोहन लई बातन लाई ।"
... ... ...
गुप्त प्रीति जिन प्रगट कीजै लाल रही ग्ररगाई ॥

परमानन्ददासजी ने कृष्ण का[१] बहुनायकत्व सिद्ध किया है। सूर ने जहाँ ग्रकेली राधा की चर्चा करके एकाध सखी से दूतीत्व कराया है वहाँ परमानन्ददासजी ने चार सखियों की स्थान

१ पिय मुख देखत ही पै रहिए ।
... ... ...
तुम बहु नायक चतुर सिरोमणि मेरी बाह दृढ गहिए ।
परमानन्द स्वामी मन मोहन तुम ही निरवहिए ॥

स्थान पर चर्चा की है। ये चार सखियाँ सम्प्रदाय में चार स्वामिनियाँ मानी जाती हैं—ललिता, चन्द्रवली, विशाखा और राधा।

होली के पद मे ये राधा रानी का शृङ्गार करती हैं। अतः राधा रानी मुख्य है।

१—पीन पिंडुरिया लैं सोई चरनन जावकदीनी ललिता।

२—यह विध राधा रानी गई साँवरे सरिता।

३—विदुदाव दशन सों कोपी चन्द्रावलि चुप पूरी॥

४—डाल माई झूलत हैं व्रजनाथ।
सग शोभित वृषभान नन्दिनी ललिता विशाखा साथ।

५—डोल चंदन को झलत हलधर वीर।

... ... ... ...

वाम भाग राधिका विराजत पहरे कुसंबी चीर।

६—परसानंद प्रेम विवस हममें सुन्दर को है कहि ललिता।

अतः कृष्ण की अन्य स्वामिनियां राधा से ईर्ष्या करती हैं। यदि कभी कृष्ण अन्यासक्त हो जाते हैं तो राधा मान करती है। राधा की मान लीला बड़ी विकट है। रस सिद्ध कवि सूर तो राधा की मान लीला के सर्वोपरि गायक हैं। परमानन्ददासजी ने भी मान विषयक अनेक पद लिखे हैं।

राधा मान करके बैठी है। कृष्ण उन्हें बार बार बुलवाते हैं। दूती राधा के सामने कृष्ण की विह्वलता का वर्णन करती है।

'चलि राधे तोहि स्याम बुलावैं।'
वह सुनि देखि वेनु मधुरे स्वर तेरोइ नाम लै लैं गावैं॥
देखो वृन्दावन की सोभा ठौर ठौर द्रुम फूले।
कोकिल नाम सुनत मन आनन्द मिथुन विहंगम झूले॥
उन्मद जोवन मदन कुलाहल यह और है नीको॥
परमानन्द प्रभु प्रथम समागम मिल्यो भावतो जी को॥

बाह्य प्रकृति में भी मिथुन भाव व्यक्त हो रहा है राधा फिर भी नहीं पसीजती। चतुर दूती सचेत करती हैं—

फिरि फिरि पछिताइगी हो राधा।
कित तू, कित हरि कित यह औसर करत प्रेम रस वाधा।
वही सर गोपाल मेल कब धरिहैं. कब इन कुंजन बसि हैं।
यह जड़ता तेरे जिय उपजी, चतुर नारि सुनि हँसि हैं॥
रसिक गोपाल सुनत सुख उपजैं आगम निगम पुकारैं।
परमानन्द स्वामी पैं आवत को यह नीति विचारैं॥

---

१ राधा माधौ बिनु क्यों रहै।

...... ...... ......

पिय के पाछे लागी डोलै वधू वरग सो वरयौ।

कृष्ण कालिंदी तट पर बैठे हुए राधा की उत्कट परीक्षा कर रहे हैं, कभी प्रसाद का बीड़ा भेजते हैं तो कभी नाम ले लेकर गाते हैं—

बैठे लाल कालिंदी के तीरा ।
लै राधे मोहन पठ्यो है यह प्रसाद को बीरा ।।

कृष्ण राधा से अपार प्रेम करते हैं उनका प्रेम विकार ग्रस्त नहीं है, अतः राधा का मान व्यर्थ है—

मान तो तासों कीजे जो होई मन विपई ।

परन्तु फिर भी राधा का मान नही दूर होता । दूती ने दूसरा उपाय सोचा । वह राधा की प्रशंसा करती हुई कहती है कि राधा बड़े भाग्यवाली है । मुरली-रव मे कृष्ण राधा का ही तो नाम ले ले कर बुला रहे हैं—

राधा माधौ कुंज बुलावै ।
सुनि सुंदरि मुरली की घोर तेरो नाऊं लै लै गावै ।।
कौन सुकृत फल तेरो वदन सुधाकर भावै ।
कमला को पति पावन लीला लोचन प्रगट दिखावै ।
अब चलि मुगध विलंब न कीजै चरण कमल रस लीजै ।।

... ... .... ...

परमानन्ददासजी ने राधा के मान विषयक अनेक पद गाए हैं । संयोग शृंगार में वे सुरतांत वर्णन कर गए हैं ।

'सुरत समागम रमि रह्यो नदी जमना के रेत ।'

नायिका भेद की दृष्टि से उनकी राधा के निम्नांकित रूप मिल जाते हैं—

अज्ञात यौवना—

मन हर लै गए नंदकुमार ।
बारक दृष्टि परी चरनन तन देख न पायो बदन सुचार ।
हौं अपने घर सुचसों बैठी पोवत ही मोतिन को हार ।
कांकर डारि द्वार है निकसे बिसर गयो तन करत सिंगार ।।
कहा री करौं क्यों मिलि है गिरधर किहि मिस हौं जसोदा घर जाऊं ।
परमानन्द प्रभु ठगीरी अचानक मदनगुपाल भावतो नाऊं ।।

ज्ञात यौवना—

औचकहि हरि आय गए ।
हौं दरपन लै मांग सँमारत चारघो हू नयना एक भए ।।
नैंक चितै मुसिकायजू हरि मेरे प्रान चुराई लए ।
अब तो भई है चौंप मिलन की विसरे देह सिंगार ठये ।।
तबते कछून सुहाय विकल मन ठगी नंदसुत स्याम नए ।
'परमानन्द प्रभु' सों रति बाढ़ी गिरिधरलाल आनन्द भए ।।

वचन विदग्धा—

आज तुम हियाँ ही रहौ कान्हर प्यारे।
निसि अँधियारी भवन दूरि है, चलत सकलघौं हारे॥
तोरि पत्र की सेज बिछाऊँ वा तरवर की छाहं।
नंद के लाल तुमसे निकट रहोगी देहुँगी उसीसे बाँह॥
सग के सखा घर को विदा करौ हम तुम रहेंगे दोऊ।
परमानद प्रभु मन राधा भावै अनख करौ मति कोऊ॥

क्रिया विदग्धा—

री ग्वालिन पिछवारे बोल सुनायो।
कमल नयन जब करत कलेऊ कौर न मुख लौं आयो॥
× × × × × × ×
गुप्त प्रीति मोहन मोहिनी को जस परमानंद गायो॥

वासकसज्जा—

माधौ भली जु करति।
मेरे द्वार कैं पाऊँ धरति॥
साझ सुकारे देखत ही हियौ भरि प्रीति के भूखे मेरे लोचन भरति॥
× × × × × × × ×
परमानद प्रभु चलत ललित गति वासर जनित व्रजताप निवारति॥

खण्डिता—

कमल नयन स्याम सुदर निस के जागे हो आलस भरे।
कर नख उर राजत मानो अर्ध ससि धरे॥
लटपटी सिर पाग, खिसत बदन तिलक टरे।
मरगजी उर कुसुम माल भूषण अग अग परे॥
सुरत रग उमगि रहे पुलक होत खरे।
परमानन्द रसिक राउ, जाही के भाग्य ताही के ढरे॥

मानवती—

मनावत हार परी री माई।
तू चस तें मस होत न राधे, हो हरि लेन पठाई॥
राजकुमारी होय सो जानें, कै गुरु होय पढाई।
नदनन्दन को छाडि महातम अपनी रार बढाई॥
ठोढी हाथ चली दै दूती तिरछी भौंह चढाई।
परमानन्द प्रभु करोगी दुल्हैय्या तो बाबा की जाई॥

उत्कंठिता—

मदन गोपाल बलैय्यै लैंहो।
वृन्दाविपिन तरनि तनयातट, चलि व्रजनाथ आलिगन दैहों॥
सघन निकुंज सुखद रति आलय नव कुसुमन की सेज बिछैहों।
त्रिगुन समीर पथ जब बोलहुगे तब गृह छाडि अकेली ऐहो॥
परमानन्द प्रभु चारु बदन को उचित उगार मुदित ह्वै खेहो।

प्रोषितपतिका—

ता दिन सरवसु देहुंगी बधाई ।
जा दिन दौरि कहे कोऊ सजनी आए कुंवर कन्हाई ।।
मैं अपनी सी बौहोत करत हौं लाल न देति दिखाई ।
सोवत जागत दिन अवलोकत वे मन कबहुं न चाई ।।
मेरी उनकी प्रीति निरंतर, बिछुरत पल न घटाई ।
परमानन्द बिरहिनी हरि की, सोचत अरु पछताई ।।

विप्रलब्धा—

मोहन सो क्यों प्रीति बिसारी ।
कहत सुनत समुझत उर अन्तर दुख लागत है भारी ।

... ... ... ...

परमानंद बलबीर बिना मरत बिरहिन नारी ।।

तथा—

रैन पपीहा बोल्यो री माई ।
नीद गई चिंता चित बाढी सुरति स्याम की आई ।।

... ... ... ...

बिरहिन बिकल दासपरमानन्द धरनि परी मुरझाई ।।

अभिसारिका—

सुनि राधा एक बात भली ।
तू जिन डरै रैनि अँधियारी मेरे पीछे आउ चलीं ।।
तहाँ लै जाउ जहाँ मनमोहन मे देखी एक बंक गली ।
सघन निकुंज सेज कुसुमनि रचि भूतल आछो विटप तली ।।
हरि की कृपा को मोहि भरोसो प्रेम चतुर चित करत अली ।
*परमानन्दस्वामी को मिलै किन मित्र उदै जैसे कंवल कली ।।*

स्वाधीनपतिका—

राधा भाग सौं रस रीति बढी ।
सादर करि भेटी नदनन्दन दूने चाऊ बढी ।।
वृन्दावन में क्रीड़त दोऊ जैसे कुंजर क्रीड़त करिनी ।
परमानन्दस्वामी मनमोहन ताहूको मनहरनी ।।

प्रेमगर्विता—

बांह डुलावति आवत राधा ।
बदन कमल झांपति न उघारति रह्यो है तिलक मिटि आधा ।।

... ... ... ...

परमानन्द स्वामी रति नागर तेरो पुन्य अगाधा ।

रूपगर्विता—

> छांड़ि न देत झूठे अभिमान।
> मिलि रस रीति प्रीति करि हरि सौं सुन्दर हैं भगवान ।।
> यह जोवन धन द्यौस चारिको पलटत रंग सो पान।
> बहुरि कहां यह अवसर मिलि है गोप भेष को ठान ।।
> बार बार दूतिका सिखवै करहि अधर रस पान।
> परमानन्दस्वामी सुख सागर सब गुन रूप निधान ।।

तात्पर्य यह है कि प्रेम की संयोगावस्था के जितने भी चित्र सम्भव हो सकते थे परमानन्ददासजी ने अत्यन्त सफलता के साथ उन्हें प्रस्तुत किया है उनकी प्रेम-व्यंजना इतनी अकृत्रिम, व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक है कि यह पाठक को अनायास ही मुग्ध कर लेती है। लोक-मर्यादा की चिंता ने कवि के हृदय को स्वाभाविक उमंग को दबाया नहीं है। प्रेम के गहन लवणार्णव में लोक-लाज मर्यादा, गुरूजन-संकोच, वेद-मर्यादा गल चुके हैं और केवल एक ही तत्व की आद्योपान्त प्रधानता रह गई है। सयोग शृंगार के इतने विविध चित्र परमानन्ददासजी ने प्रस्तुत किए हैं कि कहीं कुछ और प्रस्तुत करने को कठिनाई से ही रह जाता है। सभी प्रकार के प्रेम के रूप, सभी प्रकार की नायिकाओं की अवस्था, सभी प्रकार के हार्दिक भाव एक साथ परमानन्ददासजी मे देखने को मिल जाते है। उन्होंने वस्तु व्यंजना की अपेक्षा भाव-व्यंजना पर ही अधिक दृष्टि रखी है।

अतः सरस मनोराग की दिव्य अनुभूति के लिए दिव्य प्रकृति के सभी उद्दीपनों को प्रस्तुत कर दिया है। एकान्त उपवन, निकुंज, रमणीय लता, सघनवृक्ष, यमुना कछार, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, बसन्त सभी ऋतुएँ अनुकूल प्राकृतिक वातावरण, कवि की सूक्ष्म दृष्टि के परिचायक हैं।

एकान्त निकुंज की क्रीड़ास्थली शारदीय एवं वासन्तिक चन्द्र-ज्योत्स्ना, राधा कृष्ण को अतिशय प्रिय हैं। कृष्ण राधा को वन्य-सौंदर्य की ओर आकर्षित करते हुए कहते हैं—

> राधे देखि बन के चैन।
> भृंग कोकिल सब्द सुनि सुनि होत प्रमुदित नैन ।।
> जहां बहत मंद सुगंध सीतल यामिनी सुख सैन।
> कौन पुन्य अगाध को फल तू जो बिलसत ऐन ।।
> लाल गिरिधर मिल्यो चाहत, मोहन मधुरे बैन।
> दासपरमानन्द प्रभु हरि चारू पंकज नैन ।।

इसी प्रकार वर्षाकालीन कृष्ण मेघ उमड़ती घटाएँ, घुमड़ते बादल रंग बिरंगी आकाशाय आभा, पपीहे का शब्द, दामिनी की दमक, दादुर मोर कोकिला का बोलना भी तो रस के उद्दीपन करने वाले हैं। राधामाधव के शीतकालीन संयोग शृङ्गार के वर्णन आज की लोक दृष्टि से अवश्य ही अश्लीलता की सीमा को स्पर्श कर गए हैं, परन्तु भक्तों की दृष्टि से यह लौकिक काम नहीं।

पौढ़े रंगमहल ब्रजनाथ ।
रंग रस की करत बतियाँ राधिका लै साथ ॥
दोऊ ओढ़ रजाई क्रीड़त ग्रीवा भुजा भर बाथ ।
परमानन्दप्रभु काम ग्रातुर मदन कियौ सनाथ ॥
पौढे हरि भीनौं पट दै ओट ।

तथा—

संग स्री वृषभान तनया सरस रस की मोट ॥
कमर कुंडल ग्रलक ग्ररुभी हार गुंजा तटंक ।
नील पीत दोउ अदल बदलें लेत भरि भरि ग्रंक ॥
हृदय हृदय सों ग्रधर ग्रधर सों नयन सों नयन मिलाय ।
भौंह भौंह सों तिलक तिलक सों भुजन भुजसों लपटाय ॥
मालती ग्ररु जाइ चंपा सुभग जाती बकूल ।
दासपरमानन्द सजनी देत चुनि चुनि फूल ॥

स्वकीया राधा के संयोग वर्णन मे परमानंददासजी ग्रष्टछाप के कवियों मे सबसे ग्रागे हैं। सभी ऋतुओं में सयोगात्मक वर्णन परमानंदसागर मे उपलब्ध होते हैं। ग्रीष्म मे सुगंधित पुष्प, सुसज्जित शैय्या भीना पट, शरद मे कुज भवन मे शयन, शीत मे ऊष्णोपचार ग्रादि सभी का कवि ने विशद वर्णन किया है। उसी प्रकार वसंत मे मदन-महोत्सव का उन्माद पूर्ण वातावरण परमानंददासजी के प्रेम काव्य का प्राण है। होली की रंगपाशी, फाग खेलने का उत्साह, राधा एवं गोपियों की वेश-भूषा ग्रादि के इतने मादक चित्र परमानंद-दासजी ने प्रस्तुत किये हैं कि पाठक ग्रात्मविभोर हो जाता है।

## परमानंददासजी में वियोग श्रृंगार—

प्रेम की कसौटी विप्रयोग है। बिना विप्रयोग के प्रेम की परीक्षा नही होती। इसी कारण श्रृंगार के दो पक्ष हैं—संयोग ग्रौर विप्रलंभ। काव्य में दोनों ही का होना ग्रनिवार्य माना गया है तभी शृङ्गार रस का पूर्ण परिपाक हो पाता है। शृङ्गार के दोनों पक्षों—संयोग ग्रौर विप्रलंभ–के कारण उसे रसराज की उपाधि प्राप्त हैं। महाकवि भवभूति ने तो विप्रलंभ को ही महत्ता दी है।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात् ।
भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ॥
ग्रावर्त बुद्बुद् तरंगमयान् विकारान् ।
ग्रम्भो यथा सलिलमेवहि तत् समस्तम् ॥

ग्रर्थात्—

एक करुण रस ही निमित्त भेद से भिन्न होकर पृथक्-पृथक् परिणामों को ग्रहण करता है। जलके ग्रावर्त, बुद् बुद् तरंगादि जितने विकार हैं वे सम्पूर्ण जल ही के तो हैं।[1]

तात्पर्य यह है कि भवभूति केवल एक करुण रस को ही प्रधान मानकर ग्रन्य रसों को उसका (करुण का) ग्राश्रित एवं रूपान्तर मात्र मानते हैं। करुण रस का स्थायी भाव शोक है ग्रौर शोक उसी के लिए होता है जिससे स्थायी रति ग्रथवा प्रेम प्राप्त हो। प्रीति के ग्रभाव

१ उत्तर रामचरित ग्रंक—३, श्लो० ४७

में शोक हृदय स्थान पा ही नही सकता। तो प्रिय के कष्ट की आशंका मात्र से उद्विग्न हो जाते हैं। और दया, ममता, करुणा आदि न जाने कितने कितने कोमल भाव चित्त मे घर कर लेते हैं वस्तुतः जीवन का सम्बन्ध जितना करूण रस से है उतना अन्य रसों से नहीं। कान्ता विषयक रति के अतिरिक्त रति के दो भेद और हैं एक तो शिशु विषयक रति, और दूसरी भगवद् विषयक रति। शिशु विषयक रति वात्सल्य कहलाती है। और भगवद्विषयक रति भक्ति। कान्ता विषक रति का शृङ्गार रस मे परिपाक होता है।

बालक विषयक रति, जो वात्सल्य मे परिपुष्ट होती है उसमें भी संयोग वियोग भावना होती है। उसमे भक्तो की वियोग विह्वलता तो प्रसिद्ध ही है। कृष्ण भक्त कवियों में और विशेषकर अष्टछापी कवियो में विप्रलभ के सभी सचारी उपलब्ध होते हैं।

कान्ता विषयक रति—वियोग-शृङ्गार-वर्णन तो काव्य प्रेरणा का मूल ही माना गया है। महाकवि वाल्मीकि ने क्रोंची के करुण विप्रलभ से ही द्रवित होकर सहसा श्लोक की रचना कर डाली थी। उनका शोक ही श्लोकत्व को प्राप्त हो गया था। इसी प्रकार कविवर पत ने भी अनुमान किया है—

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।

अत. वियोग भावना ने अष्टछापी कवियो और उनमे भी विशेषकर सूर तथा परमानंददासजी को जिस सरस काव्य रचना की प्रेरणा दी थी वह अनुपम है। जिस माता यशोदा ने अपने नेत्र गोलक गोपाल कृष्ण को क्षणार्ध के लिए भी विलग नहीं किया, जिसकी भुवन मोहिनी बाल लीलाओ ने उसे उठते-बैठते खाते-पीते, जागते-अहर्निश तन्मय रखा था, जो उसका जीवनाधार था, वही एकदिन दुष्ट कस के आमंत्रण पर उसे सहसा छोड़कर चला गया। और वह भी अनिश्चित अवधि के लिए। बस माता का कलेजा टूक टूक हो गया, उस दारूण व्यथा को उसने कैसे सहा होगा यह तो वही जानती होगी या भगवान्। मथुरा-गमन के इस करूण प्रसंग को लेकर वात्सल्य वियोग के जो करुण चित्र सूर और परमानद ने प्रस्तुत किये हैं वे अन्यत्र दुर्लभ ही रहे।

परमानददासजीने सूर की भांति वात्सल्य-वियोग का विस्तृत वर्णन तो नही किया है, परन्तु उसके मार्मिक पक्ष को वे छोड भी नही सके हैं। कृष्ण के शैशव की घटनाएँ माता के स्मृति-पथ मे एक एक करके आरही हैं। वियोग विह्वला माता अक्रूर के पैर पकड कर विनती करता है कि वे उसके लालो को फिर से व्रज मे पहुँचा जांय।

> व्रज जन देखे ही जियत।
> मेरे नैन चकोर सुधाकर हरि मुख दृष्टि पियत॥
> तुम अक्रूर चले लै मधुवन हरि मेरे प्राणअधार।
> रामकृष्ण गोकुल के लोचन सुन्दर नंदकुमार॥
> इतनी करौं, पाई लागति हौं, वेगि घोख लै आवऊ॥
> परमानद स्वामी है लरिका कौन लागि समझाऊँ।

माता उद्धव के रथ को देखने आती है—

> जसोदा रथ को देखन आई।
> देखो री मेरो लाल गिरैगो कहा करौं मेरी माई॥

मेरो ढोटा पालने सोवै उधरक उधरक रोवै ।
अघासुर.बकासुर मारे नैन निरंतर जोवै ॥
देहरी उलंघन गिर्यो री मोहन सोई घात में जानी ।
परमानंद होत तहाँ ठाड़े, कहत नंद जू की रानी ॥

उस निधनी ने अपने प्राणवल्लभ प्रिय पुत्र के लिये बड़ी बड़ी मनोतियां मानी थी, प्रतीक्षा का थी किन्तु निराशा ही हाथ लगी और उसे अंत मे चिर वियोग का संदेश मिल ही गया। कृष्ण के मथुरागमन और उद्धव-संदेश के इस प्रसंग को लेकर इन सरस भावुक कवियों ने हृदय की जिन सूक्ष्म मार्मिक वृत्तियों का उद्घाटन किया है वे हिन्दी साहित्य में ही क्या विश्व-साहित्य में अमूल्य हैं।

वात्सल्य के इन मार्मिक चित्रों के अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने तीनों प्रकार के विप्रलम्भ-पूर्वराग, मान और प्रवास—के पद भी दिए हैं। पूर्वराग और मान के उदाहरण तो उनके संयोग शृंगार में मिल जाते हैं, किन्तु प्रवास जनित विप्रलम्भ मथुरागमन और उद्धव-संदेश में मिलता है। हिन्दी साहित्य में यही भ्रमर गीत के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी परम्परा भागवत से प्रारम्भ हुई है। कंसवध के उपरांत श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को नंद यशोदा, गोप, गोपी के पास अपना सान्त्वना-संदेश देकर भेजा है। यह प्रसंग दशमस्कंध के ४७वें अध्याय में है। भागवत में यह प्रसंग बहुत विस्तार के साथ नही है। न वहाँ गोपियों का तर्क अथवा वाद विवाद मिलता है। न ही कृष्ण के प्रति उपालम्भ। परन्तु सूर परमानन्दादि अष्टछाप के कवियों ने इसी प्रसंग को लेकर बड़ी बड़ी मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। अपनी दिव्य कल्पना-शक्ति के सहारे इन भक्तों ने उच्चकोटि की सहृदयता का परिचय दिया है। सूरदासजी का भ्रमरगीत तो पूरा एक स्वतंत्र काव्य-ग्रन्थ ही कहा जा सकता है। किन्तु परमानन्ददासजी का उतना विस्तृत न होकर भी अपनी मार्मिकता मे बेजोड़ है। जिन गोपियो के साथ प्यारे श्यामसुन्दर ने मधुर लीलाएं की उन्हें वे सहसा कैसे विस्मृत करदें। अतः कुछ दिन तो प्रतीक्षा में व्यतीत हुए। फिर एक दिन मथुरा की ओर से एक रथ आता दिखाई दिया। रथ मे प्यारे श्यामसुन्दर जैसा ही कोई बैठा दिखाई देता है। किन्तु बाद में पता चला कि वे कृष्ण सखा उद्धव हैं। उद्धव ने कृष्ण का संदेश दिया। बस सदेश क्या था—वियोग विधुरा गोपिकाओं के लिए चिर-वियोग का पीड़ादायक परवाना था। तन मन धन को वार देने वाली प्रेमस्वरूपा गोपिकाओं का अपने प्राणाधार प्राणवल्लभ श्यामसुन्दर का सन्देश सुनकर जिस दारूण व्यथा-पीड़ा, ग्लानि, निर्वेद का अनुभव किया उसका वर्णन करना कठिन है। उनके जीवन का रस सदा के लिए समाप्त हो गया। तन मन की दशा बिगड़ गई और उन्हें घर, वन कहीं भी चैन नहीं। केवल अतीत का स्मरण ही उनकी चेतना का आधार है। वियोग विकला गोपियों की आन्तरिक स्थिति वर्णनातीत है। किन्तु बाह्य सृष्टि में भी उनकी वेदना प्रसार पा रही हैं।

माई री चंद लग्यौ दुख दैन।
कहाँ वो देस कहाँ मन मोहन, कहाँ सुख की रैन ॥

चलते समय अपने प्यारे कृष्ण को भलीभांति देख नही पाए यही उनको बड़ा भारी पश्चात्ताप है।

चलत न देखन पाए लाल।
नीकें करि न विलोक्यो हरि मुख इतनोई रह्यो जिय साल।

अपनी एक और असावधानी पर भी पश्चात्ताप है कि चलते समय उनसे रुक जाने के लिए किसी ने नहीं कहा।

चलत न कान्ह कह्यो रहनो।
बिन ब्रजनाथ भई हम व्याकुल लागी दुख सहनो॥

गोपियों को पश्चात्ताप है कि वे मन भर के गोपाल के साहचर्य का आनन्द नहीं उठा पाई। अतः अब उनकी लीलास्थली में वे विलाप करती फिरती हैं—

जियकी साथ जिय ही रहिरी।
बहुरि गोपाल देख नहिं पाए बिलपति कुंज अहीरी॥

× × × ×

परमानन्द स्वामी दरसन बिनु नैनन नदी बहीरी॥

न उन्हें रात्रि में चैन है न दिन में। वे अहर्निश खोई खोई सी रहती हैं। उन्होंने अब शृंगार करना भी छोड़ दिया है। कितनी ही रातें बिना सोए बीत गई हैं।

केते दिन भए रैन सुख सोए।
कछु न सोहाई गोपालहि बिछुरे रहे पूंजी सी खोए॥
जब ते गए नन्दलाल मधुपुरी चीर न काहू धोए।
मुख तंबोर नैन नहिं काजर, विरह सरीर बिगोए॥
ढूंढत घाट, बाट, वन परवत, जहां जहां हरि खेल्यो।
परमानन्द प्रभु अपनो पीताम्बर मेरे सीस पर मेल्यो॥

कृष्ण का वह अतीत साहचर्य, उनका मधुर प्रेमालाप आज स्मृतिपथ में आकर विरह-ताप को अधिकाधिक बढ़ा रहा है।

तुलसी की कौशल्या को राम के घोड़ों का बड़ा अँदेशा है। वे राजहंस के से जोड़े जिन्हें कभी राम ने अपने कर कमलों से पाले पोसे थे अब उनके बिना कैसे रहेंगे। इतना अवश्य है कि भाई भरत राम के पीछे उनकी सार सम्हाल करते हैं फिर भी राम यदि एक बार आकर देख जाते तो कितना अच्छा होता। परन्तु प्यारे श्यामसुन्दर की गायों के लिए तो उतनी भी सांत्वना नहीं। अब उनकी देख रख और लालन पालन कौन करेगा।

माई को दुहि गाय चरावै ।[1]
दामोदर बिन अपनु संघातिन कौन सिंगार करावै ॥
सव कोई पूजै दीपमालिका, हम कहा पूजै माई ।
राम-गोपाल जु मधुपुरी गवने धाय धाय ब्रज खाई ॥
दाम दोहनी माट मथानी, गाय बाछि को पूजै ।
काके मिले चलें ये गोकुल कौन बेनु कल कूजै ॥
करत प्रलाप सकल गोपी जन मन मुकुंद हरि लीनो ।
परमानद प्रभु इतनि दूर वसि मिलन दोहिलो कीनों ॥

यदि इतना वियोग जन्य दुख देना था तो क्यो व्यर्थ ही इतना प्रेम फँसाया । और क्यों इतनी ममता का विस्तार किया था—

माधौ काहे को दिखाई काम की कला ।

गोपियाँ जानती हैं कि मथुरा अधिक दूर नही, फिर भी कोई संदेश नहीं आता । क्या कोई पथिक उधर से नही आता । क्या पत्र लिखने के साधन उनके पास नही रहे । क्या उनसे कोई नया प्रेम हो गया है ? अनेक तर्क-वितर्क उनके मस्तिष्क मे उठते हैं—

माधौ ते प्रीत भई नई ।
कितनी दूर यह मथुरा ते निकटहि कियो बिदेस ॥
कागद मसि खूटि गई पठियो न सदेस ।
हरिनी जो जोवन मग ऊरध लेत उसास ।
यहै दसा देखि जाहु परमानंददास ॥

बिरहिणियो को अन्य ऋतुओ की अपेक्षा वर्षा ऋतु विशेष दुखदायी होती है । उसमें भी अन्धकारमयी रात्रि मे जब पपीहो की पी पी की रट लगती हो, आकाश मे मेघ गरजता हो, चपला चमकती हो उस समय कोई मुरली का मधुर स्वर छोड दे तो सम्बन्ध-भावना से प्रिय का स्मरण कितना तीव्र हो जाता है कि रात्रि कटनी कठिन हो जाती है । और भ्रम से गोपी अपनी सैया छोड भाग उठती है—

रैन पपीहा बोल्यो री माई ।
नीद गई चिंता चित बाढी सुरति स्याम की आई ॥
सावन मास देखि बरखा रितु हौं उठि आँगन धाई ।
गरजत गगन दामिनी दमकत तामे जीऊ उडाई ॥
राग मलार कियो जब कोऊ मुरली मधुर बजाई ।
बिरहिन बिकल दासपरमानद धरनि परी मुरझाई ॥

---

१ तुलना कीजिये—

राघौ ! एक वार फिर आवौ ।
ए वर वाजि विलोकि आपने बहुरो वनहि सिधावौ ।
जे पय प्याइ पोखिकर पंकज वार वार चुचुकारे ॥
क्यों जीवहिं मेरे राम लाड़िले ते अब निपट बिसारे ।
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे ॥
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम मारे ॥
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं बन कहियो मातु सँदेसो ।
तुलसी मोहि और सबहिन ते इन्हको बडो अँदेसो ॥ गीता० अ० ८८

एक और विचित्र परिस्थिति का चित्रण परमानंददासजी ने किया है। वैसा बहुत कम कवियों द्वारा देखने में आया है। गोपीने स्वप्न मे श्रीकृष्ण का आलिंगन पा लिया है। इतने में ही निद्रा भंग हो गई। बस वियोग के कारण आँखों से अश्रु बह चले हैं। कितना मनोवैज्ञानिक किन्तु सटीक और स्वाभाविक तथ्य चित्रण है।

मदन मार मारि गये मोहन मूरति कोऊ।
कमल नैन स्याम सुन्दर भावत है सोऊ॥
सुपने मे डहकि गये दै आलिंगन गाढ़े।
जागौं तो दुखित नयन जल प्रवाह बाढे॥
गति विलास मधुर हास ताकी हौं चेरी।
सरबसु लै अनत गए ऐसी भई गति मेरी॥
कैसे करि प्रगट मिलौं कैसे के देखौं।
परमानंद भाग दसा इतनों फल लेखौं॥

वियोग के भय के म रे गोपी आंख नही खोलना चाहती। वियोग दशा का सच्चा अनुभव करने वाले महात्मा कबीर ने लिखा है—

'मनु सुपना ह्वौ जाय।'

विरहिणी इस भय से नेत्र नहीं खोलती कि जगने पर यह मिलन स्वप्न में परिवर्तित हो जायगा। कैसा स्वाभाविक चित्रण है। वियोग दशा में बाह्य सृष्टि में भी तो सब विपर्यय ही दीख रहा है—

ब्रज की औरै रीति भई।
प्रात समय अब नाहि न सुनीयत घर घर चलत रई॥
ससि की किरन तरनि सम लागत, जागत निसा गई।

रात्रि बढ चली है, किसी तरह भी कटती नही।

हरि बिन बौरिन रैन बढी।

सूर की गोपियाँ भी इसी भाँति रात्रि के बढने की शिकायत करती हैं। मेघों का घुमडना, वर्षा की झड़ी उन्हे भी बुरी लगती है। उसी प्रकार परमानंददासजी की गोपियाँ भी काली बदली को उपालंभ देती हैं—

बदरिया तू कित ब्रज में दौरी।
असलन साल सलामन लागी विधिना लिख्यौ बिछोह री।
रहौ जू रहौ जाहु घर अपने दुख पावत है किसोरी॥
परमानद प्रभू सो क्यों जीवै जाकी बिछुरी जोरी॥

रात दिन नेत्रों में अश्रु जल परिपूर्ण रहता है अब न उनमें काजल लगाने की इच्छा है न ही श्रृंगार करने की, न वस्त्र बदलने की।

ता दिन काजर देहौं सखी री।
जा दिन नंदनदन के नैनन अपने नैन मिलैहौं॥
करौं न तिलक बरतौं न रतन बसन न पलटि पहिरि हौं।
करौं हरतार सिंगार सबन को कंगना माँझ न बधै हौं॥
अब तो जिय ऐसी बनि आई भूले अनत चितै नहि देहौं।
परमानद प्रभु यही परेखो अब न बारहि बार लजै हौं।

अब तो कृष्ण का पत्र भी पढना दूभर हो उठा है।

*पतिया बाँचे हू न आवें।*
देखत अंक नैन जल पूरे गद्गद् प्रेम जनावैं ॥

उसकी स्थिति व्याकुलता की चरम सीमा को पहुँच गई है। गोपी अपने तन मन की दशा को भूल चुकी है। उसकी दशा फूटे खिलौने जैसी हो गई है। चित्त स्थिर नहीं—

व्याकुल बार न बाँधति छूटे।
जबते हरि मधुपुरी सिधारे उर के हार रहत सब टूटे ॥
सदा अनमनी विलख बदन अति इहि ढंग रहत खिलौना से फूटे।
विरह बिहाल सकल गोपीजन अभरन मनहु बटुकन लूटे।
जल प्रवाह लोचन से बाढे बचन सनेह अभ्यंतर घूटे।
परमानंद कहीं दुख कासों जैसे चित्र लिखी मति टूटे ॥

*सूरदास की तरह परमानंददासजी की गोपिकाएँ तर्क अथवा व्यंग करने वाली* किंवा उपालभ देनी वाली नहीं हैं। अपितु वे ऊधो को एक अत्यन्त आत्मीय सुजन मानकर दिल की बात कहने बैठ जाती हैं—

ऊधो नाहिन परत कहो।
जबते हरि मधुपुरी सिधारे बोहोत ही बिथा सहो।

इस प्रकार परमानंददासजी के वियोग शृंगार मे जो सरस गम्भीर मार्मिक प्रेमानुभूति है। वह पाठकों को आत्मविभोर करके एक अनिवर्चनीय स्थिति में ले जाती है। उन्होंने सूर की भाँति वियोग की सब नही तो बहुतसी अंतर्दशाओं का चित्रण किया है। थोड़ी सी इस प्रकार हैं—

अभिलाप—

सखिरी तादिन काजर देहो।
जादिन नंदनंदन के नयना अपने नैन मिलैं हौं ॥

तथा—

कान्ह मनोहर मीठे बोलै।
मोहन मूरति कब देखोगी सरसिज चंचल डोलैं ॥
स्याम सुभग तन चर्चित चंदन पहिरे पीत निचोलैं।

चिन्ता—

कमल नयन बिन और न आवै।
अहनिस रसना कान्ह कान्ह रट बिलख वदन ठाड़ी जोवत बट।
तुमरे दरस बिनु वृथा जात है मेरे ऊरज धरे कंचन घट ॥

स्मृति—

जीय की साध जियही रही री।
*बहुरि गोपाल देख नहीं पाये बिलपति कुंज अहीरी ॥*
एक दिन सो जु सखी इहि मारग बेचन जात दही री।

प्रीति के लए दान मिस मोहन मेरी बाँह गही री ॥
बिनु देखे पल जात कलप भरि बिरहा अनल दही री।
परमानन्द स्वामी दरसन बिन नैनन नदी बही री ॥

गुणकथन—

माई को इहि गाय चरावै।
दामोदर बिन अपुन संघातिन कौन सिंगार करावै ॥

उद्वेग—

रैन पपीहा बोल्यौ री माई।
नींद गई चिंता चित बाढी सुरति स्याम की आई ॥
सामन मास देखि बरखा रितु हौं उठि आँगन धाई।
गरजत गगन दामिनी दमकत तामें जीऊ उडाई ॥

प्रलाप—

माघो काहे को दिखाई काम की कला।
तुमसौं जोरि सबनि सौं तोरी नद के लला ॥
जौ गोपाल मधुबनहि बसते गोकुल वास न करते।
जो हरि गोप भेष नहिं धरते कत मेरो मन हरते ॥

व्याधि—

गोविंद बीच दै सर मारी।
उर तन कुटी बिरह दावानल फूंकि फूंकि सँधि जारी ॥
सोच पोच तन छीन भयौ अति कैसी देह बिगारी।
जो पहले विधि हरि के कारन अपने हाथ सँवारी ॥
× × × ×
परमानन्द बिरहिनी हरि की सोचत अरु पछताई ॥

उन्माद—

कैते दिन भए रैनि सुख सोए।
*कछु न सोहाई गोपालहि बिछुरे रहे पूंजी सी खोए ॥*
जबते गए नंदलाल मधुपुरी चरनन काहू धोए।
मुख तंबोर नैन नहि काजर बिरह सरीर बिगोए।
ढूढत घाट बाट वन परवत जहां जहां हरि खेल्यौ।
परमानन्द प्रभु अपुनो पीतांबर मेरे सीस पर मेल्यौ ॥

जड़ता—

व्रज के बिरही लोग बिचारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाड़े अति दुर्बल तन हारे ॥

मूर्छा—

हरि तेरी लीला की सुधि आवै।
कमल नैन मोहन मूरति के मन मन चित्र बनावै।

कबहुँक निविड़ तिमिर ग्रालिंगन, कबहुँक पिक सुर गावैं ।।
कबहुँक संभ्रम क्वासि क्वासि कहि संगहि हिलमिलि धावैं ।।
कबहुंक नैंन मूंद उर ग्रंतर मनिमाला पहिरावैं ।
मृदु मुसुकान बंक ग्रवलोकनि चाल छबीली भावैं ।
एक बार जिहि मिलहिं कृपा करि सो कैसे बिसरावैं ।।
परमानंद प्रभु स्याम घ्यान करि ऐसे बिरह गंवावैं ।।

मरण—

प्रीति तो काहू सों नहि कीजै ।
बिछुरे कठिन परे मेरी ग्राली कहो कैसे करि जीजै ।।

इस प्रकार परमानन्ददासजी ने गोपी विरह पर बड़े ग्रनूठे, सीधी साधी उक्ति वाले ग्रनेक भावपूर्ण पद लिखे हैं जो उनकी गहरी प्रेमानुभूति के परिचायक हैं। परन्तु वे हैं मुख्यतः युगल विग्रह के उपासक। उनकी राधा-कृष्ण-केलि-वर्णन सुरतांत है। ग्रतः वे मुख्यतः संयोग श्रृंगार के ही कवि माने जायेंगे। लोक दृष्टि से भले ही वे मर्य्यादा वाह्य माने जायें परन्तु एकान्त-भावना के क्षेत्र में उनकी भावधारा प्रेम-लक्षणा-भक्ति प्रधान है। परमानन्ददासजी सूर की भाँति मुख्यरूप से वात्सल्य ग्रौर श्रृंगार के ही रससिद्ध कवि हैं, फिर भी उनमें ग्रन्य रस मिल जाते हैं।

हास्य—

परमानन्ददासजी के बाललीला परक पदों में हास्य के ग्रच्छे उदाहरण मिल जाते हैं। कृष्ण किसी गोपी की खिड़क में पहुँच गए हैं। गोपी को परेशान करने के लिए खिड़क का दरवाजा खोल कर बछड़े खोल दिए ग्रौर गायों को दूसरों की गायों में मिला दिया। उससे पूर्व गोपी को दोहनी ढूंढने में व्यस्त कर दिया—

ढोटा मेरी दोहनी दुराई।
द्वार उघारि खोल दिए बछरा, बेछट गैयाँ चुरवाई।
हौं पचिहारी, कही नहीं मानत बरजत नाके ग्राई।।

एक ग्रौर दृश्य—

*कृष्ण एक गोपी के घर में घुस गए हैं, माखन खाकर चिकना पुराना मटका फोड़ दिया।* जब माता को उलहना देने गोपी ग्राई, तब श्रीमान् पहिले से हो वहाँ उपस्थित थे।

ऐसे लरिका कतहुँ न देखे बाट सुचालि गांऊ की नाई।
माखन चोरत, भाजन फोरत, उलटि गारि दै मुरि मुसकाई।

... .... ...

पाछे ठाडे मोहन चितवत धीरे ही ते चार्यो लाई ।।
परमानन्ददास को ठाकुर भज्यो चहत चोरी खाई।

कभी-कभी मक्खन खाकर दूध लुढका कर, दही शरीर से लपेट कर घरके बच्चों पर मट्ठा छिड़क कर भाग जाते हैं।

जसोदा बरजति काहे ते नहीं ।

× × ×

माखन खाइ, दूध महि ढोरैं लेपत अंग दही ।
ता पाछे जो घर के लरिकन भाजत छिरक महीं ।।

कभी कभी छोटे-छोटे कुत्ते के पिल्लों को पकड़ कर ले आते हैं ।

लाल कौं भावै गुड़ गाँड़े अरु बेर ।

× × ×

परमानन्ददास को ठाकुर पिल्ला लायो घेर ।

प्रायः माताएँ बच्चों को ब्याह का प्रलोभन देकर उनको शरारतों से रोका करती हैं । कवि से यह तथ्य भी छिपा नहीं रहा । कैसा स्वाभाविक चित्र है ।

छाँड़ो मेरे लाल अजहूँ लरिकाई ।
यह काल देखिकें तोकों ब्याह की बात चलावन आई ।
डरि है सास ससुर चोरी तें सुनि हँसि है दुल्हैया सुहाई ।।
उबट न्हवाय गूथ चुटिया बल देख भलो वर करिहै बड़ाई ।

करुण—

करुण का स्थायी भाव शोक है । मथुरा जाते समय इसकी व्यंजना हुई है:—

गोपालैं मधुवन जिन लै जाऊ ।
मोहि प्रतीत कंस की नाहीं, सोम वंस को राउ ।
तुम अकरुर बड़े के बेटा अति कुलीन मति धीर ।
बैठि सभा सकल राजन की जानत हौ पर पीर ।
बहिन देवकी बसुदेव सुजन उनको दीनों तरास ।।
बालकउ ते निगड़ में राखे कारागृह मे बास ।
कहत जसोदा सुन सुफलक सुत हरि मेरे प्रान अधार ।।
परमानन्ददास को जीवननि छाँडि जाहु इहि बार ।

रौद्र—

इन्द्र पूजा का निषेध करते हुए कृष्ण नंदजी से कहते हैं कि हमे इन्द्र से क्या प्रयोजन है । उसकी पूजा मे अन्न का व्यय करना व्यर्थ है । इस प्रसंग में क्रोध की व्यंजना हुई है । इन्द्र आलंबन है । कृष्ण आश्रय ।

नंद गोवर्धन पूजौ आज ।
जातें गोप ग्वाल गोपिका सुखी सबन को राज ।
जाकों रुचि-रुचि बलिहि बनावत कहा सक्र सौं काज ।
गिरि के बल बैठे अपने घर कोटि इन्द्र पर गाज ।।
मेरी कह्यो मान अब लीजे भर भर शकटन साज ।
परमानन्द आन के अर्पत वृथा करत कित नाज ।

वीर—

वीर रस का स्थायी भाव 'उत्साह' होता है और आलंबन वह कर्म होता है जिसको आश्रय सोत्साह करता है ।

गर्जन तर्जन, भुजा ठोकना आदि अनुभाव है। हर्ष, गर्व, असूया, उग्रता, धैर्य स्मृति तर्क आदि संचारी होते हैं। मथुरा मे धनुष यज्ञ के अवसर पर इसकी व्यजना हुई है।

काहे को मारग मे अध छेडत।
नदराइ को मातो हाथी आवत असुर लपेटत॥
कहत ग्वाल सब सखा नद के गल गरजत भुज ठोंकत।
कस वस को परिचित करिहैं कौन भरोसे रोकत
नाहिन सुनी? पूजना मारी तृनावर्त अध केसी।
परमानददास को ठाकुर यह गोपाल पेरेसी॥

भयानक तथा वीभत्स के उदाहरण परमानददासजी के उपलब्ध पदों में नहीं मिलते। वे कोमल, सरस, पवित्र भावों के कवि थे; सभवत. उनमें इन रसों का अभाव हो।

अद्भुत्—

कैसो माई अचरज उपजै भारो।
पर्वत लीयो उठाई अक लै सात बरस को वारो॥
सात द्यौस निसि इकटक ही याने वाम पानि पर धार्‌यौ।
अति सुकुमार नद को वारो कैसे बोझ सहार्‌यो।
बरखे मेघ महा प्रलय के तिनते घोष उबार्‌यो॥
गोधन ग्वाल गोप सब राखे मघवा गर्व प्रहार्‌यो।
भक्त हेत अवतार लेत प्रभु प्रकट होत युग चार्‌यौ।
परमानद प्रभु की बल जइए जिन गोवर्धन धार्‌यो॥

और भी

महा काय गोवर्धन पर्वत एक ही हाथ उठाय लियौ।
देवराज को गर्व हर्‌यो हरि अभय दान ग्वालन दियौ।
... .... ... ... .... ... ...
अर्जुन बिरछ छिनक मे तोरि आपन दाम उखूसल बधाये।
परमानददास को ठाकुर जाको गर्ग मुनि गाये।

तथा—

देखो गोपालजू की लीला ठाटी।
सुर ब्रह्मादिक अचरज ह्वै है जसुमति हाथ लिये रजु साटी।
ये सब ग्वाल प्रगट कहत है स्याम मनोहर खाई माटी।
वदन उघारि भीतर देख्यो त्रिभुवन रूप वराटी।
केसव के गुन वेद बखाने सेष सहस मुख लाटी।
लख्यो न जाय अत अन्तरगति बुद्धि न प्रवेस कठिन यह घाटी।
जनम करम गुन स्याम के बखानत समुझि न परै गूढ़ परिपाटी॥
जाके सरन गये भय नाही सो सिंधु परमानन्द दाटी।

शांतरस—

परमानददासजी के भक्ति और दैन्य परक पदो मे शांत रस ओत प्रोत है। उनमें ससार की असारता जीवन की नश्वरता के साथ भक्ति की एक मात्र सत्यता झलक रही है।

करत हैं भगतन की सहाय।
दीन दयाल देवकीनदन समरथ जादोराय।
हस्त कमल की छाया राखें जगत निसान बजाय।
दुष्ट भुवन भय हरत घोसपति गोवर्धन लियो जु उठाय।
कृपा पयोध भक्त चितामनि ऐसे विरद बुलाय।
परमानददास प्रतिपालक वेद विमल जस गाय।

निर्वेद का एक और उदाहरण—

गई न आस पापिनी जैहै।
तजि सेवा बैकुंठनाथ की नीच लोग सग रहै है।
जिनको मुख देखें लागे तिनसों राजा राय कहे है।
फिर मद मूढ अधम अभिमानी आसा लगि दुर्वचन सहे है।
नाहिन कृपा स्यामसुन्दर की अपने लागे जात बहे है।
परमानद प्रभु सब सुख दाता गुन विचार नहि नेम गहे है।

## कवि की अनन्यता और दैन्य का एक और उदाहरण—

तुम तजि कौन नृपति पै जाऊँ।
मदन गोपाल मडली मोहन सकल भुवन जाको ठाऊँ।
तुम दाता समरथ तिहूँपुर के जाके दिये अघाऊँ।
परमानददास को ठाकुर मनवांछित फल पाऊँ॥

तात्पर्य यह है कि परमानददासजी के भक्ति दैन्य वैराग्य पदों में शातरस परिपूर्ण रूप से झलक रहा है। इस प्रकार कवि ने रसराज शृ गार के उभय पक्षो सयोग और विप्रलभ का प्रधान रूप से वर्णन किया है वात्सल्य को रस कोटि तक पहुँचा दिया है। और अन्य रसों का यथास्थान समावेश किया है।

## परमानंददासजी के काव्य में अन्य चित्रण—

महाकवियों के काव्यों में वस्तु वर्णन के अतर्गत बहुधा हमे अनेक प्रकार के वर्णन एव चित्रण मिला करते हैं। कवि पनी कल्पना, अनुभूति, और अभिव्यक्ति के ही कारण मौलिक कहा जाता है। जानी पहिचानी अथवा कही सुनी एक ही वस्तु को वह पुन इस प्रकार अपने पाठकों के सन्मुख रखता है कि पाठक उसे जानते हुए भी मुग्ध होकर उसे बार बार पढना अथवा सुनना चाहता है। यही कारण है कि मर्य्यादा पुरुषोत्तम राम और लीला पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के लीला चरित वाल्मीक और व्यास के माध्यम से परिचित होते हुए भी भक्त कवियों की अपनी अभिनव अभिव्यक्तियों के कारण नूतन और मधुर लगती हैं। इसी को स्पष्ट करते हुए महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने कहा था कि व्यास-बाल्मीक आदि कवि पुगवो ने यद्यपि हरि-चरित का सादर वर्णन किया है, फिर भी मैं अपनी भाषा मे अपने आत्म-सुख एव आत्म प्रबोध के लिये मैं भगवद्-यश वर्णन करता हूँ।[1]

---

१ व्यासआदि कवि पुगव नाना।
निन सादर हरि चरित बखाना।
भाषा बद्ध करब मैं सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई॥ रा० च० मा० बालकाण्ड

वही कृष्ण कथा, जो भारतीय वाङ्मय के अमर गायक महाकवि व्यास की समाधि भाषा (श्रीमद्भागवत) में गाई गई है इन अष्टछाप के भक्त गायकों के हाथ में पड़कर अधिकाधिक मधुर, रसात्मक एवं मादक बन गई है। वही परमानन्ददासजी का भी काव्य विषय रहा है। उसमे भी भगवान की बाललीला जिसमें कवि ने अपने मानस लोक में प्रत्यक्ष किया हुआ सौन्दर्य चित्रण मनोवैज्ञानिक तथ्योद्घाटन, सूक्ष्मनिरीक्षण चित्रोपमता आदि उपलब्ध होते हैं।

परमानंददासजी आदिकालीन कवियों या रासोकारों की भांति न तो अत्यंत अतिरंजित अथवा अस्वाभाविक हैं न सूफी कवियों की भांति अतिमानव, न निर्गुण कवियों की भांति लोकोत्तर अथवा परात्परवादी। नहीं वे आधुनिक कवियों के समान किसी स्वप्न लोक के विचरणशील व्यक्ति। वे तो सीधी सादी स्वाभाविक कल्पना करने वाले भक्त कवि हैं। इनकी कल्पना इसी लोक की, सब की अनुभूत और इतनी स्वाभाविक होती है कि पाठक तुरन्त ही तादात्म्य काअनुभव करता हुआ रसानुभूति में निमग्न हो जाता है। वे गृहस्थ नहीं थे परन्तु गृह्य वातावरण स्त्रियों के वार्तालाप और व्यवहार, शिशुओं की चेष्टाओं आदि के सजीव चित्रण मे इतने पटु हैं कि देखते ही बनता है। उदाहरण के लिए हमारे नित्य जीवन में यह साधारण सी धारणा चली आ रही है कि सवेरे सवेरे किसी भले अथवा शुभ व्यक्ति का मुँह देखलें तो सारा दिन आनन्द से बीतता है और कुछ न कुछ लाभ होता है। कवि ने इस तथ्य को एक गोपी के माध्यम से रखा है—

लाल को मुख देखन को हौं आई।
काल मुख देखि गई दधि बेचन, जात ही गयौ है बिकाई॥
दिनते दूनों लाभ भयौ घर काजर बछिया जाई॥
.... ... ... ...
परमानन्द सयानी ग्वालिन सैन संकेत बुलाई॥

कृष्ण के मुख देखने से दही भी शीघ्र बिक गया और जल्दी बिका और घर पर काली बछिया गाय ने बियाई। *यहाँ भक्तों के लिए स्वरूपासक्ति भी व्यंजित है।*

शकट-उद्धार के समय मंगल-गीतों और वाद्यों के बीच कवि अपनी कल्पना के सहारे एकदम आकस्मिकता का वातावरण पैदा कर देता है।

करट लई प्रथम नंदनंदन।
... .... ...
मंगल गीत गावत हरखत हँसत कछू मुख मंदन।
... .... .... ...
दई लात गिरि गयौ सकट घँसि तब ही सबै उठि दौरे॥
विस्मय भए विलोकत नैनन भूले से कछु बौरे॥
लिये उठाय कुँवर ब्रजरानी, रहसी कंठ लपटाई॥
प्रेम बिवस सब आपु न संभारत, परमानन्द बलि जाई॥

इसी प्रकार कृष्ण के शिशु चेष्टा में आंगन में चलने फिरने में, मणिमय खंभों में प्रतिबिंब देख कर किलकने में 'सूर की ही भांति परमानन्ददासजी ने अपनी दिव्य कल्पना

से काम लिया है। कल्पना की सजीवता के कारण ही ये इतने स्वाभाविक सरस हृदया वर्षक चित्र उपस्थित कर सके हैं:—

"गिरि-गिरि उठत घुटरुवन टेकत जानुपानि मेरे छैगना"।

शिशु को गोद मे लेकर माता अपने मानस लोक में विचरण किया करती है और अनेक भावी आशाएँ अभिलाषाएँ किया करती हैं, कवि से यह तथ्य छिपा नही था—

जा दिन कन्हैया मोसों मैय्या मैय्या कहि बोलेगो।
ता दिन अति आनंद गिनौरी माई रुनक झुनुक ब्रज गलिन मे डोलेंगो।

बच्चा चलने लगा है। अतः माता डरती है कि कही ऐसे स्थान पर न चला जाय जहाँ चोट फॅट खा जाय।

कहन लगे मोहन मैया मैया।
दूरि खेलन जिन जाउ मनोहर मारेगी काहू की गैया।
माता जसोदा ठाड़ी टेरे लै लै नाम कन्हैया॥

बाल-चेष्टा एव बाल-क्रीड़ा के वर्णन मे कवि ने इतनी कल्पनाओं से काम लिया है कि पाठक विस्मय-विमुग्ध हो जाता है। कवि मे मनोवैज्ञानिक चित्रण भी उच्च कोटि के पाये जाते हैं। कर्णवेध प्रसग मे कवि इस तथ्य से भली भाँति परिचित है कि शिशु के इस पीड़ादायक कर्म मे विलव नहीं होना चाहिए। फिर छेदते ही माताएँ प्रायः उस स्थान से बालक को गोद मे लेकर भाग छूटती हैं।

कनक सूचि लै स्रवन को दीनी बेधत वार न लागी।
बालक रुदन करन लाग्यो रोहिनी मात लै भागी।

माताएँ बालक के भविष्य जानने के लिये बड़ी उत्सुक हुआ करती हैं अतः पंडितों ज्योतिषियों को प्रायः हाथ दिखाया करती हैं—

"अपने सुत को हाथ दिखायौ सो कह जो विधि निरमायौ।

खेलने में बच्चे सौगन्ध बहुत खाया करते हैं:—

"सब ही हस्त लै गेंद चलावत करत बाबा की आन।

भोजन मे बच्चों को मीठा अधिक भाता है।

लाल कौ मीठी खीर जो भावै।
बेला भरि भरि देत जसोदा बूरौ अधिक मिलावै॥

शृङ्गार और प्रेम प्रधान पदो मे तो मनोवैज्ञानिकता भरी पड़ी है। प्रथम समागम के चिन्हो को देखकर मुग्धा को कितना मानसिक सुख, गौरव और आह्लाद होता है—

राधे बैठी तिलक संवारति।
× × × ×
अन्तर प्रीति स्याम सुन्दर सो प्रथम समागम केलि संभारत।

गुप्त प्रेम जब प्रगट हो जाता है तो निर्भीकता की वह स्थिति आ जाती है जब हमें लोक-लाज कुल मर्यादा आदि की तनिक भी पर्वाह नहीं होती—

नंदलाल सों मेरो मन मान्यौ कहा करैगो कोइरी ।
हौं तो चरन कमल लपटानी जो भावै सो होयरी ॥
× × × ×
जो मेरो यह लोक जायगो अरु परलोक नसायरी ।
नंदनंदन कों तऊ न छांड़ो मिलूँगी निसान बजायरी ॥

कवि केवल मानव-मनोविज्ञान का ही कुशल चितेरा नहीं था अपितु शिशु मनोविज्ञान से—भी भलीभाँति परिचित था विचित्र रंगों अथवा वस्तुओं को देखकर गायों को चौंकना, पूंछ उठाकर भागना आदि चेष्टाएँ परमानन्ददासजी ने बड़ा कुशलता से चित्रित की हैं। सद्यः प्रसूता गाय (नैचिकी) बत्स के प्रति कितनी सजग एवं लालायित रहती हैं कि कहीं उसके बछड़े के पास कोई नवीन व्यक्ति तो नहीं आ रहा है यदि आ जाय तो वह मारने दौड़ती है।

तेरी सौं सुन सुनरी मैय्या ।
याके चरित्र तू नाहीं जानत, बोलि बूझ संकरखण भैय्या ॥
व्याई गाय बछरवा चाहत पीवत ही प्रात खन घैय्या ।
याहि देख धौरी बिझुकानी मारन को दौरी मोहि गैय्या ॥
द्वै सींगन के बीच पर्यौ मैं तहां रखबारो कोऊ न रहैय्या ।
तेरो पुन्य सहाय भयो है अब उबर्यो बाबा नंद दुहैय्या ॥
यह जो उलटि परी ही मोपै भाज चली कहि दैय्या दैय्या ।
परमानंद स्वामी को जननी उर लगाय हँसि लेत बलैय्या ॥

गाय के बछड़े को लेकर यदि कोई चल दे तो गाय भी पीछे पीछे दौड़ी चला आती है।

किलक हँसे गिरधर ब्रजराई ।
भाज्यो सुबल लिए गोद बछरवा पाछे धौरी धाई ॥

परमानन्ददास जी ने सम्प्रदाय के अनुकूल ही गोधन को पूज्य बुद्धि के साथ महत्ता दी है। गायों का शृंगार किया जा चुका है।

घंटा कंठ सोहित की पटियां पीठिन को आधे ओधार ।
किंकनी नूपुर चरन विराजत हौलें चलत सुढार ॥

गाय को सजा कर उसे घेर कर दौड़ाया जा रहा है। गाय जब भीड़ से तंग आकर भागती है तो पूंछ उठा लेती है। फिर काली गाय अधिक शैतान होती है—

सब गायन में धूमर खेली ।
स्रवन, पूंछ उचकाई सूधी ह्वै ग्वाल भजावत फिरत अकेली ॥

बहुत तंग आकर गाय चिढ़ जाती है पूंछ उठाकर सामने मारने दौड़ती है और छोटे बच्चे परस्पर बचने के लिए आपस में चिपट जाते हैं—

बिफरि गई धूमर और कारी ।
कूकत ग्वाल बछरवा ग्वालिन बदन पिछौरी डारी ॥
तब तो हूकि सन्मुख ह्वै भाजी भली भांति संभारी ।
पूंछ उठाय कै दौरी दोऊ कुंवर भरे अंकवारी ॥

यह भी एक गाय सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि गाय जिस व्यक्ति से नित्य दुही जाती है उसी से परच जाती है और अन्य अपरिचित से बिचकती है—कवि ने इस तथ्य को बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रित किया है।

गोविंद तेरी गाय अति बाढ़ी।
सुनि ब्रजनाथ दूध के लालच मेलि सको नहिं लाढी।
अपनी इच्छा चरै उजागर संक न काहू की मानै॥
तुम्हें पतयाय, स्यामसुन्दर तुम्हरो कर पहचानै॥
ऊँचे कान करत मोय देखत उझक उझक होय ठाड़ी।
परमानन्द नन्दजू के घरकी बालदसा की बाढी॥

गाय कृष्ण से परिचित है। अतः गोपी उन्हे बुलाने आती है। गोपी का कृष्ण के प्रति प्रच्छन्न आन्तरिक प्रेम भी द्योतित हो रहा है। कवि ने बड़े कौशल के साथ दोनों तथ्य व्यंजित किये हैं—

नैंक पठै गिरधर जू कों मैय्या।
रही बिन स्याम पत्यात न काहूहि सूघत नाहिनै अपनी ठैय्या॥
ग्वाल बाल सब सखा सग के पचिहारे बलदाऊ भैय्या।
हूंकि हूंकि हेरत सब ही तन इनही हाथ लगी मेरी गैय्या॥
सुन तिय वचन, कोर हाथ ही, दुँह दिसि चितवन कुँवर कन्हैया।
परमानन्द जसुमति मुसकानी, सग दियो गोकुल को रैय्या॥

## परमानंददासजी के काव्य में चित्रोपमता—

उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक चित्रणों के उपरान्त भावोद्रेक करने वाली चित्रोपमता भी परमानंददासजी में कम नहीं। यहाँ दो चार उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

बच्चों के दो चार दाँत निकलने पर प्रायः माताएँ एक एक दाँत पर अँगुली रख कर बच्चे के प्रिय परिवार के निमित्त एक एक विभक्त कर देती है—

वारी मेरे लटकन पगधरो छतियां।
× × × ×
यह बलभद्र भैय्या की, यह ताको जो झुलाए तेरे पलना।

आगे बच्चों को गुलगुलाती हुई माता कहती हैं—

"यहाँ ते चली खरखात पीवत जल परहरो रोवन, हँसो मेरे ललना॥"

बच्चे को नजर न लग जाय अतः माता दांतों से जीभ दबाकर राई नमक उतारती है—

हो वारी मेरे कमल नैनपर, स्यामसुन्दर जिय भावै।
× × × ×
रसन दसन धरि बाल कृष्ण पर, राई लौन उतारै॥

बच्चा भोजन करते समय कुछ खाता है, कुछ टपकाता है और यदि वह बड़े की गोद में होता है तो लार से गोद वाले आदमी के पेट को सान देता है—

यह तो भाग्य पूरुष मेरो माई।
मोहन को गोदी में लिए जेंवत हैं नन्दराई॥

पुचकारत, पोंछत अंबुज मुख, उर आनंद न समाई ॥
लपटे कर लपटात थोंद भर दूध लार लपटाई ॥

प्रातः यशोदा दधि मन्थन कर रही है, वक्षस्थल पर बड़ा हार झूम रहा है, साथ ही आभूषणों के मणि जगमगा रहे हैं—

प्रात समय गोपी नन्दरानी ।
मिश्रित धुन उपजात हियो सर दधि मंथत अरू माट मथानी ॥
× × × ×
रज्जु कर्षत भुज लागत छवि गावत मुदित स्यामसुन्दर यह ।
चंचल अचंपल कुच हारावली वेनी चलित ख़सित कुसुमाकर ॥
मनि प्रकाश नहिं दीप अपेक्षा सहजभाव राजत ग्वालिन घर ।
× × × ×
परमानंद घोष कौतूहल जहाँ तहाँ अद्‌भुत छवि पेखी ॥

किशोर लीला में राधा कृष्ण के परस्पर प्रेम और संकेत बड़े ही सजीव और चित्रोपम पद मिलते हैं—

साँमरी बदन देखि लुभानी ।
चले जात फिर चितयो मो तन, तबते संग लगानी ॥
वे वा घाट चरावत गैंय्याँ हो इतते गई पानी ।
कमल नैन उपरैना फेर्‌यो परमानंदहि जानी ॥

कहीं-कहीं तो कवि ने चित्रोपमता के साथ साथ सूक्ष्म निरीक्षण की हद करदी है। अपने नटखट बालक की शरारतें सुनकर प्रसन्न होती है, पर वह अपनी उस प्रसन्नता को या हंसी को बच्चे के सामने प्रकट नहीं करना चाहती—

भली यह खेलबे की बानि ।
मदन गोपाल लाल काहू की राखत नाहिन कान ॥
सुनो जसोदा करतब सुत के पहले मोट मथान ।
ढोरि फोरि दधि डारि अजिर में कौन सहे नित हान ॥
× × × ×
ठाड़ी हसत नंदजू की रानी, मंद कमल मुखभानि ।
परमानन्ददास यह बोल बूझ घों आनि ॥

किशोर लीला में एक स्थान पर कवि ने चित्रोपमता सूक्ष्म निरीक्षण का बड़ा ही सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। कृष्ण राधा के सहारे खड़े हैं सखियाँ तांबूल अर्पण कर रही हैं मंदस्मित और प्रेम की उस वर्षा में आनंद का वारापार नहीं रहता। कवि ने बड़ा ही सरस शब्द चित्र प्रस्तुत किया है—

लटकि रहे लाल राधा के भर ।
सुन्दर बीरी संवारि सुंदरी हँसत केलि करत सुंदर वर ॥
ज्यो चकोर चँदा तन चितवत त्यों आली निरखत गिरिवर धर ।
कुंज कुटीर भए वृन्दावन बोलत, मोर कोकिला तरु पर ॥
परमानन्द स्वामी मन मोहन बलिहारी या लीला छवि पर ॥

## परमानंददासजी का सौन्दर्य वर्णन—

जैसा कि अनेक बार कहा जा चुका है परमानंददासजी मुख्यतः वात्सल्य और संयोग शृङ्गार के कवि हैं। अतः उन्होंने अपने काव्य में भगवान् के बालक रूप का सौन्दर्य, तथा राधा कृष्ण की युगल छवि के सौन्दर्य का चित्रण किया है। इस सौन्दर्य चित्रण में कवि का सूक्ष्म निरीक्षण सौन्दर्य-प्रेम, सुरुचि-सपन्नता दिव्य कल्पना एवं सौन्दर्य-जन्य भाव निमग्नता पदे पदे प्रकट होती है।

ब्रज गोपिकाएँ किसी न किसी बहाने से प्रेंखशायी बालक कृष्ण को देखने चली आती हैं। उनके शिशु सौन्दर्य पर ही वे मुग्ध हैं। उस शोभा-सिंधु को वे अन्यत्र कहीं नही पाती—

शोभा सिन्धु न अनत रही री।
नंद भवन भरि उमड़ सखीरी ब्रज की वीथिन फिरत वही ॥

अवतारी परब्रह्मकों शक्ति-शील सौन्दर्य की त्रिगुणात्मक कसोटी पर कसने का आधुनिक आलोचकों ने एक रिवाज सा कर लिया है उस दृष्टि से भी परमानंददास के पूर्ण पुरुषोत्तम, परब्रह्म लीलावतारी श्रीकृष्ण नितांत खरे उतरते हैं। शोभा सिंधु श्रीकृष्ण स्तन पानअवस्था से ही पूतना वध द्वारा शक्ति का परिचय देना प्रारम्भ कर देते हैं और उसे कंस-जरासंघ और शिशुपाल वध तक जारी रखते हैं इस प्रकार वे असुरों के वध जैसा परुष कर्म करते हैं तो दूसरी ओर माधुर्य का यह दिव्य समन्वय ही भगवदवतार का रहस्य है। दिव्य कर्म, दिव्य अधिष्ठान में ही आश्रित होते आए हैं। अथवा यों कहना चाहिए कि लोकमंगल के साथ दिव्य-सौन्दर्य की उच्च कल्पना ही भगवदवतार है। प्रबन्ध काव्य के कवियों ने तो लोक-मंगल को प्रमुखता देकर उसके अधिष्ठान में सौन्दर्य को सीमित करने की चेष्टा की किन्तु गेय शैली के मुक्तक कवियों ने सौदर्य को प्रमुखता देकर उसे लोक मंगल का अधिष्ठान बनाया। कोमल भावों के अन्तिम कृष्ण भक्त कविगण सौन्दर्य-निधि कृष्ण के असुर-निकंदन स्वरूप को विस्मृत किए हुए नहीं हैं। अतः यह कहना कि गेय शैली के कृष्ण भक्त कवियों की दृष्टि भगवान की शक्ति शील, सौन्दर्य इन तीनों विभूतियो में से केवल सौन्दर्य पर ही टिकी है उनकी काव्य सीमा को अत्यधिक सीमित बनाना है। इन कवियों के भगवान के लाकोत्तर सौन्दर्य पर महत्व देने का मुख्य कारण यही था कि रस-लोलुप-मन की चिर तृप्ति के लिए और उसकी सम्पूर्ण चंचलता को एक ही अधिष्ठान में केन्द्रित कर देने के लिए अपने आराध्य के सौन्दर्य पक्ष को अन्य दो पक्षों-शील-शक्ति-आदि से ऊपर उभारे रहते थे।

भगवान के शील से अभिभूत होकर ही तो वे भक्ति मार्ग में प्रविष्ट होते थे। किन्तु सौन्दर्य निधि के दिव्य माधुर्य का कल्पना लोक मे साक्षात्कार करके वे दुष्टमन को भौतिकता से ऊपर उठाकर एक दिव्य-धाम में अटकाए रहते थे। अष्टछाप के कवियों में और विशेषकर परमानंददासजी में तो भगवत्स्वरूपासक्ति अपनी चरम सीमा पर है। उनके आसक्ति पदो में जो प्रत्यक्ष तन्मयता है वह अन्यत्र कठिनाई से ही दृष्टिगत होती है। लावण्यनिधि कृष्ण को एक बार नेत्र भरकर देखने वाली गोपिका कहती है:—

जब नंदलाल नैन भरि देखे।
एकटक रही समार न तन की मोहन सूरति पेखे ॥

स्यामवरन पीताम्बर काछे, अरु चदन की खोर।
कटि किंकनि कलराव मनोहर सकल तियन चित चोर ॥
कुण्डल झलक परत गण्डनि पर आइ अचानक निकले खोर।
श्रीमुख कमल मद मृदु मुसकनि लेत कोंप मन नदकिशोर ॥
मुक्तामाल राजत उर ऊपर चितए सखी जबै हठि ओर।
परमानद निरखि शोभा ब्रजवनिता डारति तृन तोर ॥

उपर्युक्त पद में श्रीकृष्ण के सौन्दर्य स अभिभूत होकर व्रज वनिताओं का देहानुसन्धान रहित होकर उनके नख से शिखान्त सौन्दर्य मे उलझने की चर्चा है। श्यामवर्ण पर पीताम्बर, फिर थोड़ा ऊपर चलकर कटि किंकणी, फिर गण्डस्थल पर कुडलों का झलक, आगे श्रीमुख पर मन्दस्मित और फिर वक्षस्थल पर मुक्तामाल आदि का वर्णन कवियों के सूक्ष्मनिरीक्षण सौन्दर्यानुभूति और उसकी सजीव कल्पना का परिचायक है। श्रीमुख की मद स्मिति तो भक्तों की सपत्ति है। वही उनके परम अनुग्रह की सूचिका है। भक्तप्रवर गोस्वामी तुलसीदास जी भी अपने आराध्य की इस आशैशवात् मद स्मिति को भूले नही और उसकी उन्हें भी पृथक् चर्चा करना ही पड़ी।

हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा।
सूचित किरन मनोहर हासा ॥ —बा० का०

भगवान का यह मनोहारी स्मित उनके हृदय स्थित अनुग्रह का प्रत्यक्ष प्रमाण है। कितनी दिव्य एव मनोवैज्ञानिक तथ्य पूर्ण उक्ति है।

यह सौन्दर्य बड़े-बड़े अपराधों को भी क्षमा करा देने वाला है। खर दूषण तो भगवान राम के नयनभिराम सौन्दर्य को देखकर भगिनी के नासा-भग जैसे अपराध को पी जाने को तैयार थे, क्योंकि उन्होने वैसे लोकोत्तर सौन्दर्य त्रैलोक्य मे नही देखा था, फिर कृष्ण के दिव्य सौन्दर्य पर रीझने वाली गोपिकाए माखन चोरी अथवा दूध के ढुलकाने के अपराध को क्या गिनती? प्रत्युत वे तो प्रतिक्षण इसी प्रतीक्षा म थी कि एक बार उनका मनमोहन कन्हैया आ भर जाय और बाँकी झाँकी दिखला जाय वे उस पर सर्वस्व वार देने को प्रस्तुत थी। सौन्दर्य के प्रति आत्म विनियोग अथवा सर्वस्व-दान के एसे दिव्य उदाहरण अष्टछाप और विशेषकर सूर तथा परमानददासजी में ही प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं।

## वात्सल्य भावापन्न सौन्दर्य वर्णन—

माता यशोदा के पालने म कृष्ण का लोकोत्तर सौन्दर्य व्रजागनाओं को आकर्षित किए था.—

बदन निहारत है नन्दरानी।
कोटि काम सत कोटि चद्रमा कोटिक रवि वारत जिय जानी ॥

कोटि कन्दर्प दर्प-दलन लावण्य ही व्रजागनाओं के आकर्षण का कारण है। नन्द-भवन के मणिमय कुट्टिम में रत्न जटित पलना रखा हुआ है यह गज मुक्ताओं की झालरों से सुशोभित है उसी मे माता यशोदा का लाल सोया हुआ है उसके तिलक और विशाल नेत्र दर्शकों बरबस अपनी ओर खींच लेती है—

रतन जटित कंचन मनिमय नंद भवन मधि पालनो।
ता ऊपर गज मोतिन लट लटक्त तहं भूलत जसोदा को लालनो।
किलकि किलकि विहंसत मन ही मन चितवत नैन बिसालनो॥
परमानन्द प्रभू की छवि निरखत आवत कल न परत व्रज बालनो। पद सं० ४४

सौन्दर्य के उस दिव्य धाम को देखे बिना व्रज बालाओं को चैन नहीं पड़ता अतः उसे देखने किसी न किसी मिस से चलीही आती हैं। शिशु थोड़ा बड़ा हुआ है उसकी नन्ही-नन्ही दूध की दंतियां अत्यन्त प्रिय लगती है।

"बाल नैन बलि जाऊँ वदन की सोभित नन्ही नन्ही दूध की दंतियां" कैसा चित्रोपम वर्णन शिशुके कुंचित केश मस्तक पर गज मुक्ताओं की लटकन, दोनों गासत हाथों से पादोंगुष्ठ का पीना सभी कुछ आकर्षक है।

माई री कमल नैन श्याम सुन्दर भूलत हैं पलना।

× × ×

लाल के अरून तरून चरन कमल नीलमनि ससि जोती।
कुंचित कच मकराकृत कुंडल लट लटकत गज मोती।
लाल अगूठा गहि कमल पानि मेलत मुख माही।
अपनो प्रतिविम्ब देख पुनि पुनि मुसुकाई॥

इस अनूपम सौन्दर्य और अद्‌भुत चेष्टाओं को कहीं नजर न लग जाय अतः माता राई नमक प्रायः उतारा करती हैं।

झुलावें सुत को महरि पलना करि लिये नवनीत।

.... ... ... ...

राई नोन उतारति वारति होत सकल अंग प्रीति।
पूरन ब्रह्म गोकुल मे भूले परमानन्द पुनीत।

शिशु सौन्दर्य और सौन्दर्यासक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण परमानन्ददासजी के काव्य में भरे पड़े हैं। यही शिशु सौन्दर्य आगे वृद्धि पाता हुआ बाल पौगण्ड अवस्थाओं में होता हुआ किशोर अवस्था में पहुँचता है।

दिव्य सौन्दर्य से भरा हुआ के शोर्य कितना उन्मादकारी हो गया। जो देखता है वही सुध बुध खो बैठता है। उस अनन्त लावण्य निधि लीला वपुधारी के भुवन मोहक रूप पर व्रजगोपिकाऐं क्यों न निछावर होती समवयस्का गोप बालाऐं मन न रोक सकीं—

सांवरौ वदन देखि लुभानी।
चले जात फिर चितयो मो तन तबते सग लगानी।

हक् पात मात्र में ही लोटपोट हो जाने की अवस्था का वर्णन परमानन्ददासजी के काव्य में पदे पदे मिलता है बड़ी, छोटी और समवयस्का सौन्दर्य लुब्धा गोपियां कृष्ण के साथ रहने की इच्छा करने लगी। उनके घर चले जाने पर कोई उल्हाने के मिस कोई मुरली के मिस कोई गायों वरसों के मिस आने लगी जिसे कोई मिस न मिला वह पिछवारे आकर योंही कुछ उच्च स्वर से बोल सुना जाती और प्यारा कन्हैया शैया छोड़ भाग छूटता—

ग्वालिन पिछवारे वह बोल सुनायो।

ब्रज वनिताओं का कृष्ण प्रेम माहात्म्य ज्ञान पूर्वक पीछे है सौन्दर्य जन्य पहिले। उस सौन्दर्य पर उन्होने अपना तन, मन, प्राण सब कुछ निछावर कर दिया था।

हरि सौं एक रस रीति रही री।
तन मन प्रान समर्पन कीनो अपनो नेम व्रत ले निबहीरी॥

साहचर्य और सौन्दर्यजन्य यह प्रेम ब्रज की नयनाभिराम प्रकृति मे पल्लवित होता रहा। यमुना के कूलों कछारों पर वृन्दावन के मार्ग में वंसीवट अथवा मधुवन के उपवनों मे सौन्दर्य शाली कन्हैया अपनी प्यारी धूमर कारी धौरी गैय्यों को लेकर मुरली बजाता हुआ विचरता और अखिल ब्रज वालाएँ उसके साहचर्य के लिए तरसती और अवसर देखतीं। उनका प्रेम प्रगाढ़ हो चुका था और आत्मसमर्पण पूर्ण। अतः सम शीतोष्ण शरद यामिनी में जबकि अखिल प्रकृति उल्लास से भरी हुई थी रजनीश आकाश मे पूर्ण सजग था, सम्पूर्ण ब्रज प्रदेश ज्योत्स्ना धौत था ऐसे दिव्य क्षण में सौन्दर्यनिधि कृष्ण ने मुरली नाद किया। जिसको सुनकर चराचर स्तब्ध हो गया, ब्रज वालाएँ जो जिस अवस्था में थी गृह पति सुत की सेवा छोड़कर दौड़ पड़ी और महारास अथवा उस 'चारुक्रीड़ा' का श्रीगणेश हुआ जो कृष्ण साहित्य में सौन्दर्य, माधुर्य और दार्शनिकता के लिए अपना निराला स्थान रखता है। अष्टछाप के कवियों ने सौन्दर्य वर्णन के जो तत्व पालने से उठाए थे उन्हें विकसित और पल्लवित करते हुये महारास के वर्णन तक उसे एक विशाल वट वृक्ष का रूप दे दिया। महारास अपनी दार्शनिक महत्ता के अतिरिक्त अन्तर्वाह्य सौन्दर्य एक दिव्य संकलन है जो भक्ति साहित्य मे अपना अप्रतिम स्थान रखता है। सूरदास, परमानंददासादि अष्टछापी कवियों ने सौन्दर्य को श्रीकृष्ण के चतुर्दिक केन्द्रित करने के उद्देश्य से प्रकृति का भी मनोमुग्धकारी सजीव चित्र अंकित किया है। यही उनका प्रकृति चित्रण है यह प्रकृति चित्रण उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत तो हुआ ही है। कही कही इन कवियों की स्वच्छंद रुचि एवं स्वभाव का सूचक बनकर आलम्बन विभाव के अन्तर्गत भी आया है। परमानंददासजी के काव्य मे प्रकृति चित्रण दोनों ही प्रकार का मिलता है।

## परमानंददासजी का प्रकृति चित्रण—

दिव्य लीलाओं के अधिष्ठान कोटि मन्मथ मथनकारी श्रीकृष्ण की क्रीड़ा भूमि ब्रज प्रदेश सभी प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न है। निर्मल नीरा नीलाभ प्रकृत गभीरा यमुना के तटवर्ती प्रदेश नाना पुष्पों पल्लवों से सुसम्पन्न नाना वल्लरियों से वेष्टित अभ्रंलिह श्याम तमाल, स्निग्ध विशाल रसाल, हरित हिंताल, ताल, पनस, जम्बू, वट, अश्वत्थादि पादप समूहों से युक्त नाना पुष्पों, पल्लवों, कुञ्जों और निकुञ्जों से वेष्टित निश्चय ही यह दिव्य भूमि लीलावतारी पूर्ण ब्रह्म की लीलास्थली होने योग्य थी, अथवा यों कहना चाहिये कि लीला पुरुषोत्तम ने इस भूमि को अपनी क्रीडास्थली इसीलिये बनाया कि वह प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर थी। जो भी हो, ब्रज प्रदेश के प्राकृतिक वैभव को और उसके सौन्दर्य को ब्रज साहित्य के सभी कवियो ने चित्रित किया है। कहा जाता है कि भागवतकार दाक्षिणात्य थे और श्रीमद्भागत का प्रणयन दक्षिण में हुआ किन्तु ब्रज प्रदेश के प्राकृतिक वैभव और उसके नैसर्गिक सौन्दर्य से उनका हृदय भी अभिभूत था इसीलिये उन्होंने भागवत के प्रमुख वर्ण्य विषय भगवल्लीला के अतिरिक्त ब्रज का प्रकृति चित्रण भी किया है। श्रीकृष्ण लीला

और अन्य लीला उपकरणों के लिये जहाँ श्रीमद्भागवत के प्रभाव की चर्चा व्रज साहित्य मे और विशेषकर अष्टछाप के कवियो पर की गई है। यहाँ यह भी सकेत कर देना उचित प्रतीत होता है कि ये भक्त कवि प्रकृति चित्रण मे भी श्रीमद्भागवत का प्रभाव ग्रहण किये हुए हैं वस्तु के अतरग लक्ष्य की सिद्धि बाह्य वातावरण पर भी निर्भर होती है अत भगवान के जन्मोत्सव उनकी बाल एव किशोर लीलाओ की माधुर्यानुभूति के लिए जिस सरस प्रभाव पूर्ण प्राकृतिक सौन्दर्य की आवश्यकता है उसे चित्रित करना उन सभी कवियो के लिये अनिवार्य था अतः यहाँ सक्षेप में भागवत चित्रित प्रकृति चित्रण की चर्चा के उपरान्त हम परमानन्ददासजी मे प्रकृति चित्रण की चर्चा करेंगे—भगवान श्रीकृष्ण के जन्म–इष्ट काल–से ही प्रकृति की अभिरामता भागवतकार ने चित्रित की है वे लिखते हैं—

दिश· प्रसेदुर्गगन निर्मलोडुगणोदयम् ।
मही मगल भूयिष्ठ पुर ग्राम व्रजकरा ॥
नद्य प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुह श्रिय ।
द्विजालि कुल सनादस्तवका वनराजय ॥
ववौ वायु सुखस्पर्श पुण्य गन्धवह शुचि ॥

× × × × × × × ×

मन्द मन्द जलधरा जगर्जुरनुसागरम् —भाग १० । ३ । २ । ७

अर्थात् दिशाएँ प्रसन्न थी आकाश नक्षत्रों से व्याप्त था पृथ्वी मगल मयी थी पुर ग्राम और व्रज प्रदेश मणियो से युक्त था । नदियाँ शान्त स्वच्छ, सरोवर कमलो एव भ्रमरों से युक्त वृक्ष पक्षियों से युक्त तथा वनराजियाँ पुष्पों के गुच्छो से युक्त थी सुगधमय पवन शान्ति से बह रहा था ।

अखिल लोकनायक भगवान् कृष्ण चन्द्र का जन्म विश्व इतिहास की एक अपूर्व एव दिव्य घटना थी अत उसके अनुकूल प्राकृतिक वातावरण कितना अधिक आकर्षक अपेक्षित था यह शाश्वत तथ्य इन रस सिद्ध कवीश्वरो से छिपा नही था । भगवान के जन्म समय मे प्रकृति की जिस अभिरामता की ओर भागवतकार ने सकेत किया है उसे उसने अन्त तक निभाया है । आभीरो और उनके नायक कृष्ण का जीवन प्रकृति की गोद में ही लालित पालित हुआ और प्रकृति के नित्य साहचर्य मे ही रहकर उन्होंने जिस लोक मगल का विधान करते हुए भक्तो का अनुरजन किया उस प्रकृति की रमणीयता की यदि पदे पदे चर्चा न की जाती तो एक बहुत बडा अभाव रह जाता अत कथावस्तु के अनुकूल बाह्य वातावरण का निर्माण भागवतकार आदि से अन्त तक करते चले गये हैं । और यही उनकी विलक्षण सफलता है ।

कृष्ण एक विचित्र परिस्थिति मे उत्पन्न हुए और विचित्र परिस्थिति में ही गोकुल पहुँचाए गए । भागवतकार ने एक गम्भीर भयावह परिस्थिति का पुन निर्माण किया ।

ववर्ष पर्जन्य उपाशु गर्जित ।
शेषोऽन्वगाद् वारि निवारयन् फणैः ॥
मघोनि वर्षत्यसकृद् यमानुजा ।
गम्भीर तोयौघ जवोर्मि फेनिला ॥
भयानकावर्त शताकुला नदी ।
मार्ग ददौ सिन्धुरिव श्रिय· पते ॥ भा० १०।२।४९-५०

घनघोर वर्षा, भयंकर आवर्तों से युक्त यमुना, उस मध्यरात्रिके भयावह वातावरण मे प्राणाधिक प्रिय कन्हैया को गोकुल पहुँचाया गया। इसके उपरान्त भागवत में चित्रित प्रकृति आद्योपान्त अभिराम, आकर्षक और हृदयहारिणी है। केवल दावानल की घटना में प्रकृति का रौद्र रूप वर्णित किया गया है, जिसे भगवान् ने आत्मसात् करके पुन. एक नयनानन्द अभिराम वातावरण की सृष्टि करदी है। बाल लीला और किशोर लीला के तो सम्पूर्ण माधुर्य का रहस्य ही प्रकृति की अभिरामता है। वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना, पुलिन, वशीवट, मधुवन, तालवन, कुमुदवन, वहुलावन, राधा कुण्ड, कृष्ण कुण्ड, सुरभिकुण्ड, मानसी गगा, आदि का बडा ही अभिराम वर्णन मिलता है। एक स्थान पर भागवतकार लिखते है—

वृन्दावन गोवर्धनं यमुना पुलिनानि च।
वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राम माधवयोर्नृप॥ १०।११।३६

वस्तुतः व्रज प्रदेश प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर है। कृष्ण की यह लीला भूमि वाह्या-भ्यन्तर माधुर्य से सम्पन्न होने के ही कारण भक्त मन भावन है। आज भी यहाँ की वायु मे भक्ति के वे मादक तत्व निहित हैं जो सरल प्रवासी को तीन लोक से न्यारा कर देते हैं।

वस्तुत. प्रकृति सौन्दर्य ऋतुओ की अनुकूलता पर बहुत कुछ निर्भर है भूमिमण्डल पर व्रज प्रदेश की स्थिति कुछ ऐसे सम शीतोष्ण कटिबध पर है जहाँ छहो ऋतुएँ अपने अपने समय से आकर रस सिंचन कर जाया करती हैं। इनमे भी दो ऋतुएं वर्षा और शरद तो व्रज में अमृत वर्षा ही करने के लिये आती हैं और इसी कारण भागवतकार ने दशमस्कध मे अन्य ऋतुओ की सक्षिप्त चर्चा की है और वर्षा तथा शरद की विस्तृत।

ऋतुओ एवं प्रकृति का मानव मन पर वडा विचित्र प्रभाव पडा करता है जिनके सस्कार जितने सूक्ष्म प्रवल एव ग्राहक होते हैं उन पर बाह्य वातावरण का उतना ही गहरा प्रभाव पडता है और उससे वे गहरी प्रेरणाएँ प्राप्त किया करते हैं इसी कारण ससार का सर्वश्रेष्ठ कहलाने वाला साहित्य अरण्यों मे ही उदय हुआ है और आरण्यक सभ्यता सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ तो आकाश मे इन्द्र धनुष देखते ही हृदय में कुछ ऐसी गुदगुदी का अनुभव करने लगता था कि कविता उससे नदी के स्रोत की भाँति फूट पडती थी। इसी प्रकार अतीत से आज तक के विश्व साहित्य स्रष्टा प्रकृति के नित्य साहचर्य में रहकर ही चिरंतन काव्य का जन्म दे सके हैं।

व्रज साहित्य के कवियो का ऋतु सौन्दर्य वर्णन सदैव से प्रसिद्ध रहा है। सूरदास परमानंददास आदि अष्टछाप के कवियो ने जिस तत्परता से भगवान का गुण एव लीलागान किया है उतनी ही तत्परता एव जागरुकता के साथ उन्होने प्रकृति चित्रण, भी किया है। सूरदास जी ने प्रकृति मे उल्लास, विलास, हर्ष, शोक, क्रोध, शान्त आदि सभी भावों के दर्शन किए हैं। नददासजी की रास पचाध्यायी वाली प्रकृति तो मानो भागवत की रास महोत्सव वाली, शरदोत्फुल मल्लिकामयी राका-रजनी का विशद भाष्य ही है। इन कवियो मे अधिकाश प्रकृति वर्णन उद्दीपन के रूप में आया है, पर कही कही आलंबन के रूप मे भी मिलता है।

परमानंददासजी की प्रकृति मे भी वही अष्टछाप और कृष्ण भक्तों की परम्परा का निर्वाह हुआ है, साथ ही प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में भी वे भागवत का अनुसरण नहीं छोड सके हैं।

यहाँ कतिपय उदाहरणों से उनका भागवत का अनुसरण तो सिद्ध किया ही जायगा। साथ ही उनके काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप देखने की चेष्टा भी की जायेगी। भागवत में जन्मकाल के समय के वाह्य प्रकृति के जिस वातावरण की भयावह चर्चा ऊपर हुई है परमानन्ददासजी ने उसे उसी प्रकार व्यक्त किया है—

> आठें भादों की अँधियारी।
> गरजत गगन दामिनी कौंधति गोकुल चले मुरारा।
> शेष सहस्रफन बूँदनिवारत सेत छत्र सिर तान्यों॥
> ... ... ... ...
> यमुना थाह भई तेहि औसर आवत जात न जान्यों।
> परमानन्ददास को ठाकुर देव सुमति मन मान्यो॥

प्रस्तुत पद मे प्रकृति उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत चित्रित की गई है। साथ ही "मघोनि वर्षत्" की यह पद पूरी पूरी छाया ग्रहण किए हुए है। क्रमश. कृष्ण बड़े होते हैं और गोचरण के लिए वन जाने लगे हैं, क्रीडा मे झाऊ के वन और यमुना के कछार की चर्चा की गई है। झुझुवा अथवा हौग्रा के भय से वन की सघनता स्पष्ट व्यजित होती है।

> मैया निपट बुरी बलदाऊ।
> ... ... ... ...
> मोहूकौं चुचकार चले लै जहाँ बहुत बन झाऊ।

दूसरे पद मे—

> देखरी रोहिणी मैया कैसे हैं बलदाऊ भैया।
> यमुना के तीर मोहि झुझुवा बतायो री॥

प्रस्तुत पदों मे कवि का लक्ष्य बाल लीला वर्णन करना है अतः प्रकृति की गौण चर्चा हुई है। साथ ही अभी श्रीकृष्ण की शिशु अवस्था है अतः मुक्त प्रकृति का साहचर्य अभी तक सीमित है ज्यो ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है, प्रकृति का साहचर्य बढता जाता है। शिशु अवस्था में जहाँ वाह्य प्रकृति का नाम निर्देश होता था वहाँ अब धीरे धीरे उसका वर्णन बढने लगा। प्रथम गोचारण हो चुका है, अब तो साथ में छाक, (मध्याह्न भोजन) बाँध दिया जाता है और कृष्ण बलदाऊ तथा सखाओ के साथ गोचारण के लिए नियम से जाने लगे हैं। पलाश के सघन वन में ढाक के पत्तो पर छाक परोस दी जाती है और सब मिलकर खा लेते हैं। यही नित्य का क्रम है। धीरे धीरे वर्षा ऋतु आती है कवि ने बाह्य वातावरण की पुन: सृष्टि की है—

> "झूम रहे बादर सगरो निसा के वर्षन को रहे हैं छाय।"

ऐसे दिव्य वातावरण मे कन्हैया को पुनः गोचारण के लिए बुलाया जाता है। इन स्थलो पर कवि का सूक्ष्म निरीक्षण और प्रकृति का आलंबन के रूप मे चित्रण मिल जाता है। ऐसे स्थलों पर प्रकृति वर्णन किसी भाव की वृद्धि न करता हुआ केवल वर्णनात्मकता लिए हुए ही आता है।

परमानन्ददासजी ने प्रकृति को अधिकाधिक उद्दीपन रूप में चित्रित करने के लिए घटाओं के अनुकूल भगवान कृष्ण के शृङ्गार की कल्पना की है—

"मोहन सिर धरे कुसुम्बी पाग।"
तापर धरी कुल्हे सिर सोहत, हरित भूमि अनुराग।
तैसे ही बन्यों कुसुंबी पिछौरा छड़ी हाथ में लीने।
करत कपि गिरधरन लाल तहँ परमानंद रस भीने।

वर्षा कालीन सौन्दर्य में कवि का मन अत्यधिक रमा है। ऐसे स्थलो पर उस पर भागवत का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है—

भागवत—

*श्रुत्वा पर्जन्य निनदं मंडूका व्यसृजन् गिरः।*
.... ... ...
धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात्।
... ... ...
एवं वन तद् वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत्।
गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः।
.... .... ...
जलधारा गिरेर्नादानासन्न ददृशे गुहाः।
क्वचिद् वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति॥
निर्विदश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः॥
... ... ....
सम्भोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः।
भाग० १०, २०, ६, २६]

परमानन्द सागर—

बादर भरन चले हैं पानी।
श्याम घटा चहुँ ओर ते आवत देखि सबै रतिमानो॥
दादुर मोर कोकिला कलरव करत कोलाहल भारी।
इन्द्र धनुष बग पांति श्याम छबि लागति है सुखकारी॥
कदम वृच्छ अवलंब श्याम घन सखा मंडली संग।
बाजत बैन अरु अमृत सुधा सुर गरजत गगन मृदंग॥
रितु आई मन भाई सबै जीय करत कपि अति भारी।
गिरिवरधर की या छबि ऊपर परमानन्द बलिहारी॥

वर्षाकाल प्रेमी और प्रेमिकाओं के लिए संयोग दशा में अत्यन्त सुखकारी होता है—

देखो भाई भीजत रस भरे दोऊ।
नंदनंदन वृषभाननंदनी होड़ परी है जोऊ॥

सुरंग चूंदरी है श्याम जू की भीजत है रस भारी ।
गिरधर पागु उपरना भीज्यौ या छवि ऊपर वारी ।।

... ... ... ...

परमानन्द प्रभू यह विधि क्रीड़त या सुख की बलिहारी ।

प्रेममयी राधा मेघों से बरसने के लिए अभ्यर्थना करती है ।

बरसि रे सुहाउ मेहा मैं हरि को संग पायो ।
भीजन दे पीतांबर सारी बड़ी बड़ी बूंदन आयो ।।
ठाढे हँसत राधिका मोहन राग मल्हार जमायो ।
परमानंद प्रभु तरुवर के तर लाल करत मन भायो ।।

बाह्य प्रकृति का नागर नंदकिशोर से सतत साहचर्य है । अतः भक्त प्रेमी ग्वालों की भी आकांक्षा है कि वे जड प्रकृति बन जाते तो अच्छा था । इससे प्यारे कृष्ण का साहचर्य तो बना रहता ।

वृन्दावन क्यों न भए हम मोर ।
करत निवास गोवर्धन ऊपर निरखत नंद किशोर ।।
क्यों न भये वंसीकुल सजनी अधर पीवत घनघोर ।
क्यों न भये गुजावन वेली रहत श्याम जू की ओर ।।
क्यों न भए मकराकृत कुंडल स्याम स्रवन झकझोर ।
परमानंददास को ठाकुर गोपिन के चित चोर ।।

परमानन्ददास संयोग शृङ्गार के रस सिद्ध कवि हैं अतः उनका प्रकृति और प्रकृति के उपादानों का वर्णन उद्दीपन के अन्तर्गत अधिक आता है । यमुना के तट पर गोप मंडल में गोपाल लाल नृत्य कर रहे हैं, उधर वर्षाकाल के कारण मयूर भी नृत्य कर रहे हैं । कवि ने बड़ा ही सुन्दर साम्य उपस्थित किया है—

गावे गावे घनश्याम तान जमना के तीरा ।
नाचत नट भेष धरे मंडल भीरा ।।

आगे चलकर—

अरी इन मोरन की भांति देख नाचत गोपाला ।
मिलवत गति भेद नीके मोहन नट शाला ।।
गरजत घन मंद मंद दामिनी दरसावें ।
रमकि झमकि बूंद परें राग मल्हार गावें ।।

... ... ... ...

बार फेरि भगति उचित परमानद पावें ।।

अपने उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत परमानन्ददासजी ने कृष्ण के सौन्दर्य को ऐसा अनुस्यूत कर दिया है कि उसका मिला जुला रूप पाठक के ऊपर एक ऐसी दिव्य छाप छोड़ता है कि पाठक एक ऐसे दिव्य लोक में विचरण करने लगता है जहाँ उसको जगत की भौतिकता स्पर्श नही कर पाती ।

पावस ऋतु के साथ कवि ने विविध पक्षियों का भी यथा स्थान वर्णन किया है संयोग शृंगार मे पावस ऋतु और वर्षा कालीन पक्षियों के कलरव का आचार्यों ने भी वडा उद्दीपक प्रभाव माना है। परमानन्ददासजी ने इन वर्णनों में अपने सूक्ष्म निरीक्षण और चित्रोपमता का तो परिचय दिया ही है साथ ही प्रकृति को उपमान के रूप में भी वर्णित किया है।

प्रथम पावस मास आगमन गगन घन गंभीर।
लसे दामिनी दिसा पूरब अति प्रचंड समीर॥
तहाँ हंस चातक बन कुलाहल बचन अदभुत बोल।
गोपाल बाल निकुंज बिहरत, सखा संग क़लोल॥
तहाँ बर्कें दादुर मुग्ध कोकिल मूढ़ पावस धीर।
तहाँ नदी छुद्र अपार उमड़ी मित बसुधा नीर॥
हरियारे तृन महि चन्द उडुगण अति मनोहर लाग।
बल भद्र के संग धेनु चारत नन्द के अनुराग॥
तहाँ कन्दरा गिरि चढ़े हेला करत बाल विनोद।
तहाँ जाय खोजत वृच्छ कोटर मच्छिका मधु मोद॥

... ... ... ...

तहाँ चक्रवाक चकोर चातक हंस सारस मोर।
तहाँ सूम्रा सारस सरस भृंगी करत चहूँ दिसि रोर॥ (पद–७८८)

इस प्रकार कवि ने राधा कृष्ण केलि और हिंडोले के साथ वाह्य प्रकृति और उसके विविध उपकरणों—वीर बहूटी, सुम्रा, सारस, हंस, चातक मयूर—आदि की बड़ी सरस चर्चा की है। भागवत शैली का प्रकृति वर्णन भी जिसे आलबम्न विभाव के अन्तर्गत रखा जा सकता है वह परमानन्ददासजी मे उपलब्ध होता है जैसे:—

वाटिका सरोवर मघ्य नलिनी मधुप करे मधुपान।
ऐसो नन्द गोकुल कृष्ण पाले भ्रमर पति अभिमान॥
रचित हिंडोरो धवल बनिका कासमीरी खभ।
हीरा पिरोजा लाल लागे और बहु आरम्भ॥
बनी चित्र विचित्र सोभा तीर धनु संधान।
जैसे राम रावण जुद्ध क्रीडा देखि ता उनमान॥

रास क्रीड़ा वर्णन में तो यह प्रकृति और भी मोहक हो जाती है। रास प्रकरण में कहा जा चुका है कि परमानन्ददासजी ने शरद् रास और बसन्त रास दोनों को ही मिला दिया है। अतः वासन्तिक शोभा एवं शारदीय शोभा का मिला जुला वर्णन कवि ने यत्र-तत्र किया है—

सघन कुंजो में पुष्पों का खिलने नवीन कोपलो के फूटने के साथ शारदीय रात्रि का भी वर्णन मिलता है—

"राधा माघो कुंज बुलावें"

... ... ....

सरद निसा सखी पूरन चन्दा खेल बनैगो माई।

एक स्थान पर राधा, कृष्ण को शारदीय रजनी का वन वैभव दिखाती हुई कृष्ण के साहचर्यजन्य आनन्द प्रकट करती है—

> कहे राधा देखहु गोविन्द।
> भलो बनाव बन्यों है बन को पूरन राका चन्द ॥
> मंद सुगन्ध सीतर मलयानिल कालिन्दी के कूल।
> जाय जुड़ी मल्लिका यूथी फूले निरमल फूल ॥
> सब अब लाख होत है मनके मन ही रहत जिय राध।
> तुम्हारे समीप कौन रस नाही नाथ सकल सुख साध ॥
> सुनके बचन बहुत सुखमान्यों हसि दीनी अकंवारि।
> परमानन्द प्रभु प्रीति बजानी नागर रसिक मुरारि ॥

कवि ने रास महोत्सव और पनाग महोत्सव की चर्चा बड़े उत्साह के साथ की है। ऐसा विदित होता है कि वह अपने भावलोक मे अहर्निश राधा कृष्ण की युगल लीला का नित्य द्रष्टा अथवा सहचर बना हुआ था। विरहदशा में परमानन्ददासजी सूर की भाँति जड़ प्रकृति मे चेतनारोपण कर देते हैं। सूर की गोपियाँ मधुवन के हरे भरे वृक्षों को धिक्कारती हुई कहती हैं—

> "मधुवन तुम कत रहत हरे।"

सूर की बाह्य प्रकृति में गोपियों द्वारा चरम निर्वेद, ग्लानि लज्जा और दुःख की अवस्था में मानवीयकरण करके उसे भी विरह की अनुभूति की परिधि में खींचने की चेष्टा की गई है। और यहां तक कि कालिंदी तो संकत शैया पर दाहक विरह ज्वर मे पड़ी हुई दिखाई देती है। परमानन्ददासजी की गोपियाँ भी विरह की चरम स्थिति में जड़ प्रकृति मे चेतनारोपण कर देती हैं और वे भी प्रश्नों की झड़ी लगा देती हैं।

> माईरी डार डार पात पात बूझत बनराजी।
> हरि को पथ कोऊन न कहे सबनि मौन साजी ॥
> बसुधा जड़ रूप धर्यो मुखहू ते नहिं बोले।
> हरि को पद परस भयो सग लागि डोले ॥

आगे वे प्रत्येक खग मृग से पूछना प्रारम्भ कर देती हैं।

> पूछत है खग, मृग, द्रुम वेली।
> हमें तजि गए री गोपाल अकेली ॥
> अहो चंपक मालती तमाला।
> तुम परसि गए नंद लाला ॥

कृष्ण विरह मे परमानन्ददासजी की गोपियो को भी जड़ प्रकृति शुष्क और निरानन्द प्रतीत होती है।

> बहुरी गोपाल देख नहिं पाए बिलपति कुंज अहीरी ॥

चन्द्रमा की किरनें सूर्यताप के सदृश विदित होती हैं।

सिस की किरन तरनिसम लागत जागत निसा गई।
वृन्दावन की भूमि भामती, ग्वालिन्ह छांड़ि दई॥

इस प्रकार चन्द्र, चन्द्र-ज्योत्स्ना, नक्षत्र सब कष्ट दायक हैं। वर्षा भी अच्छी नही लगती। सूर के बादल बरसने चले आए, पर श्याम नही आये।

बरु ए बदराऊ बरसन आए।

परमानन्ददासजी की बदरिया व्रज पर मौका पाकर दौड़ पड़ी है। वर्षा क्या कर रही है मानों शल्य चुभा रही है।

असलन साल सलामन लागो, विधना लिख्यो बिहोरी।

... ... .... ...

परमानन्द प्रभु सों क्यों जीवैं जाकी बिछुरी जोरी।

इस प्रकार घन गर्जन, पावस आगमन, चातक रटन, मत्त मयूर कूजन सभी विरह के उद्दीपक हैं। कष्टप्रद है—

या हरि को संदेस न आयो।

... ... ...

घन गरज्यो पावस रितु प्रगटी, चातक पीऊ सुनायो।
मत्त मोर वन बोलन लागे बिरहिन विरह जगायो॥

विरही जनो को यों तो पल पल युग के समान व्यतीत होता है किन्तु वर्षा, शरद और वसन्त विशेष दुखदायी होते हैं। वर्षा व्यतीत हुई, शरद रात्रि जिसमें कभी रास महोत्सव हुआ था और जिस चन्द्रमा से कभी अमृत वर्षा हुई थी, अब वही शरद निशाएँ फीकी रसहीन निरानन्द हो गई हैं—

माई अब तो यह सरद निसा लागत है अति फीकी।
श्याम सुन्दर संग रहत तबही ये अति नीकी॥
ससि हर संताप कारी बरसत विष बूंदे।
मारुतसुत सुभाव तज्यो दसो दिसा मूंदे॥
परमानन्द स्वामी गोपाल परिहरि हम सिखई।
प्रान पयान करन चाहत मिलहू कपट विषई॥

शरद के उपरान्त वसन्त और भी दारुण दुखदायी है:—

मधु, माधो नीकी ऋतु आई।

... ... ...

परमानन्द प्रभु औघ वदी हो नाथ कहाँ अोसेर लगाई।

संक्षेप मे परमानन्ददासजी के प्रकृति चित्रण के विषय में निम्नांकित तात्पर्य निकाले जा सकते हैं:—

१—परमानन्ददासजी का प्रकृति चित्रण कुछ तो भागवत सापेक्ष और कुछ निरपेक्ष है। उन्होंने प्रकृति को आलंबन और उद्दीपन दोनों ही रूपों में चित्रित किया है,

शृंगार और प्रेम के भावुक कवि होते हुए उनमे प्रकृति चित्रण उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत पर्याप्त रूप में आया है। विप्रलंभ शृंगार मे उन्होने अपनी सम सामयिक परंपरा का निर्वाह किया है, कवि ने लीला गान का लक्ष्य अधिक रखा है। अतः सूर अथवा अन्य कवियों की अपेक्षा प्रकृति चित्रण को अधिक महत्व नही दिया है। प्रकृति चित्रण मति रंजित कही भी नही हो पाया है। भावोद्रक स्वरूप बोधन तथा रस परिपाक की दृष्टि से बाह्य प्रकृति का उपयोग परंपरागत उपमानो के लिए भी कवि ने किया है।

## परमानंददासजी में कलापक्ष—

यह तो अनेक बार कहा जा चुका है कि कवि मुख्यतः भक्त हैं, काव्य रचना उसका उद्देश्य नही। भाव-विभोर स्थिति मे भगवान के लीला-सागर मे अवगाहन करते हुए जिन पद मुक्ताओं का वह अनायास संग्रह कर सका वे ही आगे चलकर 'परमानन्दसागर' के नाम से प्रतिष्ठित हुए। उन पदो मे वस्तु गांभीर्य, रस-सौंदर्य एवं भाव-सौन्दर्य की संक्षिप्त चर्चा की जा चुकी है। अब उसके कला पक्ष पर विचार किया जायगा।

कला पक्ष मे हम प्रायः निम्नांकित बातों का समावेश करते है—

(१) अलकार विधान।
(२) छंदोविधान।
(३) एवं भाषा-सौष्ठव।

काव्य में अलंकारो का बड़ा महत्व है। काव्यालंकारसूत्र वृत्ति में लिखा है कि कविता एक तरुणी के समान होती है। वह शुद्ध गुण युक्त होने पर रुचि कर तो लगती ही है परन्तु अलंकारों से सुसज्जित होने पर रसिको के लिए और भी आकर्षक हो जाती है। उसी प्रकार गुण युक्त काव्य भी अलकारों से युक्त हो जाने पर काव्य रसिको के लिए आह्लादजनक हो जाता है।[1] आचार्य मम्मट ने अलंकारो को तीसरा स्थान दिया है। रस, भाव आदि अपनी अनिर्वचनीयता के कारण और व्यंग्यार्थ पर निर्भर होने के कारण काव्य मे उच्च स्थान प्राप्त किये हुये हैं फिर भी शब्द-सौन्दर्य और मनोहरता अलंकारों पर ही निर्भर है। अग्नि पुराणकार ने तो बिना अलकारो के मनोहरता स्वीकार ही नही की है।[2] अतः भामह, रुद्रट, वामन, दण्डी सभी ने अलंकारों की महत्ता स्वीकार की है और अलंकारों को काव्य की शोभा करने वाले धर्म[3] बतलाया है। परवर्ती कवियो मे तो अलंकार के प्रति इतना आग्रह बढ़ा कि उनकी कविता का उद्देश्य ही अलंकार निरूपण होने लगा। काव्य अथवा श्लोक रचनाएं अलकारों की परिभाषा बतलाने के लिए ही रचे जाने लगे। चन्द्रालोक ऐसा ही ग्रन्थ है।

---

१ युवतेरिवरूप मंग काव्यं, स्वदते शुद्ध गुणं तदप्यतीव।
विहित प्रणय निरन्तराभिः सदलंकार विकल्प कल्पनाभिः॥
का० लं० सू० वृ० ३, १, २१

२ अलंकरणयर्था नामर्था लंकारमिष्यते।
तं बिना शब्द सौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम्।
'श्री अग्नि पुराण'

३ काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते।
काव्यादर्श।

आचार्यों की यह प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य मे भी अवतीर्ण हुई और कुछ कवि लोग केवल काव्य में कला पक्ष को ही महत्व देने के लिये कविता करते थे। रीतिकालीन कवियो मे यह प्रवृत्ति बहुत पाई जाती है परन्तु हिन्दी साहित्य के भक्त कवियों ने कविता के इन वाह्य उपकरणों अथवा कला पक्ष को प्रधानता देने के लिये कविता कभी नहीं की। भक्त कवियों का उद्देश्य सीधा सादा प्रभु गुण गान था। अपनी एकान्त भक्ति की तन्मयता मे उनके मुख से उद्गार रूप जो काव्य निकलता था उसमे रस, भाव, प्रवाह, तन्मयता के साथ साथ छन्द अलकार, गुण, आदि अपने आप घिसट आते थे। उन्हे उनको लाने अथवा बरबस ठूसने की तनिक भी पर्वाह नही होती थी। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, एव अष्ट छाप के अन्य कवि ऐसे ही भक्त कवियों की श्रेणी में आते हैं जिनके पीछे काव्यत्व वाग्वश्य भृत्य की भाँति अनुगमन करता था। इन रससिद्ध भावुक कवियो ने काव्य के गुण दोष की लेशमात्र चिन्ता नही की है, फिर भी उनका काव्य विश्वसाहित्य मे परिगणित होता आया है।

## परमानंददासजी में अलंकार-विधान—

भक्तप्रवर परमानददासजीके सागर मे भी अलकार विधान अनायास ही हुआ है। अलकार दो प्रकार के होते हैं। शब्दालकार और अर्थालकार। 'सागर मे' दोनो ही प्रकार के अलकारो का प्रयोग पाया जाता है। और वह भी बडे स्वाभाविक रूप मे। उनके सरस, मधुर पद अनावश्यक रूप से अलकारो से नही लदे हैं। न कवि मे पांडित्य-प्रदर्शन की अवाछनीय प्रवृत्ति ही है। सूर द्वारा दृष्टकूट पदो मे की गई क्लिष्ट कल्पना से वे दूर ही रहते हैं। वे सीधे साधे काव्य के भक्त कवि हैं अत उन्हे बिना प्रेम के सब आभूषणादि फीके और सारहीन प्रतीत होते हैं—

> काहे को गुवालि सिंगार बनावै।
> सादीए बात गोपालहिं भावे॥
> एक प्रीति तें सब गुन नीके।
> बिन गुन अभरन सबही फीके॥ (५५१ पृ०–१८७)

बिना प्रेम के स्वर्णालकार व्यर्थ है उसी प्रकार काव्य मे बिना रस के अलकारो की भरमार व्यर्थ है। अतः उनमे अलकारो का सागोपाग निरूपण देखना अथवा खोजना विशेष बुद्धिमत्ता की बात नही। उनमें भाव अथवा रस की प्रधानता है, अलकार अथवा अलारमकता का दुराग्रह नहीं। फिर भी अनायासेन अथवा सरलता से जो अलकार उनके काव्यों में चले आये हैं उनकी चर्चा प्रस्तुत की जाती है—

शब्दालकारो के अन्तर्गत परमानन्ददासजी मे अनुप्रास ही बहुलता से प्रयुक्त हुआ है। वे शृगार के सरस कवि हैं अत ध्वनि-साम्य और नाद-सौन्दर्य उनकी लेखनी से स्वयमेव प्रस्फुटित हुए हैं। अनुप्रास में भी वृत्त्यनुप्रास उपनागरिका वृत्ति के साथ अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है।

वृत्यनुप्रास (उपनागरिका वृत्ति—)

> बदौ सुखद सी वल्लभ चरन।
> अमल कमल हू ते कोमल कलिमल हरन, (५७३ पृ० १९८)

वृत्यनुप्रास (परुपावृत्ति)—
ठठक ठठक टेरत श्री गोपालै चहुँघा दृष्टि करै— (६४२, पृ० २२४)
अथवा
तरनि तनया तट वंसीवट निकट बृन्दाबन वीथिन बहायौ। (४५३ पृ० १५३)

श्रुत्यनुप्रास—
सोमुख ब्रज जन निकट निहारत
जामुख कों चतुरानन ग्यानन साधन करि करि हारत। (८२, पृ० २८)
ध्वनि साम्य के साथ-साथ अन्त्यानुप्रास प्रायः सर्वत्र ही देखने योग्य है।
नन्द जू के लालन की छबि आछी।
पाँय पैंजनी रून झुन बाजत चलत पूंछ गहि बाछी। (८६, पृ० २६)
अथवा
चंचल, चपल चोर चिंतामनि मोहन कथा न परति कही,
परमानंद स्वामी के उरहन के मिस मिलन की ढूँढि रही। (१४४, पृ० ४८)
कटि किंकनी कटितट कछनी ता पर लाल इजार— (५६५)

छेकानुप्रास—
मैया देखत नेत बल्लैया मुख चुम्बत सचुपावत। (२०६, पृ० ६६)

परमानंददासजी में अनुप्रास और उसके मुख्य भेदों के उदाहरण पद-पद पर मिल जाते हैं शब्दालंकारों में अनुप्रास के उपरान्त मुख्य रूप से उन्होंने जो अलंकार प्रयुक्त किया है वह है-वीप्सा।

परम सनेह बढावत मातनि, रबकि रबकि बैठत चढ़ि गोद। (८४, पृ० २६)

हर्ष में वीप्सा—
हो हो होरी हल घर आवे। पद सं० १०१, पृ० ३५
एक और स्थान पर
दुहि दुहि लावत धौरी गैया।
कमल नैन की अति भावत है मथ मथ प्यावत घैया। (१३०, पृ० ४४)

यमक—
जहाँ एक ही शब्द की भिन्न अर्थों में पुनरावृत्ति हो वहाँ यमक अलकार होता है—
अति रति स्याम सुन्दर सौ बाढी (३६६, पृ० १२५)
× × × × × × × ×
हरि ज्यों हरि को मगु जोवति काम मुगुध मति ताकी। (३६६)
अन्यत्र—
तिल भर संग तजत नही निज जन गान करत मन मोहन जसको
तिल तिल भोग धरत मन भावत परमानंद सुख लै यह रस को।
(३२०, पृ० १०७)

श्लेप—
श्लेष अलंकार मे एक ही शब्द में दो अर्थों का समावेश होता है।
हियां तो कोऊ हरिकी भांति बजावति गौरी।
हौं यह पाट बाट तजिके सुनत बेनु धुनि दौरी॥ (६२७, पृ० ३३५)

किस गौर वर्ण ने गोरी राग कृष्ण की भाँति बजा दिया है। अतः गोपियाँ दौड़ पड़ी हैं।

उपर्युक्त शब्दालंकारों के अतिरिक्त निम्नांकित अर्थालंकारों के उदाहरण भी परमानंद सागर में प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं।

उपमा—उपमान, उपमेय, वाचक और धर्म जहाँ चारों होते हैं वहाँ पूर्णोपमा होती है। वाचक शब्द से उसे श्रौती पूर्ण उपमा कहा जाता है।

घन घन लाड़िली के चरन
अति ही मृदुल सुगंध सीतल कमल के से वरन। (१६०, पृ० ५३)

यहाँ चरण उपमेय, कमल उपमान, कैसे वाचक, मृदुल सुगंध सीतल-धर्म है।

लुप्तोपमा—

हिंडोरे झूलत है भामिनी पद सं० ७७८, पृ० २१०

× × × × × × × ×

कमल नयन हरि वे मृगनयनी चंचल नयन विसाला

यहाँ वाचक शब्द लुप्त है।

परमानन्दसागर मे उपमा अलंकार यत्र तत्र सर्वत्र भरा पड़ा है।

अनन्वय—

एक ही वस्तु को उपमान और उपमेय भाव से कथन किये जाने को अनन्वय अलंकार कहते हैं।

राधा रसिक गोपाल हि भावे।

× × × × × × × ×

उपमा कहा दैन को लाइक कै हरि कै वाही मृग लोचन। (३६६, पृ० १२६)

उदाहरण—जहाँ सामान्य रूप से कहे गए अर्थ को भली प्रकार समझाने के लिये उसका एक अंश विशेष रूप सेदिखलाकर उदाहरण दिखाया जाता है वहाँ उदाहरण अलंकार होता है।

१—घन में छिपीय रही ज्यों दामिनी।
नंद कुमार के पाछे ठाढ़ी सोहत राधा भामिनी। (७४७, पृ० २६०)

२—नँदकुवर खेलत राधा संग यमुना पुलिन सरस रंग होरी। (३३३, पृ० १११)

× × × × ×

निरखत नेह भारी श्रखियाँ सौ ज्यों निशनँद चकोरी। (३३३, पृ० ११२)

३—सदा रहत चित चाक चढ्यौ सो और न कछू सुहाय। (४४६, पृ० १५१)

प्रतीप—प्रतीप का अर्थ है विपरीत या प्रतिकूल प्रतीप अलंकार मे उपमान को उपमेय कल्पना करना आदि कई प्रकार की विपरीतता होती है—

१—देखोरी यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन देखत चन्द्र लजाया है। (३७, पृ० १३)

२—मधु ते मीठे बोल (२१२, पृ० ६७)

३—गमन करत जब हँस लजावत मरक धरक धुनि न्यारी।
(६१६, पृ० ३२८)

रूपक— उपमेय में उपमान के निषेध रहित आरोप को रूपक अलंकार कहते हैं। परमानंददासजी ने रूपक अलंकार प्रचुरता से पाया जाता है। रूपक के अनेक भेद हैं।

सांग, रूपक, निरंग रूपक, परंपरित रूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि।

सांग रूपक—

१— सोहे सीस सुहावनो दिन दूल्हे तेरे।
मनि मोतिन का सेहरा सोहे बसियों मन मेरे॥
मुख पून्यो को चन्दा है मुक्ताहल तारे।
उनके नयन चकोर हैं सब देखन हारे॥

× × × ×

नंदलाल को सेहरा परमानन्द प्रभु गायो। (३१५, पृ० १०५)

२—री अबला तेरे बलहि न और
बीधे मदन गोपाल महागज कुटिल कटाच्छ नयन की कोर।
जमुना तीर तमाल लतावन फिरत निरकुस नंदकिसोर॥
भौंह विलास पासबस कीनों, मोहन अंग त्रिभग ते जोर।
ले राधे कुच बीच निरंतर, सकल सुखद प्रेम की डोर॥
यह उचित होय ब्रज सुन्दर परमानन्द चपल चित चोर।
(३७५, पृ० १२८)

निरंग रूपक—

१—आज मदन महोत्सव राधा
मदन गोपाल बसन्त खेलत हैं नागर रूप अगाधा।
तिथि बुधवार पंचमी मंगल रितु कुसुमाकर आई॥
जगत विमोहन मकरध्वज की जहँ तहँ फिरि दुहाई॥
मन्मथ राज सिंहासन बैठे तिलक पितामह दीनो।
छत्र चँवर तूनीर शखधुनि विकट चाप कर लीन्हों॥
चली सखी तहाँ देखन जैये हरि उपजावन प्रीति।
परमानन्ददास को ठाकुर जानत हैं सब रीति॥
(३३१, पृ० ११०)

२—विरह बिथा अब जारन लागी चंद भयो अबतातो। (५२२, पृ० १७८)

व्यस्त रूपक—

गोपी प्रेम की धुजा—
जिन गोपाल कियो बस अपने उर धरि स्याम भुजा। (८२५, पृ० २८६)

परंपरित रूपक—

१—गोविंद बीच दे सर मारी।
उरतन छुटी विरहदावानल फूक फूंक सधि जारी। (५२८, पृ० १८०)

२—भावै तोहि हरि की आनन्द केलि।

× × × ×

तरुन तमाल नन्द के नन्दन, प्रिया कनक की बेलि? (६६२, पृ० २३१)

३—कश तुषार त्रास तन दुर्बल, नलिन देखवी दुख निवारन। (४८६, पृ० १६५)

रूपकाशतियोक्ति—

इसमें उपमान ही रहता है उपमेय नही।
"चलो है निसक निरंकुस करिनी एक ठौरे तहां आई।" (प० स० ६१६,)

स्मरण—

पूर्वानुभूत वस्तु के सदृश किसी वस्तु के देखने पर उस पूर्वानुभूत वस्तु की स्मृति कथन को स्मरण अलकार कहते हैं।

१—जमुना जल खेलत हैं हरि नाव।
वेगि चलो वृखभान नदिनी अब खेलन को दाव।
नीर गभीर देख कालिंदी पुन पुन सुरत करावै॥
बार बार तुव पथ निहारत नैनन में अकुलावै। (७४५, पृ० २५६)

२—सुन्यो चन्द देखि मृग नैनी माधो को मुख सुरति करे॥ (६३०, पृ० ३३६)

उत्प्रेक्षा—

प्रस्तुत की अप्रस्तुत रूप मे सभावना किए जाने को उत्पेक्षा अलकार कहते हैं परमानन्ददासजी ने उच्चकोटि की उत्प्रेक्षाएकी हैं उत्प्रेक्षा के बहुत से भेद होते हैं—

वस्तूत्प्रेक्षा—

अरुन अधरकृत मधुर मुरलिका तैसोऐ चदन तिलक निकाई।
मनो दुतियादिन उदित अर्ध ससि निकसि जलद में देत दिखाई।
(४४८, पृ० १५२)

फलोत्प्रेक्षा—

अद्भुत मणि कुन्डल कपोल मुख अदभुत उठत परस्पर झाई।
मानो, विधुमीन विहार करत दोऊ जल तरग मे चलि आई॥
(४४८, पृ० १५२)

वाचकलुप्ता उत्प्रेक्षा (प्रतीयमान अथवा गम्या)—

१—को प्रीतम ऐसो जियभावै जिनि यह दसा दई।
मैं तन की ऐसी गति देखी कमलनि हेम हई। (४३५, पृ० १४७)

२—कनक कुभ कुच बीच पसीना मानो हर मोतिन पूजे हो।
हेम लता तमाल अवलबित, सीस मल्लिका फूली हो॥ (२१६, पृ० ६६)

दृष्टान्त—

उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का जहां बिंब-प्रतिबब भाव होता है। वहां दृष्टान्त अलकार होता है।

१—मेरो माई माधो सो मन लाग्यो।
... ... ...
अब क्यों भिन्न होय मेरी सजनी मिल्यो दूध जसपान्यो। (४६२, पृ० १५६)

२—सबतें गृह सूं नातो टूट्यो जैसे काचो सूतरी॥ (४६७, पृ० १५८)

३—मेरो मन गोविन्द सों मान्यो तातें और न जिय भावै।
... ... ... ...

छांड़ अहार विहार मुख देह यह और न चाहत काऊ।
परमानन्द बसत है घर में जैसे रहत बटाऊ ॥ (४६८, पृ० १५८)

४—भाव समागम है प्यारी को ज्यों निरधन के धन पाए। (२५२, पृ० ७६)

प्रतिवस्तूपमा—

इसमें साधारण धर्म वस्तु प्रतिवस्तु भाव से शब्द भेद द्वारा एक धर्म दोनों वाक्यों मे कहा जाता है।

मेरो हरि गंगा को सो पान्यौ।
पाच बरस की मुद्ध सावरो, तैं क्यों विवई जान्यौ। (१५६, पृ० ५१)

व्यतिरेक—

उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष वर्णन को व्यतिरेक अलकार कहते हैं:—

फूलत नवल किसोर किसोरी।
नीलांबर पीताम्बर फरकत उपमा धन दामिनि छबि थोरी।
(७७७, पृ० २१०)

परिकर—

साभिप्राय विशेषण द्वारा विशेष्य के कथन किए जाने को परिकरालंकार हैं—

अतिरति स्याम सुन्दर सौं बाढ़ी।

... ... ... ....

नैनहि नैन मिलैं मन अरुभयो यह नागरि वह नागर।
परमानन्द बीच ही बन में बात भई अजागर ॥ (२६७, पृ० १२५)

परिकरांकुर—

सुन्दर मुख की हौं बलि बलि जाऊ।
लावन्य निधि, गुण निधि शोभा निधिक देख-देख जीततसब गाऊं ॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी प्रकट रुचिर ठांई ठाऊं।
तामें मुस्काय हरत मन न्याय कहत कवि मोहन नाऊं।
सखा अंस पर बाहु दिए आछ बिको बिनमोल विकाऊ ॥
परमानन्द नन्द नन्दन को निरखि निरखि उर नयन सिराऊं।
(६६७, पृ० २३२)

विशेषोक्ति:—

अखंड कारण होते हुए भी कार्य न हो वहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है। श्रेष्ठ हैं बडे हैं, फिर भी भले कार्य न कर बुराई करते हैं—

कापर ढोटा करत ठकुराई।
तुम से घाटि कौन या ब्रज में, नन्दहु ते वृखभान सवाई।
रोकत घाट बाट मधुवन को ढोरत माट करत बुराई।
निकसि लैहो बाहिर होत ही लँपट लालच किए पत जाई ॥
जान प्रवीन वड़े के ढोटा सो सब तुम कहाँ बिसराई।
परमानन्ददास को ठाकुर दै आलिंगन गोपी रिझाई ॥ (१७४, पृ० ५७)

विषम—

विषम से तात्पर्य है सम न होना।

देखो माई कान्ह बटाऊ से रहे जात।
तबकी प्रीति अब की रुखाई फिर पाछे बूझत नहिं बात। (४६०, पृ० १६६)

काव्यार्थापत्ति—

तात्पर्य के आपडने को अर्थापत्ति अलकार कहते है—

राधा माधौ विनु क्यों रहे। (३७०, पृ० १२६)

अर्थात् राधा माधव के बिना अब एक क्षण नही रह सकती।

काव्यलिंग—

जहाँ कारण की वाक्यार्थता और यथार्थता होती है वहाँ काव्यलिंग अलकार होता है—

स्रवनन कुसुम जराऊ राजे लर द्वै द्वै दुहुँ ओर।
पटियन पै जु लसत दमकत में छबि की उठत झकोर।।
चल दल,पत्र प्रवाल बज्र सौं कौंधत कंपित जोर।।(६१६, पृ० ३२८)

अर्थान्तरन्यास—

सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से साधर्म्य अथवा वैधर्म्य से समर्थन किए जाने को अर्थान्तर न्यास कहते हैं—

१—तहाँ ही अटक जहाँ प्रीति नही री।
.... .. .. ...
परमानददास को ठाकुर गोपी ताप तई री। (५२०, पृ० १७७)

२—बदरिया तू कित ब्रज पै दौरी।
.. ... ... ...
परमानन्द प्रभु सौं क्यो जीवे जाकी बिछुरी जोरी।। (५३८, पृ० १८३)

३—लरिका कहा बहुत सुत जाये जो न होउ उपकारी।
एक सो लाख बराबर गिनियौ करै जो कुल रखवारी।। (२७१, पृ० ८५)

पर्यायोक्ति—

इसमे किसी बात को रूपान्तर से या पर्याय से कहा जाता है। कृष्ण की रसिक अवस्था प्रारम्भ हो गई है। गोपी उसे बडे सुन्दर ढग से प्रस्तुत करती है।

सुनरी सखी तेरो दोष नहिं, मेरो पीउ रसिया।
.. ... ... ...
सो को जो न करी बस अपने, जा तन मैं कहसि चितैया।
परमानन्द प्रभु कवर लाडिलो अवहि कछु भीजत मसिया।।(४३०, पृ० १४६)

अन्योक्ति--

जहाँ अप्रस्तुत की चर्चा करके प्रस्तुत का संकेत हो वहाँ अन्योक्ति अलंकार होता है--

१—माई मेरो हरि नागर सौं नेह ।

... ... ... ...

कोऊ निंदौ कोऊ बंदौ मन को गयौ सन्देह ।
सरिता सिंधु मिली परमानंद एक टक वरस्यौ मेह ॥ (७४६, पृ० २६०)

२—छाँड़ि न देत झूठे अति अभिमान ।
मिलिरस रीति प्रीति करि हरि सौं सुदर हैं भगवान ॥
यह जोवन, धन द्यौस चारिको पलटत रंग सो पान ।
बहुरि कहाँ यह अवसर मिलि है गोप भेप को ठान ॥
बारबार दूतिका सिखवै करहि अधर रस पान ।
परमानंद स्वामी सुख सागर, सब गुन रूप निधान ॥ (३६६, पृ० १३५)

अतिशयोक्ति—

जहाँ वर्णन अत्यंत बढा चढाकर किया जाय—
कमल नयन में एक रोम पर वारौ कोटि मनोज । (६६१, पृ० २३०)

लोकोक्ति--

प्रसंग पर लोक प्रसिद्ध कहावत के उल्लेख को लोकोक्ति अलंकार कहते हैं—

१—माधौ सौं कत तोरिए ।
कीजै प्रीति स्याम सुदर सौं बैठे सिंह न रोरिए । (५०८ पृ० १७२)

२—साँझ परी दिन अथयौ हौं अरुझाई किहि काम ।
सेंतमेंत क्यों पाइए पाके मीठे आम ॥ (६१८, पृ० ३२७)

स्वभावोक्ति—[१]

डिभादि की यथावत् वस्तु वर्णन को स्वभावोक्ति अलंकार कहते हैं—

१—माई री कमल नैंन स्याम सुंदर झूलत हैं पलना ।

.... .... ... ....

लाल अँगूठा गहि कमल पानि मेलत मुखमांही ।
अपनो प्रतिबिंब देखि पुनि पुनि मुसकाही ॥ (४६, पृ० १५)

२—क्रीड़त कान्ह कनक आगन ।
निज प्रतिबिंब बिलोकि किलकि धावत पकरन को परछांवन ।
पकरन धावत सभित होत सब आवत उलटि लाल तहँ डायन ।
परमानंद प्रभु की यह लीला निरखत जसुमति हँसि मुसकावन ॥ (७४, पृ० २६)

अलंकारों के उपयुक्त कतिपय उदाहरण परमानन्द सागर में से प्रस्तुत किए गए हैं । वैसे परमानन्ददास जी का उद्देश्य कोरी कलात्मकता नहीं था फिर भी पदों के सरस प्रवाह

१ स्वभावोक्तिस्तु डिंभादेः यथावद् वस्तु वर्णनम् । साहित्य दर्पण ।

में उनके अलंकार अनायास चले आए हैं। वैसे उनमे नाद-सौंदर्य और श्रुतिमधुरता पदे पद मिलती है।

## परमानन्ददासजी का छन्दोविधान—

कला पक्ष के अन्तर्गत छन्दों का भी बड़ा महत्व है। अष्टछाप के सभी कवियों ने अपनी काव्य रचना गेयशैली में की है। अतः उनका काव्य पद-बहुल है। सूरदास एवं परमानंददासजी, सम्प्रदाय के इन दो सागरों ने तो सम्पूर्ण लीलागान पदों मे ही किया है। वस्तुतः पदशैली की एक लम्बी परम्परा थी जो अष्टछाप के कवियों तक आते-आते पूर्ण विकास को प्राप्त हो गई थी। फिर रसात्मा रसेश कृष्ण जो साक्षात् नाद रूप ब्रह्म ही हैं, अपने भुवन मोहन मधुरतम मुरली राव के लिए भक्तों के परमाराध्य हैं। अतः उनके लीला परक पदसंगीतमय होने चाहिए। संगीत और छन्द का परस्पर गठबधन वैदिक काल से चला आता है। वैदिक साहित्य के नाद सौन्दर्य पर मुग्ध होकर आचार्यों ने उसके छन्दों का अनुसन्धान कर उन्हें सप्तधा विभक्ति किया था। उन्हीं बृहत् पंक्ति, जाति, त्रिष्टुप, अनुष्टुप, गायत्री जगती सात छन्दों में पुराण और काव्य युग तक आते आते इतना बड़ा वंश विस्तार कर लिया कि यह एक अलग शास्त्र ही बन गया। छन्दों का बंधन कुछ समय तक तो ग्राह्य बना रहा फिर स्वच्छन्द मानव प्रकृति ने अन्य अनेक बंधनों की भाँति इसे भी अवांछनीय समझकर तोड़ फेंका और इससे अपने को मुक्त करना चाहा परन्तु मध्ययुग अथवा भक्तियुग ने छन्दों को पूरा-पूरा महत्व दिया। भक्त कवियों ने भगवल्लीला गान के लिए जो भी शैली सुमधुर, श्रवण मधुर, लोक प्रचलित और सुन्दरतम समझी उसे ही अपनी कला माना। भक्त कविगण अत्यन्त समन्वय वादी थे। उनमे द्वेष तिरस्कार प्रतिक्रियात्मकता, असहयोग अथवा बहिष्कार करने की प्रवृत्ति नही थी इसीलिये तुलसी ने अपनी युग युग से चली आती सांस्कृतिक राम कथा के लिए विदेशी मसनवी पद्धति को बहुत पसन्द किया था। और उसे भी भारतीय छन्दों के समावेश के साथ। कृष्ण भक्त कवियों ने अपने संगीत प्रधान मुक्तक पदों को गेयशैली में रखा और उसमें उन्होंने अनेक प्रचलित अप्रचलित छन्दों का प्रयोग किया।

छन्द अथवा संगीत रसोत्कर्षक में सहायक होने के कारण काव्य मे बहुत ही वांछनीय और ग्राह्य माने गए हैं। वस्तुतः सारा कृष्ण भक्ति काव्य गेय और संगीतात्मक है। संगीत में ताल ही मुख्य है। यदि सम्पूर्ण संगीत को एक शरीर मानें तो ताल को उसका हृदय मानना चाहिए। ताल काल के माप दंड का नाम है। काल के गतिमय गणित को नापकर यति गति की कल्पना की गई है। यति गति के विशिष्ट नियमबद्ध रूप का नाम ही छन्द है जो कभी स्वच्छन्द नहीं।

परमानन्ददासजी का सम्पूर्ण काव्य सूरदासजी की भाँति गेय और मुक्तक है। वस्तु, शैली, उद्देश्य और परम्परा उनमे और सूर मे इतना जबर्दस्त साम्य है कि यदि परमानन्ददासजी अथवा सूरदासजी के पदो के अन्तिम चरण से उनकी छाप अथवा नाम हटा दिया जाय तो एक दूसरे के काव्य को पहिचानना नितान्त असम्भव ही है। अतः दोनों का छन्द विधान और छन्दों के प्रकार और उनकी शैली लगभग एकसी ही है।

गेय पदों मे प्रारम्भिक अथवा पहला चरण टेक अथवा ध्रुवपद होता है। और शेष चरण उसी भाव को पुष्ट करने वाले होते हैं। रस सिद्ध अथवा उच्च कोटि के सफल कवि

छन्दों का विधान प्रसगानुकूल ही करते हैं। प्रसगानुकूल छन्द भावोद्रेक अथवा रसोत्कर्ष में बहुत ही सहायता पहुँचाते हैं। उदाहरण के लिए बधाई के प्रसग वाले पद लम्बे, छन्दो मे, पलने के पद प्राय झूलना अथवा लावनी में। युद्ध और भाग दौड के प्रसग वाले पद छोटे छोटे त्वरित गति एव लय से पढे जाने वाले नाराच भुजगप्रयात आदि छदों मे होते हैं। परमानददासजी के इन सब नियमों को सफलता से निभाया है। और प्रसग अथवा भावानुकूल ही छदो का विधान किया है यहाँ उनके द्वारा प्रयुक्त कतिपय छदों का परिचय देने की चेष्टा की जाती है।

परमानददासजी के काव्य मे कुकुभ, विष्णुपद, सिह, शकर, सार, चौबोला ताटक, चवपैया, झूलना, कुडल, प्रिय, रोला आदि छद उपलब्ध होते हैं—

स्तुति, बधाई एव हर्ष के अवसरों पर कवि ने ककुभ एव विष्णुपद छन्दो का अत्यधिक प्रयोग किया है।

ककुभ—

इस छद में १६+४ की यति से ३० मात्राएँ होती हैं और अन्त मे तीन गुरु (SSS) होते हैं।

चरन कमल बदौ जगदीश के जेगोधन सग धाए।
जेपद कमल धूरि लपटाने कर गहि गोपिन उर लाए॥ (१)

विष्णुपद—

इस छद मे २६ मात्राएँ होती हैं १०+१० की यति और अन्त मे गुरु होता है।

आज गोकुल बजत बधाई। (टेक)
नद महर के पुत्र भयो है आनन्द मंगल गाई॥ (३, पृ० २)

शकर—

यह भी १६+१० की यति से २६ मात्राओ का छन्द होता है। अन्त मे गुरु लघु होते हैं—

जन्म फल मानत जसोदा माय।
जब नदलाल धूरि धूसर वपु रहत कठ लपटाय॥ (२, पृ०२)

सिह—

इस छन्द का हर चरण १६ मात्रा का होता है। अन्त में २ लघु और एक गुरु होता है। (।।S)

प्रगट भए हरि स्री गोकुल मे।
नाचत गोप गोप परस्पर आनन्द प्रेम भरे हैं मन मे॥ (६, पृ० ४)

सार—

इसमे १६+१२ की यति से २८ मात्राएँ होती हैं। अन्त में यगण होता है—

तुम जो मनावत सोइ दिन आयो।
अपनो बोल करो किन जसुमति लाल घुटुरुवन धायो॥ (१६, पृ० ७)

ताटक—

इसम १६+१४ की यति से ३० मात्राएँ होती हैं। अन्त मे यगण होता है—

देखोरी यह कैसा बालक, रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन, देखत चन्द्र लजाया है॥ (३७, पृ० १३)

चवपया—

इसमें प्रतिचरण १०+८+१२ की यति से ३० मात्राओं का होता है अन्त में दो गुरु (ऽऽ) होते हैं—

सुनो हो जसोदा, आज कहैंते, गोकुल में एक पंडित आयो।
अपने सुत को हाथ दिखायो सो कहे जो विधि निरमायो॥ (५८, पृ० २०)

प्रिय—

इसमें १०+१० की यति से २० मात्राएँ होती हैं। अन्त में (ऽऽ) दो गुरु होते हैं—

देखत अंजनाथ वदन कोटि वारौं।
जलज निकट नैन मनि उपमा बिचारौं॥ (१२४, पृ० ४२)

रोला—

यह छन्द ११+१३ की यति से २४ मात्राओं का होता है—

हरि रस ओपी सब गोप तियन ते न्यारी।
कमल नयन गोविंद चंद की प्रानन प्यारी॥ (८२६, पृ० २६०)

विलास—

यह छन्द १७ मात्राओं का है—

कोटिऊ ते बिन भृकुटि की ओट।
सरा हू तेसरस सब्द की चोट॥ (४१६, पृ० १४२)

लम्बे लम्बे वर्णन जैसे रास, होली, वसन्त, क्रीड़ा आदि में कवि ने झूलना हरिगीतिका आदि छन्दों का प्रयोग किया है।

सार—

२८ मात्रा का छन्द होता है—

आवति आनंद कंद दुलारो। टेक
बिघु बदनी मृगनयनी राधा, दामोदर की प्यारी।
जाके रूप कहत नहिं आवैं, गुन विचित्र सुकुमारी॥ (३७८, पृ० १२८)

झूलना—

इसमें ३२ मात्राएँ होती हैं। इसके कई भेद होते हैं—

मदन गोपाल बल्लैये लैहौं। टेक
वृन्दा बिपिन तरनितनया तट चलि व्रजनाथ आलिंगन दैहौं॥
सघन निकुंज सुखद रति आलय, नव कुसुम की सेज बिछैहौं। (३६०, पृ० १२३)

कवि ने कतिपय विशेष छन्दों का भी प्रयोग किया है। इन्हे लावनी अथवा चोवोलो के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इनमे १५ मात्रा वाली चौपाई भी आगई है।

चौपई—

देखो रसिक लाल बागो रसाल।
खेलत बसत पिय रसिक बाल॥
घोप घोप की सुघर नारि।
गावत जुरि मिलि मीठी गारि॥

परमानन्ददासजी के कुछ ऐसे भी नवीन छन्द है। जो सम्भवतः संगीत में ठीक बैठते हों परन्तु वैसे मात्राम्रो की गणना से उनकी पहिचान होना कठिन होता है—

बदन की बलि बलि जाऊँ बोलत मधुर रस।
बचन बचन प्रति सकल भुवन बस॥
चद निचोय रचे ग्रबुज दल नाऊँ धर्यो कमल नैन।
यह ग्रवलोकन सुर नर मोहे कैसी रिपु जायो जिवायो मैन॥(४५१, पृ० १५३)

चौपाई—

इसमें १६ मात्राएँ होती है—

सुनि मेरो बचन छबीली राधा। तैं पायो रस सिधु ग्रगाधा॥
जो रस निगम नेति नित भाख्यो। ताको तैं ग्रधरामृत चाख्यो॥(४५५, पृ०१५४)

चौपई—

कालिंदी तीर कलोल लोल।
मधु रितु माधो मधुर बोल। (४००, पृ० १३६)

दोहे—

१३, ११ यति से २४ मात्राम्रो का छद होता है—

राधे तू वडभागिनी कौन तपस्या कीन।
तीन लोक के नाथ हरि, सो तेरे ग्राधीन॥

कवि ने गोवर्धन लीला के प्रसग में रोला ग्रौर रूपमाला दोनों का ही मिश्रण कर दिया है—

रोला—

घर घर मंगल होत, कहा है ग्राज तुम्हारे।
बहु बिधि करत रसोई, मध्य हूं गयो सकारे॥ (२७२, पृ० ८६)

रूपमाला—

मोहो देख सब कोई, कह्यो यहा जिन ग्रावो लाल।
देव यश हम करत हैं, कर पकवान रसाल॥ (२७२, पृ० ८६)

रोला—

यह विस्मय चित मोहि; कौन की करत पुजाई।
याको फल है कहा कहो तुम ब्रजपति राई॥ (२७२, पृ० ८६)

रूपमाला—

नाम कहा या देव को, कौन लोक को राज।
इतनो बलि यह खात है, कहा करत है काज॥ (२७२, पृ० ८६)

समान सवैया—

इसमें १६+१६=बत्तीस मात्राएँ होती हैं ग्रन्त में दो गुरु होते हैं—

भोगी के दिन ग्रभ्यग स्नान करि साज सिंगार स्याम सुभगतन।
पुनि फूलि तिलवा भोग धरिकैं परम सुदर ग्रारोगावत सव निज जन।

स्रा घनस्याम मनोहर मूरत करत बिहार नित्य ब्रज वृंदावन ।
परमानंददास को ठाकुर करत रंग निसदिन ॥ (३११, पृ० १०७)

लावनी—

इसे लावनी खयाल भी कहते हैं। यह प्रायः पूरब में अधिक गाया जाता है वस्तुतः लावनी गाने की एक तर्ज है। वैसे इसे ताटंक ३० मात्रा का छन्द कह सकते हैं। इस तर्ज में होरी धमार के पद भी गाए जाते हैं परमानन्ददास जी को यह छंद बड़ा ही प्रिय था।

तू जनि आई नंदजू के द्वारें, तेरी बात चलाई री ।
खान पान सब तज्यौ सांवरे, लै सब लियौ चुराई री ॥
कौन नंद काको सुत सजनी, मैं देख्यौ सुन्यौ न माई री ।
फूकि फूकि हौं पाई धरत मेरे पैंड़े परैं लुगाई री ॥ (६२०, पृ० ३३२)

सखी—

इस छन्द का प्रत्येक चरण १४ मात्रा का होता है अन्त मे दो गुरु होते हैं। कवि ने इनका बहुत थोड़ा प्रयोग किया है।

चलहु तौ ब्रज मे जैये ।
जहां राधा कृष्ण रिझैये ।
व्रखभान रजा घर आए ।
तहँ अति रस न्यौति जिवाए । (६२६, पृ० ३३४)

कहीं कहीं कवि ने एक दम उर्दू के ढंग पर छोटे बड़े वाक्यांश रख दिये हैं ये उर्दू बहेरों का सा ढंग है—

बने माधौ के महल ।
जेट मास अति जुड़ात माघ मास कहल ॥
दूरि भए देखियत बादर कैसे पहल ।
बीच बीच हरित स्याम जमुना कैसे दहल ॥
ब्रजपति के कहा अनूप यह बात सहल ।
परमानंददास तहां करत फिरत टहल ॥ (७४६, पृ० २६१)

हंसाल—

इस छन्द मे २०+१७ की यति से ३७ मात्राएँ होती हैं। चरण के अन्त में यगण होता है।

माई सांवरो गोविंद लोला ।
ग्वालि ठाड़ी हँसे, प्राण हरि में बसें, काम की बावरी चाह बोला ॥
आवरी ग्वालिनि मेल दै बाछरी, आन दैहे दोहिनो हाथ मेरे ।
धेनु धौरी दुहूँ, प्रेम सौं कहूँ मेरे चित्त लाग्यो है रूप तेरे ।
बाल लीला भली, सैन दैके चली, आन दैहो दूध या आप पास आऊँ ।
दास परमानन्द, नंद नंदन केलि चोर चोर, चित चार्यौ मिलनु पाऊँ ।
(११७, पृ० ४०)

विजया—

इस छन्द में १०+१०+१०+१० की यति से ४० मात्राएँ होती हैं यह प्रायः स्तुति आदि में प्रयुक्त होता है। तुलसी ने इस छन्द मे गंगा की स्तुति की है। परमानन्ददास जी ने यमुना की।

अति मंजुल जल प्रवाह मनोहर सुख अवगाहत राजत अति तरिणी नन्दिनी।
स्याम वरन झलकत रूप, लोल लहर अनूप वर सेवित संतत मनोज वायु मंदिनी॥
(५७७, पृ० २००)

कवि ने आरती आदि के लिए ताटंक छन्द को रसिए की शैली, तज, में भी प्रयुक्त किया है—

आरति जुगल किसोर की कीजै।
तन मन धन न्योछावर दीजै॥ (६७८, पृ० २३६)

उपर्युक्त कतिपय प्रधान छन्दों के अतिरिक्त कवि ने लावनी १६+१४, मत्त सवैया १६+१६ हरिप्रिया १२+१२+१२+१० तोमर १२+१२ आदि छन्दों को भी यत्र तत्र रक्खा है।

परमानन्ददास जी के अभी तक के उपलब्ध काव्य को देखते हुए उनकी छन्दों की विविधता आश्चर्य मे डाल देती है। सूर की अपेक्षा उनके छन्दों के प्रकार यद्यपि थोड़े हैं फिर भी काव्य परिणाम को देखते हुए उनकी छन्द विविधता पर्याप्त है। छन्दों को देखते हुए उन पर फारसी प्रभाव स्पष्ट कहा जा सकता है। साथ ही हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

उन्होंने सभी सम मात्रिक, विषम मात्रिक अपने युग मे प्रचलित छन्दों का प्रयोग किया है। छंदों मे मात्राओं की अपेक्षा उन्होंने गति और संगीतात्मकता का विशेष ध्यान रखा है। यति भंग की उन्हे चिंता नही थी। उन्होंने रसिए, लावनी, चौबोले आदि ब्रज के प्रसिद्ध गाए जाने वाले पदों को अधिक पसन्द किया है। अपने सम सामयिक सूरदास, कृष्णदास, कुम्भनदास तथा अन्य ब्रज भक्त कवियों से वे पूरे पूरे प्रभावित हैं। परमानन्ददासजी उर्दू फारसी छन्द शैली का भी प्रभाव ग्रहण किए हुए हैं।

---

## परमानन्ददासजी की भाषा—

परमानन्ददासजी व्रज भाषा के रस सिद्ध कवि हैं। भाव प्रकाश में लिखा है कि वे "बड़े योग्य और कवीश्वर हू भये।"[1] इससे उनका सुपठित होना व्यक्त होता है। महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण में आने से पूर्व वे काव्य रचना करते थे। इस तथ्य का उल्लेख वार्ता में हुआ है। संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व आचार्यजी को जो भगवद्विरह परक पद[2] उन्होंने सुनाए थे, उनसे उनकी असाधारण काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है। भावों एवं रसों के तो वे सफल कवि थे ही, किन्तु लोकभाषा पर भी उनका असाधारण अधिकार था। यों तो अष्टछाप के सभी कवियों का काव्य व्रजभाषा के माधुर्य से सुसंपन्न है परन्तु इन दो सागरों सूरदास एवं परमानन्ददास की भाषा के सौष्ठव, माधुर्य एवं वैभव को देख कर पाठक न केवल आनन्द विभोर होता है अपितु वह विस्मय विमुग्ध होकर आश्चर्य के सागर में गोते लगाने लगता है। इन कृष्ण भक्त कवियों के हाथ में पड़कर व्रज प्रदेश की लोक-भाषा कठपुतली की भाँति इनके इंगित पर नृत्य करने लगती थी। अभिव्यक्ति की कुशलता, ध्वनि की मधुरता, चमत्कृति की चतुरता, चित्रोपमता आलंकारिक सजीवता के साथ साथ समन्वय की प्रवृत्ति परमानन्ददासजी की विशेषता थी। महात्मा सूरदास जन्मान्ध अथवा प्रज्ञाचक्षु थे। उनका पठन पाठन प्रकृति की मुक्त पाठशाला अथवा आत्मानुभूति की अन्तःशाला में हुआ था शेष सब सत्संग एवं श्रवण जनित था। परन्तु परमानन्ददासजी के विद्वान् होने का वार्ता में स्पष्ट संकेत है। विद्वत्ता और अध्यात्मप्रवृत्ति के साथ आचार्य महाप्रभु का दीक्षा गुरुत्व एवं सुबोधिनी का श्रवणादि सब मिलकर उन्हें उच्च कोटि का भक्त और बोधवान् सिद्ध कर देने के लिए पर्याप्त है। इसी के परिणाम स्वरूप उनके काव्य में हम पुष्ट, परिष्कृत, प्राजल और प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग पाते हैं।

यहाँ उनकी काव्य भाषा पर विचार करने से पूर्व यदि तत्कालीन प्रचलित लोक भाषा के स्वरूप पर विचार कर लिया जाय तो अनुचित न होगा।

## व्रज भाषा का नामकरण—

व्रज प्रदेश की भाषा को व्रज भाषा कहा जाता है। "व्रज शब्द स्वयं प्रदेश वाची नहीं है। इसका धात्वर्थ "जाना" तथा पशुशाला अथवा गोष्ठ[3] है। परन्तु आगे चलकर यह रूढ हो गया। और भागवत काल तक आते आते यह प्रदेश वाची बन गया।[4] अन्यथा यह शूरसेन का प्रदेश था और सौरसेनी अपभ्रंश यहाँ की राज भाषा थी। व्रज भाषा की उत्पत्ति इसी शौरसेनी अपभ्रंश से हुई। राज भाषा अथवा साहित्यिक भाषा से लोक भाषा अथवा प्राकृतों (सर्व साधारणों) की भाषा में सदैव अन्तर रहता आया है। शौरसेनी अपभ्रंश

१ देखो—वार्ता पर भाव प्रकाश टिप्पण, पृष्ठ ७८६—सपादक श्री परीख।

२ कौन बेर भई चलेरी गुपालै।

तथा

जिय की साध जियहि रही री। पृष्ठ ७६०

३ "व्रजः स्यात् गोकुलं गोष्ठम्।" वैजयन्ती कोष

४ देखो—कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजंगतः। भा० १०। ६।६६

जव राजभाषा थी, तव लोक भाषा का स्वरूप क्या था और उसका साहित्य कैसा था यह अद्यावधि अधकार में है। सर्व साधारण के भावो की अभिव्यक्ति के माध्यम को भाषा कहते हैं। आठवी नवी शताब्दी से लेकर १५ वीं शताब्दी में शौरसेन प्रदेश के लोक साहित्य का पता नही चलता, यह आज भी अधकार मे ही है अत व्रजभाषा अथवा लोक भाषा के उस काल के कुछ विकसित रूप का आभास 'प्राकृत पैंगलम्' मे दृष्टिगोचर होता है। जव प्रदेश आचार्य वल्लभ के प्रभाव के कारण पुष्टि सप्रदाय का केन्द्र बना और १५, १६ वी शताब्दी मे श्री गोवर्धननाथजी के प्राकट्य के उपरान्त आचार्य ने उनके मदिर में कीर्तन की व्यवस्था की, तब इस लोकभाषा को साहित्यिक रूप मिला। सवत् १५५६ मे गिरिराज पर श्री गोवर्धननाथ जी के मदिर के बन जाने के उपरान्त व्रजभाषा कीर्तनकारों के पदों मे जोरो से प्रयुक्त होने लगी और इस प्रकार व्रज भाषा के साहित्यिक रूप का मध्याह्न प्रखर हो उठा। क्योंकि उभय सागरो अथवा अन्य अष्टछापी कवियों का इतना विकसित भावमय, सबल अभिव्यक्ति पूर्ण पदार्णव एकदम आकस्मिक अथवा आरभिक नही हो सकता, अवश्य ही यह किसी परपरा का विकसित रूप है। जो भी हो अभी तो १५ वीं १६ शताब्दी को ही व्रजभाषा का आदि काल मानना पडता है। और इस प्रकार व्रज भाषा को यदि सुविधा की दृष्टि से निम्नाकित तीन कालो में बाँट ले तो उसके स्वरूप के तुलनात्मक अध्ययन मे बडी सुविधा रहती है।

१—व्रजभाषा का आदिकाल १५ वी शती से १७ वी शती तक।
२—व्रजभाषा का मध्य काल १७ वी शती से १६ वी शती तक।
३ —व्रज भाषा का आधुनिक युग १६ वी शती से आज तक।

व्रजभाषा के विस्तार पर यदि हम विचार करें तो इसका ठेठ पूर्वी रूप अवधी, कन्नौजी, दक्षिणी रूप बुंदेली, पश्चिमी रूप डिंगली अथवा राजस्थानी, और उत्तरी रूप खडी बोली से जा लगेगा। इसका केन्द्र मथुरा और उसके आस पास का प्रदेश है। जब व्रज भाषा को साहित्यिक रूप मिलना प्रारम्भ हुआ तो इसके दो स्पष्ट स्वरूप हो गए। एक तो ग्रामीण व्रज और दूसरी नागरिक व्रज।

इस प्रकार मथुरा, आगरा, अलीगढ़ और इटावा व्रज के प्रधान क्षेत्र हैं। इटावे से आगे यह कन्नौज तक जा पहुँचती है। यह गवालियर के उत्तरी पश्चिमी भाग धौलपुर भरतपुर मे बोली जाती है। और अधिक दक्षिण अथवा पश्चिम मे जाने पर यह क्रमश बुंदेली अथवा राजस्थानी रूप धारण कर लेती है। आदिकालीन व्रज भाषा के कवियों मे सूरदास, परमानन्ददासादि अष्टछाप के कवि, तुलसी, मीरां' बिहारी आदि आते हैं।

मध्यकालीन व्रज मे —रीतिकालीन कवियो से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक के कवियों का समावेश है। आधुनिक व्रजभाषा मे भारतेन्दु, प्रतापनारायण आनदघनादि से लेकर रत्नाकर एव सत्यनारायण कविरत्नादिक कवि गण आजाते हैं।

## व्रजभाषा का आदिकालीन स्वरूप—

यह ऊपर कहा जा चुका है कि व्रजभाषा के इस प्रारभिक स्वरूप के दर्शन हमें अष्टछाप एव अन्य कृष्ण भक्ति कवियो की रचनाओं में होते हैं। अत प्रारम्भिक व्रजभाषा मे सज्ञा विशेषणो क्रियापदो के रूप इस प्रकार थे —

१—संज्ञा तथा विशेषणों के रूप ओकारान्त या औकारान्त होते थे। जैसे बड़ो, तमासो, ल्हौरो। संज्ञाओं के तिर्यक् रूप बहुवचन "न" लगाकर बनते थे, लड़कन, बड़ेन, घोड़न, ल्हौरेन आदि।

कर्मकार में—कौं का प्रयोग होता था—घोड़न कौं, बड़ेन कौं।

सर्वनाम में—वाकौं, मोकौं, तोकौं; आदि।

उत्तम पुरुष में—हौं; मो, आदि।

संबंध कारक में—मेरो, तेरो, हमारो आदि।

क्रियापद—

वर्तमान काल की क्रियाओं के व्रज और अवधी मे एक से रूप होते हैं।

करत हौं, करित हौ, चलत हौं, चलतहौं। स्त्रीलिंग में इकारान्त हो जाता है जसे—गावति, हंसति, हंसावति, झुलवति।

बहु वचन मे, करत हैं, जात हैं आदि।

| | एक वचन | बहुवचन |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष— | है, होत है। | हैं, होत हैं। |
| मध्यम पुरुष— | है, होत है। | हैं, होत हैं। |
| उत्तम पुरुष— | हौं-होत हौं। | हैं; होत हैं। |

भविष्यत्

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष— | करैगो। | करेंगे। |
| | करिहै | करिहैं। |
| मध्यम पुरुष— | करैगो। | करौगे। |
| | करि है। | करिहौ। |
| उत्तम पुरुष— | करौंगो। | करेंगे। |
| | करि हौं। | करिहै। |

भूतकाल

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम पुरुष— | गई, गयो। | गईं। गए। |
| मध्यम पुरुष— | गयो | गए। |
| उत्तम पुरुष— | गयो। | गए। |

व्रज में भूतकालिक कृदन्त के रूप मे आयौ, चल्यौ, आदि बनते हैं। उपर्युक्त उदाहरण व्रज भाषा के दिए हुए हैं। आदिकालीन व्रज भाषा के सज्ञा, सर्वनाम, क्रिया पदों के व्याकरण गत सामान्य एवं सक्षिप्त विवेचन के उपरान्त अब परमानन्ददासजी की भाषा पर विचार किया जाता है।

## परमानन्ददासजी की भाषा का स्वरूप—

परमानन्ददासजी कन्नौज निवासी थे। कन्नौजी भाषा का विस्तार इटावे और प्रयाग के बीच के प्रदेश में है। यह हरदोई और उन्नाव के भी कुछ विभागों में बोली जाती है इसे व्रज भाषा का ही एक परिवर्तित रूप समझना चाहिये। इसका साहित्य प्रायः नहीं के समान है। क्योंकि इसके अधिकांश भाषियों ने व्रज भाषा मे ही कविता की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का तो यह मत था कि कन्नौजी भाषा दिन प्रति दिन समाप्त होती जा रही है और इसके अनेक प्रयोग मर गए हैं अथवा मरते जा रहे हैं।[१]

जो भी हो हमे यहाँ कन्नौजी के ह्रास-विकास से प्रयोजन नहीं। यहाँ तो केवल इतना ही कहना है कि परमानंददासजी ने अपनी काव्य-भाषा के लिए व्रज को ही अपनाया। व्रज के आदिकाल मे परमानददासजी ने जिस पुष्ट प्राजल व्यवहार्य सबल व्रज भाषा का प्रयोग किया है वैसा नददासजी को छोडकर शायद ही किसी अन्य कृष्ण भक्त कवि ने किया हो। सूर ने यद्यपि प्रचलित व्रजभाषा का प्रयोग किया है परन्तु उनमे उतना परिमार्जित रूप नहीं मिलता जो परमानंददासजी मे है। यों तो सूर सभी अष्टछापी कवियो मे सिरमौर है परन्तु अनेक क्षेत्रों मे और विशेषकर भाषा के क्षेत्र मे और भी अन्य कवि उनसे बाजी ले गये हैं। व्रज भाषा का अपना माधुर्य है। भगवान कृष्ण और कृष्ण-भक्ति से समन्वित होकर उसका सौंदर्य और भी निखर गया है। वह कृष्ण भक्तो के हाथो मे पडकर इतनी समृद्धिशालिनी हो गई है कि उसका साहित्य आज सर्वोच्च साहित्य मे गिना जाता है।

परमानददासजी का परमानदसागर सूरसागर की टक्कर का कहा जाता है। यह न केवल भाव, कल्पना अथवा रस की दृष्टि से ही सूरसागर की टक्कर का है अपितु भाषा की समृद्धि एव उसके सौष्ठव की दृष्टि से भी उससे पीछे नहीं।

तत्सम, तद्भव, देशज शब्दो के प्रयोगो, लोकोक्तियो वाग्धाराओं (मुहावरों) के उपयोगों के साथ अन्य प्रान्तीय शब्दो का सुष्ठु प्रयोग तो 'सागर' मिलता ही है। परन्तु युग का प्रभाव भी उसमें परिलक्षित होता है। विदेशी शब्दों को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति से इस भाषा मे गहरी सजीवता, व्यंजकता और मोहकता के दर्शन होते हैं।

परमानंददासजी के सहृदय पाठक के भाव मग्न होने तथा रस निमज्जित होने का रहस्य ही यह है कि उनकी भाषा मे उच्च कोटि की व्यंजकता, लाक्षणिक वक्रता तथा संक्षिप्ता है। यहाँ उनके द्वारा प्रयुक्त तत्सम, तद्भव, देशज शब्दों के साथ अन्य प्रान्तीय एवं विदेशी शब्दों की सूची प्रस्तुत करने के पूर्व उनकी भाषा को आदिकालीन व्रज भाषा की कसौटी पर कसने की चेष्टा करेंगे।

परमानंददासजी ने भी संज्ञा तथा विशेषणो के ओकारान्त ही प्रयुक्त किये हैं—

सुनोरी आज मंगल नवल वधायो हो। (६)

घर घर आनन्द होत सबन के दिन दिन बढत सवायो। (२६)

आज वधाई को दिन नीको।

---

१ देखो—हिन्दी शब्द सागर आठवां भाग पृ०—१३

नंद घरनी जसुमति जायो है लाल भाम-तो जी को । (२०)
मैया निपट बुरो बलदाउ । (९९)

संज्ञाओ के बहुवचन न लगाकर बने हैं—
घर घर ते नर नारी मुदित जुरि जूयन धायो है । (६)
'आज लाल को जन्म द्योस है मोतिन चौक पुरायो है । (६)

उत्तम पुरुष में मैं—'मो' —हौ का प्रयोगः—
मैं तू कै विरिया समुझाई । (४३६)
सामरो वदन देखि लुभानी ।
चले जात फिरि चितयो मो तन तब ते संग लगानी । (१३१)
सखी हौं अटकी राह और री । (४१५)
मध्यम पुरुष मे—तुम, तू, तोसों तें
तुम जिन खीजो मात जसोदा सबनि को जीवनि है; यह । (१३२)
कबकी तू दह्यौ धरे सिर डोलति । (४२६)
मैं तोसो केतिक बार कह्यो । (१८२)
तैं मेरी लाज गँवाई हो दिखनौते छोटा । (३५५)
अन्य पुरुष—"सो" (ए० व०) ये (ब० व०)
मोहन सों क्यो प्रीति बिसारी । (५३२)
बहुवचन-वे हरिणी हरि नीद न जाई । (८५८)

कर्मकारक में:—
जाकों, मोहि, मोसों, ताकों
मोकों, तोकों, जाकों, मोहि तोहि, ताहि तोपै आदि ।
कृष्ण को बीरी देत व्रजनारी । (८१४)
स्री यमुना । दीन जान मोहि दीजै (५७६)
जा दिन कन्हैया मोसों मैया कहि बोलेंगो । (६८)
ग्वालिनि तोपै ऐसों क्यो कहि आयो । (१४६)
कछु उपदेस सहचरी मोसौं कहा जाउं कहा पाउ (८६१)
कही कही 'को' का काम 'ऐ' की मात्रा से ही चला लिया गया है । जैसे
ठाडी बूझति नैन बिसालै । (१२७)
तथा
नेक गोपालै दीजो टेर । (१०७)

करण कारक में—

*खड़ी बोली मे जबकि करण कारक का चिन्ह 'से' होता है व्रज भाषा में 'ते' होता है।* परमानददासजी ने 'ते' का ही प्रयोग किया है ।

'जा धन ते गोकुल सुख लहियत सगरे काज सँवारे ।
सो धन बार बार उर अन्तर परमानन्द विचारे ॥ (३३)

संप्रदान —

खड़ी बोली में 'लिए' चिन्ह् संप्रदान कारक के लिए आता है। परमानंददासजी ने उसके 'को' प्रयोग किया है।

'लाल कौं मीठी खीर जो भावै। (११२)

अपादान—

खड़ी बोली में अपादान का चिन्ह 'से' होता है। व्रज मे 'ते' आता है। 'सूं' का भी प्रयोग होता है।

१. 'मोपे तें लोनी देखन कौं यह धौ कौन बढ़ाई।' (९८)

२. तबते गृह सूं नातो टूटयो जैसे काचो सूत सखीरी। (४६७)

सम्बन्ध —

खड़ी बोली में सम्बन्ध कारक रूप 'मेरा' हमारा तेरा, तुम्हारा, उसका, उनका, आदि रूप होते हैं। व्रज में मेरो, हमारो, तेरो, तुम्हारो, वाको, उनको अथवा तिनको आदि रूप होते हैं।

परमानंददासजी ने व्रज के साथ खड़ी बोली के रूपो का भी प्रयोग किया है।

जसोदा तेरे भाग्य की कही न जाई। (४३)

तिहारे वदन के हौं रूप राँची। (३५७)

वारी मेरे लटकन पग धरो छतियां। (४४)

कहीं कही 'को' प्रयोग कवि ने किया है—

श्रीराधा जू को जन्म भयो सुनि माई। (१६४)

कही 'याके, वाके आदि का प्रयोग मिलता है—

मानो याके बबा की चेरी। (१८९)

खड़ी बोली में 'इसके' का प्रयोग होता है। साथ ही 'मेरो' तेरो' का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है—

'तेरो री लाल मेरो माखन खायो। (१४७)

मेरो मन बावरो भयो। (४६४)

मैं 'अपनो' मन हरि सों जोर्यो। (४६३)

स्त्रीलिग में "री" का प्रयोग—

ढोटा "मेरी" दोहनी दुराई। (९८)

## परमानन्ददासजी के काव्य में क्रिया पद—

भाषा का स्वरूप क्रिया पदों पर निर्भर रहता है। खड़ी बोली में वर्तमानकाल की क्रिया मे एकवचन आकारान्त होता है। वह क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है। भूत मे था, थे तथा भविष्यत् गा और गे क्रिया के अन्त में लग जाते हैं।

व्रजभाषा मे क्रियाओं के रूप मे खड़ी बोली से कुछ भिन्नता लिए होते हैं—

वर्तमान काल में—

व्रज भाषा में "क्रिया" वर्तमान काल मे ह्रस्व अकारान्त हो जाती है। जैसे—

(१) आज गोकुल में बजत बधाई।

(२) ब्रज मे फूले फिरत अहीर।
(३) तुम जो मनावत सोई दिन आयो।
(४) घर घर ग्वाल देत हैं हेरी।
(५) ब्रज में होत है कुलाहल भारो।

स्त्रीलिंग मे क्रिया ह्रस्व इकारांत हो जाती है—
(१) वदन निहारति है नद रानी।
(२) ठाडी बूझति नैन विसालै।
(३) साँवरो वदन देखि लुभानी।

कहीं कहीं एकारान्त क्रियाएँ वर्तमान काल मे प्रयुक्त हुई हैं—
"हो हो होरी हलधर आवैं।" (१०१)
लाल को भावै गुड गाडे अरु बेर। (१०३)
मात जसोदा दह्यौ विलोवै। (४७)

वर्तमान काल में एकारान्त ओकारान्त क्रिया का प्रयोग—
(१) यह तन कमल नयन पर वारौ सामलिया मोहि भावै री। (७८)
(२) नंद बधाई दीजे ग्वालन। (१८)

कहीं कहीं खडी बोली की क्रियाओं का रूप स्पष्ट है—
(१) देखोरी यह कैसा बालक रानी जसोमति जाया है। (३७)

स्त्रीलिंग मे खड़ी बोली से थोड़ा ही अन्तर रह गया है।
कहति है राधिका अहीरि। (३६१)
खडी बोली मे "कहती है" होता है।

भूतकाल—

खड़ी बोली मे भूतकाल की क्रिया मे या तो था, थी, थे लगता है या क्रिया का रूप अकारात और बहुवचन में एकारान्त हो जाता है। जैसे—

वह गया; वे गए।
तू गया; तुम गए।
मैं गया; हम गए।

पूर्णभूत में—

वह गया था, वे गए थे।
तू गया था, तुम गए थे।
मैं गया था, हम गए थे आदि।

परमानन्ददासजी ने भूतकाल के प्रयोग ओकारान्त किए हैं—
(१) माई तेरो कान्ह अब ढग लाग्यौ। (६३)
(२) ग्वालिन तो पैं ऐसो क्यों करि आयो। (१४६)
(३) मेरी भरी मटुकिया ले गयो री। (१८७)
(४) लाल हौं किन ऐसे ठग लायो। (१६४)
मेरो मन कान्ह हर्यो। (४६५)

बहुवचन अथवा आदरसूचक मे क्रिया एकारांत हो गई है—

जब नदलाल नयन भरि देखे। (१४१)

मन हर लै गये नदकुमार (४६६)

ग्वालिन न्याय तजे गृह वास। (३६२)

था, थे या थी के लिए कवि ने हुती, हुते आदि का प्रयोग भी किया है।

(१) आवति हुती साकरी खोरि। (३७३)

क्रिया के स्थान मे कीनो।

भोजन भली भाति हरि कीनो। (६१७)

था के लिए भयो का प्रयोग।

(२) हरि जो को दरसन भयो सवेरे। (५६६)

सामान्य भूत का स्वरूप—

(१) आई गोपी पायन परन। (२२७)

(२) करि गहि अधर धरी मुरली। (२१५)

(३) गिरिधर हटरी भली बनाई। (२६३)

पूर्वकालिक क्रिया में 'कै' का प्रयोग हुआ है—

गोवर्धन पूजि कै घर आये। (२८०)

भविष्यत्काल—

खडी बोली मे भविष्यत्काल क्रिया मे गा, गी, गे लगाने से बनता है। कवि ने खड़ी बोली, अवधी, बुन्देली के भविष्यत् के सभी प्रयोग किए हैं—

(१) जा दिन कन्हैया मो सो मैया कहि बोलैगो।
... ... ... डोलेगो।
... ... ... किलोलेगो। (६८)

दूर खेलन जिनि जाउ मनोहर मारेगी काहू की गैया। (७३)

यह मेरी सास त्रासेगी हौं कहा उत्तर देहौं जाई। (६८)

अवधी के भविष्यत् प्रयोग—

(१) पिछोडी बांहन देहौं दाम। (१७८)

(२) न जैहो माई वेचन ही जु दह्यो। (१६३)

व्रज की भविष्यत् की क्रियाओ के रूप :—

री माधो के पांयन परिहौं। (४२५)

फिर फिरि पछताइगी हो राधा। (३८४)

कही-कही भविष्यत् के भिन्न प्रकार के प्रयोग हैं :—

हौं नन्दलाल बिना न रहूँ (गी) (४७२)

बदन की बलि बलि जाउं (गी) बोलत मधुररस। (४५१)

कही-कही व्रज अवधी के भविष्यत् के एक से प्रयोग हैं:—

(१) गोवर्धन पूजिहैं हम माई। (२७६)

(२) मैया मे गाय चरावन जैहो। (२६१)

(३) तिहारे चरन कमल को मधुकर मोहि कबजु करोगे। (८१७)

(४) सुनिरी जसोमति कुवर आपने वेगि पठै हौं न्यौतन माई। (८०६)

(५) गई न आस पापिनी जैहै (बुंदेली प्रयोग)। (८४५)

कहीं पर खड़ी बोली के शुद्ध प्रयोग आगए है:—

लेहु ललन कछु करो कलेउ अपने हाथ जिमाउ गी। (६०८)

परमानन्ददासजी में क्रियाओ के विविध प्रयोग भी मिल जाते हैं —

अवधी मे ह्रस्व अकारान्त क्रियाएँ भविष्यत् काल की द्योतक होती हैं। जैसे खाउब, जाउब, पाउब आदि।

परमानन्ददासजी ने अवधी के भविष्यत् के रूप अधिक न रखकर ब्रज और खड़ी बोली के ही रखे हैं। इनके अतिरिक्त क्रियाओ से सज्ञा बनाने में भी उन्होंने ब्रज के ओकारान्त प्रत्ययो को ही रखा है। जइवो (६१) रहवो आदि। अवधी के ह्रस्व इकरान्त जैसे रहनि मिलनि, अवलोकनि, बोलनि आदि परमानन्द सागर में कम पाए जाते हैं। एकाध स्थल पर उन्होंने लिखा है।

(१) मोहि मिलनि भावै जदुवीर को। (२१३)

(२) अवै निकसि होत जल ठाडे निरखि अगोछनि चीर की। (२१६)

(३) ग्वालिन तोपै ऐसौ क्यो कहि आयौ। (१४६)

(४) परमानन्द प्रभु की यह लीला निरखत जसुमति हसि मुसकावनि। ७५ (७४)

इस प्रकार कहीं कहीं कृन्दतो का अवधी प्रयोग बडा विचित्र है।

शिव नारद सनकादिक महामुनि मिलवे करत उपाय। पद (४३)

उनके कतिपय क्रियापद जो अनेक पदो मे मिलते हैं —

बुदेली—फगुवा लै गारी न दैहैं। ३३५ पृ० ११३
हम लेहैं री हम लैहै। ३३५

अवधी—कगना माँझ बधैहौं।
अनत चितै नहि दैहौं।

झेली क्रिया (धौरी को वछिया झेली) लपकी के अर्थ मे ब्रज और मालवी दोनो मे ही प्रयुक्त होती है।

लाधा, उपलब्ध होना (मिलना)
उलेडो, [खाली करदो, पलट दी] (६१६)
छानी, [चुपचाप] ३६४
मेलदे, रख दे।)
झोड, [झगड़े के अर्थ मे] (२७६)
खुटो, [समाप्त होना] (ब्रज) ३६२, ४०६

आदि शब्द राजस्थानी एव मालवी मे बहुत प्रचलित है।

उपर्युक्त क्रियापदो को देखते हुए स्पष्ट हो जाता हैं कि परमानन्ददासजी ने अपने अधिकाश क्रियापद शुद्ध और खड़ी बोली के निकट ही रखे हैं।

देखो री यह कैसा बालक रानी जसुमति जाया है।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन देखत चन्द्र लजाया है।
पूरन सकल अलख अविनाशी प्रकट नद घर आया है।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहैं केसरि तिलक लगाया है॥ ३७, पृ० १३
हुलरावत हुलसावत गावत अंगुरिन अग्र दिखाय दिया।
... ... ... दुख बिसरत सुख होत जिया।
... ... ... हाव भाव चित चाव किया।

इनके अतिरिक्त भेंटिए (८४६), मेटिए (८४६) दीजिए, (८४६) जीजिए (८४६) पाइए, (८४६) पूरिए (८४६) आदि अनेक खड़ी बोली के प्रयोग हैं। क्रियाओं से संज्ञाएँ ब्रज पद्धति पर बनाई गई हैं जैसे लेवा, देवा (५८) आदि।

क्रिया पदों के अतिरिक्त कवि की भाषा में तत्सम, तद्भव देशज एवं विदेशी आदि सभी प्रकार के शब्द मिलते हैं। उससे न केवल उनकी भाषा का मधुर प्रवाह ही जाना जाता है अपितु लोकभाषा पर असाधारण अधिकार और शब्दो का सुप्रयोग एवं आत्मसात् करने की प्रवृति के भी दर्शन होते हैं। कवि को अपनी अभिव्यक्ति सबलतम और पुष्टतम बनाने की चिंता थी उसमे अनावश्यक बहिष्कार प्रवृत्ति नहीं थी। नीचे परमानन्दसागर मे प्रयुक्त कतिपय तत्सम' तद्भव एव देशज शब्दों की सूची प्रस्तुत की जाती है।

## परमानन्दसागर में तत्सम शब्द

अन्तर (१) अक्षत (२८) अन्नप्राशन (१०, ११) अनुराग (५) अमित (११०) अगाध (८) अवतार (१४) अद्रि (८७३) अविनाशी (८३) अम्बर (६) अष्ट (१६) अलंकृत (१७) अद्भुत (१७) अखिल (५६) अकस्मात (३११) अनुशासन (५८) अमृत (१६) अघर (८६) अवकाश (८१) अभ्यंग (३१६) अम्बुज (६३, ८४) आलवाल (४४) अवशा (४७७) अनायास (१६१) अभिराम (३३८) अभिलाष (५१) अस्थि (५५६) असाध्य (८६०) अंजुलि (६७२) आभूषण (१०) आशीर्वाद (५२) आसन (५१) आयुध (३१) आदेश (१५४) इन्द्रनीलमणि (१०२) इक्षुदंड-मंडप (३०४) उच्छलित (७७४) उत्थापन (६८१) उत्पत्ति (७) उदधि (८) उदर (८) उत्सव (६) उन्मद (२१) उपदेश (२७३) उपकारी (२६) उपद्रव (७६) उमंग (६४) उलूखल (७५) उपहास (४७१) उपहार (२७२) उजागर (६०६) अंक (३२) अंगुष्ट (१८७) अंकुश (२३८) अन्तरिक्ष (२७०) अंकमाल (२१३) आनन्द (१६५) कृशोदरि (४०५) कर्म (६) ववासि-ववासि (५६४) करत (१३४) कंठ (६०) कल्लोल (१५) केलि (१०५) कंचन (१७) कलश (१७) कत (२३) कुमकुम (४, १५) कुसुमायुध (३७१) कुंचित (४६) कंचुकी (२३) कटि (७७) कौतूहल (२६) क्रीड़ा (३३६) कुंडल (३६) कुंतल (१२४) गृह (२८) गोप वेष (२०) गोपांगना (६२) गोरज (३८६) ग्रथित (२४५) ग्रास (१०५) घृत (१७) घात (२०४) चतुरानन (८२, १) चिबुक (२) चरण (१) त्रिभुवन-पति (३७) तरुण (८३७) तृष्णा (६६) तलप (४२८) ताडंव (७६०) द्विज (६) दधि (३) दुर्लभ (१११) ध्वनि (१७) ध्वजा (२१) निशा (४०५) निधि (२६) निविश (७५) नवल (६) निरमत्सर (८२६) नन्दन (७८) नीलमणि (८) नराकृति (२६) निश्चय (१५६) नवनीत (४८) नक्षत्र (५३) पीयूष (१) पद (१) पद्म (३१) पाणि (६२) पीठ (१) पाटाम्बर (१४) पीताम्बर (३७) परिपाटी (६७) प्रतिबिंब (४६) प्रकाश (४०) परब्रह्म (२७२) प्रलय (७) पल्लव (५१) पूर्ति (२६) प्रणय (७५१) परब्रह्म (२७२) परिरभण (५८७) प्रत्यक्ष (२७२) प्रबोध (३०२) प्रहसित (१२८) वेणु (२३०) ब्राह्मण (५२) बुद्धि (६७) भारत (१) भूषण (१) भुवि (३७) भ्रम (२७२) भ्रमराकृति (४६) भवन (४०) मंडन (१३) महोत्सव (६०) मघवा (२६) मिश्रित (४७) मुहूर्त (५३) मृगमद (६०) मूर्ति (२६) मंदराचल (११६) मंदिर (१४७) महाकाय (४२५) याम (५५६) यमुनोदक (३२२) रसना (८२६) विधु (२) वदन (३०) वसुधा (७) विप्र (२८) वंश (१३) व्यंजन (१०३) वेदोक्त (६) वृक्ष ( ) वृष्टि (२८) विरंचि (३०) विषमासन (११६) वार्षिक (४७४) विश्वंभर (६१) वैभव (७०) विस्मय (६०) विनोद (११३) व्यसनु (१२५) वधुवर्ग (३००) वल्लभ (१३) वनयावनि (३५५) वृथा (२७७) श्रवण (२६) श्रीफल (२८) सीमंतनि (५३) श्रमित (७४) श्रद्धा (११४) श्रुति (२१८) षोडश (२७२) समर्पण (२०३) सुमन (६१६) सत्कार (६) संभाषण (७५१) सिंधु (६७) सुरभी (२७) संधान (७८६) संभ्रम (६०) सहल (१२) हेला (७७८) क्षीरसमुद्र (७) त्रय (१) त्रिपदभूमि (६२) त्रिगुण (३६०)।

उपर्युक्त तत्सम शब्दों के अतिरिक्त कवि उच्चकोटि का संस्कृतज्ञ था। उसने अत्यन्त सुपरिष्कृत, परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से वे सभी अष्टछापी कवियों में उच्चकोटि के ठहरते हैं। प्रायः गेय पदों मे संस्कृत क्लिष्ट पदावली का प्रयोग समाचीन नही ठहरता, परन्तु कवि ने अनायास ही समस्त-पदों के प्रयोग किये हैं और इस प्रकार ब्रजभाषा को न केवल एक साहित्यिक भाषा का ही रूप दिया है अपितु उसको टकसाली और निखरी हुई बनाकर उसका स्तर ऊँचा बना दिया है। संस्कृत शब्दों का चयन और उनका सुप्रयोग परमानन्ददासजी की अपनी विशेषता है। यहाँ उनके काव्य मे प्रयुक्त समास शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं।

## समास शब्द एवं समासान्त पदावली—

आनंद ह्रद कल्लोल (१५) उदरदाम (५८) विश्वभर (६१) भुवमडल (५८) पद्मनाभ (५६) गोप-वेष (२०) रसन दशन, जानुपाणि (६२) भक्तवत्सल (६२) रतन जटित (४.) धूरि धूसर वपु (४३) ब्रह्मादिक (१६) नेति-नेति (६६) गृहकारज (७२) नीलवसन (१०१) शुभवन्दन (५८) आनन्द निधान (६५) मित्र समाज (१०६) नीलवसन (१०१) श्रमजल (१०६) मुखचन्द्र (१०६) वदन सुधानिधि (१०६) भाग्य पुरुष (११०) षट्रस (१११) कुंडल शशि, सूर उदित (१२४) रतन जटित, कचन मणिमय (४३) कुन्तल अलिमाल (१२४) जलद कंठ पीत वसन दामिनी (१२४) बनमाल (१२४) शक्रचाप (१२४) भवजल व्याधि, असाध्यरोग (८६०) चतुरानन (८२) स्वर्ग नरक (२२) विधि निषेध (२२) मुक्ता मणिहार, मडिततारागण (१२४) मणिप्रकाश (१३७) दीप अपेक्षा (१३७) चचल अचपल कुचहारावलि (१३७) चिबुक केश (११०) वेणी चलित (१३७) खसित कुसुमाकर (१३७) शोभितमकर कुण्डल छवि (१३८) कटि किंकिणि, कलराव मनोहर (१४१) ववासि-ववासि (५६४) मुक्तामणि (१४१) मृगनयनी (१८६) ब्रह्मगति विपरीत (७८८) सुरत-सागर तरन (१६०) घनदामिनी (७३४) सरोवर-मध्य-नलिनी (७८६) तरिणीतनया तीर (४२३) सघन निकुंज (३६०) सुखद रति आलय (३६०) निजकर ग्रथित (७७६) अगभंग प्रति अमित माधुरी (३६३, ११०) प्रथम समागम (३७१) शचीपति (४.) कुटिल कटाक्ष (३७५) अनुराग दान (४०५) प्राचीदिशा (४०५) कमल कोष-चरन-रज (१०८) अभिनव सुरति (२६१) कनक कुंभ (२१६) हेमलता तमाल अवलबित (२१६) श्रुति मर्यादा (२१८) वंसराजि ( ??) पूरव संचित (१२३) सुकृतराशि (१२३) भाव-समागम (२५२) भाग-दशा (२४०) असुरत्रास (८६०) त्रैलोक्य सुसंकित (८६०) गुरुप्रसाद (८६०) यज्ञ पुरुष (६५१) कोटि ब्रह्माण्ड खण्ड कुचित अधर (४४०) पीत रज मडित (२१२) जालरंध्र (४१०) निर्मल शरद कलाकृति शोभा (७३८)।

## कवि में नाद-सौंदर्य और संगीतात्मकता—

कवि को नाद सौंदर्य एवं सगीतात्मकता का बड़ा ही ध्यान था। अतः उसने श्रुतिमधुर पद योजना और कोमलकान्त पदावलियों का चयन पदे-पदे किया है। जहाँ जैसे प्रसग थे उसी के अनुकूल शब्द-योजना परमानददास के काव्य की अपनी विशेषता है। अंग्रेजी मे इसे "ओनोमोटोपोइया" अलकार नाम दिया गया है। नीचे नाद सौंदर्य के कतिपय उदाहरण परमानदसागर से प्रस्तुत किए जाते हैं—

झनक मनक (८७) ननक मनक (८७) खनक खनक (८७) तनक तनक (८७) कटि किंकिनी कलराव मनोहर (१४१) कुण्डल झलक परत गण्डनि पर (१४१) झगन मगन (७३) दोहन, मंडन, खंडन, लेपन, मंडन, गृहसुतपति सेवा (८१) चचल चपल चोर चिन्तामणि (१४४) रुनुक झुनुक (६८) बाहु दंड कर अम्बुज पल्लव (५६५) भृकुटी वंक संक (४६५)।

संस्कृत पदावली के उपर्युक्त नाद सौंदर्य के साथ साथ परमानन्ददास के पदों की संगीतात्मकता उनके काव्य का विशेष गुण है। इससे उनका ब्रजभाषा पर असाधारण अधिकार प्रकट होता है।

## पदों में संगीतात्मक शब्दावली—

माखन चोरत भाजन फोरत (१३६) कुण्डल झलक परति गंडनि पर (१४१) कटि किंकिणि कलराव मनोहर (१४१) अलकावलि मधुपान की पाति, मुक्तामणि राजत उर उपर (१४१) चंचल अचपल कुच हारावली (१३७) वेनी चलित खसित कुसुमाकर (१३७) मुक्ता-मणि मणिहार मण्डित तारागण (१२४) सघन निकुंज सुखद रति आलय (३६०) कुंतल कुटिल कटाक्ष मनोहर मंडन खण्डन लेपन (८१) ग्राम ग्राम प्रति (८३) देश देश प्रति (८३) कुसुम-माल राजत उर अन्तर दण्ड मंडप पुहुपन के (३०४) स्याम सुभग तन चंदन मंडित (४४४) रवकि रवकि (८४) कटि किंकिनि कुणित कछनी (५६५) उपर्युक्त समस्त पद नाद सौंदर्य एवं संगीतात्मकता के लिए प्रस्तुत किए गए हैं।

कवि ने काव्य में कूट-कूट कर कोमलता भरने के लिए तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है—

तद्भव शब्द—

अकाथ (७३७) अचंभा (६२८) आचमन (२७२) आसा (८४५) अनत (२४०) असीस (२५२) अनुशासन (५८) अमरत (५०) अतरगति (२००) इच्छु (३०४) उद्यग (८४५) उद्धरन (८७८) उनमद (२१) उरघ, ओद (८४) अंकुस (२३८) कुसोदरि (४०५) कुनित (१३१) गृहकारज (७२) गिर गम्भीर (२२४) गहियो ( ) घोस (४२) चरम (१६५) चौगुनो (६६) चहुंवा (२५६) छुद्र-घण्टिका (२०५) जादो (३) जूथ (७६०) जाचक (२७) जोवन (१६२) जसो (३८) तरन (८२७) दोस (३८) दुरलभ (१११) दुरादुरी (६६३) धूरि (२) न्योति (३६१) नेन (१२२) निरमायो (५८) निरंकुस (३७५) पुनि-पुनि (२) पूत (१६१) परस्पर (७६१) पाटम्बर (३३७) पटा (१६) पुहप (२८) पूरति (५४५) बेग (६१२) बिहाल (५५८) बीजना (२४७) बरीसो (२०) बैस (५) बिजन (३८) बघनखना (६२) बलरस (१६६) भाग्यो (१५६) भावती (१६७) भीतर (६७) महोच्छव (२१३) मूरति (१४१) वारति (४८) वर्न्दो (१) हरिनाछी (१८८) रजधानी (४६१) सोलीन (५६५) पौन (२११) बेग (८०६)।

उपर्युक्त तद्भव शब्दो के अतिरिक्त कवि ने ब्रज भाषा के ठेठ ग्रामीण शब्दों का भी काव्य मे प्रयोग किया है:—

## देशज अथवा ठेठ ब्रज के शब्द—

बीथिन (८) बँटा (४८३) बिहाल (५५८) वरीसो (५६६) वरनी (२०) बिंदुका (४८) डिठौना (४३५) राती (६०७) रनियां (४४) रिंगना (६२) रिसैं (७२७) सौंह (१४०) हुलसौ (३५) अनख (७२) अबीर (३८५) अनेरो (१०२) अघात (१०६) आरोगत (६४४) अचगरी (७२६) अथाई (६१६) अथाउ (८४२) अनत (२४०) अन्हवाई (१०) उजागर (६०६) उगार (३६०) उवार्यो (२६८) उराहनौ (१६३) उम्रकत (५६५) उरहि (४०७) ओप (५) एतो (८८) ऐंचत (१६५) ओट (२८७) ओसर (३६५) होड़ा-होड़ी (२३२) कहानी (४६१) किवार (१४७) कौंधति (३२) कलेउ (११६) करूरा (६३) खिजावत (१०२) खिरक (२६०) खुमी (३७६) खिलारी (३८७) खुटी (३३४) गोधन (५५०) गुड़ी (६४) गेंद (६५) गोहन (३५३) गारिज (१३५) गोधी (४२६) गहत (१७७) घुटुरूअन (१६) चोलना (२६४) चुटकी (७७) चोट (४१६) चौगुनो (६६) चेरी (१०६) चौक (७६८) चहुँघा (११२) चबाय (३७४) चिकनिया (४७१) चोहटे (६१४) चँट (७४१) चेटक (६०३) छीको (२०) छिनु-छिनु (४३६) छगन मगनिया (६८) छाक (१२०) छानी (३६४) जाचक (६) जोवन (१६२) जकि (२१६) जुडात (७४६] जेवरो (६५) जंगी (२४६) झोलन (४५) झोटा (७६४) झांपति (४०८) झूमकरा (३३४) झरोखा (४६४) टेर (६४०) टहल (७४९) टेव (३२३) टोल (७९३) ठगोरी (४२७) ठौर (६५३) गटन (१६६) ढंग (१४७) ढिलैं (१०१) ढोटा (१६५) डिठौना (४३५) त्योहार (२७२) तमासो (६६) थोंद (११०) देहरी (११८) दुकेली (१३५) दिखनौटे (३५५) न्यौति (३६१) न्हानी-न्हानी (८८) नातर (३७२) निपट (६२०) निकाई (११०) नीके (७८६) निरासी (७८) निहोर (१६७) निवहै (१३२) निठुराई (२२७) पूत (१६१) पांय (२६४) पाहुनी (२५७). पिल्ला (१०३) गाडैं (१०३) वेर (१०३) पैंनी (४८०) बानिक (१२२) बोबित (२५१) बिलगु (८१२) वेग (८०६) वटाउ (४६८) वोहुनी (१८६) बिहाल (५५८) बाग (२५६) बघनख (६२) वाखर (४२६) मोहिला ५०४) बलाय (१२२) बरजत (१४५) बतरस (१६६) बिजुकानी (१५१) बिंदुका (४८) बगरोट (४१६) भीनौं (३३५) भामिती (६१४) मनुहार (१६२) चौस (३८) मनुहारी (२६८) महातम (५७६) मटुकिया (६५) मोट (६६३) रबकि-रबकि (८७) रानी (११) रांभत ( ) रंचक (१३५) डायन (७४) रसमसे (१०१) रिसैं (७२७) रसिया (४३०) मसिया (४३०) लरिका (२७१) लहियत (३३) लगनिया (४२८) लूल (४५६) सवेर (६२ ) सुकानी (३७) सलूनौ (७६८) सिराउ (३६३) सकानी (३११) सिंगार (२०७) सुवस (१४) बेर (६) हटरी (२६३) सगरो (६६) सांट (६५) सौंह (१४०) सिरताजि (१०२) हिलग (४२४) हुंकारी (६६५) हिलकनि (६५) होड़ा-होड़ी (२३२) होड़ (६५) हिरानी (१०८) हेला (७८८) सूंघन (२६६)।

देशज अथवा ब्रज के ग्रमीण शब्दों के अतिरिक्त कवि ने अनेक प्रान्तीय शब्दों को भी प्रयुक्त किया है।

## अवधी के प्रयोग—

अनत (२४०) अनुहरत (२६) उगार (३६०, उवार्यो (२६८) ओल (६२३) औसर (३६५) कौंधति (३२) कगरो (१८६) कांखासोती (६०) खुभी (३७६) खवासी

(६८६) गहरु (३६२, चोलना (२६४) चेरी (२२१) चहुँधा (२५६) जाचक (२७) जुडात (७४६) फुफुवा (१००) झाँपति (४०८) झीनी (३३७) टबुकुकु (४२६) ढिलियो (११६) दोहिलो (५३०) बरिस (२०) नकवान्यो (१५६) बिलगु (८१२) निवाज (५१२) भान्यो (२५६) बेग (८०६) बटाउ (५२६) मोट (६६३) रहसि (७८३) लटुवा (३३५) लरिका (२६) सिराने (७८३) सचुपाई (३) सुवन (४२१) बरोठी (२४२)।

## खड़ी बोली के योग—

किवाड (१४७) कोच (५४५) खिलौना (५५८) खटको (३७४) गेंद (६५) जंजाल (८३४) तोल (२६३) टहल (८४८) दहल (७४६) दाव (६१६) बेखट (६८) बिदेश (५२६) पेनी (५८५) मैदान (६५) झगड़ो (१८०) तुम्हारे (५६) मंगलगाए (३३७) खिलारी (३८७) त्योहार (१५१) तनक (११८) दरेरे (६१६) निरासी (७८) पैनी (४८०) बानिक (१२२) बहोत (२८) सलूनो (७६८) सिरताज (१०२) बिहाल (५५८) मोल (६६) कहानी (५६१) पूंजी (५२१) सगाई (३०६) भिखारी (८६१)।

उपर्युक्त प्रान्तीय शब्दो के अतिरिक्त कवि ने अनेक विदेशी शब्दो का प्रयोग किया है।

आव (४२५) इजार (५६५) उगाल (४७४) एलान (४६२) ओझिल (६२७) गनी (६१६) खासा (३३७) खुनस (८६२) खसम (७०२) खवासी; (जशन) (१२५) जासूस (४६२) जंगी (२४६) झरोखा (४६४) तागो (६३) ताफता (७४२, तमासो (६६) दरखत (७५) दमामा (२१) दगा (६१६) दाग (६१६) दफतर (८८०) दहल (७४६) दीवाना (८३३) दाद (८३३) नाहक (६५८) पैरसी (५०२) बंदिस (३६३) बिहाल) (५५८) मैदान (६५) महक (७५०) मखतूल (६४४) मौज (८८०) मवासी (८८०) लायक (३६६) बूझ (२६) शहनाई (२७) सोर (शोर) (३३७) सेहरा (३७५) शहल (७४६) सौदा (२६४) सिरताज (१०२) हवाल (१७५)।

उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त कवि ने मुहावरो और लोकोक्तियों का भी यत्र तत्र प्रयोग किया है। इससे भाषा में एक विशिष्ट प्रवाह, रोचकता एवं प्रकृत सौन्दर्य आगया है। मुहाविरे एवं लोकोक्तियों से ब्रज की लोक भाषा को जो साहित्यिक रूप कवि के द्वारा दिया दिया गया है वह अपना एक निराला महत्व रखता है। सूरदास एवं परमानंददासजी की भाषा को देखने से विदित होता है कि उस काल की ब्रज भाषा एक सुदीर्घ भाषा-परम्परा का विकसित रूप है। अष्टछाप के कवियो से पूर्व की इस परम्परा की खोज ब्रजभाषा के प्रति एक बड़ा उपकार समझा जावेगा। सम्भवतः इस परम्परा का स्वरूप आगे आवेगा।

परमानन्ददासजी द्वारा प्रयुक्त कतिपय मुहावरे अथवा लोकोक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१—उदय भयो जादौं कुल दीपक। (३)
२—ब्रज मे फूले फिरत अहीर। (४)
३—मच्यौ भदैया फाग। (५)
४—पूजे मन के काम। (१४)
५—आनंद भरी नंद जू की रानी भूली अंग न समाई। (११)
६—देखत चंद्र लजाया है। (३७)

७—कल न परत व्रज वालनो। (४१)
८—परमानद श्राँखि जरो जावी जू टेढी दृष्टि चहैं। (टेढी नजर) (१३२)
९—परमानद रानी के सुत सौं जो कछु कहे सो थोरी। (१३३)
१०—कमल नयन मेरी श्रँखियन तारो। (व्रज से) (१३५)
११—चतुर चोर विद्या सपूरण, गढि गढि छोल बनावत। (१४०)
१२—धनि लहनो वृषभानु गोप को भाग दसा चलि श्राई। (१६६)
१३—देखत रूप चिहुंद चित लाग्यो ताही के हाथ बिकानो। (४२७)
१४—परमानद प्रीति है ऐसी कहा रक कहा रानी। (४२७)
१५—परमानद प्रभु बतरस श्रटकी दान लियौ श्ररु डगर बताई। (१६६)
१६—देखे लोग चवाव करें यह मेरे मन खटकौ। (३७४)
१७—परमानद लागी ना छूटे, लाज कुश्रा मे पटको। (३७४)
१८—हो दरपन लै माँग सँभारत चारयौ नैना एक भए। (४४२)
१९—नद नदन हौं तऊ न छाँडो मिलौ निसान बजाई री। (४४३)
२०—श्रबको मित्र होय मेरी सजनी मिल्यौ दूध श्रस पान्यौं। (४६२)
२१—हरि सो जोर सबनि सौं तोर्यों। (४ ३)
२२—श्रागे पाछे सोच मिट्यो जियको। (४६३)
२३—वाट माँझ मटुका लै फोर्यो। (४६३)
२४—कहनो होय सो कहो सखीरी कहा भयो तें मुख मोर्यौं। (४६३)
२५—परमानद प्रभु लोग हँसन दै लोक वेद तिनका सौ तोर्यो। (४६३)
२६—परमानद भले सहें श्रटक्यो यह सब रह्यो धर्यों। (४६५)
२७—तब ते गृह सू नातो टूट्यो जैसे काचो सूत री। (४६७)
२८—परमानद बसत हैं घर मे जैसे रहत बटाउ। (४६८, ५२९)
२९—ता हरिसौं प्यारी राधिका दै दै वैठत पीठि।
३०—बेर बेर इत उत फिरि श्रावत विजया खाइ भई बौरी। (४०३)
३१—जवुति जोति को भाजन समुझत नहिं कछु करुई मीठी। (२४२)
३२—नाहिन नाथ महातम जान्यो भयो है खरे ते खोटे। (२८७)
३३—परमानद व्रज वासी सावरो श्रँगूठा दिखाय रस लै गयो री। (२८७)
३४—परमानद प्रभु हम सब जानत, तुम गाल बजावत रीते। (८०३)
३५—परमानद प्रभु या जाडे को कीजिए मुह कारो। (३२६)
३६—परमानद प्रभु या जोबे को देस निकासो दिवाऊँ। (३२५)
३७—सेंत मेत क्यो पाइये पाके मीठे श्राम। (६१८)
३८—फूकि फूकि हो पाइ परत, मेरे पंडे परे फुगाइरी। (६२०)
३९—टेढी चितवन को तन चितवत लोट पोट करि डारे। (६२१)
४०—सोवत सिह जगायो पायी सतन को दुख दीनो। (४७७)
४१—कहे पराये कत लागत हो यह व्रज श्रपनो नीको ठाऊँ। (४८८)
४२—जों तुम त्याग करो गोकुल को तो हौं काके पेट समाऊँ। (४८८)
४३—परमानन्द स्वामी चिरजीवहु तुम जिन लागहु ताती श्राच। (४८९)
४४—कीजै प्रीति स्याम सुदर सौ, बैठे सिह न रोरिए। (५०८)

४५—कछु न सुहाई गोपालहि बिछुरे रहे पूंजी सी खोए । (५२१)
४६—परमानद स्वामी के बिछुरे भूलि गई अब सातो ।_(५२२)
४७—गोकुल देख दाहिनो बांयो हमहिं देखि दुख पावं । (५२७)
४८—मैं अपनो सो बहुत करत हौं, लाल न देत दिखाई । (५३४)
४९—जिहि गोपाल मेरे बस होते सो विद्या न पढी । (५३५)
५०—परमानद प्रभु जानि बूझ कै कहो विप जल क्यो पीजै । (५५५)
५१—सदा अनमनो विलख बदन अति, यहि ढग रहत खिलौना से फूटे । (५५८)
५२—हस्त कमल की छाया राखै वार न वाको जाइ । (८६७)
५३—परमानददास सुखदायक राखै सूत बनाई । (८६७)
५४—(तब सब वनि आवै) सुख सपति आनद घनो घर बैठे पावै । (८६९)
५५—ध्रुव प्रहलाद भक्त हैं जेते तिनको निसान वाज्यौ विनही मढयौ । (८७९)
५६—हौं सकुची, मेरे नयना सकुचे, इन नयन के हाथ विकानी । (७३१)
५७—परमानद प्रभु सरबसु दाता जाहि के भाग ताही के ढरे । (३९८)
५८—एते जतन नवति नाही, कौन दूत तेरे कान्ह भरे । (३९८)
५९—वे कमलापति मोहन ठाकुर हाथ तुम्हारे गरे परे । (३९८)
६०—वाके मन मे कहा वीतत है प्राण जोवन घन राई । (७५१)
६१—वृ दावन की सघन कुज मे ऊँची नीची मोतें कही गयो री । (२९७)
६२—रहसि कान्ह कर कुच गहि पर कत जू परति है पाछि । (१८८)

उपर्युक्त लोकोक्तियो एव वाग्धाराओ ( मुहावरो ) के अतिरिक्त कवि ने अनेक स्थलों पर लाक्षणिक प्रयोग दिए हैं । जिनसे भाषा मे बडी व्यजकता आ गई है । कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जाते है ।

१—ब्रह्म रुद्र इन्द्र आदि देवता जाकी करत सिवार । (२३ ) [जिसकी शरण चाहते हैं । ]
२—जमुना थाह भई तेहि औसर [चलकर जानें योग्य हुई] (३२)
३—तोयौं सकट पूतना सोखी तृनावर्त वघ कीनो । (७५)
४—परमानददास को ठाकुर तिहूँ लोक को खभ—आश्रय । (७५)
५—परमानददास को ठाकुर काधे पर्यो न तागो । (९३) अर्थात्–[अभी छोटा है । यज्ञोपवीत नही हुआ ।]
६—जानें चतुर न जानें वोट ।
७—सरिता सिंधु मिलि परमानन्द एक टक बरस्यो मेह । (७४६)
८—लोचन मूँदि रहे जल पूरन दृष्टि भई कलिकाल । (५१७)
९—परमानन्द हरि सागर तजि कै नदी शरण कत जाउ । (८४२)
१०—परमानन्ददास सुखदायक राखै सूत बनाई । (८६७)

परमानन्ददासजी की भाषा जहाँ शुद्ध, पुष्ट, प्राजल, लाक्षणिकता, वक्रता से युक्त, तत्सम, तद्भव शब्दमयी है और प्रान्तीय शब्दों के साथ देशी विदेशी शब्दों का समन्वय

किए हुए हैं। वहाँ उसमें कतिपय दोष भी है। कवि ने यति गति और अन्त्यानुप्रास के लिए शब्दो की तोड़ मरोड़ भी खूब की है और कहीं कहीं शब्दों का मनमाना रूप बना लिया है।

उदाहरणार्थ—

१—प्रगट भये घन श्याम मनोहर धरें रूप दनुज कुल कालक। (७, पृ० ४)

यहाँ "कालक" में "क" जोड़ना पड़ा है। इसी प्रकार

२—खोलि भंडार अब देहु बधाई तुम्हारे भाग "अद्भुत", (१७)

"अद्भुत" का अद्भूत अच्छा नहीं लगता।

३—वर्ष का वरीसों कवि ने अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है।

४—परमानन्ददास के प्रभु की यह छवि कहत न बनियां। (६६, पृ० २३)

"बनना" क्रिया का "बनियाँ" रूप अत्यन्त असुन्दर है।

५—तृणावर्त लै गयौ आकासे ताहि को "पतनु" (७६)

पात का "पतनु" प्रयोग दोष युक्त है। इसी प्रकार

वत्स—का वच्छ, बछरा, प्रयोग न करके "वाछी" प्रयोग किया है।

६—पाँय पैंजनी रुन झुन बाजति चलत पूछ गहि वाछी। (८६)

५—परमानन्द प्रभु भोजन करते हैं भोग लग्यो "शंखोद सो" यहाँ "शखोदक" चाहिए। (११३.)

८—कुंडल शशि सूर उदित अघटन की घटना। (१२४) यहाँ सूर्य के लिए "सूर" का प्रयोग हुआ है।

९—मेरो हरि गंगा को सो "पान्यों" (१५६) पानी के लिए 'पान्यों' वानी के लिए वान्यों (नकवान्यों) आदि मनमानी शब्दों की तोड फोड़ है। कहीं वढ़ी हुई मात्रा बहुत ही खटकती है, जैसे उठत को 'ऊठत' लिखना।

१०—"ऊठत, बैठत, सोवत, जागत जपत कन्हाई, कन्हाई।

११—पढी को पाढी, माँग को मंग, मुस्काय को मुसकि।

१२—"सब अंग सुन्दर नवल किशोरी कोक कला गुन पाढ़ी। (३६८)

१३—"उत आई व्रज वनिता वनि-वनि मुक्ताफल भरि मंग। (३८८)

१४—"अंतर सुख मन ही जानैं मुसकि छबीली छैल।" (३८५)

१५—परमानन्द स्वामी गोपाल नैनन के "सलक"। "शलाका" के स्थान कर "सलक" का प्रयोग हुआ है। (४४७)

१६—इसी प्रकार अवतार के लिए "अवतीर" एवं बिलंब के लिए "अबेर" अथवा वेर न प्रयोग कर कवि ने बेरी का प्रयोग किया है उससे सहसा अर्थ समझ में नहीं आता।

वियारू करत हैं बलबीर। (७०९)

× × ×

१७—यह सुख निरख निरख नंद रानी प्रफुल्लित अधिक सरीर।
परमानन्ददास को ठाकुर भक्त हेत अवतीर॥ (७०९)
बाहू कूं लै दौरी नाहि, लगाओ "वेरी।"

'भादौं' से 'भदैया' विशेषण भद्दा लगता है। (५)

अकारथ का अकाथ किया गया है।

"परमानन्द प्रभु प्रीति मानि हैं यह रस जात अकाथ बह्यो।" (८०२)

इसी प्रकार खिचडी का "खिच" बीज का 'बिज" इच्छा का "इच्छ" बीतत या "बितत" आदि प्रयोग सुन्दर नहीं लगते।

"भयो नन्दराय के घर खिच।
सब गोकुल के लरिकन के सग बैठे हैं आय बिच। (३२१, पृ० १०७)
× × × ×
परमानन्द प्रभु भोजन कीनो अति रुचि माग्यो "इच्छ"
"वाकै मन मे कहा बितत है प्राण जीवनघन राई। (७५१)

हरषि को 'रहसि" भी कवि ने यत्र तत्र लिखा है,

यह जस परमानन्द गावै।
कछु रहसि वधाई पावै॥

कही कही भावो की स्पष्टता के लिए पाठक को अध्याहार करना पड़ता है—

'रहि हौं आई पुकारिहौं ना कचुकी बंध खोल।" (६१८)

यहाँ अर्थ स्पष्ट नहीं होता। अत अध्याहार करना पडता है कि "मैं जाकर शिकायत कर दूंगी किन्तु कचुकी के बधन नहीं खोलने दूगी।" आदि।

व्याकरण गत (च्युत सस्कृत) दोष भी यत्र तत्र मिलते हैं।

"शोध" स्वय भाव वाचक सज्ञा है उसमें 'ना" लगाना व्यर्थ है।

'बिप्र बुलाय" शोधना "कीनी सबै भडार लुटायो।"

इसी प्रकार "कृपा" पुल्लिग है स्त्रीलिंग मे कवि ने प्रयोग किया है।

"प्रेरक पवन कृपा कैसो की परमानन्ददास चित चेत।" (८४०)

इसी प्रकार परमानन्दसागर में यत्र तत्र दूरान्वय दोष भी मिल जाते हैं। नीचे कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं—

१—"राई लोन उतारि दहूं कर वार फेरि डारत तन मन धन।" (६४)

२—शिव नारद सनकादिक महामुनि मिलवे करत उपाई। (४३, पृ० १५)

कवि मे एकाध स्थल पर ग्राम्य दोष भी उपलब्ध होता है। व्रज गोपिकाएँ कृष्ण के लिए गालियाँ गाती हैं।

'तेरी फूफी पच भरतारी।
सो तो अर्जुन की महतारी॥

तेरी बहिन सुभद्रा बारी।
सो तो अर्जुन संग सिधारी ॥ (९७६, पृ० ३३४)

सुभद्रा-अर्जुन परिणय प्रसंग बहुत बाद में हुआ। व्रजलीला में उसका कथन काल दोष के अन्तर्गत ही गिना जायगा।

फिर भी परमानंददासजी मे दोष नाम मात्र के लिये ही हैं। ह्रस्व-दीर्घ मात्राओं का प्रयोग तो छन्दों में चला ही करता है। ये दोष सभी रस सिद्ध कवियों में मिलते हैं। फिर कवियो के लिये छन्दों की तोड़ मरोड़ अथवा ह्रस्व-दीर्घ के प्रयोग के लिये कवि ने अपनी स्वतन्त्रता सुरक्षित रखी है। काव्य शास्त्र के आचार्यों ने भी ऐसी स्वतन्त्रता अथवा छूट कवियो के लिये घोषित करदी है—

"अपि माष मषं कुर्यात् छन्दो भग न कारयेत्।"

अत: छन्दो भंग से बचने के लिये ही रससिद्ध कवि इस प्रकार शब्दों की तोड फोडो अथवा ह्रस्व दीर्घ की स्वतन्त्रता लिए रहते हैं। इतने पर भी सूर काव्य की भांति परमानंददासजी के काव्य मे भी यति गति भंग दोष पर्याप्त रूप मे मिल जाते हैं।

उदाहरणार्थ—

१—बारी मेरे लटकन पगधरो छतियाँ।
कमल नैन बलि जाउं बदन की सोभित नन्ही नन्ही दूध को दतियाँ।
यह मेरी यह तेरी यह बाबा नन्द जू की यह बलभद्र मैया की
यह ताकी, जो झुलाए तेरो पलना।

२—गोविन्द दधि न विलोवन देही।
वार वार पांय परत जसोदा कान्ह कलेउ लेही।
बांधि क्षूद्र घण्टिका मुदित नंद जू की रानी। (११६)

३—री माधो के पायन परिहौं।
स्याम सनेही जब भेटौंगी, तन न्यौछावर करिहौं।
लोक वेद की कान न करिहौं।
नहिं काहू ते डरिहौं। (४२५)

४—चलि सखि मदन गुपाल बुलावै।
तेरोई नाँव लै लै वेनु बजावै॥
यह संकेत कह्यो बन महियां।" (३९६)

उपर्युक्त उद्धरणों के अतिरिक्त परमानंददासजी मे यति गति भंग दोष चाहे जहाँ मिल जाते हैं। सम्भवत: संगीत मे अथवा पदगान के आरोह अवरोह मे यह दोष खप जाता हो परन्तु कविता की दृष्टि से भी सूर एवं परमानददासजी के पदों मे यति-गति भंग अनायास ही मिल जाते हैं। अत: परमानन्ददासजी की भाषा के विषय में यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि उनमें व्रजभाषा का विकसिततम रूप मिल जाता है उनकी व्रजभाषा शुद्ध, पुष्ट, प्रांजल

संस्कृत पदावली युक्त है। उसमें अरबी फारसी आदि विदेशी शब्दों के यथास्थान उचित और सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उनमें बहिष्कार की प्रवृत्ति न होकर समन्वय की प्रवृत्ति थी। समन्वय वृत्तिकला की सौन्दर्य-वृद्धि में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त कवि की भाषा में प्रवाह 'माधुर्य' प्रसाद आदि सभी गुण विद्यमान है। उसमें भावाभिव्यक्ति की पूरी-पूरी क्षमता के साथ भाषा पर असाधारण अधिकार पाया जाता है।

कवि में शब्द चित्र प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता थी। अष्टछाप में सूर के उपरान्त यदि किसी को भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से महत्ता दी जा सकती है तो परमानंद-दासजी को ही।

परमानन्ददासजी में खड़ी बोली, समस्त अष्टछापी कवियों की अपेक्षा सर्वाधिक और सुप्रयुक्त पाई जाती है। एक प्रकार से वे भावी भाषा के रूप का संकेत दे गये थे। उन्होंने प्रसंगानुकूल भाषा का व्यवहार किया है। उनकी ब्रज भाषा मे नागरिकता और सरल ग्रामीण वातावरण का समन्वित चित्र है। सौन्दर्य. माधुर्य एवं भक्ति-दर्शन के प्रसंग वाले पदों मे भाषा उच्च कोटि की सुसंस्कृत, एवं भाव पूर्ण हो गई है।

—:o:—

नवम अध्याय

# कीर्तनकार परमानंददासजी

## संगीत और भक्ति साधना

भक्ति अथवा उपासना का संगीत के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव बुद्धि ने जब से किसी उपास्य की भावना की, युगपत् उसका भावसागर भी उपास्य के प्रतिवेदन मे संगीतात्मक हो उठा था। उपास्य के अव्यक्त अथवा अप्रत्यक्ष होने पर भी वह लय के साथ गाता था। "कस्मै देवाय हविषा विधेम" सभवत इन्ही ध्रुव पदों अथवा पद समूहो की समवेत स्वर लहरी ने सामूहिक गान की नीव डाली होगी। इसका तात्पर्य यह है कि प्रागवतार युग की वैदिक स्तुतियाँ स्वरात्मक और लयात्मक दोनो ही प्रकार की होने से छन्दोमयी हैं। वैदिक छन्दों-त्रिष्टुप् अनुष्टुप् आदि का सगठन स्वर के आरोह अवरोह के आधार पर ही हुआ था, उसे ही उदात्त अनुदात्त एव स्वरित् मे विभाजित कर उनकी स्थितियाँ निश्चित की गईं थी। ये वैदिक मत्रों के प्रत्येक अक्षर को भावो के आधार पर ही सहेजती थी। इस प्रकार वैदिक युग मे सामूहिक गानपद्धति का उदय हो चुका था। इस गान मे वैदिककालीन आर्यों के हृदय स्थित-भावों की उनके 'उपास्य' के प्रति अभिव्यक्ति होती थी। भाव तन्मयता की स्थिति मे वे अपने भावलोक मे अव्यक्त से साक्षात्कार करते थे। और भौतिक शरीर से ही कल्पना के दिव्य लोक मे विचरण करते थे। क्रमशः उपासना की यह स्वर-लयात्मक पद्धति इतनी लोक प्रिय हुई कि उसका एक अलग वेद बन गया, जो 'सामवेद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्राचीन उपनिषदों और पुराणो मे सामगान की खूब चर्चा है। 'उत् इति उद्गीथ मुपासीत'। आदि उपनिषद् वाक्यो मे उद्गाता को लक्ष्य करके ही ये वाक्य कहे गए हैं। स्वर साधना मे निपुण वैदिक मंत्रो के उच्चारण कर्त्ता को उद्गाता कहा जाता था। तात्पर्य यह कि स्वरसाधना मानव की प्राकृतिक अभिरुचि है। और इस साधना का सम्यक् अभ्यास उसकी 'तप' भावना का व्यवहारिक रूप है। जिस प्रकार समाधि मे देह-बुद्धि का विसर्जन होकर ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का एकीकरण हो जाता है, उसी प्रकार संगीत मे भी देह-बुद्धि का विसर्जन होकर 'लय' की निसर्ग सिद्ध स्थिति प्राप्त होती है। और समाधि कल्प स्थिति मे मानव आनन्द मे अवगाहन करने लगता है।

इसलिये संगीत मे 'लय' पर महत्व देने का यही कारण है कि वह मन को विलय करने की प्रत्यक्ष-साध्य 'आनन्दात्मक स्थिति' है हमारे यहाँ 'रसो वै स:' कह कर 'रस' को ब्रह्म का अथवा ब्रह्म को रस का पर्यायवाची माना है। अत. रसात्मक संगीत मन को निरोध करके अथवा ब्रह्म मे सन्निविष्ट करने का सर्वसुगम और सर्वसुलभ मधुरतम साधन है.—

सगुण भक्ति के उदय होने और भागवत-धर्म के प्रतिष्ठित हो जाने पर नवधा भक्ति का प्रचार हुआ। इसमे 'कीर्तन भक्ति को द्वितीय स्थान दिया गया। श्रीमद्भागवत' मे नवधा भक्ति का क्रम इस प्रकार है:—

श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम् ।
अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्मनिवेदनम् ।। ७।५।२३

भागवत सम्प्रदाय से सबध रखने वाली १०८ पाँचरात्र सहिताओ मे कीर्तन की खूब चर्चा हुई है। कीर्तन अथवा सकीर्तन 'शब्द' कृत् धातु[1] से बना हुआ है। जिसका अर्थ है 'सशब्दन' अथवा सम्यक् शब्द करना। शब्द' को नित्य माना है।[2] शब्द ब्रह्म भी है नाद भी है।[3] गीत अथवा सगीत नादात्मक होता है।[4] सम्पूर्ण जगत इस नाद के अधीन माना गया है।[5] इस प्रकार कीर्तन की नित्यता सिद्ध होती है। कीर्तन में अनुकथन का अर्थ निहित है।

"सतत कीर्तयतो मा तुष्यति च रमन्ति च"

इस प्रकार श्रीमद्भगवदगीता में कीर्तन को सतोष का देने वाला और मन को रमाने वाला माना गया है। 'रमण' आनन्द की स्थिति है। मन को इस आनन्दमयी स्थिति की उपलब्धि कीर्तन अथवा 'सगीतात्मक अनुकथन' से अनायास ही हो जाती है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि कीर्तन का नवधा भक्ति मे द्वितीय स्थान है। प्रथम भक्ति श्रवण सत्सग जनित है। अत उसमें पराश्रितता है। अन्य कोई भगवच्चर्चा करे तभी श्रवण भक्ति की साधना हो सकती है। परन्तु कीर्तन व्यक्तिगत-साधना अथवा आत्म-साधना की वस्तु है। अध्यात्म क्षेत्र में व्यक्तिगत प्रयास की दृष्टि से कीर्तन का प्रथम स्थान मानना चाहिए। अत श्रवण भक्ति के उपरान्त 'कीर्तन' पर सभी भागवत सम्प्रदायो ने महत्व दिया है। कीर्तन का प्रारम्भ यो तो भक्तो के मत से शुकदेव, नारद, सनत्कुमारादि से माना गया है, परन्तु १३ वी १४ वी शताब्दी मे जब उत्तर भारत मे भक्ति सम्प्रदायो का आन्दोलन चला तब से कीर्तन को महत्ता अधिक मिली। यों तो आलवार भक्त विशेषकर अदाल कीर्तन ही करती थी। दक्षिण मे सगुण-कीर्तन परम्परा शताब्दियो से पाई जाती है। बगाल मे चैतन्य-सम्प्रदाय मे तो कीतन को ही एकमात्र नि श्रेयस् का साधन माना है। उसी आधार पर लोक जिह्वा पर नाचने वाला निम्नाकित श्लोक भगवद्वाक्य के रूप मे भक्तों की परम्परा मे आज भी प्रचलित चला आ रहा है।

नाह वसामि वैकुठे, योगिना हृदये नच ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।।

अत सगुण भक्ति के सभी सम्प्रदायो मे आज तक कीर्तन भक्ति का अनिवार्य स्थान है। महाराष्ट्र मे ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ, रामदास तथा गुजरात के नरसी, मीराँ, जनाबाई, बगाल में चैतन्य के अनुयायी एव मद्रास मे अदाल तथा परवर्ती देवदासियाँ प्रभु के समक्ष कीर्तन करने के लिए प्रसिद्ध हैं। भक्ति की एकान्त सहचरी, तन्मयता की एकमात्र

१ सिद्धान्त कौमुदी सूत्र सख्या ६८३।
२ शब्दो नित्य ।
३ नाद ब्रह्मणेनमः । स रत्नाकर।
४ गीत नादात्मकं वाद्य, नाद व्यक्त्या प्रशस्यते।
तद् द्वयानुगतनृत्तं नादाधीनमतस्त्रयम्। सगीत रत्नाकर प्र० अ० २
५ नादाधीन जगत्।

साधनभूता यह कीर्तन भक्ति प्रभु का जन मानस मे, अथवा इन्द्रिय-प्रत्यक्ष में आविर्भाव शीघ्रता से कराके भक्तो को अनुभव कराती है।[1] इस कीर्तन भक्ति के दो स्वरूप पाये जाते हैं।

१—नाम सकीर्तन अथवा ध्वनि गान।

२—पद सकीर्तन अथवा भगवल्लीला गान।

सभी सगुण भागवत-सम्प्रदायो मे कीर्तन भक्ति के य दोनो ही रूप पाये जाते हैं। नाम सकीर्तन का बडा भारी माहात्म्य कहा गया है। भगवन्नाम मे अनन्त पापो के नाश का अद्भुत चमत्कार है। भक्तो मे तो यहाँ तक प्रचलित है कि भगवान् भी नाम—माहात्म्य का गान नही कर सकते।[2] अत नाम-सकीर्तन देश भर मे सगुण भक्ति का प्रथम सोपान मान लिया गया है। बगाल में महाप्रभु चैतन्य ने —

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

इस महामन्त्र के गान से ही सर्वसाधन सपन्नता, पाप रहितता तथा परा भक्ति की प्राप्ति मानी है। महाराष्ट्र के सतो ने "पुडरीक वरदे हरि विट्ठल" अथवा 'रामकृष्ण हरि विट्ठल' के नाम-घोष से अखिल पापो का नाश माना है। मीरा के 'प्रभु गिरिधर गोपाल' एव नरसी ना सामलियाकृष्ण' सर्व विदित ही है। ब्रज के भक्तगण भी नाम सकीर्तन मे पीछे नही रहे। उनका राधा कृष्ण का नाम घोष अथवा—

श्री यमुना जी गोर्वननाथ।
महाप्रभु जी विट्ठलनाथ ॥

का ध्वनिमय सकीर्तन ब्रज की कुजो, यमुना के कछारो मे उद्घोषित होता रहा है।

यह ध्यान देने की बात है नाम-घोष करने वाले भक्त अपनी अपनी सम्प्रदाय भावना के अनुसार ही सकीर्तन करते हैं। साथ ही सभी नाम—सकीर्तन करने वाले भक्त लीला-गान भी किया करते हैं। और इसी लीलागान अथवा पद-कीर्तनभक्ति ने आगे चलकर अनेक भावमय भक्ति काव्यो को जन्म दिया। भगवन्माहात्म्य परक पद अथवा भगवल्लीला परक पद दोनो ही मुक्तक गेयशैली मे महाकाव्य का रूप धारण कर लेते थे। इस प्रकार ये कीर्तनकार अनायास ही महाकवि बन जाते थे। तन्मयता की चरम स्थिति में इन भक्त कवियों का भाव सागर जब उद्वेलित हो उठता था तो वाग्वश्या सरस्वती उनका अनुवर्तन करती हुई 'दारुयोषित' की भाँति अ गुलि निर्देश पर नृत्य करने लग जाती थी। और इस प्रकार सुरसरि के अनन्त प्रवाह की भाँति भक्ति काव्य धारा अथवा भावधारा चल पडती थी। महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर के अभग और ओवियाँ, तुकाराम के अभग, नरसी एव मीरा के भक्ति-पद इसके पुष्ट प्रमाण हैं।

भारतीय धर्म उपासना मे सगीत और भक्ति का यह गठबधन युगो युगो से चला आ रहा है, और आगे भी अन तकाल तक चलता चला जायगा। सगीत और भक्ति का यह अविच्छिन्न सम्बन्ध मध्ययुग अथवा भक्तियुग मे अधिक पुष्ट हो गया था। पुष्टि सम्प्रदाय के भक्तों ने भक्ति की पुष्टि के साथ सगीत पद्धति के शुद्धतम स्वरूप का भक्तिक्षेत्र मे समावेश कर मध्ययुग की भटकती हुई सगीत-पद्धति को व्यवस्थित कर दिया और इस प्रकार सगीत की धारा भारतीय भक्ति-मार्ग की पुण्य धारा के रूप मे परिवर्तित होकर नि श्रेयस् की साधिका बन गयी।

---

१ स कीर्त्यमान शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान्। नार० भ० सूत्र ८०।

२ राम न सकहिं नाम गुन गाइ। मानस—बालकाड।

# पुष्टिमम्प्रदाय की संगीत-साधना

भगवल्लीला-कीर्तन पुष्टिसम्प्रदाय में अत्यन्त ही प्रभु तोषक माना गया है। यदि यह कीर्तन शुद्ध संगीत-पद्धति के अनुसार हो तो साम्प्रदायिक भक्तों का विश्वास है कि भगवान् स्वल्प काल मे ही निज लीला के दर्शन कराने का अनुग्रह करते हैं। आचार्य चरण भी 'गीत-संगीत सागर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। भाव प्रकाश के मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में 'संगीत श्रुति मूर्धनि' कह कर भगवान् को नमस्कार किया गया है।

पुष्टिमार्ग मे सेवा के तीन स्वरूप हैं—राग, भोग और शृंगार तीनों ही युगपत् चलती हैं। प्रातः काल ही भगवन्मन्दिर मे 'मंगल मंगलम्' की मंगल ध्वनि के साथ घंटानाद होता है और तानपूरा तथा मृदंग की ध्वनि होने लगती है। संगीत की इस प्रमुखता का श्रेय मुख्य रूप से गोस्वामी विट्ठलनाथजी को है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने अष्टछापी चार प्रमुख शिष्यो को भगवल्लीलागान का आदेश दिया था। उनमे सूरदास प्रमुख थे। सूर को श्री गोवर्धननाथ जी के मन्दिर में कीर्तन भार देने के उपरान्त उन्होंने अन्य शिष्यो को भी क्रमश यही आदेश दिया। और सभी शिष्य क्रमश श्रीनाथजी के मंदिर मे आकर अपने अपने ओसरे पर लीलागान करते थे। संवत् १६०२ मे जब अष्टछाप की स्थापना हुई और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने जब विधिवत् सेवा का महान किया तब आठो प्रहरो के लिए अष्टछापी आठो महानुभावो का कीर्तन करने का ओसरा आ जाता था।[१] यहाँ आठो कवि महानुभावो के कीर्तन ओसरे का समय दिया जा रहा है। उदाहरणार्थ—

| दर्शन का ओसरा | कीर्तनकार | समय |
|---|---|---|
| १—मंगला | परमानन्ददासजी | प्रात ५ से ७ बजे तक |
| २—शृंगार | नन्ददास जी | प्रात ७ से ८ बजे तक |
| ३—ग्वाल | गोविन्दस्वामी | प्रात ९ से १० बजे तक |
| ४—राजभोग | कुम्भनदास एव आठों भक्त | प्रातः १० बजे से १२ बजे तक |
| ५—उत्थापन | सूरदास | मध्याह्नोत्तर ३½ से ४½ तक |
| ६—भोग | चतुर्भुज दास एव आठों भक्त | सायं ५ बजे (तक) |
| ७—सन्ध्यारति | छीतस्वामी | सायं ६½ बजे |
| ८—शयन | कृष्णदास | सायं ७ से ८ बजे तक |

ये आठो महानुभाव शास्त्रीय संगीत पद्धति से भगवल्लीला गान करते थे। अत संगीत के प्रति इन महानुभावो का जो उपकार है इसके लिये भारतीय संगीत-कला सदा ऋणी रहेगी।

भारतीय संगीत की दो शैलियाँ हैं। उत्तरी शैली एवं दक्षिणी शैली। अष्टछाप के कवियों ने उत्तरी शैली को ही अपनाया है। उत्तरी शैली ध्रुपद शैली कही जाती है। ब्रज भक्तों

१ सो बीच बीच में जब कुम्भनदास औ परमानन्द जी के कीर्तन के ओसरा आवते। (चौरासी वैष्णवन की वार्ता पृष्ठ ७५५)

ने इसे ही अंगीकार किया है। इस शैली में मुगल दरबार के गवैयों ने कुछ इधर उधर का परिवर्तन कर के अपनी कुछ निराली पद्धतियों–'ख्याल'–आदि का—आविष्कार किया था उसको व्रज के और विशेष कर अष्टछाप के कीर्तनकारों ने नही सम्मिलित किया। और इस प्रकार अष्टछापी कीर्तनकारों की अपनी एक शुद्ध संगीत पद्धति पृथक् थी। इस पद्धति मे भी कतिपय राग रागिनियाँ ऐसी थी जो साम्प्रदायिक मंदिरों मे वर्जित थी। उदाहरणार्थ भैरवी तथा यमन कल्याण आदि राग साम्प्रदायिक मंदिरों मे अद्यावधि नही गाये जाते[१]। अष्टसखाओं का ध्रुपद संगीत इस शैली के चार मतो मे से कृष्ण मत के अन्तर्गत गौरहार अथवा गोवरहार वाणी मे आता है। इसके प्रवर्तक संगीत सम्राट् स्वामी हरिदास जी माने जाते हैं और यह मर्दानी गान पद्धति कहलाती है। इसमें स्थायी[१], अंतरा[२], संचारी[३] और आयोग इस प्रकार चार भाग होते है। लिखा है कि "प्रभु भक्ति राजा की स्तुति, मंगल-कार्य, धर्म, पुराण, तत्वज्ञान, संगीत की शास्त्रीयता, हृदय की उदार उन्नत भावना आदि ध्रुपद गायन में ही होते हैं।[२]

धमार गायन पद्धति भी उच्च कोटि की होती है। उसको उच्च कोटि के कलाकार ही गा सकते हैं। 'संगीत कीर्तन,-साहित्य मे वसन्त राग के अतिरिक्त होरी की भावना वाले कीर्तन 'धमार' कहलाते हैं। क्योंकि अधिकाश कीर्तन अथवा पद धमारताल' में ही गाये जाते हैं। इसके साथ झाँझ, पखावज, सारगी, किन्नरी, ढप, चग आदि वाद्यो का प्रयोग होता है और इस प्रकार सगीत शास्त्र मे कथित तत, वितत, सुषिर एव घन चारो ही जाति के वाद्य व्रज मदिरो मे प्रयुक्त होते हैं।

नृत्य—व्रज-भक्तों ने नृत्य की भी बहुत चर्चा की है। कृष्ण लीला मे नृत्य का अध्यात्मिक रहस्य भी सकेतित है किन्तु कला के रूप मे भी मन्दिरो मे नृत्य कला गृहीत है। देवदासिया तो भगवन्मन्दिरो मे नृत्य करती ही थी। मीरां गिरधर गोपाल के सामने नाचती ही थी। अतः "गीत वाद्य तथा नृत्यंत्रय संगीतमुच्यते" के अनुसार इन कृष्ण भक्त कवियों ने सगीत का कोई अग अछूता नही छोड़ा था। अतः सम्प्रदाय में गायन वादन एवं नर्तन तानो का एकत्र रूप कीर्तन संगीत के नाम से पुकारा जाता था। यह सब आज भी उसी प्रकार चल रहा है। सम्प्रदाय मे सूरदासादि अष्टसखाओं ने जो पद्धति प्रचलित की थी वह (अद्यावधि)वर्तमान है। वह अपने सम्पूर्ण विधि-निषेधों सहित अक्षुण्ण अबाध परम्परा के रूप मे चली आरही है।

## सम्प्रदाय के विशिष्ट राग—

सम्प्रदाय मे प्रसिद्ध है कि रासोत्सववाली गोपिकाओ के द्वारा १६०० रागों की उत्पत्ति हुई थी। शारदीय राका रजनी की मध्य रात्रि मे जब भगवान ने रास किया था तब शतशः गोपिकाएँ वसी की ध्वनि से आकृष्ट होकर वन मे चली आई और महारास का प्रारम्भ हुआ। उस समय उन १६०० गोपिकाओं ने जुदे जुदे राग से प्रभु को प्रसन्न किया था। परन्तु वे सब दिव्य होने के कारण लोप हो गए। अब रागो की संख्या केवल २६४ रह गई है। वे दस वर्गों मे

---

१ देखो—संगीत कीर्तन पद्धति अने नित्य कीर्तन। पृष्ठ ४३ तथा ४४।

२ वही— पृष्ठ ३२ तथा ३३।

विभक्त किये गये हैं। परन्तु अब संगीतज्ञो मे ६ राग माने जाते हैं। प्रत्येक की पाँच पाँच भार्याएँ, आठ आठ पुत्र, और आठ-आठ पुत्र भार्याए हैं। कुल मिलाकर संख्या १४० होती है। छहों रागों की आश्रित रागों की संख्या=१३२ होती है। परन्तु इस विषय में संगीत के विद्वानों मे मतभेद है। कुछ विद्वान् राग संख्या केवल ६६७ बताते हैं। कुछ ४८४; और अन्य विद्वान् ४८४०। जो भी हो। सम्प्रदाय में केवल ३२ अथवा ३३ राग ही अधिक प्रचलित हैं। वे हैं—रामकली, गौरी, कान्हरा, सारंग, गूजरी, विलावल, धनाश्री, रामगिरि, आसावरी, केदारा, सोरठी, भैरव, विभास, जंगला, पीलू, झंझोटी, सिन्धु, बसन्त, यमन, नट, काफी, मारू, जैतश्री, गंधार, देवगंधार, मलार, कल्याण, टोडी, नायकी, विलास, विहाग, मालकोश आदि। प्रायः सभी सखाओं ने विशेषकर इन्हीं रागों का प्रयोग किया है। ये राग प्रायः ८ या १० कारणों से प्रयुक्त हुए हैं।

उदाहरणार्थ—

१—कतिपय स्वरो के आरोह अवरोह मे विशिष्ट होने से नामकरण के कारण—विलावल, धनाश्री आसावरी, केदारा।

२—कभी किसी विशिष्ट स्वर की महत्ता के कारण—विहाग, मालकोश, नायिकी टोड़ी।

३—स्वर माधुर्य की कल्पना के कारण—विभास, गंधार, काफी, यमन, नट, केदारा।

४—धार्मिक भावना के आधार पर—गौरी, भैरव, जैतश्री, कल्याण, देवगन्धार, दुर्गा, जैजैवन्ती।

५—विशिष्ट प्रदेश मे प्रयुक्त होने के कारण—जैसे वृन्दावनी सारंग जौनपुरी, मुलतानी, गौरी, गूजरी आदि।

६—व्यक्ति विशेष के द्वारा अधिक प्रयुक्त किये जाने के कारण—जैसे सूर-मल्हार, मियाँ की मल्हार।

७—ऋतुओं के अनुसार—मल्हार, होली, बसंत, चैती, मेघ।

८—पक्षियों के नाम पर—सारँग, गौरा, बरवा, सूहा, कामोद आदि।

९—रागो के परस्पर मिश्रण के कारण—छायानट, नटविहाग, मारू विहाग, ललित-पंचम, भूप-कल्याण, भैरव-बहार आदि।

१०—पुष्पों के आधार पर—रामकली, पीलू, कान्हरा आदि।

## कतिपय विधि निषेध—

*सम्प्रदाय मे कीर्तन कुछ विधि निषेधों के साथ होता है। जैसे—*

१—कुछ विशेष राग ही मन्दिरों मे प्रयुक्त होते हैं। बहारो के विभेद नही गाये जाते। उष्ण काल मे रूखरी के पद गाये जाते है।

२—जयदेव की आठ अष्टपदियां अवश्य ही गायी जाती हैं। राम, कृष्ण, वामन, नृसिंह आदि जयंतियों पर 'प्रलयपयोधि जले०' तथा परमानन्ददासजी का प्रसिद्ध पद "पद्म धर्यो जन ताप निवारन" वाला पद अवश्य ही गाया जाता है। उसी प्रकार जयंतियों पर उत्थापन के समय परमानन्ददासजी का प्रसिद्ध पद—

"जो रस रसिक कीर मुनि मायो।"

अवश्य ही गाया जाता है।

उष्णकाल में चदन की अष्टपदियाँ—'चदन चर्चित नील कलेवर० तथा 'क्षण-मधुना नारायण मनुगत मनुसर मा राधिके तथा भोग आरती मे—देहि मे पद पल्लव मधुर आदि निश्चित रूप से गाई जाती है। अष्ट सखाओं के अतिरिक्त साम्प्रदायिक मन्दिरो में नागरीदास, श्रीभट, भक्त व्यास जी, हरिदास, हितहरिवश तानसेन आदि के पद भी कीर्तन—में स्वीकृत हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि भैरव, यमन, कल्याण, आदि राग अस्पृश्य होने के नाते नही गाये जाते। उसी प्रकार मीराँबाई के पद भी वल्लभ सम्प्रदाय में स्वीकृत नही है। इसका कारण आधुनिक विद्वानो ने यह बतलाया है कि मीराँ प्रयत्न करने पर भी वल्लभ की शिष्या नही हुई पर यह मत अटकल मात्र है। आचार्य वल्लभ किंवा उनके वशीधरो से ऐसा प्रयत्न कभी नही किया गया।[1] फिर मीराँ के पदो को क्यो नही गाया जाता? उसका कारण मीराँ की निर्गुण प्रवृत्ति है। मीराँ का 'जोगिया सम्प्रदाय को मान्य नही। फिर मीराँ मे सम्प्रदाय मान्य कृष्ण की बालभाव की उपासना भी नही।

## परमानन्ददास की कीर्तन-सेवा—

वार्ता मे आया है कि "सो एक समय परमानन्ददास कन्नौज में मकरस्नान को प्रयाग मे आये सो वहाँ रहे। और कीर्तन को समाज नित्य करें सो बहुत लोग इनके कीर्तन सुनिवें को आवते।"[2] इससे विदित होता है कि परमानन्ददास जी सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व भी उच्चकोटि के गायक रहे होगे क्योकि उनके गान की प्रसिद्धि चारो ओर फैल चुकी थी। दूसरे अनेक गायक उनके साथ रहते थे।[3] वे अपने घर कीर्तन का समाज एकत्र किया करते थे। स्वय भी वे गान विद्या मे बडे (अत्यत) चतुर थे।[4] महाप्रभु के जलघडिया (क्षत्री कपूर) की राग (सगीत) पर बडी आसक्ति थी। उसी के द्वारा वे महाप्रभु की शरण मे लाए गए। महाप्रभु वल्लभाचार्य को उन्होंने अपने पद सुनाये और उनसे दीक्षा प्राप्त की। आगे चलकर आचार्य की आज्ञानुसार भागवत की बाललीला को उन्होंने अपना काव्य विषय बनाया। इन सब प्रसगो से परमानन्ददासजी का सूरदास की भाति उच्चकोटि के साहित्यकार और सगीतज्ञ होने का पुष्ट प्रमाण मिल जाता है। उन्होंने सुबोधिनी के आधार पर पदो की रचना की थी। इस प्रकार पद-रचना और कीर्तन—यही उनके जीवन के दो कार्य थे। आगे चलकर आचार्यजी के साथ जब वे व्रज में पधारे तो श्रीनाथजी के मन्दिर मे उन्हे कीर्तन सेवा सौंपी गई। और यह सवा उन्होने आजीवन निभाई। लगभग ६२ वर्ष की लम्बी आयु तक साहित्य और सगीत की एकान्त साधना जिस भक्त कवि ने की हो उसके उच्च कोटि के कवि और सगीतज्ञ होने मे क्या सन्देह रह जाता है। अत उनका 'परमानन्दसागर' लीला-सागर होने के साथ-साथ सगीत सागर भी कहा जा सकता है।

---

१ देखो—मेरा लेख 'मीरांबाई और वल्लभाचार्य—अभिनवभारती अक—२।

२ देखो—चौरासी वैष्णव वार्ता-परीख-सस्करण, पृ०—७६३

३ 'सो परमान द के साथ समाज बहोत हतो। अनेक गुनी जन सग रहते। ८४ वार्ता

४ भावप्रकाश पृ०—७६०।

कवि ने अपने 'सागर' में अपने समय के प्रचलित सभी राग रागनियों का समावेश किया है। पदों का विषय भगवान की बाल, पौगण्ड और किशोर लीला है। अतः उनका कीर्तन का समय मंगला, राजभोग और शयन-भोग है। नित्य-कीर्तन और वर्षोत्सव मे उनका विशिष्ट ओसरा अथवा समय है। नित्य के कीर्तन में मंगल मंगल' का पद और भागवत कथा के अन्त में नाम-संकीर्तन वाला पद भक्तों की सम्पत्ति आज भी बना हुआ है। सम्प्रदाय की प्रणाली से जब वे प्रभु समक्षकीर्तन करने बैठते थे तो उनके साथ आठ-आठ अङ्ग-गायक तथा भालरिये रहते थे।[1] जो टेक उठाने का कार्य करते थे। परमानन्ददासजी के आठ अंग गायकों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) पद्मनाभदास, (२) गोपालदास, (३) आसकरण, (४) गदाधरदास, (५) सगुनदास, (६) हरिजीवनदास, (७) मानिकचन्द और (८) रसिकबिहारी।

उक्त आठों अङ्ग गायकों के साथ श्रीनाथजी के समक्ष नित्य कीर्तन करना परमानन्ददासजी की जीवन चर्या थी। नित्य कीर्तन के साथ वर्षोत्सवों पर भी विशिष्ट कीर्तन प्रस्तुत करना वे नहीं भूले हैं। उनके पदों में उनका उच्चकोटि के संगीतज्ञ होने का पता चल जाता है। परमानन्ददास जी ने अपने पदों मे कतिपय राग रागिनियों के नामों का उल्लेख कर उनके लक्षण और समय का संकेत दिया है। उस आधार पर उन्हें लक्षण-पद भी कहा जा सकता है वे हैं—

गौरी, आसावरी, सारंग, मलार, केदारा आदि।

१—गौरी—

मोहन नैंकु सुनहुगे गौरी।
बनते आवत कुंवर कन्हैया पुहुपमाल लें दौरी।
मदन गोपाल झूलत हिंडोले।
वामभाग राधिका विराजैं पहिरें नील निचोल।
गौरी राग अलापत गावत कहत भामते बोल॥

२—आसावरी—

यह रागिनी श्रीराग के अन्तर्गत है। कवि ने इसकी चर्चा की है। डेढ प्रहर दिन चढ़े गाई जाती है। कवि ने ठीक इसी समय आसावरी राग गाया है।

"आजु नीको बन्यौ राग आसावरी।
मदन गोपाल बेन नीकी बजावत मोहन नाद सुनत भई बावरी।

३—मलार—

बरिस रे सुहाये मेहा मैं हरि को संग पायौ।
भीजन दे पीताम्बर सारी बड़ी बड़ी बूंदन भायौ॥
ठाडे हँसत राधिका मोहन राग मल्हार जमायो।
परमानन्द प्रभु तरवर के तर लाल करत मन भायौ॥

मल्हार वर्षा कालीन राग है। उसी मे, कवि ने लम्बी तान की चर्चा की है।

'परमानन्द स्वामी मन मोहन उपजत तान विताने।'

---

१ वारकरी पंथ में अंगगायक टाळकरी (ताल देने वाले) कहलाते हैं। संभव है कि अंग गायक रखने की परम्परा पुष्टि सम्प्रदाय में वारकरियों से आई हो।

प्राय: मल्हार के सभी भेदों की चर्चा कवि में मिलती हैं। जैसे 'गौड़ मल्हार' 'शुद्ध मल्हार, धूरिया मल्हार, मिया की मल्हार, आदि मल्हार राग में उनके अनेक पद मिलते हैं ?

मल्हार—

मुदित परस्पर गावत दोउ अलापत राग मलार।
रैन पपीहा बोल्यौ री माई।
... ... ... ...
राग मलार कियो जब काहू मुरली मधुर बजाई।
राग मलार सह्यौ नहिं जाई काहू पंथी कहि गायौ॥

सारंग—

गावत मुदित खिरक मे गोरी सारंग मोहिनी।
प्रस्तुत पद मे गौरी और सारङ्ग दोनों ही रागिनियों का श्लेषात्मक सकेत मिलता है।)

केदार—

दोउ मिलि पौढे सजनी देख अकासी।
... ... .... ...
मधुरे सुर गावत केदारो परमानद निज दासी।

केदार रात्रि का राग है अतः पौढने (शयन) की स्पष्ट चर्चा है।

इन विशिष्ट रागो के उल्लेख के अतिरिक्त कवि ने लगभग चालीस राग रागिनियों के नाम परमानन्दसागर मे दिये हैं।

| | | |
|---|---|---|
| (१) देवगंधार | (२) रामकली | (३) विलावल |
| (४) जैतश्री | (५) धनाश्री | (६) सारङ्ग |
| (७) भैरव | (८) मुलतानी | (९) मालश्री |
| (१०) गौरी | (११) कानडा | (१२) नट |
| (१३) अडाना | (१४) आसावरी | (१५) केदारा |
| (१६) मालकोस | (१७) विहाग | (१८) पूर्वी |
| (१९) सूहा | (२०) पूर्वी मलार | (२१) शुद्ध मलार |
| (२२) कल्याण | (२३) गौड़ सारङ्ग | (२४) विभास |
| (२५) जैजैवन्ती | (२६) वसन्त | (२७) विभास चर्चरी |
| (२८) टोडी | (२९) काफी | (३०) यमन |
| (३१) मालव | (३२) सोरठ | (३३) ललित |
| (३४) नूर सारङ्ग | (३५) नायकी | (३६) गूजरी |
| (३७) मारू | (३८) विहागरी | (३९) गौड मलार |
| (४०) मेघ मलार आदि। | | |

परमानन्दसागर मे इन राग रागिनियों के उल्लेख से कवि का सगीत के प्रति गहरा प्रेम तथा उसका गहरा बोध प्रकट होता है।

कवि की सारंग छाप:—परमानन्ददासजी के विषय में भक्तमाल में लिखा है:—

'सारंग छाप' ताकी भई स्रवन सुनत आवेस देत।
व्रजवधू रीति कलियुग विषे परमानन्द भयो प्रेम केत ॥

वस्तुतः परमानन्ददास जी के एकाध पद मे सारंग छाप मिलती है। उस आधार पर कोई निर्णय नही किया जा सकता। 'ते भुज माधो कहा दुराये।" वाले पद के अंतिम[1] चरण में 'सारंग' शब्द जिस भाँति प्रयुक्त हुआ है उसे 'छाप' कैसे कहा जाय। वहाँ तो चक्रधारी के अर्थ मे ही यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। हाँ, यह एक तथ्य है कि सारंग राग में उनके अनेक पद हैं इससे विदित होता है कि कवि को सारंग राग अधिक प्रिय था, यदि इसके कारणों पर विचार किया जाय तो विदित होगा कि 'सारंग' अनेक अंशों मे कवि के स्वभाव के अनुकूल पड़ता था। रागों का रस से सम्बन्ध है। रस का मानव-हृदय से। अतः सीधे सीधे कहा जा सकता है कि रागों का सम्बन्ध हृदय से है किसी, विशिष्ट राग के प्रिय वा अप्रिय होने से श्रोता अथवा गायक की मनोवृत्ति का पता लगाया जा सकता है। सारंग राग के प्रति प्रेम होने से कवि की मनोवृत्ति का पता चलता है।

सारंग राग दीपक राग का एक भेद है। इसके गाने का समय दिन का द्वितीय प्रहर—मध्याह्न है। प्रायः १० बजे से तीन बजे तक का इसका समय है। इसका लक्षण इस प्रकार है।

वीणा विनोदी दृढ बद्ध वेणी।
वृक्षान्तरे सस्थित गौर गात्रा
तृतीय यामे पिकनाद तुल्यः।
सारंग गौरः कथितो मुनीन्द्रैः।

× × ×

ऋषभांशं गृहन्यासं गौडः सारंग एवच।
गौड सारंग संयुक्ता तुरीया संमिश्रिता ॥
दिवसान्ते सदा गेये गौड़ सारंग ईरितः।
रे मपनि सारे मपनि सा ॥[2]

सारंग शुभ्रवर्णा कोकिल कण्ठी रागिनी है। इसका समय दिवस का तृतीय याम है। यह ओढ़व जाति का (५ स्वर वाला) राग है। अर्थात् स, रे, म, प, नी आरोह में तथा नी, प, म, रे स अवरोह में। ऋषभ इसमें वादी (कठोर) लगता है। संवादी पंचम है। रे वीर रस का तथा नी कोमल होने के कारण शृंगार रस का प्रतिनिधित्व करते हैं। वैसे इसमें शान्त करुण का भी समावेश है। इस प्रकार कवि के प्रिय रस-शृंगार, वीर

१ जेहि भुज गोवर्धन राख्यौ जिहि भुज कमला घर आनी।
जेहि भुज कंसादिक रिपु मारे परमानन्द प्रभु 'सारंग पानी।' प० सं० ६७८

२ सारंगो गुर्जरी तोड़ी कामोदी प्रति मंजरी।
स्त्रियः पञ्च शुभा प्रोक्ता दीपकस्य पतिव्रताः ॥—हंस विलास

श्रौर शान्त का सारग राग से अतिशय सम्बन्धित है। सारग कफका प्रकोप शान्त करता है। इसके अतिरिक्त कवि का राजभोग मे कीर्तन का श्रोसरा पडता था। इसलिए भी कवि को सारग प्रिय था। दूसरे सारग शब्द के अन्तर्गत श्रीकृष्ण सम्बन्धी अनेक वस्तुओं का समावेश है। श्रत सम्बन्ध भावना के श्राधार पर कवि को यह राग अत्यन्त प्रिय था। सारग राग के अनेक भेद हैं—गौड सारग, शुद्ध सारग, वृन्दावनी सारग, मियाँ का सारग, वड हस सारग, मध्यमादि सारग आदि। श्रत —

१—स्वर की दृष्टि से
२—राग की दृष्टि से
३—रस की दृष्टि से
४—एव सारग शब्द के अर्थ की दृष्टि से तथा

५—भगवान के शृ गार साधन मयूरपिच्छ कमल पुष्प आदि वस्तुओ की सम्बन्ध भावनाकी दृष्टि से कवि को सारग राग प्रिय था। इस कारण कवि ने अनेक पदो की रचना सारग राग में की है।

कीर्तन गान की दृष्टि से कवि सम्प्रदाय मे अपना एक विशिष्ट स्थान तो रखता ही है। नृत्यकला का भी कवि को अच्छा ज्ञान था। उसने उरप तिरप आदि शब्दों का अपने पदो मे प्रयोग किया है। नृत्य कला के विद्वान् जानते हैं कि नृत्य श्रौर सगीत जब साथ चलते हैं उस समय उरप तिरप प्रयुक्त होतेहैं। उरप एक के बाद एक स्वर के आरोप को उरप कहते हैं एक के बाद एकस्वर के अवरोह को समय तिरप कहते हैं "ततथेई" नृत्त है। हावभाव रहित ताल लय युक्त पद सचालन को 'नृत्त' कहते हैं। व्रज मे ये ही बोल प्रचलित हैं इन सबसे कवि का नृत्य कला विषयक ज्ञान का पता चलता है उदाहरण के लिये—

नर्तत मण्डल मध्य नदलाल।
× × × × × ×
ताल मृदग 'ततथेई' बाजत ततथेइ बोलत बाल।
उरप तिरप तान लेत नट नागर गावत गधर्व गुनी रसाल।
यहा अतिम चरण मे चार प्रकार के व्यक्तियो की चर्चा कवि ने की है।

नट नागर, गधर्व, गुनी, रसाल। यहाँ नट से तात्पर्य नृत्यकार से तथा नागर सगीत शास्त्र के पडित से, गधर्व का कठ सगीत के गाने वाले से, तथा रसज्ञगुनी तीन कलाओ-गायन वादन एव नृत्य के पारखी अथवा समझने वाले से तथा नागर पारखी अथवा समझने वाले से श्रौर रसात्मक मे रसिक का तात्पर्य लेना चाहिये। इससे विदित होता है कवि सगीत शास्त्र की बहुत सी बारीकियो मे उतर गया था श्रौर सबका उसे पूरा पूरा ज्ञान था।

२—व्रज बनिता मध्य रसिक राधिका बनी सरद की राति हो।
नृत्यत ततथेई गिरिधर नागर श्रौर स्याम अगकी काति हो।

---

१ देखो—सारग शब्द के अर्थ, सुन्दर, विभिन्न वर्ण, मृग, सिंह, हाथी, भ्रमर, कोयल, खजन, मयूर, राजहस, चातक, मेघ, कामदेव, पुष्प, कमल, कपूर, धनुष, कपोत, स्तन, अ जन, सर्प, चन्द्रमा, अश्व, सागर आदि। [ वृहत् हिन्दी कोष पृ०—१४१३ ]

३—रास रच्यौ वन कुंवर किसोरी।
,बाजत बेनु रबाब किन्नरी कंकन नूपुर किंकिनि सोरी।
ततथेई ततथेई सबद उघटत पिय भले बिहारी बिहारिन जोरी।

४—बन्यौ ताल भरसक राधे सरद चांदनी राति।
ततथेई ततथेई थेई करत गोपीनाथ नीकी भाँति।

५—रास मंडल मध्य मंडित मोहन अधिक सोहत लाड़िली रूप निधान।
हस्त छेप, चरन चारु निर्तत आंछी भाँतिन मुख हास भौंह विलास॥
भौंह लेत नैननि ही मान।

यहाँ हस्तक्षेप से नृत्य भंगिमाओं अथवा हाथों की मुद्राओं की ओर संकेत है। जिसकी भरत नाट्यम में पर्याप्त चर्चा है। कवि को इन मुद्राओं एवं भौंह संचालन का ज्ञान था। नृत्य-शास्त्र मे हस्त संचालन द्वारा अनेक रसो का उदय और उनका परिपाक माना गया है।

## वाद्यों की चर्चा—

संगीत नृत्य की चर्चा के साथ साथ कवि ने मुख द्वारा बजाये जाने वाले जैसे वंसी भेरी नफीरी आदि सुषिर वाद्य तंतु वाद्य तथा वितत वाद्य (चर्म से मंडित) मृदंग, पखावज, डफ, खंजरी, ढोलक, डमरू, दमामा आदि एवं घन जाति के-जैसे झाँझ झालर ताल मंजीरा आदि वाद्यों की भी पर्याप्त चर्चा की है।

उदाहरणार्थ—

१—नंदकुमार खेलत राधा संग।
जमुना पुलिन सरस रंग होरी॥

× × × × × ×

बाजत चंग मृदंग अघोटी,
परहु झाँझि झालरी सुर घोरी।
ताल रबाब मुरलिका वीना मधुर सबद उघटत धुनि थोरी।

२—सब ग्वालिन मिलि मंगल गायो।
ताल किन्नरी ढोल दमामो भेरि मृदंग बजायो।
लीला जनम करम हरि जू की परमानन्ददास जस गायो।

३ —बने बन आवत मदन गोपाल।
बेनु मुरज उपचंग मुख चलत विविध सुरताल।
बाजे अनेक वेनु रव सों मिलि रनित किंकिनी जाल।

४—रितु बसंत के फाग प्रचुर भयो मदन को जोर।
× × × × × ×
ताल पखावज परज ही बीना वेनु रसाल।
महुवरी चंग अरु बांसुरी बजावत गिरधरलाल॥

कीर्तन-संगीत के अतिरिक्त कवि के नाम ध्वनि अथवा ध्वनि-कीर्तन के एक[1] दो पदों से अनुमान होता है कि कवि नाम संकीर्तन पर भी महत्व देता था।

उपर्युक्त कथन से तात्पर्य इतना ही है कि—

कवि उच्च कोटि का संगीतज्ञ था। उसने अपने समय की सभी प्रचलित संगीत पद्धतियों को तथा कीर्तन संगीत अथवा पद कीर्तन के साथ ध्वनि कीर्तन को भी तुल्य महत्व दिया था। कवि को गायन, वादन और नृत्य तीनों का अच्छा बोध था। उसने राग रागनियों में उत्तरी शैली को ही अपनाया। कीर्तन संगीत के क्षेत्र में सम्प्रदाय में उसका अपना विशिष्ट स्थान है जो आज तक भी मान्य चला आता है। विशिष्ट अवसरों—वर्षोत्सवों और नित्य सेवा में उसके अनेक पद निश्चित हैं और महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये हुए हैं।

---

१ परमानंदसागर पद संख्या—६१०

दशम अध्याय

# परमानन्ददासजी और व्रज संस्कृति

लोक जीवन की सर्वमान्य दीर्घ अभ्यस्त परिमार्जित सुसंस्कृत चर्या अथवा व्यवहार-परम्पराओं को 'संस्कृति' नाम दिया जाता है। इसके कई रूप हैं—राष्ट्रीय-संस्कृति, सामाजिक संस्कृति, प्रादेशिक संस्कृति आदि। पुष्टि-सम्प्रदाय का केन्द्र-स्थल भगवान् श्रीकृष्ण की लीला भूमि व्रज-प्रदेश रहा है। अतः सभी अष्टछापी महात्माओं ने अपने अमरकाव्यों में व्रज-संस्कृति की ही चर्चा की है। व्रजभक्तों की व्यक्तिगत-साधना में व्रज-संस्कृति बिंबप्रतिबिम्ब भाव से द्योतित है। क्योंकि संस्कृति सामाजिक वस्तु है। व्यक्ति समाज की इकाई है। अतः समाज की सर्वमान्य परम्पराओं का अनुगामी होने के लिये वह विवश है। व्रजभक्तों का अमर काव्य स्वान्तःसुखाय होते हुए भी वह लोक-बाह्य नहीं; न उसे नितांत ऐकान्तिक ही कहा जा सकता है। किसी विशिष्ट प्रदेश अथवा विशिष्ट समाज की संस्कृति की जब हम चर्चा करते हैं तो उसके आचार, विचार, संस्कार, खान-पान, रहन, सहन, रीति-रिवाज, पर्व, उत्सव, कला, दर्शन, विज्ञान, उपासना आदि सभी को लेते हैं। इन्ही के द्वारा हम व्यक्ति अथवा समाज की संस्कृति के स्वरूप को सामने ले आते हैं।

आर्यावर्त के अन्तर्गत ब्रह्मावर्त और उसमें भी गंगा यमुना के मध्य के भू भाग (अन्तर्वेद) की संस्कृति को व्रजसंस्कृति का प्रदेश माना जाता है। यह देश आर्यों का सनातन देश है। इसी भूभाग में पूर्ण पुरुषोत्तम जिन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम और लीला-पुरुषोत्तम कहा जाता है—राम-कृष्ण-का अवतार हुआ। इसी प्रदेश के धर्म, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन और कला ने चरम उन्नति के कारण विश्वगुरुत्व का गौरव प्राप्त किया है। यहीं की संस्कृति ने अरण्यों में जन्म ले कर भी बड़े बड़े विशाल राष्ट्रों की चरम नागरिकता को चुनौती दी है।

सूर्यचन्द्र नक्षत्रादि से दीप्त मुक्त गगन के नीचे और निसर्ग रमणीय लता-वृक्षादि से सम्पन्न सस्य श्यामला उर्वरा वसुन्धरा के वक्ष पर प्राकृतिक जीवन-यापन करते हुए जीव-दया के लोक आदर्श के साथ गोप-सभ्यता में पले वासुदेव श्रीकृष्ण की संस्कृति का मूल मंत्र था—

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"

अतः मुरारि की जीवन-धारा की भाँति यही संस्कृति समूचे विश्व की सिरमौर संस्कृति सिद्ध हुई। रागानुगा भक्ति के परमपोषक आचार्य वल्लभ ने यहीं की अपठित लोक वेद मर्यादातीत व्रज सीमंतिनियों को अपना गुरु माना है। इन्हीं के निश्चल, निश्छल एकान्त भक्तिभाव को प्रभु प्राप्ति का एक मात्र-साधन मानकर इसी संस्कृति को महत्त्व दिया था। जाति से तैलंग ब्राह्मण हो कर भी उन्होंने व्रज संस्कृति के प्रसार एवं प्रचार में अपने जीवन को उत्सर्ग कर दिया था। इसी प्रदेश की भक्ति का आदर्श उनकी भक्ति का आदर्श

रहा है। उनके आराध्य की लीला भूमि होने के नाते यहीं की सर्वमान्य सर्वाम्यस्त परम्पराओं को उन्होंने महत्ता दी। यहाँ तक कि देववाणी संस्कृत के उपरान्त यदि किसी दूसरी भाषा को उन्होंने वार्ता, स्तुति-भाषण भगवद् चर्चा एवं लीलागान के लिये उपयुक्त समझा तो यहीं की लोकभाषा-व्रजभाषा को।

व्रज-संस्कृति एवं व्रजभाषा को आचार्य ने ही जब इतनी महत्ता दी तो उनके सभी शिष्य विशेष कर अष्टछाप के कवियों ने भी उसी संस्कृति और इसी प्रदेश की भाषा को अपनाकर अपने आराध्य की उपासना की।

महाप्रभु के परम शिष्य, सम्प्रदाय के द्वितीय 'सागर' परमानन्ददासजी कन्नौज के निवासी थे किन्तु दीक्षोपरान्त व्रज में आ जाने पर वे व्रज-प्रदेश को छोड़कर फिर अन्यत्र नहीं गए। आपने काव्य मे उन्होने व्रज-संस्कृति के लगभग सभी अंगों की आवश्यकतानुसार यत्र तत्र चर्चा की है।

संस्कार:—

परमानन्ददासजी ने सूर की भाँति जात-कर्म, छठी-पूजन, नामकरण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, भूमि उपवेशन, निष्क्रमण व्रतबंध, विवाह आदि की चर्चा की है। और सभी संस्कारों पर वाद्य, बंदनवार, दधि हल्दी का छिड़काव, सुवासिनी (सौभाग्यवती स्त्री) की पूजा, नगरवासियों की भेंट लेकर आना, नेग, बधाई, सतिए—चौक आदि पूरना, रोरी दूब, फल, मेवा, पकवान मिठाई का आदान प्रदान, विप्र, मागध सूत-वंदी आदि का आशीर्वाद देना, भेंट-पूजा आदि प्रसंगों की चर्चा की है।[1] इसी प्रकार उनके काव्य में जन्म से विवाह पर्यन्त युगललीला तक के सभी संस्कारों का यथा स्थान उल्लेख है। इन संस्कारों से संबन्धित कर्मकांड की अंगभूत बातें—जैसे गणेश पूजा, नांदी श्राद्ध (पितृ-पूजन) गोदान, दक्षिणा, वेदपाठ, होम, मुहूर्त-शोधन अनिष्ट निवारण, विप्रों का आशीर्वाद, दान, ज्योतिषियों के प्रति आदर-भाव आदि बातों की यथा स्थान चर्चा हुई है।

उदाहरणार्थ—

सुनो री आज नवल बधायो है।
वेदोक्त गोदान द्विजन को अनगन दायो है।
गरग, परासर अन्वाचार्य मुनि जातकरम करायो है।

वर्ष ग्रन्थि—

सुनियत आज सुदिन सुभगाई।
बरस गांठ गिरिधरनलाल की बहोरि कुसल मे आई॥

नन्दमहोत्सव—

नंदमहोच्छव मची बड़ कीचै।
अपने लाल पर वार न्यौछावर सब काहू को दीजै।

× × ×

कंचन कलस अलंकृत रतनन विप्रन दान दिवाई।

---

१ परमानन्दसागर पद संख्या २ से ३० तक।

नेग वितरण—

नंद बधाई दीजै ग्वालन ।

छठीपूजन—

मंगल घौस छठी कौ आयौ ।

पलना—

हाँलरौ हुलरावै माता ।

अन्नप्रासन—

अन्नप्रासनदिन नंदराय को करत जसोदामाय ।

कर्णवेध—

गोपाल के वेध कर्ण कौ कीजै ।

नामकरण—

जहाँ गगन-गति गर्ग कह्यौ ॥
यह बालक अवतार पुरुष है 'कृष्ण' नाम आनन्द लह्यौ ॥

करवट—

करवट लही प्रथम नन्द नन्दन ।

भूमि पर बैठाना—

हौं वारी ........................................

करतें उतारि भूमि पै राखैं, इहि बालक कौं कीनौं ।

यज्ञोपवीत—

माई तेरो कान्ह कौन अब ढग लाग्यो ।

परमानन्ददास को ठाकुर कांधे परयौ न तागो ।

वाग्दान अथवा टीका—

आज ललन की होत सगाई ।

× × ×

वृषभान गोप टीका दै पठयौ, सुन्दर जान कन्हाई ।

विवाह—

ब्याह की बात चलावन आए ।
सजनी री गावौ मगलचार ।
भामर लेत प्रिया अरु प्रियतम तन मन दीजै वार ।

सुहागरात—

सौहै सीस सुहावनी दिन दूल्हे तेरे ।
× × ×
दुलहिन रैन सुहाग की दूलह वर पायौ ।

सस्कारों के अतिरिक्त परमानन्ददासजी ने बहुत सा ब्रज रीतियो की भी चर्चा की है । जैसे–राई लोन उतारना—

पुरवौ साध नन्द मेरे मन की ।
राई लौन उतारि दुहों कर लगे न द्रिष्टि दुरजन की ।

इसके अतिरिक्त काजल के डिठौना लगाना,—मुहूर्त में कही कर्णवेध में गुरुबल कहीं चन्द्रवल आदि देखना, बच्चों के गले में व्याघ्र-नख (बघ-नख) पहिनाना बच्चों पर जल उतार कर शंखोदक करना, भाग्यवादी बनना, घूंघट की प्रथा आदि । उत्सवों पर स्त्रियों के अंध विश्वास—जैसे-देहरी उलघंन के समय शकुन अपशकुन का विचार मांगलिक अवसरों पर गालियां गाना आदि ।

## ब्रज की वेशभूषा एवं आभरण—

परमानन्ददासजी ने ब्रज की वेश-भूषा मे गोपवेश की ही अधिक चर्चा की है। कांधे पर लकुट तथा दुपट्टे की पाग के साथ तनिया, और बगलबदी की चर्चा उनके अनेक पदों में मिलती है । कवि मर्यादावादी था । इसी कारण संभवतः स्त्रियो की शृंगार सज्जा के वर्णन मे उसका मन अधिक नही रमा, किन्तु कृष्ण के शृंगार-परिधान की छोटी से छोटी वस्तु को वह अपने वर्णन का विषय बनाना नही भूला । स्त्रियों की शृंगार सज्जा का उसने सामूहिक रूप से कथन किया है—

'भूषण, बसन साज मंगल लै मकल सिंगार बनाई ।'[१]

कृष्ण का बाल शृङ्गार—

तिलक, कंठ, कठुला मनि, पीतांबर तापै पीतवसन को चोलना ।

किशोर शृङ्गार—

अरुण पाग पर जरकसी तापर सिवन अपार ।

इस प्रकार कवि ने चोली सारी, नीलाम्बर, पीताम्बर, सूंथन, पाजामा, कुलहे, बागे, टिपारे, मयूर-पिच्छ इजारबद, जरकसी चीरा, साफा, लाल पाग, उपरणा, दुपट्टा सभी की चर्चा की है ।

आभूषणों में—माला, और श्री कंठ मे, नासिका पर बेसर, ठोड़ी पर चिबुक, मस्तक पर टीका, नेत्रों में अञ्जन, कानों मे मकराकृति-कुंडल, कंठमाला, मुद्रिका कौस्तुभ-मणि आदि की चर्चा उनके 'सागर' मे भरी पड़ी है ।

## धार्मिक परम्पराएं—

परमानन्ददासजी कार्तिक माहात्म्य, यमुना स्नान[२], कात्यायनी व्रत[३], गौरी पूजन[४], लक्ष्मी पूजा, पवित्रा धारण[५], शालग्राम सुवासिनी पूजन; नाम-महिमा आदि की यथास्थान चर्चा कर गया है ।

कर्मकाण्ड की ओर संकेत—

(१) विप्र बोलि बरनी करी, दीनी बहु गैय्यां ।

---

१ परमानन्द सागर पद सं० ४२
२ वही ४७५
३ वही ,,
४ वही ,,
५ वही ५२३

ब्राह्मण वरण, गोदान, नाँदी श्राद्धादि मांगलिक कार्यों पर कवि ने ब्रज की वैदिक संस्कृति की ओर संकेत किया है।

(२) विप्र बुलाए नंद पूजन कौं गिरिराज।
पूजन को आरंभ कियो सोडस उपचारें।
धौरी दूध न्हवाय बहुरियां गंगा जल डारें॥

## पर्व और उत्सव—

परमानन्ददासजी ने सम्प्रदाय मे मान्य (१) राम, (२) कृष्ण, (३) नृसिंह (४) वामन, इन चार जयन्तियों के अतिरिक्त वर्ष भर के उत्सव सम्बन्धी पद बनाकर ब्रज संस्कृति में मान्य सभी पर्वों की चर्चा की है दीपावली, गोवर्धनपूजा, गोपाष्टमी, हेमन्त स्नान, मकर संक्रान्ति, वसन्त पंचमी, होली, रामनवमी, अक्षय तृतीया आदि पर्वों की विशिष्ट चर्चाएं की हैं। इन चर्चाओं में ब्रज का हास, विलास, उल्लास आनन्द, धर्म-भावना कथा वार्ता सभी की ओर कवि का पूरा-पूरा संकेत है।

इसके अतिरिक्त कवि ने पवित्रा और जवारे को साम्प्रदायिक दृष्टि से महत्व दिया है। पवित्रा का तो सम्प्रदाय में अत्यधिक महत्व है ही[१]। किन्तु भाद्रपद शुक्ला तृतीया जिसे 'हरतालिका तीज' कहते हैं उस दिन तथा दशहरे के दिन जवारे (यवाहरण) जौ के कुल्ले भगवान् के सिर पर धराये जाते हैं। तदनन्तर भक्त लोग भी धारण करते हैं। इन दोनों उत्सवों की कवि ने काफी चर्चा की है।[२]

उत्सवों में नाना प्रकार के खेल और क्रीड़ाएं भी चलती हैं। अतः चौपड़ पांसा, शतरंज, चट्टा-बट्टा चकरी, बंगी, लट्टू फिरकनी, पतंग, गेंद, आँख मिचौनी, जल क्रीड़ा, मल्लयुद्ध, आदि सभी खेलों का कवि ने यथास्थान वर्णन किया है। ब्रज संस्कृति मे ये खेल प्राचीन काल से चले आ रहे हैं।[३]

### खान-पान-भोजनादि—

ब्रज मंडल भोजन के विषय में सर्वाधिक सुसंस्कृत है। यथा 'देहे तथा देवे' के अनुसार ब्रजभक्त यावन्मात्र सात्विक पदार्थ भगवान को भोग में रखते हैं। गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने श्रीनाथजी के भोग में विशाल वृद्धि कर दी थी। सम्प्रदाय में असमर्पित वस्तु का सर्वथा त्याग है। अतः ब्रज भक्तों के प्रसाद में यावन्मात्र भोज्य-पदार्थों का समावेश है। अन्नकूट अथवा कुनवारा अरोगाने की प्रथा उन्होंने भागवत के आधार पर ही चलाई थी। इसमें ५६ प्रकार के

१ महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का नियम था कि वह नित्य नई पोषाक भगवान को धारण कराते थे। आगे चलकर जब यह सम्भव नहीं हो सका तो ३६०सूत्रों की माला ही प्रभु को अर्पण की जाने लगी। शरण मंत्र वाली श्रावण शुक्ला एकादशी को महाप्रभु जी ने श्रीनाथजी से गद्यात्मक मंत्र लेने के उपरान्त श्री गोवर्धननाथजी को पवित्रा अर्पण किये थे। सम्प्रदाय में यह परिपाटी आज भी प्रचलित है। देखो पद सं०—१६७, १६८, १६६।

२ जवारे यव के कोमल कुल्ले जो किसी लकड़ी के तख्ते या सकोरे में उगाये जाते हैं। इनकी हरतालिका तृतीया और दशहरे के दिन पूजा होती है। उस दिन भगवान को ये अर्पण किये जाते हैं।
पद संख्या २०२।

३ लाल आज खेलत सुरंग खिलौना। ८०६

व्यंजन नैवेद्य में रखे जाते थे। अतः इसे 'छप्पन भोग' भी कहते हैं। ब्रज गोपिकाओं कुटुम्बिओं के यहाँ से जो नैवेद्य आता था, उसे 'कुनवारा' कहा जाता है। अन्नकूट वर्ष में एक दिन होता है। किन्तु कुनवारा ब्रज भक्तों के मनोरथ पर आधारित है। अन्नकूट में कवि ने अनेक पदार्थों के नाम दिए हैं। उदाहरण के लिए—

दूध, मक्खन, घी, पापड़, बरी, कचौरी, साग, पेठा, पकौरी, रायता, रोटी, फेनी, खीचड़ी, खुरमा, खीर, लाजा, लपसी, मालपुआ, लड्डू, गूँझा, सेव, जलेबी, दही, बूरा, मलाई, सिखरण, (श्रीखण्ड) दार-भात, चकुली, पुआ, पेड़ा, बरफी, कांजी, पायस, सेमई, द्राक्षा, केला, साझे मूग, रवड़ी, वासोंधी, जीरा, मँगोरी, चीला, शकरकंद, अरवी, रतालु, बैंगन, भुरता, साठा, ठोड़, मठरी, सैमई, कचरिया, चना, बरी, भुंजेना।

## पर्दा प्रथा—

कवि ने एक दो स्थलों पर घूँघट, लाज और संकोच की मधुर चर्चा की है—

१—मैया मोहे न्हानी सी दुलहिन भावै।[२]
कर अंचल पट ओट बाबा की ठाढ़ी बयार ढुरावै॥ (४६९)

२—परोसत गोपी घूघट मारे।

उपर्युक्त लोक परम्पराओं के अतिरिक्त कवि ने सामजिक राज-व्यवस्था की ओर भी हलका-सा संकेत करते हुए ब्रज संस्कृति की राजनीति सम्बन्धी व्यवस्था की चर्चा की है। राजा प्रजा से कर लिया करता था और वह प्रजा को सब प्रकार से प्रसन्न रखने की चेष्टा करता था। जो राजा प्रजा को प्रसन्न नहीं रखता था वह कर्तव्यच्युत समझा जाता था।

नाम कहा या देव को, कौन लोक को राज।
इतनो बलि हमरो खात है करत कहा है काज। (२७२)

हमरो देव गोवर्धन रानो।
जाकी छत्र छाँह हम बैठे, ताहि छाँड़ि और को मानैं। (२७९)

## राजस्व की चर्चा—

कहति हों बात डरात डरात
काल्हि दूत आवन चाहत है रामकृष्ण को लैन।
नंदादिक सब गुवाल बुलाए अपुनो वार्षिक लैन॥[३]

इसी प्रकार ब्राह्मण पूजा की चर्चा करके वर्णाश्रम-व्यवस्था में कवि ने आस्था दिखलाई है।

---

१ पद २७२।
२ छैल छबीले लाल कहत नंदराय सों। ४२८
३ तुलना—करो वै वार्षिकी दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः। भाग० १०-६-३१

जनम गांठ दिन नंदलाल की करत जसोदा माय ।
ब्राह्मण-देव पूजि कुलदेवी बहुत दधानो पाय ।
कुटुम्ब जिमाय पाटंबर दीने भवन आपुने आय ।
मागध, भाट, सूत सनमाने सबहित हरष बढ़ाय ।। (५४)

मूर्ति पूजा एवं परिक्रमा विधि—

गोवर्धन पै दीपदान कियौ मन भायौ ।
चहुँ दिसि जगमग जगमग ज्योति कुहूनिसि भयौ सुहायौ ।
परिक्रमा सब कोऊ चले दाहिनौ दियौ गिरिराज ।
गीत नाद उद्‌घोष सौं मगन भए व्रजराज ।।
यह निस्चय सब दिन कियौ गिरि को कियौ सन्मान ।

## परमानन्दसागर में उल्लिखित व्रज के स्थान—

परमानन्ददासजी ने अपने काव्य मे प्रसंगवश अनेक व्रज के स्थानों की चर्चा की है। इससे न केवल भगवान् के विविध लीला—स्थलों का ही संकेत मिलता है अपितु कवि का व्रज के प्रति प्रेम और उन स्थानों की ऐतिहासिकता भीसिद्ध होती है। वे स्थान हैं—गोकुल, मथुरा मधुवन, मानसीगंगा, वंसीवट, बरसानो, कदम्ब खंडी, गोवर्धन, गोकुल, नन्दगाम, परासौली, ढाकवन, कुमुदवन, श्यामढाक, भोजनशिला, दानघाटी, सिंदूरशिला पलाशवन, गह्वरवन, कदम्बवन, मधुवन, तमालवन, निधुवन, मानसरोवर आदि।

१—आज गोकुल में बजत बधाई।
२—कापर ढोटा करत-ठकुराई।
× × × × × ×
रोकत घाट-बाट मधुवन को ढोरत माट करत बुराई।
३—मेरी भरी मटुकिया ले गयौ री।
× × × × × ×
वृन्दावन की सघन कुंज में ऊँची नीची मोसौं कहि गयौ री।
४—मानसी गंगा नीर सौं स्नान करायें नंदराय।
५—मैया री मैं गाय चरावन जैहों।
× × × ×
वंसीवट की सीतल छैयाँ खेलन मैं सुख पैहौं।
६—ब्याह की बात चलावत मैया।
बरसानें वृषभान गोप कें लाल की भई सगैया।
७—कुंज भवन में मंगलचार।
चौकी रची कदम खंडी में सघनलता मंडप विस्तार।
८—आयौ मथुरा मध्य हठीलौ। पद—५००
९—गोवर्धन, गोकुल, वृन्दावन नय-निकुंज प्रति नित्य विलास।

---

पृष्ठ ३२८ में देखो—करो वै वार्षिकीदत्तो रावै दृष्टा वयं च वः। भाग० १०-६-३१।

१०—चलि री सखी नंदगाम बसिए। (६४०)

११—भरी छाक हारी पांच आवति ब्रजराज लाल की। (६४२)

× × × ×

बाजत बेनु धुनि सुनि चपल गति परासौली के परे।

× × × ×

हँसि हँसि कसि कसि फेंटा कटिन सो बाँटत छाक वन ढाकन माँह।

१२—आज दधि मीठो मदन गोपाल।

× × × ×

बहुत दिनन हम बसे गहवर बन कृष्ण तिहारे साथ।

१३—श्यामढाक तर मंडल जोर जोर बैठे सब छाक।

× × × × ×

१४—सिला पखारो भोजन कीजै।

१५—दानघाटी छाक आई गोकुल ते काँवर भरि भरि।

१६—हँसत परस्पर करत कलोल।

× × × ×

तोरे पलासपत्र[1] बहुतेरे पनवारो जोर्यो विस्तार। (६५१)

१७—टेरत हरि फेरत पट पियरो।

आओ रे आओ भैया गुवालो गहवर छाँह[2] वृन्दावन नियरो॥

१८—कदम[3] तर भलीभाँति भयो भोजन।

१९—भोजन कीनो री गिरवरधर।

कहा बरनो मण्डल की सोभा मधुवन ताल कदवतर[4]

२०—अबला तेरे बल हैं न और।

यमुना तीर तमाल[5] लता बन फिरत निरंकुस नंद किसोर।

२१—आखिन आगें स्याम उदय स्याम कहन लागी गोपी कहाँ गए स्याम।

२२—मधुवन आदि सकल बन ढूंढ्यो निधुवन कुजन धाम।

इस प्रकार परमानन्ददासजी ने उक्त २४ स्थानों की तो स्पष्ट ही चर्चा की है। कतिपय स्थानो का वहाँ की लीला द्वारा संकेत मिलता है, परन्तु काव्य मे उनका स्पष्ट उल्लेख नही है। कृष्ण लीला जो कवि ने गाई है वह सारस्वत कल्प की है। अतः जिस वृन्दावन अथवा मधुवन की चर्चा उसके काव्य मे है वह गिरिराज के निकट ही होना चाहिए। क्योंकि यमुना और गिरिराज ये ही दो स्थान ऐसे हैं जो युग युग से अटल हैं और प्राचीनता के द्योतक हैं। फिर महाप्रभु जी की निज वार्ता मे आया है।

---

१ यहाँ पलाशवन की ओर संकेत करता है।

२ यह गहर वन वृन्दावन के निकट है।

३ कदम्ब वन की ओर संकेत है।

४ तालवन मधुवन कदम्बवन

५ तमालवन

"—ताते श्री गोवर्धननाथजी की आज्ञा लेके श्री आचार्य जी महाप्रभु परासोली पधारे। तिन को नाम आदि वृन्दावन है, सो वहां जाय के श्री आचार्य महाप्रभु देखें सो गोपालदास गाये हैं।"—निजवार्ता

फिर गोवर्धन की स्थिति वृन्दावन के निकट मानी गई है। गर्गसंहिता के वृन्दावन खंड में इसका प्रमाण है।[1] कवि के समय मे व्रज की जो स्थिति थी, उसमे और आज के व्रज में कोई विशेष अन्तर नही। हाँ उन्होने गिरिराज के पास मधुवन तथा वृन्दावन की चर्चा करदी है। आज का वृन्दावन पुष्टि-सम्प्रदाय का केन्द्र-स्थल नही है। अष्टछापी—कवियों ने जिस वृन्दावन और गोकुल की चर्चा की है। वे उस समय गिरिराज के निकट स्थित थे। उसी प्रकार मध्याह्न छाक, क्रीडा, गोचारण, शृंगार, आदि के स्थान—गह्वरवन, भद्रवन, खेलनवन, वृहद्वन, शृंगार वट, आदि स्थानों की लीलाओं की चर्चा तो है किन्तु इन स्थानों की स्पष्ट चर्चा नही। यों तो सत्यनारायण जी कविरत्न के शब्दों मे सम्पूर्ण व्रज ही रस कमण्डलु है।[2]

इस व्रज-भूमि के प्रति कवि की इतनी श्रद्धा थी कि जिसके सामने वह वैकुण्ठादि धामों को भी तुच्छ समझता था। पावन यमुना जल, कदम्ब की शीतल स्निग्ध छाया और व्रजवास यही कवि की इच्छा थी।

> कहा करू वैकुंठहि जाय।
> जहां नही नंद जहां न जसोदा, जहां न गोपी ग्वाल न गाय।
> जहां न जल जमुना को निर्मल, और नही कदमन की छाय।
> परमानंद प्रभु चतुर ग्वालिनी, व्रज रज तजि मेरी जाय बलाय॥

जिस व्रज-भूमि से कवि की इतनी ममता थी उस प्रदेश की भाषा, वहां की संस्कृति वहाँ का जलवायु एवं वातावरण उसको आजीवन प्रिय रहा और उसे छोड़कर वह कभी न जा सका।

**परमानन्ददासजी की बहुज्ञता—**

परमानन्ददासजी के काव्य का गम्भीर अध्ययन करने से हम दो तथ्यों पर पहुँचते हैं—

(१) कवि उच्चकोटि का विद्वान् और बहुज्ञ था।

(२) उसका उद्देश्य कविता न होकर भगवत्सेवा का प्रतिपादन एवं लीला रस का आस्वादन था।

कवि की बहुज्ञता का परिचय हमें उसके पदों के आधार पर मिलता है। एक ओर जहां वह उच्चकोटि का दार्शनिक, कवि और रसिक था वहाँ दूसरी ओर वह उच्चकोटि का संगीतज्ञ भी था। इसके उपरान्त उसका ज्योतिष ज्ञान भी उसके पदों से विदित होता है। उसने यत्र तत्र शुभ-लग्नों की चर्चा की है। कर्ण-वेध मे गुरुबल, तिथिबल, नक्षत्र, वार आदि की ओर उसने संकेत किया है।[3]

कवि न्याय का भी पण्डित था। उसने अनुमान-प्रमाण की एक स्थान पर चर्चा की है।

---

१ स्वद्वि गोवर्धनो नाम वृन्दारण्ये विराजमे-ग० सं० अ-१ श्लोक १६

२ भुवन विदित इई जदपि—चारु-भारत-सुविशावन।
पै रस पूर्ण कमंडल व्रज मंडन मन-भावन॥

३ परमानन्दसागर-पद-५७

दस ससि के अनुमान प्रमान चमक जनावत सगरी ।

इसी प्रकार पाक शास्त्र में भी उसकी गति थी । अनेक पदों मे उसने वस्तु परिगणन शैली के आधार पर पकवानों-व्यंजनो के नाम गिनाये हैं । गोवर्धनलीला वाला पद तो इसीलिये लम्बा है कि उसमे पूरे अन्नकूट तथा कुनबारे के भोग के पदार्थों का वर्णन आगया है ।[1]

इसी प्रकार कवि ने वेषभूषा, चित्रकला आदि के वर्णन भी दिये हैं ।

भले ही ये सब कवि की बहुज्ञता के परिचायक हों, परन्तु उसका लक्ष्य केवल भगवत् सेवा की महत्ता और लीला रस का आस्वादन करना और उसका प्रतिपादन करना था । उसने अपने सम्पूर्ण काव्य में इसी लक्ष्य की पूर्ति की है ।

कवि का पौराणिक ज्ञान उच्च कोटि का था । उसके अनेक पदों से पुराणों के विविध आख्यानों के ज्ञान का परिचय मिलता है ।[2] परन्तु उसने भागवत के अतिरिक्त केवल पद्म-पुराण का ही उल्लेख किया है । इसके दो हेतु हैं । पद्म-पुराण भागवत के उपरान्त भक्ति का सर्वाधिक प्रतिपादक ग्रन्थ है । दूसरे भागवत की महत्ता पद्म-पुराण मे सर्वाधिक प्रतिपादित की गई है श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ के ६ अध्यायों मे जो माहात्म्य दिया हुआ है वह पद्मपुराण से ही है । अत. उसने पद्मपुराण से भक्ति, तीर्थ-माहात्म्य एव भागवत माहात्म्य जगद्गुरु वल्लभाचार्य से सुना[3] । और उसी पर दृढ रह कर गोपी-भाव की साधना करता रहा ।

१ परमानन्दसागर-कुवर खेलत राधा संग-प० स० ४६२ ।

२ परमानन्दसागर पद सख्या-४१६, ७२२, ७६१, ९६६ ।

३ पद संख्या-१६, ७३२, ७३७ ।

एकादश अध्याय

# परमानन्ददासजी एवं अष्टछाप के अन्य कवि

महाप्रभु वल्लभाचार्य एव विट्ठलनाथजी के ये आठो शिष्य व्रज-भाषा काव्य एव कृष्ण-भक्ति मे अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन्हे यदि परस्पर तारतम्य से देखा जाय तो काव्य मर्मज्ञो ने कुछ निष्कर्षों पर पहुँचने की चेष्टा की है। परन्तु जब तक आठो ही महानुभावों का-सम्पूर्ण-काव्य सहृदय साहित्य रसिको के सामने पूर्ण रूपेण नही आ जाता तब तक ठीक निष्कर्ष निकालना कठिन सा प्रतीत होता। 'अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय' के विद्वान् लेखक डा० दीनदयालु गुप्त ने भी अपने कुछ निष्कर्ष दिये है।

अष्टछाप कवियों के उपलब्ध—काव्य के परिमाण की तुलनात्मक दृष्टि से अष्टछापी कवियो का क्रम —

सूरदास
नददास
परमानन्ददास
कृष्णदास
कुम्भनदास
गोविन्दस्वामी
चतुर्भुजदास
छीत स्वामी

साम्प्रदायिक महत्व एव काव्य कला तथा भावानुभूति की दृष्टि से तारतम्य—

सूरदास
परमानन्ददास
नददास
कुम्भनदास
चतुर्भुजदास
कृष्णदास
छीतस्वामी
गोविंदस्वामी

आठों ही महानुभावों ने अपनी साम्प्रदायिक काव्य-रचना महाप्रभु वल्लभाचार्य की शरण मे आ जाने के उपरान्त ही प्रारम्भ की थी। अत शरण-काल के क्रमानुसार उन्हे इस प्रकार भी रखा जा सकता है—

१—कुम्भनदास । १५२५-१६४० । अवस्था ११५ वर्ष शरण सवत् १५५६=३१ वर्ष
२—सूरदास । १५३५-१६४० । अवस्था १०५ वर्ष शरण सवत् १५६७=३२ वर्ष

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३—कृष्णदास । | १५५३-१६३६ । अवस्था | ८३ वर्ष शरण संवत् १५६८=१५ वर्ष |
| ४—परमानन्ददास। | १५५०-१६४१ । अवस्था | ९१ वर्ष शरण संवत् १५७७=२७ वर्ष |
| ५—गोविंद स्वामी । | १५६२-१६४२ । अवस्था | ८० वर्ष शरण संवत् १५९२=३० वर्ष |
| ६—छीत स्वामी । | १५७२-१६४२ । अवस्था | ७० वर्ष शरण संवत् १५९८=२० वर्ष |
| ७—चतुर्भुजदास । | १५७७-१६४२ । अवस्था | ५५ वर्ष शरण संवत् १५९८=११ वर्ष |
| ८—नंददास । | १५९०-१६४० । अवस्था | ५० वर्ष शरण संवत् १६०७=१७ वर्ष |

इस प्रकार शरणकाल और लीलापरक रचना परिमाण की दृष्टि से परमानन्ददासजी का चतुर्थ स्थान एवं आयु भावानुभूति तथा काव्य सेवा की दृष्टि से वे सूर के पश्चात् आते हैं परन्तु इन कवियों की सभी क्षेत्रों में परस्पर तुलना करना कठिन होगा। प्रत्येक महानुभाव का अपना एक विशिष्ट महत्व है और उपासना की विशिष्ट रुचि है जिसमें वह मूर्द्धन्य ठहरता है।

उदाहरणार्थ—

सूर बाल-लीला तथा मान-लीला एवं विप्रलम्भ शृंगार, के लिए प्रसिद्ध है–इस क्षेत्र में वे अप्रतिम हैं। प्रेंखशायी कृष्ण की सूक्ष्म चेष्टाओं के वर्णन से लेकर मणिखंभों में प्रतिबिंब को लौनी खिलाने तक के शतशः चित्र सूर ने अपनी दिव्य प्रतिभा से प्रस्तुत किये हैं इस क्षेत्र में उनके समकक्ष दूसरा कवि ठहर नही पाता। इसी भाँति राधा की मान-लीला मे—सूर ने उनके अन्तरंग उत्कट प्रेम की जो अभिव्यक्ति की है, उसे कोई अन्य कवि नही कर सका है। मानवती राधा एवं कृष्ण के विविध भावों का जो मनोवैज्ञानिक चित्रण सूर ने उपस्थित किया है वह चिरकाल से साहित्य की अमर सम्पत्ति बना हुआ है। सरस भावुक प्रज्ञा-चक्षु सूर ने—जिसने कभी गृहस्थाश्रम की झंझटों को नहीं झेला; न जिसने कभी प्रणय प्रेम-परिहास-विलासों को स्थूल चक्षुओं से देखा, वह दिव्य, मानवती राधा के मान को इतनी सजीवता के साथ कैसे प्रस्तुत कर सका; यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है। निश्चय इस क्षेत्र में सूर अद्वितीय है। इसी प्रकार भ्रमर-गीत में गोपियों का विप्रलम्भ प्रस्तुत करने में सूर ने कोई कसर नही उठा रखी। वियोग-दशा की जितनी भी मार्मिक दशाएँ सम्भव हो सकी कल्पना और अनुभूति के धनी सूर ने सभी प्रस्तुत करदी हैं। उनका विप्रलम्भ हिन्दी साहित्य का और विशेषतः ब्रज-साहित्य का जगमगाता हुआ मणिरत्न है, जिसकी दिव्य-प्रभा कभी भी मन्द न हो सकेगी।

उपर्युक्त तीनों ही भाव-क्षेत्र मे सूर निश्चय ही अन्यतम मूर्द्धन्य कवि हैं परन्तु परमानंद-दासजी भी सूर की भाँति अपने काव्य के कुछ विशिष्ट क्षेत्र रखते हैं। वे मुख्यतः बाल, पौगण्ड और किशोर लीला के कवि हैं। उनका बाल-लीला वर्णन सूर की अपेक्षा सक्षिप्त अवश्य है और सूर की भाँति वे अनन्त शिशु- चेष्टाओं को प्रस्तुत भी नही कर सके हैं; फिर भी जितना वर्णन उन्होने किया है वह अद्वितीय है। उसी प्रकार विप्रलम्भ के भी वे सिद्ध कवि हैं।

उन्हीं के अपने शब्दों में—

'बिछुरत कृष्ण-प्रेम की वेदन कछु परमानन्द जानी।' (४४२)

उसी प्रकार माहात्म्य ज्ञान होने पर भक्ति की तन्मयता मे वे पुकार उठते हैं।

"अब न छाड़ो चरन कमल महिमा मैं जानी।

भगवान के गोप-वेश की लीला के वे अन्यतम कवि हैं।

"परमानन्द गोप भेख लीला अवतारी।

परन्तु परमानन्ददासजी हैं मुख्य रूप से किशोरलीला के ही गायक। यौवन के वासन्तिक उन्माद भरे चिरवसन्त का संदेश देने वाले प्रेम की अमरता एवं सौन्दर्य तथा साहचर्यजन्य-हृदय की गहरी प्रणयानुभूति को परमानन्दासजी ने जितनी सफलता के साथ चित्रित किया है उतना हिन्दी का अन्य कवि शायद ही कर सका है। युगल लीला की मादकता में कवि स्वयं इतना भावविभोर हो गया था कि उसे बाह्य-जगत् अथवा मर्यादा का भान नहीं रहा और उसका किशोर लीलात्मक-काव्य एकदम एकान्तिक, रागानुगा-भक्ति-सम्पन्न भक्तों के ही काम का रह गया है। उसने मर्यादा के सभी बंधन विछिन्न कर दिये। उसे लोक-वेद की सुदृढ़ मर्यादा प्राचीर सैकत की शिथिल राशि प्रतीत हुई। जिसे उसने अपने भावात्मक पदाघातों से अनायास ही समाप्त कर दिया। सर्वस्व वार देने की निश्छल मनोवृत्ति का जो अलौकिक परिचय कवि ने अपनी चरम रूपासक्ति में दिया है—वह अद्वितीय है। युगल लीला के रसाब्धि में कवि चूडान्त अवगाहन करके जिस आनन्द सुमेरु पर विचरण करता था, वह इस पार्थिव जगत् की कल्पना से सर्वथा परे है। रस की वह गहराई अथवा आनन्द की वह अभ्रंलिह ऊँचाई अनुभूति की वस्तु है शब्दों की नहीं। परमानन्ददासजी इस क्षेत्र में सभी अष्टछापी कवियों में मूर्द्धन्य हैं अपनी तन्मय अलौकिक रसमयता के कारण उन्हें अश्लील कहना उचित नहीं। उनकी भक्ति का रहस्य है—"कृष्णाधीना तु मर्यादा स्वाधीना पुष्टिरुच्यते।"

अष्टछाप के नंददासजी अपनी रासलीला के लिये प्रसिद्ध हैं। निस्सन्देह उनकी रास-लीला की शारदीय ज्योत्स्ना इतनी शीतल-इतनी मधुर इतनी दिव्य एवं आकर्षक है कि उसके सामने अन्य कवियों का रास-वर्णन फीका पड़ जाता है।

नंददासजी मे द्विविध पाण्डित्य के दर्शन होते हैं—उनके पदों मे लीला, भक्ति-भावना, सिद्धान्त-चर्चा तो है ही उधर किसी मित्र का मन रखने के लिये अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, रस-मंजरी, विरहमंजरी आदि पांच मंजरियों के आदि गणेशों मे से भी वे एक हैं। इस प्रकार रीति कालीन शृंगार प्रवृत्ति का शिलान्यास वस्तुतः उन्ही से समझना चाहिए। इस दिशा में उन्होंने साहित्य का नया पथ-प्रदर्शन किया है। उसे हम लौकिक अनुभूति से अलौकिक भक्ति की ओर अभिमुख करने का प्रयत्न कहेंगे। इसलिए नंददास जड़िया और सब गढ़िया।' कहा गया है। परन्तु अध्यात्मिक तन्मयता जो परमानन्द में है उसका उनमें अभाव है। उसी प्रकार गोविन्दस्वामी के विषय में एक लेखक की निम्नांकित पंक्तियों से हम नितान्त सहमत हैं कि—

"वे एक प्रतिभाशाली कलाकार, मानव-हृदय की सूक्ष्म वृत्तियों की द्रष्टा, दार्शनिक, भक्त और अमर कवि हैं। सभी अष्टछाप की काव्य प्रतिभा प्रायः एक सी है, क्योंकि सभी को उसके शिरोमुकुट सूर से प्रकाश प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन मिलता है। अष्टछापी कवियों का एक मौलिक स्वरूप है। अतएव उनकी तुलना किसी अन्य कवि से करना एक प्रकार से अनुचित ही है। वात्सल्य के अनूठे चित्र, बाल मनोवृत्तियों की अद्भुत-व्यंजना, वियोग और संयोग की विविध अन्तवृत्तियों का हृदयस्पर्शी वर्णन तथा भक्ति की अलौकिक मनोरमता,

गोविन्दस्वामी की अपनी विशेषतायें है—उनका काव्य लौकिक-अलौकिक दोनो दृष्टियों से उपादेय है—"

*संगीत की भाव-विभोरता परमानन्ददासजी जैसी गोविन्दस्वामी मे भी मिलती है।* परन्तु उनमे परमानन्ददासजी की एकान्त रागानुगा भक्ति का उतना विशद प्रतिपादन नही मिलता।

इनके अतिरिक्त कुम्भनदास, कृष्णदास, छीतस्वामी एवं चतुर्भुजदास आदि सभी कृष्ण-लीला गायक भक्तगण कृष्ण चरित गान के लिये हिन्दी-साहित्य मे अमर हैं। तथापि वे सूरदास, परमानन्ददास एव नददास के उपरान्त ही आते हैं। इन कवियो का अपना अपना क्षेत्र है। परन्तु इनका साहित्य इतना कम उपलब्ध है कि सूर और परमानन्ददासजी के काव्य मे उनके निखिल भावों तथा कथावस्तु का समावेश हो जाता है। फिर अष्टछाप के सभी कवियों मे यद्यपि प्रत्येक ने श्रीकृष्ण लीला के प्रत्येक प्रमुख प्रसग को लेकर पद रचना की है। तथापि कुछ विशेष प्रसग कुछ ही कवियो ने लिखे हैं। इसका कारण उनके व्यक्तिगत सस्कार हैं। परमानददासजी के युगललीला के प्रसग को अन्य अष्टछाप के कवियो ने नाम मात्र को ही स्पर्श किया है। इस प्रकार कुम्भनदास, कृष्णदास, छीतस्वामी आदि ने रासलीला और भ्रमरगीत के प्रसगों को इतनी मार्मिकता अथवा महत्व के साथ नही लिया है जितना सूर, परमानन्द अथवा नंददास ने। अतः हम परमानंददासजी की विशेषताओं पर दृष्टिपात करें तो इन निष्कर्षों पर पहुँचते हैं।

१—वे बालपौगण्ड और किशोर लीला के अद्वितीय गायक है।

२—विप्रलम्भ की अपेक्षा उनमे संयोग शृंगार की ही प्रधानता है।

३—वे सम्प्रदाय के कट्टर अनुयायी भागवत लीलानुसारी हैं। अतः उनमे साम्प्रदायिक विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं।

४—महाप्रभु एवं सुबोधिनी के वे अप्रतिम उपासक हैं। उनके पदों को यदि सुबोधिनी की विशद व्याख्या कहा जाय तो अनुचित न होगा।

५—महाप्रभुजी के अनन्य भक्त होते हुये भी वे वत्सहरण वाले भगवन्माहात्म्य को भूले नही।[1] इससे उनकी मौलिकता एव स्वतन्त्र रूचि का परिचय मिलता है।

६—महाप्रभुजी ने *वत्सहरण वाले तीन अध्यायो* को प्रक्षिप्त माना है, किन्तु अष्टछाप के कवियो मे सर्वाधिक भागवत का अनुसरण करने वाले होकर भी उन्होंने इस प्रसंग को ग्रहण किया है। भागवत और पद्मपुराण के उल्लेख उन्होने अपने पदो मे यत्र तत्र सर्वत्र दिये हैं।

७—सूर के उपरान्त व्रज-संस्कृति का पूरा चित्रण यदि कहीं है तो परमानंददासजी में। अष्टछाप के अन्य कवियो मे व्रज-संस्कृति का उतना विशद चित्रण नही।

८—सूर के उपरान्त भले ही काव्य परिमाण की दृष्टि से नंददासजी आते हों। परन्तु निर्गुण प्रीति के वर्णन में परमानददासजी ही अग्रणी हैं।

१ देखो-प० सागर-६७१

६—यदि सूर मानलीला, नन्ददासजी अपनी रासपंचाध्यायी और कृष्णदास अपनी रासलीला के लिये अमर हैं, तो परमानन्ददासजी अपनी बाल, किशोर और युगललीला के लिये अमर और अप्रतिम हैं। वे भाव-क्षेत्र के एकान्त भावुक कवि हैं। प्रेम के दिव्य उदाहरण उनके इतने हैं कि पाठक किसको ले किसको छोड़े। अतः उनके लिये यही वाक्य ठीक उतरता है कि—

"भरे भवन के चोर भए बदलत ही हारे।"

अतः परमानन्दजी सूक्ष्म निरीक्षण भगवदासक्ति भाव-प्रवणता, कल्पना, अनुभूति, संगीत तथा भाषा की सजीवता, मधुरता, सरलता, सुबोधता एवं रसात्मकता के लिये ब्रज भाषा-भक्ति-साहित्य में एक अद्वितीय स्थान रखते हैं। उनकी काव्य-शक्ति अप्रतिम और भक्ति-भावना अद्भुत है।

कृष्णार्पणमस्तु

# सहायक ग्रंथों की सूची


वेद उपनिषद् एवं पुराण साहित्य—

१—ऋग्वेद
२—यजुर्वेद
३—तैत्तरीयोपनिषद्
४—गोपालतापिनीयोपनिषद्
५—अग्निपुराण
६—श्रीमद्भागवत महापुराण
७—स्कन्द पुराण
८—गर्ग संहिता
९—नारदीय-भक्ति-सूत्र
१०—शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्र
११—श्रीमद्भगवद्गीता

साम्प्रदायिक-साहित्य

१२—श्रीमद् ब्रह्मसूत्राणुभाष्यम्—निर्णयसागर बम्बई
१३—श्रीमती टिप्पणी-गोस्वामी विट्ठलनाथजी कृत
१४—अष्टसखामृत-प्राणनाथ
१५—उज्ज्वल नीलमणि-निर्णय सागर
१६—तत्वदीप निबन्ध
१७—तत्वार्थ दीप निबन्ध—यूनियन प्रिंटिंग प्रेस अहमदाबाद
१८—नागर समुच्चय—नागरीदास
१९—भक्तमाल भक्तिसुधा-नवलकिशोर प्रेस
२०—भक्तमाल-टीका प्रियादास
२१—भक्तविनोद-कवि मियांसिंह
२२—भावप्रकाश-अष्टछाप-स्मारक समिति मथुरा
२३—भक्तिवर्द्धिनी तैमीवाला
२४—भक्तिहंस भक्त नामावली-नागरीदास
२५—वल्लभ दिग्विजय
२६—वल्लभ-पुष्टि-प्रकाश
२७—शृंगार चतुःश्लोकी
२८—वैष्णवाह्निक पद
२९—विद्वन्मण्डनोपोद्घात—वल्लभाधीश विद्यामंदिर मथुरा
३०-४५—षोडश ग्रंथ
४६—राग कल्पद्रुम

४७—संस्कृत-वार्ता-मणिमाला
४८—सिद्धान्त रहस्य
४९—पुष्टिमार्गीय लक्षणानि
५०—श्रीमद्भागवत दशमस्कंधानुक्रमणिका
५१—श्रीकृष्ण प्रेमामृत
५२—राधा प्रार्थना चतुःश्लोकी
५३—स्वामिनी स्तोत्र
५४—परिवृढाष्टक
५५—शृंगाररस मंडनम्
५६—श्री यमुनाविज्ञप्ति.
५७—श्रीमत्प्रभो, सर्वांतरयामित्वनिरूपणम्
५८—भक्तिद्वैविध्य निरूपणम्
५९—सर्वात्मभाव निरूपणम्
६०—स्वामिन्यष्टक
६१—श्री द्वारकेशजी कृत घोल
६२—सुबोधिनी
६३—श्री गोकुलनाथजी के वचनामृत
६४—श्री हरिराय जीवन चरितम्
६५—सत्सिद्धान्तमार्तण्ड
६६—सहस्त्रश्लोकी सेवा-भावना
६७—वल्लभख्यान
६८—यमुनाष्टक-तेलीवाला
६९—पुष्टिप्रवाह मर्यादा भेद
७०—सेवा फलम्
७१—सिद्धान्त मुक्तावली
७२—सम्प्रदाय प्रदीप—काकरौली
७३—ब्रह्म सम्बन्ध
७४—सेवा कौमुदी
७५—युगल गीत
७६—वेणु गीत
७७—श्री यमुनाजी के १०८ पद
७८—व्रतोत्सव निर्णय

## जीवन चरित

७९—श्रीनाथजीनी प्रागट्य वार्ता
८०—चौरासी वैष्णव वार्ता—सम्पादक परीख
८१—दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता
८२—महाप्रभु वल्लभाचार्यजीनो प्रागट्य वार्ता
८३—प्राचीन वार्ता रहस्य-विद्या-विभाग कांकरौली

८४—अष्टछाप
८५—श्री वल्लभाचार्य और उनके सिद्धान्त
८६—श्री विट्ठलेश चरितामृत परीख
८७—वार्ता साहित्य मीमांसा-परीख
८८—अष्टसखान की वार्ता-परीख
८९—गोविन्द स्वामी—कांकरौली
९०—कुंभनदास—कांकरौली
९१—चौराशी वैष्णवोनू घोल कांकरौली
९२—वैठक चरित्र हस्तलिखित—वजरंग पुस्तकालय
९३—निज वार्ता हस्तलिखित।
९४—दी कल्चरल हैरीटेज आफ इण्डिया बुक थिरी

## दार्शनिक

९५—ब्रह्मवाद ले० रामनाथ शास्त्री
९६—पुष्टिदर्पण
९७—भक्ति और प्रपत्ति का स्वरूपगत भेद
९८—पुष्टिमार्ग—परीख

## हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ

९९—शिवसिंह सरोज
१००—गार्सादतासी—डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
१०१—मिश्र बन्धु विनोद
१०२—दी मोडर्न हिस्ट्री आफ हिन्दुस्तान—ग्रियर्सन
१०३—अकबर दी ग्रेट मुगल एम्परर
१०४—इम्पीरिल फरमानस्—झवेरी
१०५—हिस्ट्री आफ हिन्दी लिटरेचर एफ० इ० की
१०६—हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१०७—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा
१०८—हिन्दी साहित्य की भूमिका—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
१०९—हिन्दी साहित्य—आचार्य हजारीप्रसाद
११०—हिन्दी भाषा और साहित्य—डा० श्यामसुन्दरदास
१११—मोडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान
११२—कांकरौली का इतिहास
११३—हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास—अयोध्यासिंह उपाध्याय
११४—हिन्दी साहित्य का इतिहास—ब्रजरत्नदास
११५—हमारी हिन्दी साहित्य और भाषा परिवार
११६—हिन्दी साहित्य की चर्चा—गंगाराम

## आलोचनात्मक ग्रंथ

११७—अष्टछाप परिचय—परीख और मीतल
११८—अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग १—डॉ० दीनदयालु गुप्त

११९—अष्टछाप वल्लभ सम्प्रदाय भाग २—डा० दीनदयाल गुप्त
१२०—सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा
१२१—सूरदास—डा० ब्रजेश्वर वर्मा
१२२—सूर निर्णय—परीख
१२३—अष्टछाप—डा० धीरेन्द्र वर्मा
१२४—सूरदास—आचार्य शुक्ल
१२५—सूर साहित्य की भूमिका—भटनागर और त्रिपाठी
१२६—मध्यकालीन धर्म साधना—डा० हजारीप्रसाद दिवेदी
१२७—मध्यकालीन प्रेम साधना—परशुराम चतुर्वेदी
१२८—योग प्रवाह—डा० सम्पूर्णानन्द
१२९—रसेश श्रीकृष्ण-जे० जी० शाह
१३०—भारतीय साधना और सूर साहित्य-मुंशीराम शर्मा
१३१—व्यास वाणी—सम्पादक राधाकृष्ण गोस्वामी

## काव्य ग्रन्थ एवं संगीत ग्रंथ

१३२—परमानन्दसागर-परीख जी की १७५४ वाली २ प्रतियाँ
१३३—परमानन्दसागर—नाथदारा पुस्तकालय हस्तलिखित ४ प्रतियाँ
१३४—परमानन्दसागर-सम्पादक डॉ० गोवर्धननाथ शुक्ल
१३५—कीर्तन संग्रह भाग—१
१३६—कीर्तन संग्रह भाग—२
१३७—कीर्तन संग्रह भाग—३
१३८—अष्टछाप पदावली—डा० सोमनाथ
१३९—रागकल्पद्रुम भाग—१
१४०—रागकल्पद्रुम भाग—२
१४१—रागरत्नाकर
१४२—ब्रज माधुरी सार—वियोगी हरि
१४३—संगीत रत्नाकर भाग—१
१४४—संगीत रत्नाकर भाग—२
१४५—सगीत कीर्तन पद्धति अने नित्य कीर्तन—चंपकलाल
१४६—ध्रुपद स्वर लिपि—हरिनारायण मुखोपाध्याय
१४७—भ्रमरगीत—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१४८—श्री बालकृष्ण लीलामृत
१४९—रास पंचाध्यायी भ्रमर गीत—नन्ददास

## कोष-व्याकरण-लक्षण ग्रन्थ

१५०—अमर कोष
१५२—वैजयन्ती कोष
१५३—सिद्धान्त कौमुदी
१५४—काव्य प्रकाश

१५५—वृत रत्नाकर
१५६—काव्य-निर्णय—भिखारीदास
१५७—रस-कलश—वियोगी हरि
१५८—अलंकार मंजरी—कन्हैयालाल पोद्दार
१५९—रस-मंजरी—कन्हैयालाल पोद्दार
१६०—पिंगल प्रकाश
१६१—ब्रजभाषा व्याकरण—डा० धीरेन्द्र वर्मा
१६२—ब्रज भाषा व्याकरण-किशोरीदास वाजपेयी
१६३—हिन्दी व्याकरण—कामताप्रसाद गुरू
१६४—हिन्दी शब्द सागर आठवां खण्ड—ना० प्र० सभा काशी
१६५—सूर शब्द कोष—डा० गुप्त
१६६—वृहत् हिन्दी कोष—काशी

## पत्र पत्रिकाएँ

१६७—खोज-रिपोर्ट १९०२, १९०६, १९०८
१६८—उत्सव फाइल्स
१६९—वल्लभीय सुधा वर्ष १, २, ३, ४। अंक प्रत्येक वर्ष के
१७१— „ „ १—२—३—४
१७२—ब्रजभारती वर्ष दस अंक—४
१७३—कल्याण भक्त-चरिताक
१७४—सुधा—लखनऊ १९५८
१७५—पोद्दार—अभिनन्दन ग्रंथ—मथुरा

—:०:—